हिन्दी लावनी साहित्य : उद्भव और विकास

(मेरठ विश्वविद्यालय की पी-एच.डी. उपाधि हेतु स्वीकृत शोध-प्रबन्ध)

(संशोधित एवं परिवर्द्धित)

लेखक-

डा० सत्यव्रत शर्मा 'अजेय'

एम.ए., पी-एच.डी.

साहित्याचार्य

प्रकाशक-

आदित्यप्रकाश आर्य

33, जगन्नाथ विहार, पानीपत-132103

दिनांक	सदस्य संख्या	दिनांक	सदस्य संख्या
AD			

हिन्दी लावनी साहित्य : उद्भव और विकास

(मेरठ विश्वविद्यालय की पी-एच.डी. उपाधि हेतु स्वीकृत शोध-प्रबन्ध)

(संशोधित एवं परिवर्द्धित)

माननीय
श्रीयुत डा० धर्मपाल जी आर्य
कुलपति - गुरुकुल कांगड़ी
विश्वविद्यालय
हरिद्वार
को
सादर।
सत्यव्रत 'अजेय'
16-12-96

लेखक-

डा0 सत्यव्रत शर्मा 'अजेय'
एम.ए., पी-एच.डी,
साहित्याचार्य

प्रकाशक-

आदित्यप्रकाश आर्य
33, जगन्नाथ विहार, पानीपत-132103

प्रकाशक -

आदित्यप्रकाश आर्य

33, जगन्नाथ विहार

पानीपत-132103

प्रथम संस्करण

सन् 1996 ई.

मूल्य : रु. 400/-

कम्पोजिंग :

एम.के.पालीवाल, एम.ए.
पालीवाल एण्ड कं0
पालीवाल स्ट्रीट, चौक बाजार,
ज्वालापुर - हरिद्वार

मुद्रक : जोगेन्द्र सैन एण्ड ब्रादर्स
ए-३०/१, नारायणा फेस-I,
नई दिल्ली-११००२८

प्रकाशकीय वक्तव्य

'हिन्दी लावनी साहित्य : उद्भव और विकास' का यह प्रथम संस्करण साहित्यप्रेमी सुधी पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करते हुए हम परम प्रसन्नता का अनुभव कर रहे हैं।

जन-जीवन से जुड़ा यह लावणी-काव्य अभी तक अधिकतर मौखिक रूप से ही प्रचलित था। इसका प्रकाशन न के बराबर था, क्योंकि लावणीकार इसे छपवाना पसंद नहीं करते थे, इसी लिये इसकी सांगोपांग समीक्षा का भी प्रायः अभाव रहा ।

डा0 सत्यव्रत शर्मा 'अजेय' लावनी काव्य के मर्मज्ञ विद्वान् हैं, वे समीक्षक भी हैं और सुकवि भी। उन्होंने निःसन्देह यह महान् कार्य सम्पादित कर अवहेलित लावणी काव्य को सम्मानित स्थान दिलाया है। गतवर्ष मेरी और उनकी मुलाक़ात वेद-मन्दिर ज्वालापुर में **'दयानन्द-शतक'** के प्रकाशन के सिलसिले में हुई। जब उन्होंने इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि और तीनों प्रबन्ध-परीक्षकों की रिपोर्ट्स मुझे दिखलाई तो ऐसी उच्चकोटि की साहित्यिक कृति को प्रकाश में लाना मैंने अपना कर्तव्य समझा और इसे तुरन्त छपवाने का निश्चय कर इसके कम्पोजिंग का भार **श्री महेन्द्र कुमार पालीवाल** को सौंप दिया। उन्होंने कुशलता और दायित्व के साथ इस कार्य को निभाया है। इस प्रकार हम इस ग्रन्थ को यथाशक्ति सजा-सँवार कर विज्ञ पाठकों को समर्पित कर रहे हैं।

हमारा विश्वास है कि यह ग्रन्थ साहित्य के सहृदय अध्येताओं, अनुसन्धित्सुओं, समीक्षकों और विद्वानों को रुचिकर लगेगा और इससे लावनीकारों की कीर्ति-रक्षा हो सकेगी। यदि यह रचना इस दिशा में उपयोगी सिद्ध हो सकी तो हम अपने सत्साहित्य-प्रकाशन के प्रयास को सफल समझेंगे।

- आदित्यप्रकाश आर्य

आर्य कुञ्ज
33, जगन्नाथ विहार
पानीपत-132103

समर्पण

लावणी साहित्य के आचार्य
कवि, लेखक एवं पत्रकार
परम श्रद्धेय गुरुवर

स्वामी नारायणानन्द सरस्वती 'अख़्तर'

को

सादर
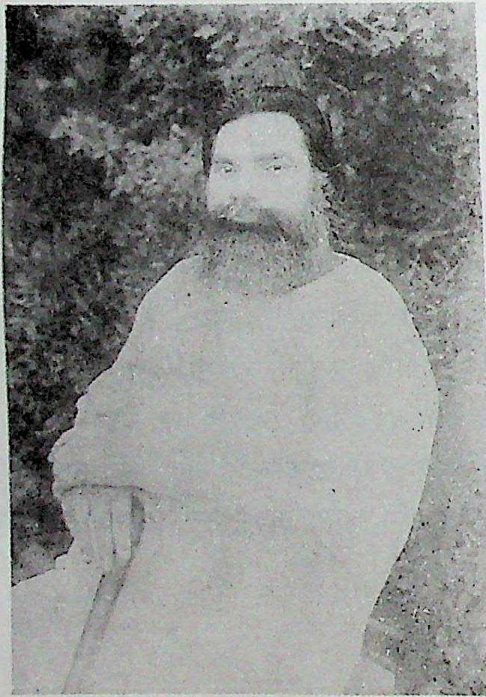
तूलिका तुम्हीं, तुम्हीं हो रंग,
तुम्हीं को चित्रित करता हूँ।
तुम्हारी ही नारायण ! वस्तु,
तुम्हीं को अर्पित करता हूँ।।

- सत्यव्रत 'अजेय'

डा. सत्यव्रत शर्मा 'अजेय'
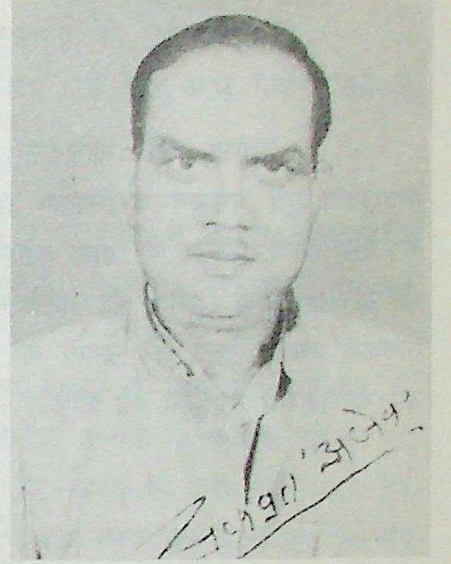
पितृनाम : श्री पं0 बालमुकुन्द शर्मा

जन्म : डंघेड़ा, सहारनपुर में
वैशाख वदि अमावस्या
सम्वत् 1991 विक्रमी को।

शिक्षा : एम.ए.,पी-एच.डी.
साहित्याचार्य, आयुर्वेदाचार्य

कृति संदर्भ-

स्फुट काव्य : प्रथम कविता सन् 1951 ई., 'सुकवि' कानपुर में एवं उच्चस्तरीय पत्र-पत्रिकाओं में अब तक सहस्राधिक फुटकर रचनाएँ प्रकाशित।

खण्ड काव्य : मीरा, नारद मद मर्दन

मुक्तक काव्य : दयानन्द शतक, गा सलोने गा (बालगीत)

नाटक : कुणाल, चीन का आक्रमण (एकांकी) ।

शोध - समीक्षा : जगदम्बाप्रसाद हितैषी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व ।

अन्य : हीरक हार, भाग-1,2 (गद्य), हीरक सहस्रावली (पद्य), ज्ञान-गोदावरी(गद्य) आदि

सम्पादन : ब्रह्मचेतना (त्रयमासिक पत्रिका)

अप्रकाशित : ऋतम्भरा (संस्कृत मुक्तक काव्य), अमर हुतात्मा चन्द्रशेखर 'आज़ादः' (संस्कृत एकांकी नाटक), दर्शनेन्दु (महाकाव्य) तथा गीत-संग्रह आदि ।

सम्प्रति : गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर (हरिद्वार) के उपाचार्य पद से जून 1994 को सेवानिवृन्त होकर सत्य-सदन, आर्यनगर, ज्वालापुर में निवास, साहित्य-सर्जन एवं चिकित्सा-कार्य । अध्यक्ष - लावणी साहित्य परिषद्, हरिद्वार ।

आत्मनेपद -

* रोज़ खोद कर कुआँ पिया है हमने पानी ।
सिकता में भी नाव पड़ी है हमें चलानी ।।
समझ हार को हार, हार से हार न मानी ।
है 'अजेय' संक्षिप्त हमारी यही कहानी ।।

* क्या पता किस पार रहता है ।
पार या इस पार रहता है !
ढूँढ़ते हैं लोग दुनिया में,
सत्यव्रत हर द्वार रहता है ।।

सम्मतियाँ

"विषय की मौलिकता, अन्वेषण के व्यापक आयाम, उपयुक्त वर्गीकरण, तर्कसंगत विश्लेषण एवं महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष प्रदान करने की दृष्टि से यह एक उत्तम शोध-प्रबन्ध सिद्ध होता है। इस शोध-प्रबन्ध के द्वारा लावनी से संबद्ध कई नये तथ्य प्रकाश में आये हैं। इससे शोधकर्ता **श्री सत्यव्रत शर्मा 'अजेय'** की आलोचनात्मक दृष्टि तथा प्राप्त-सामग्री के विश्लेषण-संश्लेषण से वैज्ञानिक निष्कर्ष तक पहुँचने की क्षमता का भी बोध होता है। अपने प्रचुर श्रम द्वारा शोधकर्ता ने लावनी द्वारा की गई हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि की ओर भी इंगित किया है।"

- डा0 छविनाथ त्रिपाठी
अध्यक्ष - हिन्दी विभाग
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

"**डा. अजेय** लावनी को एक छन्द के रूप में मानते हैं और उसका आरम्भ वेदों से देखते हैं, विभिन्न छन्दों में इन्होंने लावनी का ही रूप पाया है। इनका मत है कि वेदकाल से लेकर आधुनिक काल तक लावनी का विभिन्न भाषाओं में विकास हुआ है। अजेय जी ने बड़े परिश्रम से लावनी का अप्रकाशित साहित्य भी खोज निकाला है और उसका पूरा विवरण दिया है। इनके इस प्रबन्ध में भ्रान्तियों के निराकरण की दृष्टि से ही नहीं, नवीन प्राप्त सामग्री तथा मौलिक विवेचन की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण सामग्री उपस्थित है।"

- नवभारत टाइम्स, नई दिल्ली
14 नवम्बर, 1984

"प्रख्यात साहित्यकार, संस्कृतज्ञ विद्वान् एवं छन्दशास्त्र के मर्मज्ञ कवि, **डा. सत्यव्रत शर्मा 'अजेय'** द्वारा लिखा गया यह प्रबन्ध लावनी साहित्य का मौलिक विवेचन प्रस्तुत करता है। ..... वे प्राप्त साक्ष्यों एवं सामग्री के विश्लेषण-संश्लेषण से कई वैज्ञानिक निष्कर्षों तक पहुँचे हैं। ..... निःसन्देह यह शोध-कार्य उच्चस्तरीय है। ..... आज जबकि जनपदीय साहित्य का शोधपरक अध्ययन देश-विदेश में लोकप्रिय हो रहा है, तब **डा. अजेय** द्वारा लावनी पर किये गये इस शोधकार्य का महत्त्व स्वयं सिद्ध हो जाता है।"

- डा. योगेन्द्र नाथ शर्मा 'अरुण'
दैनिक पंजाब केसरी, दिल्ली
12 मई, 1985

"**श्री अजेय शर्मा** ने समय की एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता को पूरा किया है। ..... इनकी रचना में उर्दू की नज़ाकत और हिन्दी की मिठास मिल कर एक ऐसा असर पैदा करती है, जिसे केवल पढ़ कर ही आनन्द उठाया जा सकता है।"

- **क़ाज़ी मुहम्मद मुहीउद्दीन**
भूतपूर्व वनमन्त्री, उ.प्र. शासन, लखनऊ

"**डा. अजेय** हिन्दी जगत् में लावनी साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् के रूप में प्रतिष्ठित हैं, उन्होंने लावनी काव्य में प्रचलित **'बहरे शकिस्ता'** और **'बहरे तबील'** छन्दों के कारण व्याप्त इस भ्रान्ति का पुष्ट प्रमाण प्रस्तुत कर निराकरण किया है कि लावनी पर फ़ारस के रागों का प्रभाव है। उन्होंने 'बहरे शकिस्ता' को 'यशोदा' और 'बहरे तबील' को 'दुर्मिल सवैया' छन्द बताया है एवं शास्त्रीय परिवेश में विवेचित कर लावनी को शिष्ट साहित्य की कोटि में प्रतिष्ठित किया है।"

- **साप्ताहिक स्पूतनिक, इन्दौर/लखनऊ**
16 दिसम्बर 1985

"विज्ञजनप्राज्ञैः **श्रीरजेयैरयं** प्रबन्धः प्रबन्धातिशयेन लोकललामलोकसाहित्यगर्भितां लावणी-सम्बद्धादभ्रसामग्रीं समर्प्य समाप्तिं नीतः। ..... अनया समीक्षया लावण्याः साहित्यिकमूल्यांकनं विशिष्टशिष्टसाहित्यनिविष्टमुच्चकोटिप्रतिष्ठितं दृष्टिमार्गमवतरति। ..... प्रबन्धे न केवलं भूरि-भ्रान्तिनिराकरणवरणदिशैव दृश्यते किन्तु नूतनवस्तुविन्यासगर्भितमौलिकविवेचनचातुर्यचर्चयार्चितं चिन्तनमपिलोचनगोचरी भवति। ..... ततश्च मनोयोग-साक्षात्कृतोऽयं महाप्रबन्धो विद्वद्धौरेयेण **श्रीमता अजेयेन** विजयतेतराम्। वर्धापनीयाश्च सर्वैरपि बुद्धिजीविभि**रजेयाः शास्त्रिणः**।"

- **डा. नारायणमुनिश्चतुर्वेदः**
मासिक भारतोदय, ज्वालापुर (हरिद्वार)
अक्टूबर '84 ई.

"अजेयो जयताल्लोके, सत्यव्रतपरायणः ।
काव्यकर्ता गुणी वाग्मी, काव्यशास्त्र-विचक्षणः ।।

अजेयो दिव्योऽसौ गुणगणनिधिः काव्यनिपुणः
सुधीर्धीरो वीरो विजितनिजकाव्यैर्जनमनः।
सदा सत्येनिष्ठः सततकृतभूरिश्रमयुतः
शतायुर्भूयाद्वै गुणगणयुतः शास्त्रनिचयः।।"

- पद्मश्री डा. कपिलदेव द्विवेदी
निदेशक- विश्वभारती अनुसंधान परिषद्,
ज्ञानपुर, वाराणसी

"भगीरथेन यच्चिरं तपो विधाय सञ्चितम् ।
तथाऽस्य लावणी यथा सुरापगाजलामृतम् ।।"

- डा. हरिगोपाल शास्त्री
प्राचार्य- गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुरम्

आलोचना सुकृतिकीर्तितकौशलानाम्
संकल्पकल्पतरुकल्पितकल्पनानाम् ।
सन्त्यत्र ताः सुललिताः कलिका लतानाम्।
यासां विभान्ति कुसुमानि विकासभाञ्जि।।
साहित्यसौरभसुगन्धितभावभूमिः
सम्पन्नशक्तिरभिधानिजलक्षणाभिः ।
या व्यञ्जनाञ्जननिभा हितनेत्ररूपा
सा**ऽजेय** बुद्धिरचनाविदधातु विश्वम् ।।
काव्यकीर्तिप्रदीपेऽस्मिन्न**जेयस्य** महाकवेः ।
अजेयं ज्वलितं ज्योतिर्जृम्भतेऽहर्निशं जनाः ।।

- आचार्य लक्ष्मीनारायण चतुर्वेदी
पूर्वप्रधानाचार्य, गुरुकुलमहाविद्यालय ज्वालापुरम्
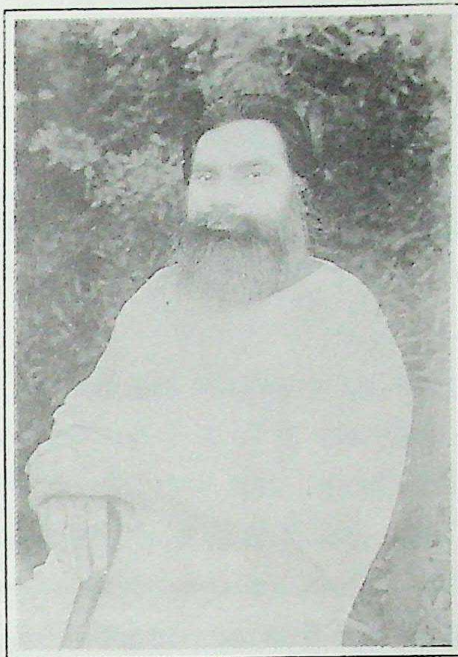
स्वामी नारायणानन्द सरस्वती "अख्तर"
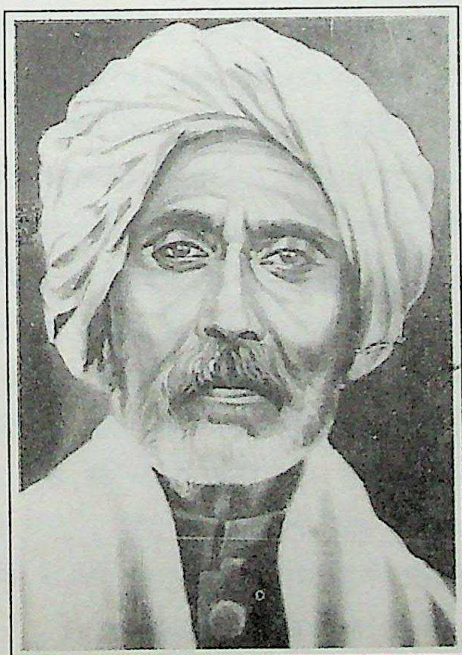
श्री पं. हरिबंशलाल जी
खुर्जा, उ.प्र.
तुर्रा पक्ष
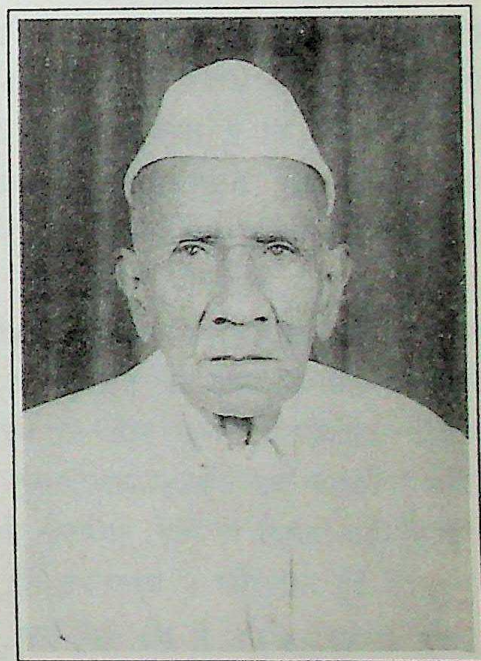
डा. लक्ष्मी प्रसाद 'रमा'
'रमा निवास' हटा (दमोह) म.प्र.
कलगी पक्ष

प्ररोचना

डा0 विष्णुदत्त 'राकेश', डी.लिट्.
आचार्य हिन्दी विभाग तथा निदेशक
स्वामी श्रद्धानन्द अनुसन्धान प्रकाशन केन्द्र
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

''''''''''''''

हिन्दी के शास्त्रीय कवि तथा सुधी साहित्यकार डा0 सत्यव्रत शर्मा 'अजेय' का शोध-प्रबन्ध मेरे सम्मुख है। मैं उन्हें पिछले छब्बीस वर्षों से जानता हूँ तथा उनकी प्रतिभा, व्यवहार और बहुआयामी लेखन से लगातार प्रभावित होता रहा हूँ। उनके सवैया, घनाक्षरी आदि छन्दों में वही चमत्कार और सभाचातुरी है जो सनेही जी तथा हितैषी जी के छन्दों में देखी जाती है। उनके काव्यगुरु श्री स्वामी नारायणानन्द जी सरस्वती जो 'अख़्तर' उपनाम से कविता करते थे, उनके काव्यप्रेरक और जीवननिर्माता रहे हैं। यह वही अख़्तर हैं जिन्होंने **'जियें तो बदन पर स्वदेशी वसन हो, मरें भी अगर तो स्वदेशी कफन हो।'** लिखकर भारत माँ की बलिवेदी पर न्यौछावर हो जाने वाले अनेक नवयुवकों को राष्ट्रीय-चेतना का मंत्र दिया था। स्वामी जी ने लावनी साहित्य के इतिहास पर भी एक पुस्तक लिखी थी। मैंने सत्यव्रत 'अजेय' से कहा कि लावनी जैसी काव्यशैली के साहित्यिक तथा दार्शनिक पक्ष पर प्रामाणिक सामग्री जुटाइए तथा जिस शैली में भारतेन्दु तथा प्रतापनारायण मिश्र ने अपनी प्रतिभा का चमत्कार दिखाया है, उस शैली के रचनाकारों का ब्यौरेवार इतिहास लिखिए। मुझे प्रसन्नता है कि अजेय जी ने मेरा अनुरोध स्वीकार किया तथा लावनी पर तथ्यपूर्ण आलोचनात्मक अनुशीलनपरक शोध-प्रबन्ध लिखकर मेरठ विश्वविद्यालय से पी-एच.डी. की उपाधि, व्रजभाषा के मर्मज्ञ शोधक तथा हिन्दी कवि डा0 जगदीश वाजपेयी के निर्देशन में, प्राप्त की। इस शोध प्रबन्ध के परीक्षकों ने भी अजेय जी के कर्तृत्व की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। मैं अब संतोष के साथ कह सकता हूँ कि विषय की मौलिकता, अनुसन्धान के बहुविध आयाम, तर्कसंगत विवचेन तथा नवीन तथ्यों के उद्घाटन की दृष्टि से यह **शोध प्रबन्ध हिन्दी में मील का पत्थर माना जाएगा।** लावनी साहित्य पर इससे सुन्दर शोधसंवलित कोई कृति अभी तक मेरे सामने नहीं आई। लावनी के उपदेशात्मक, शृंगारी, समाजसुधारक तथा दार्शनिक पक्षों पर इतने विस्तार और अधिकार के साथ इनसे पूर्व किसी भी प्रकाशित ग्रन्थ में विचार नहीं हुआ था। **अजेय** जी की तथ्यान्वेषिणी दृष्टि पूर्ण अभिनिवेश के साथ इस शोधप्रबन्ध में परिलक्षित हुई है।

लावनीकारों को चंगबाज़ या ख़यालबाज़ कह कर जिस ढंग से उपेक्षित समझा गया, वह भी अजेय जी को खटकता रहा। उनके गुरु स्वामी नारायणानन्द जी भी लावनीकार ही थे। लावनी को शिष्टकाव्य तथा लावनीकारों को शिष्टकाव्यकार का दर्जा दिलाने में इस शोधप्रबन्ध की

महत्त्वपूर्ण भूमिका रहेगी, इसका मुझे विश्वास है। और इस प्रकार ये अपने गुरुदेव के अधूरे कार्य को पूर्ण करने का गौरव तथा पुण्य प्राप्त कर सकेंगे, इसके लिए मैं इन्हें हार्दिक बधाई देता हूँ।

कानपुर के हिन्दी कवियों को केन्द्र में रखकर अजेय जी ने लावनी साहित्य की परिक्रमा की है। यह परिक्रमा वैसी ही है जैसे वामन भगवान् के विराट् रूप धारण करने पर जाम्बवान् ने की थी। इतना ही नहीं, उस समय ऋक्षराज जाम्बवान् मन के समान वेग से दौड़ कर सब दिशाओं में भेरी बजाकर भगवान् की मंगलमय विजय की घोषणा कर आए थे -

जाम्बवानृक्षराजस्तु, भेरीशब्दैः मनोजवः ।
विजयं दिक्षु सर्वासु, महोत्सवमघोषयत् ॥

अजेय जी ने भी लावनी-विजय की भेरी बजा दी है, यह उनके गुरुदेव के उस संकल्प की विजय है जिसमें लावनीकारों को शिष्ट कवियों का दर्जा दिलाने की कसक छिपी हुई थी। अब हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों तथा काव्यशास्त्र विवेचकों को यह बात स्वीकार कर लेनी चाहिए कि लावनी शिष्ट साहित्य है। कभी आचार्य रामचन्द्र जी शुक्ल ने भी लावनी को हलके शब्दों में ही लिया था। उन्होंने प्रतापनारायण मिश्र के लिए लिखा - 'ये इतने मनमौजी थे कि आधुनिक सभ्यता और शिष्टता की कम परवा करते थे, कभी लावनीबाजों में जाकर शामिल हो जाते थे, कभी मेलों और तमाशों में बंद इक्के पर बैठ जाते दिखाई पड़ते थे।' इन पंक्तियों से यही ध्वनि निकलती है कि चंग बजाना और लावनी गाना कोई सम्मानजनक कार्य नहीं था। अजेय जी ने अपनी प्रतिभा तथा छन्दःशास्त्रीय खोज के बल पर इस लांछन को सर्वथा निरस्त कर दिया।

अन्त में, मैं इस शोध प्रबन्ध की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करता हूँ तथा लावनी साहित्य के उद्‌भव, स्वरूप और विकास को दर्शित कराने वाले इस प्रामाणिक ग्रन्थ के प्रकाशन पर लेखक तथा प्रकाशक को बधाई देता हूँ। इस ग्रन्थ के प्रकाशन से निश्चय ही हिन्दी की श्रीवृद्धि होगी तथा हिन्दी काव्यप्रेमी यह जान जाएंगे कि लावनी एक प्रतियोगी गीतिका होती है, कभी इसके दंगल आयोजित होते थे, गायक मल्ल इन दंगलों में चंग पर थाप देकर अपनी वाक्पटुता विदग्धता, विषय वैलक्षण्य, बहुज्ञता तथा काव्यकला का प्रदर्शन करते थे, इनके कुछ प्रसिद्ध अखाड़े होते थे और लावनी गाने के कुछ नियम भी निर्धारित किए गए थे। इतने अनुशासन के साथ प्रस्तुत की जाने वाली यह काव्यविधा शास्त्रीय सीमाओं से बाहर रहकर भी सामान्य जन में सुरक्षित रह सकी, यह कम आश्चर्य की बात नहीं है।

आमुख

लावनी एक प्रतियोगी गीतिका है, जिसमें संगीत का सम्मिश्रण सोने में सुगन्ध के समान सुखकर है, इसके द्वारा आत्मा की परमात्मा से मिलनोत्कण्ठा एवं प्रेमी हृदय की विरह-मूलक मार्मिक अनुभूतियों का सरस चित्रण हुआ है, इसी लिये इसे रहस्य एवं शृंगार की संवाहिका माना गया है। यह शिष्ट काव्य भी है एवं लोक काव्य भी। इसमें जहां एक ओर प्रकाण्ड पाण्डित्य से परिपूर्ण सशक्त शब्द-संगठन, विशिष्ट पद-रचना रीति एवं गुणगत रमणीयता है, वहीं दूसरी ओर सीधी-सादी भाषा और गेय मधुर लय में लोक जीवन की उदान्त प्रवृत्तियों एवं हृदय की अतृप्त आकांक्षाओं के कथन की कमनीयता भी है। श्रेय और प्रेय दोनों ही लावनी के प्रदेय रहे हैं।

आज से लगभग 700 वर्ष पूर्व 13 वीं सदी के आस-पास लावनी के कुछ गीत उपलब्ध हुये हैं, जिनमें खड़ीबोली का परिनिष्ठित रूप देखने को मिलता है, तब से अब तक के लावनी साहित्य पर क्रमबद्ध प्रकाश डालना बड़ा कठिन काम था।

मेरी हार्दिक इच्छा सन् 1951 ई. से थी कि मैं लावनी पर शोध कार्य करूँ। मैं उस समय कानपुर रहा करता था, जहाँ लावनी साहित्य के आचार्य स्वामी नारायणानन्द सरस्वती, पं0 गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' और जगदम्बाप्रसाद मिश्र 'हितैषी' जैसे काव्य-मनीषियों के सान्निध्य में रह कर मुझे बहुत कुछ सीखने को मिला। उसी समय श्रद्धेय पं0 बनारसीदास चतुर्वेदी ने इस दिशा में मेरा पथ-निर्देश करते हुए टीकमगढ़ से 9-7-1951 ई. को मुझे लिखा था -

"आप अभी से भारत के मुख्य-मुख्य ख़्यालगो भाइयों से, चाहे वे किसी भी पार्टी के हों, पत्र-व्यवहार करना प्रारम्भ कर दीजिये। ..... एक बात हमें न भूलनी चाहिये, वह यह कि बार-बार तक़ाजा करने पर ही कुछ मसाला इकट्ठा हो पावेगा, यात्राएँ भी करनी पडेंगी, इस शुभ यज्ञ को आप प्रारम्भ कीजिये, सहायक धीरे-धीरे मिल ही जायेंगे। स्वामी जी के भक्तों और प्रशंसकों से भी सहयोग लेना चाहिये। अच्छे-अच्छे ख्यालबाजों के जीवन-चरित्र या रेखाचित्र और फोटो भी होने चाहिएं। ग्रन्थ को सजीव बनाने की जरूरत है।"

और तभी से मैंने इस सम्बन्ध में शोध-कार्य आरम्भ कर दिया। उस समय कतिपय शोध-निबन्ध भी लिखकर मैंने तत्कालीन प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कराये थे। समय बड़ा बलवान् होता है, मुझे कानपुर छोड़ कर सन् 1954 में सहारनपुर आना पड़ा और सन् 1971 तक इस सम्बन्ध में फिर कुछ नहीं हो सका। इतने लम्बे अन्तराल के पश्चात् फिर सन् 1972 में हरिद्वार रहते हुये मुझे **'हिन्दी लावनी साहित्य"** पर शोध-प्रबन्ध लिखने की ललक उठी। उस समय इस दिशा में सन् 1972 से 1976 तक पर्याप्त परिश्रम किया और यात्राओं से तथा पत्र-व्यवहार से इस सम्बन्ध में तथ्य संकलन का कार्य आरम्भ किया। अपरिहार्य परिस्थितियों के कारण सन् 1976 में यह कार्य फिर अवरुद्ध हो गया, परन्तु इसी बीच में ज्वालापुर निवासी श्री बैजनाथ उपाध्याय से हस्तलिखित लावनी-संग्रह के अवलोकन करने का अवसर मिला और श्री वाचस्पति गैरोला, श्री प्रभात शास्त्री तथा श्री श्यामकृष्ण पाण्डेय के सौजन्य से हिन्दी साहित्य सम्मेलन के संग्रहालय का भी निरीक्षण किया, साथ ही और भी अनेक महानुभावों से हस्तलिखित लावनी साहित्य देखने को मिला। उन सब के प्रति मैं कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

पत्राचार द्वारा जिन महानुभों ने इस कार्य में सामग्री-सम्प्रेषण या सत्परामर्श देकर मेरी यत् किंचित् भी सहायता की है, उनके नाम इस प्रकार हैं-

सर्वश्री गोपालदास मुनीम (आगरा), श्री पं0 देवीप्रसाद गौड़ 'मस्त' (बरेली), पद्मश्री डा0 कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर (सहारनपुर), डा0 सोमप्रकाश 'सुधेश' (खुरजा), डा0 नानकचन्द शर्मा, सर्वेक्षण अधिकारी, भाषा-विभाग, हरियाणा (चण्डीगढ़), श्री श्रीनिधि द्विवेदी, साहित्याचार्य, बम्बई (महाराष्ट्र), श्री नेकसाराम ख़यालगो (फीरोजाबाद), श्री श्रीराम शर्मा 'राम' (मेरठ), डा0 हरिदन्त शास्त्री (आगरा), डा0 पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश', कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय (कुरुक्षेत्र), पद्मश्री श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' (दिल्ली), महाकवि गुलाब खण्डेलवाल, (गया - बिहार), श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी (लखनऊ), डा0 पुण्यम चंद 'मानव' (बैंगलोर), श्री अगरचन्द नाहटा (बीकानेर - राजस्थान), डा0 लक्ष्मीप्रसाद 'रमा', हटा, दमोह (मध्यप्रदेश), आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र (वाराणसी), डा0 मधुकर भट्ट, ज्ञानपुर (वाराणसी), डा0 केसरीनारायण शुक्ल (लखनऊ), डा0 महेन्द्र भानावत, भारतीय लोक कला मण्डल, उदयपुर (राजस्थान), निरंकारदेव 'सेवक' (बरेली), डा0 आनन्दप्रकाश दीक्षित; आचार्य, पुणे विद्यापीठ (पूना-7), डा0 कृष्णकुमार दिवाकर, हिन्दी विभाग, पुणे विद्यापीठ ।

इन सभी लावनी साहित्य के मर्मज्ञ विद्वानों का मैं हृदय से आभारी हूँ। शोक है, इनमें से बहुत से विद्वान् अब स्वर्गीय हो चुके हैं, उन्हें मैं श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

मध्यकालीन हिन्दी साहित्य के पारखी - डा0 विष्णुदत्त 'राकेश' से भी समय-समय पर मुझे प्रेरणा, प्रोत्साहन और सहायता मिली है, उनके प्रति भी मैं श्रद्धावनत हूँ। सन् 1978 में हिन्दी काव्यशास्त्र के उद्भट विद्वान्, श्रद्धेय डा0 जगदीश वाजपेयी, अध्यक्ष - सनातन धर्म स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मुज़फ्फरनगर (उ.प्र.) ने वार्तालाप में मुझे सुझाव दिया कि मैं इस व्यापक विषय - 'हिन्दी लावणी साहित्य : एक अनुशीलन' को कुछ संक्षिप्त कर इस पर शोध आरम्भ करूँ। अतः सन् 1981 ई. में इन्हीं के निर्देशन में मैंने **'कानपुर का लावनी साहित्य"** शोध-विषय चुना, जिसे मेरठ विश्वविद्यालय की माननीय शोध-समिति ने स्वीकार कर मुझे अनुगृहीत किया।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में लावनी के परिवेश एवं परिभाषा, उद्भव और विकास पर प्रकाश डालते हुए लावनी साहित्य विषयक प्राप्त समग्र सामग्री का उल्लेख किया गया है। लावनी साहित्य का इतिहास मूलक काल-विभाजन भी प्राप्त सामग्री एवं युगीन प्रवृत्तियों के आधार पर किया गया है। लावनी साहित्य की विभिन्न शैलियों को स्पष्ट करते हुए लावनी के कलापक्ष और भावपक्ष पर भी शास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत किया है। खड़ीबोली के विकास में लावनी का योग, हिन्दी कवियों में लावनी-प्रेम और जन-साहित्यिक अभिव्यक्तियों के विभिन्न क्षेत्रों पर लावनी का प्रभाव प्रकट कर प्रतिपाद्य विषय को लोक-साहित्य के घेरे से हटा कर शिष्ट साहित्य के सिंहासन पर अधिष्ठित करने की चेष्टा की गई है। इस प्रकार संक्षेप में सम्पूर्ण हिन्दी लावनी साहित्य का अनुशीलन इस शोध-प्रबन्ध में हो गया है एवं न्यायसंगत तर्कों तथा शास्त्रीय पुष्ट प्रमाणों के द्वारा इस सिद्धान्त की प्रस्थापना भी की गई है कि "लावनी शुद्ध रूप से भारतीय गीतिका है और इसके छंदःशास्त्रीय ढ़ाँचे पर विजातीय प्रभाव लेशमात्र भी नहीं।"

लावनी साहित्य का विवेचन करते समय महाभारत का यह श्लोक मेरे सामने आदर्श रूप में रहा है -

"इतिहासप्रदीपेन, मोहावरणघातिना ।
सर्वलोकधृतं गर्भं, यथावत् संप्रकाशयेत् ।।"

अर्थात् - मोहावरण को नष्ट करने वाले इतिहास रूपी दीपक से सम्पूर्ण लोक द्वारा धारण किये गए भीतरी भाग को सही रूप में प्रकाशित करना चाहिए।

शोध की वैज्ञानिक पद्धति के अनुसार ही यह अनुशीलन प्रस्तुत किया गया है, परन्तु लावनी साहित्य अधिक मात्रा में अप्रकाशित होने के कारण अथवा स्मृति के आधार पर उदाहरण प्रस्तुत करते समय संदर्भोल्लेख आदि में कहीं-कहीं कठिनाई का सामना भी करना पड़ा है। कानपुर के तुर्रा तथा कलग़ी पक्ष के लावनीकारों की रचनाओं के उदाहरण अधिकतर गुरुवर श्री स्वामी नारायणानन्द सरस्वती द्वारा लिखित 'लावनी का इतिहास' से उद्धृत किये गए हैं।

लावनी गायन अभी जीवित है, जो उसकी लोकप्रियता का सूचक है। विगत 19 मई 1992 को मथुरा में खयाल : लावनी के दंगल का सफल आयोजन राजकीय औद्योगिक कृषि विकास एवं सांस्कृतिक प्रदर्शनी के मध्य स्थापित सूर मंच पर सम्पन्न हुआ।

'आयोजन के प्रारम्भ में ज़िला एवं सत्र न्यायाधीश पी.के. जैन ने सरस्वती के चित्र पर माल्यार्पण के बाद दीप प्रज्वलित करके दंगल का उद्घाटन किया। उन्होंने कहा कि खयाल : लावनी प्राचीन गायकी कला है तथा भारत के अतिरिक्त पाकिस्तान तथा बांगला देश में भी ख़याल : लावनी के कलाकार हैं। ..... कार्यक्रम में जहाँ इस विधा के दिग्गज कलाकार गोपाल प्रसाद चौरसिया और ओमप्रकाश 'अमर' उपस्थित थे, वहीं वयोवृद्ध कलाकार रामेश्वरदयाल शास्त्री तथा गोविन्दराम खलीफा सहित अनेक युवा कलाकारों ने भी दंगल में भाग लिया। मथुरा, हाथरस, मुरसान, इगलास, अलीगढ़, फिरोजाबाद, आगरा आदि स्थानों के कलाकारों संपतलाल जोशी, घनश्यामदास सैनी, नारायनदास गोला, महावीर प्रसाद, ओमप्रकाश सागर, दुर्गाप्रसाद, पुरुषोत्तम दास, ब्रह्मदेव तिवारी, ख्यालीराम सहित अनेक कलाकारों ने राधाकृष्ण, महाभारत, रामकथा के प्रसंगों तथा राजीव गाँधी के बलिदान आदि विषयक रचनाएं प्रस्तुत कीं, जिन्हें श्रोताओं ने बड़े मनोयोग से सुना।

इस आयोजन के द्वितीय चरण में तुर्रा और कलग़ी पक्षों के कलाकारों का दंगल हुआ, जिसमें उन्होंने जहाँ आशुकविता द्वारा श्रोताओं का मनोरंजन किया, वहीं यह भी सिद्ध कर दिया कि उनमें काव्य रचना की क्षमता विद्यमान है।'

- राष्ट्रीय सहारा, नई दिल्ली, बुधवार, 20 मई, 1992, पृष्ठ 2

मेरा शोध-प्रबन्ध स्वीकृत होने के पश्चात् भी लावनी विषयक कुछ सामग्री सामने आई है। रामनारायण अग्रवाल ने **'हिन्दी ख़्याल लावनी परम्परा'** पुस्तक राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली-2 से प्रकाशित कराई।

डा0 द्वारिकाप्रसाद सक्सेना ने मेरठ विश्वविद्यालय से प्रकाशित पत्रिका के लोक साहित्य अंक में 'लावनी' शीर्षक से निबन्ध एवं डा0 प्रतापनारायण टण्डन, रीडर- हिन्दी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय ने 'हिन्दू-मुसलिम एकता की प्रतीक लावनी' नामक लेख लिखा। इसी प्रकार कृष्णगोपाल दुबे, शाहगंज, आगरा और रमेश कौशिक, हिन्दी अधिकारी, दिल्ली परिवहन निगम भी लावनी विषयक लेख लिखने और सामग्री संकलन में रुचि रखते हैं।

डा0 शम्भुशरण शुक्ल द्वारा सम्पादित - 'स्वामी नारायणानन्द सरस्वती 'अख़्तर' स्मृतिग्रन्थ' सांस्कृतिक सर्वेक्षण समिति, पीलीभीत (उ.प्र.) से सन् 1990 में प्रकाशित हुआ, उसमें भी कपितय विद्वानों के लावनी विषयक शोध-परक लेख देखने को मिले हैं।

इस प्रकार विद्वानों का दिनानुदिन इस ओर ध्यान देना शुभ लक्षण है।

यह कार्य कितना कठिन था, इसका अनुमान डा0 जगन्नाथ शर्मा के इस वक्तव्य से लगाया जा सकता है -

"आगे चलकर सन् 1938 के लगभग एक बार पुनः उत्साह उठा और फलस्वरूप एक नवीन और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय सम्मुख दिखाई पड़ा - **'भारतीय काव्य परम्परा में लावनी और ख़याल'** हिन्दी के धुरन्धर समीक्षक और इतिहास लेखक काव्य के इस व्यावहारिक रचना सौन्दर्य की जानबूझ कर उपेक्षा करते दिखाई पड़े। इसका कारण अवश्य था। इन रचनाओं की परम्परा-प्राप्त सांगोपांग विवेचना अभी तक नहीं हो पाई है।, अत एव साहित्यिक महारथी भी इस व्यूह में प्रवेश करने से हिचक रहे हैं। इस विषय में मैंने कुछ काम किया, पर समयाभाव, अर्थ-संकट और दायित्व-निर्वाह की असमर्थता के कारण यहाँ भी मेरे उत्साह को कुण्ठित होना पड़ा। यों तो आज भी मैं इस बात को स्वीकार करता हूँ कि शुद्ध साहित्य की परम्परा में उक्त रचनाओं का एक निर्दिष्ट महत्त्व है, पर उनका विधान पूर्ण अनुशीलन न होने से हम उस निधि को अपना नहीं पा रहे हैं। अभी तक तो मेरे लिये भी नहीं हो सका। पर आशा है कि कोई विचारशील व्यक्ति इस विषय को अपनाएगा।

- डा0 जगन्नाथ प्रसाद डी.लिट.

29-1-1944

हिन्दी विभाग, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी

(प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन, वक्तव्य)

लावनी की अवहेलना का कारण जहाँ उक्त विधानपूर्ण विवेचना के अभाव में उसके गुण-प्रकर्ष को न जानना था वहीं उसे गेहूँ आदि की फसल काटने वाले **लावों का गीत** कह कर अवहेलना की दृष्टि से देखना भी था। सच ही है - जो जिसके गुण-प्रकर्ष को नहीं जानता, वह उसकी निन्दा निरन्तर किया ही करता है, इसी अज्ञता के कारण भील मोतियों को छोड़ कर गुंजाफल की माला पहिनते हैं!

सुधी समीक्षक, महाकवि जयशंकर प्रसाद के अतिरिक्त अन्य किसी पूर्व सुप्रसिद्ध साहित्यकार ने लावणीकारों को कवि की संज्ञा अब तक नहीं दी, इससे मेरे हृदय में प्रसाद जी के प्रति घनी श्रद्धा है । मैं आरम्भ से ही लावणीकारों को कवियों की सम्मानित दृष्टि से देखता हूँ। इसीलिए उन्हें कवियों में तथा उनके काव्य को शिष्ट साहित्य में समाविष्ट करने का मेरा यह प्रयास है। मैं अपने प्रयत्न में कहां तक सफल हुआ हूँ, इसका निर्णय विज्ञ पाठक ही करेंगे।

शोध-प्रबन्ध के सभी माननीय विद्वान् परीक्षकों ने इस सुवर्ण प्रबन्ध के खरेपन की प्रशंसा की है। इस विषय की सारगर्भिता पर विश्वविद्यालय की मुद्रा लगने से यह विषय यथोचित स्थान पा गया है, यानी धूलि-धूसरित मणि को मुकुट का कोना मिल गया है।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के आचार्य सुप्रसिद्ध समीक्षक **डा0 विष्णुदत्त 'राकेश'** ने ग्रन्थ की 'प्ररोचना' लिख कर मुझे जो गौरव प्रदान किया है, उसके लिए मैं श्रद्धावनत एवं कृतज्ञ हूँ।

इस विशाल ग्रन्थ के प्रकाशन की बड़ी जटिल समस्या थी, प्रकाशकों के लिए भी 'लावनी' शब्द अजनबी-सा लगता था, बहुतों को पत्र लिखे - उ.प्र. हिन्दी साहित्य अकादमी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन और शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार तक दौड़-धूप की, परन्तु कहीं आशा की किरण नज़र नहीं आई। लिखना तो अपने वश की बात थी, पर छपवाना नहीं - **'ममायत्तं तु पौरुषम्'**। मेरे पूज्य अग्रज सत्यपाल शर्मा, संस्थापक - सत्पुरी, मुजफ्फरनगर, भी इसे छपवाने के लिए लगातार मुझे प्रेरित करते रहते थे, परन्तु मुहूर्त न आने से सन् 1983 से तब तक यह ग्रन्थ प्रकाशित न हो सका। अब 14 वर्ष का भवन-वास बिता कर नयनपथगामी हो रहा है।

ईश्वर ने मेरे विवश हृदय की पुकार सुनी और आर्य समाज के प्रतिष्ठित प्रकाशक **श्रीमान् आदित्यप्रकाश जी आर्य** से मेरा परिचय **'दयानन्द शतक'** के माध्यम से करा दिया। जब 'दयानन्द शतक' छप चुका तो मैंने आर्य जी से **'हिन्दी लावणी साहित्य'** के उद्धार की बात कही। उन्होंने ग्रन्थ की पाण्डुलिपि और सभी प्रबन्ध-परीक्षकों की रिपोर्ट्स को विहंगम दृष्टि से देखा और वे इसे प्रकाशित करने के लिए तैयार हो गये। ईश्वर ने मेरी आकांक्षा पूरी कर दी। मैं चाहता था कि इसका प्रूफ मैं स्वयं देखूं, मेरी यह इच्छा भी पूरी हुई। **श्री महेन्द्र कुमार पालीवाल** ने कम्प्यूटर द्वारा टंकित करने का भार सँभाला और सजा-सँवार कर ग्रन्थ को आफसेट प्रेस में जाने के योग्य बना दिया। तेरह-चौदह वर्ष पूर्व इस शोध-प्रबन्ध को मेरे अजीज़ रिश्तेदार प्रिय नकलीराम शर्मा साहित्यायुर्वेदरत्न ने बड़ी सावधानी से अपने छोटे अक्षर वाले पोर्टेबल टाइपरायटर से टंकित किया था। सावधानी से इसलिए कि इसमें कहीं संस्कृत है, कहीं प्राकृत है, कहीं फ़ारसी है और कहीं उर्दू है। हिन्दी भी कहीं पूर्वी है, कहीं व्रज है, कहीं खड़ी है। इसलिए हरेक टाइपिस्ट के वश का यह काम नहीं था। टाइप की स्याही का रंग भी अब तेरह-चौदह वर्ष पश्चात् उसी प्रकार फीका पड़ने लगा था, जैसे बुढ़ापे में काले बाल भी सफेद होने लगते हैं, अतः अक्षरों को यथावत् पढ़ना **पालीवाल जैसे विज्ञ टंकणकर्ता** का ही कार्य था।

मैं **आदित्यप्रकाश जी आर्य** को हृदय से कोटि-कोटि धन्यवाद देता हूँ और ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि ऐसे सत्साहित्य प्रकाशक को वह शतायु प्रदान करे, खूब धन-धान्य से समृद्ध करे, जिससे कि वे जीवनभर अच्छे साहित्य को प्रकाश में लाने का पुण्यकार्य कर अपने नाम को सार्थक करते रहें ।

श्री महेन्द्र कुमार पालीवाल और **श्री नकलीराम शर्मा** को मैं साधुवाद देता हूँ। इन्होंने त्याग की भावना से इसका शुद्ध टंकण किया है।

जिन विद्वानों ने ग्रन्थ के वैशिष्ट्य और विषय-प्रतिपादन पर अपनी सम्मति देकर मेरा उत्साह बढ़ाया, उन सभी इष्ट मिष्ठ शिष्ट जनों, विद्वानों, समीक्षकों, पत्रकारों एवं पत्र-पत्रिकाओं का भी मैं हृदय से आभारी हूँ । विद्वज्जनों के शुभाशीष ही हमारे पाथेय हैं।

यह महान् कार्य ईश्वरकृपा, गुरुकृपा एवं विद्वत्कृपा से ही सम्पन्न हो सका है। इसमें मुझ जैसे अल्पज्ञ से बहुत-सी भूलें हो जाना स्वाभाविक है, मैं उनके प्रति क्षमाप्रार्थी हूँ ।

विनीत-

डा० सत्यव्रत शर्मा 'अजेय'

सत्य-सदन, आर्यनगर

ज्वालापुर, हरिद्वार

गंगा दशहरा :

28-5-1996 ई०

संकेत-सूची

संकेत	पूर्ण रूप
अ0	अध्याय
अनु0	अनुवादक
अप्र0	अप्रकाशित
आ0हि0का0	आधुनिक हिन्दी काव्य
आ0हि0सा0	आधुनिक हिन्दी साहित्य
आधु0परि0	आधुनिक परिदृश्य
ई0	ईस्वी
ऋ0	ऋग्वेद
कृ0गं0	कृष्णा जी गंगाधर
च0ख0गौ0	चमनिस्तान ख़यालात गौहर
ज0प्र0	जगन्नाथ प्रसाद
ज0प्रे0	जगन्नाथ प्रेस
डा0	डाक्टर
द्वि0	द्वितीय
ना0प्र0स0	नागरी प्रचारिणी सभा
पु0च0	पुण्यम चन्द
पं0	पण्डित
प्र0	प्रथम
प्रका0	प्रकाशक
प्रा0पै0	प्राकृत पैंगलम्
प्रो0	प्रोफेसर
भो0शं0	भोलाशंकर
म0	मण्डल
म0वा0	मधुकर वासुदेव
मा0	मास्टर
यजु0	यजुर्वेद
रा0ब0चि0	रायबहादुर चिटणीस
ला0का इ0	लावनी का इतिहास
ला0ब्र0ज्ञा0	लावनी ब्रह्मज्ञान
लि0	लिमिटेड
व0	वर्ग
वि0	विक्रमी
स0व्र0	सत्यव्रत
सं0	सम्पादक, संस्करण, सम्वत्, संख्या
सा0	साप्ताहिक
ह0लि0ला0	हस्तलिखित लावनी
हि.ला.सा.पर	हिन्दी लावनी साहित्य पर
हि.सं.सा	हिन्दी सन्त साहित्य का प्रभाव
हि0सा0 सं0	हिन्दी साहित्य सम्मेलन
हि0सा0	हिन्दी साहित्य

विषय सूची

अनीता आर्ष प्रकाशन द्वारा प्रकाशित दुर्लभ पुस्तकें

		मूल्य
(१)	अष्टाध्यायी सूत्र पाठः वार्तिक गणपाठ सहितः अनुवृत्ति निर्देश समन्वितश्च *संस्कर्ता-श्री शंकरदेव पाठक*	२०.००
(२)	आर्य समाज के दस नियम *आचार्य विश्वबन्धु शास्त्री-दर्शनवाचस्पति*	५.००
(३)	महर्षि दयानन्द यांचे चरित्र कामगिरि (मराठी) *हरिसखाराम तुंगार*	२०.००
(४)	त्यागवाद *स्वामी विद्यानन्द सरस्वती*	१५.००
(५)	पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी *डॉ० राम प्रकाश*	१५.००
(६)	चतुर्वेद शतक *स्वामी अच्युतानन्द सरस्वती*	२०.००
(७)	महत्ता अमीचन्द की भजनावली *प्रो० भवानी लाल भारतीय*	२०.००
(८)	ब्रह्मचर्य का वैज्ञानिक स्वरूप *डॉ० त्रिलोक चन्द*	८.००
(९)	मिट्टी का घर *डॉ० ओमप्रकाश वेदालंकार*	२०.००

व्यवस्थापकः

लाला आदित्य प्रकाश आर्य

५००/२ हलवाई हट्टा

पानीपत (हरियाणा)

प्रथम अध्याय

विषय-प्रवेश

लावनी : परिवेश एवं परिभाषा

वाणी ही ब्रह्म है, देव या मनुष्य जिस पर भी यह कृपा करती है, उसे ही यह उग्र, सृष्टा, मन्त्र-द्रष्टा तथा मेधावी बना देती है -

"अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः, यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि

तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ।"[1]

सृष्टि के आरम्भ में अ-क्षर ब्रह्म से युक्त शब्द मात्र ही था, मनुष्य के हृदय में उत्पन्न विचारों की अभिव्यक्ति का साधन यही शब्दमयी वाणी है, इस वाणी के अनेक साहित्यिक स्वरूप हैं, लावनी भी उनमें से एक है। यह हिन्दी साहित्य की एक विशिष्ट विधा है। प्रथम अध्याय में लावनी की स्वरूपगत जानकारी प्रस्तुत की जा रही है। लावनी का सांगोपांग परिचय देना प्रस्तुत शोध विषय का लक्ष्य है।

लावनी में साहित्य के साथ संगीत का भी सम्मोहक सम्मिश्रण है, यह साहित्य वाग्वैभव के रूप में प्रसृत होकर लोक की निधि बन गया है, इसी लिये उच्च शिष्ट साहित्य के गुणों से युक्त होते हुए भी विद्वज्जन लावनी का समावेश लोक-साहित्य में ही करते हैं।

लोकाभिव्यक्ति के वाणी रूप साहित्य का कोटि-क्रम निर्धारित करते हुए लोक साहित्य-विज्ञान के वेत्ताओं ने ख्याल अर्थात् लावनी को पूर्ण अहं चैतन्य युक्त शिष्ट साहित्य के अन्तर्गत प्रतियोगी गीतिका प्रतिपादित किया है -

पूर्ण अहं चैतन्य

।

0

उच्च शिष्ट - साहित्य
- काव्योक्तियाँ - रसोक्तियां
- आत्माभिवेदिनी गीतियाँ - भक्ति समर्पण के गीत
- आत्म प्रबोधिनी गीतियाँ - ज्ञान वैराग्य के गीत
- प्रतियोगी गीतियाँ - ख़्याल (लावनी)[2]

---

1. ऋग्वेद, मं.10, अ.10, सूक्त 125 की ऋचा
2. डा. सत्येन्द्र, लोक साहित्य विज्ञान, प्रथम संस्करण, पृष्ठ-13

प्रस्तुत अध्ययन में अनुगमन और निगमन विधि से लावनी सम्बन्धी कतिपय मौलिक प्रस्थापनाएँ सिद्ध होंगी, जैसे - लावनी का शिष्ट साहित्यिक रूप एवं खड़ी बोली हिन्दी की जननी लावनी, आदि ।

व्युत्पत्ति :

'लावनी' पद्य में प्रयुक्त स्त्रीलिंग शब्द है जिसका अर्थ है, लावण्य, सुन्दरता ।[1] लवण में अण् प्रत्यय लगाकर 'लावण' विशेषण से 'लावणी' स्त्री लिंग शब्द बनता है। यह निश्चित है कि लावणी का अपना शाब्दिक महत्त्व है। वस्तुतः यह शब्द लवण शब्द से बनता है, तथा लवण शब्द 'लुञ्' छेदने धातु से ल्युट् प्रत्यय लगाकर बनता है। **'लवणो रसः अस्ति अस्मिन् इति लवणः'** । लवण में अच् प्रत्यय लगाने से लवण का अर्थ नमकीन हो जाता है । **'लुनाति यत् तत् लवणम्'** यह इस शब्द की व्युत्पत्ति है । लौकिक लवण क्षारता युक्त होने के कारण वस्तु के द्वैधी भाव करने में समर्थ है । उधर छन्द की ओर **'लुनाति विषयान्तरैः व्यवच्छिनन्ति मनः इति लवणं** छन्दः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार इसके प्रयुक्त होने पर अन्य छन्दों की ओर से मन का विरत हो जाना ही इसकी विशेषता है।

इस लवण का स्वाद निराला होता है। बिना लवण सभी व्यञ्जन फीके होते हैं । अतः यह भी हो सकता है कि **'लवण'** की उपयोगिता को ध्यान मे रखते हुए सर्वप्रथम इसे **'लवणस्येयं लावणी'** नाम दिया गया हो । **'लवण'** शब्द से भाव या स्वार्थ में **'ष्यञ्'** प्रत्यय करने पर लावण्य शब्द बनता है । यह लावण्य दूरार्थकता को लेकर किसी वस्तु के विकास में भी प्रयुक्त होता है। लावण्य आस्वाद्य है किन्तु शब्द प्रतिपाद्य नहीं । कोई भी व्यक्ति भोज्यगत रस विशेष का प्रतिपादन शब्दों से नहीं कर सकता, **न शरीराद्यवयववर्त्ति लावण्य** ही शब्द का विषय है । यह तो प्रस्फुरित होता है, अतः एक मात्र अनुभूति का विषय है।

लावण्य शब्द से **'षिद्गौरादिभ्यश्च'**[2] इस पाणिनि सूत्र के अनुसार **'ङीष्'** प्रत्यय करने पर **'लावणी'** शब्द निष्पन्न होता है, अतः नपुंसक लिंग में तो **'लावण्य'** एवं स्त्री लिंग में **'लावणी'** शब्द व्यवहृत होता है । जिस प्रकार भट्टोजिदीक्षित ने **'अर्हत्'** शब्द से **'आर्हन्त्य'** और **'आर्हन्ती'** शब्दों की सिद्धि की है[3], इसी प्रकार लावण्य और लावणी दोनों एक ही अर्थ के वाचक संस्कृत शब्द हैं ।

लावण्य और लावणी :

लावण्य की परिभाषा संस्कृत में इस प्रकार की गई है -

'मुक्ताफलेषु छायायास्तरलत्वमिवान्तरा ।
प्रतिभाति यदङ्गेषु तल्लावण्यमिहोच्यते ।।[4]

---

1. बृहत् हिन्दी कोश, सं. कालिका प्रसाद आदि, पृष्ठ ।।69
2. लघुसिद्धान्त कौमुदी, स्त्री प्रत्यय।
3. 'श्रोत्राऽर्हन्ती चणैर्गुण्यैर्महर्षिभिरहर्दिवम् । तोष्टूय्यमानोऽप्यगुणो विभुर्विजयतेतराम्।।'
   -सिद्धान्त कौमुदी, उत्तरार्द्ध, तिङन्ते भ्वादयः। श्लोक-।
4. रूप गोस्वामी, उज्ज्वल नीलमणि, पृष्ठ 273

अर्थात् मोती के भीतर छाया की जैसी तरलता होती है, वैसे ही कान्ति की तरलता अंग में लावण्य कही जाती है । 'इस लावण्य को संस्कृत साहित्य में छाया और विच्छिन्ति के द्वारा कुछ लोगों ने निरूपित किया था ।'[1]

काव्यशास्त्र तत्त्वज्ञों ने प्रतीयमान (वाच्यार्थ से भिन्न) अर्थ को ही लावण्य माना है -

प्रतीयमानं पुनरन्यदेव, वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम् ।
यत्तत् प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवाङ्गनासु ।।[2]

जिस प्रकार अंगनाओं में प्रसिद्ध अवयवों से भिन्न लावण्य एक पृथक् पदार्थ होता है, उसी प्रकार महाकवियों की वाणियों में प्रतीयमान अर्थ कुछ और ही तत्त्व है ।

"लावण्य कोई और तत्त्व नहीं, केवल अवयवों की निर्दोषता और आभूषित होना ही लावण्य है" ..... सहृदयों में सुप्रसिद्ध वाच्यार्थ व्यतिरिक्त एक प्रतीयमान अर्थ भी अंगनाओं के लावण्य के समान होता है, जिसे न तो हम सुप्रसिद्ध अलंकारों में सन्निविष्ट कर सकते हैं और न प्रकट होने वाले अवयवों में ही उसका समावेश हो सकता है। यही अर्थ सौन्दर्य काव्य की आत्मा है ।"[3]

अभिधा की अपेक्षा व्यंजना की रमणीयता ही रस का उद्रेक करती है। लावणी की भी यही विशेषता है कि इसमें प्रतीयमान अर्थ वाच्यार्थ से भिन्न है। सिद्धों की रहस्य सम्प्रदाय की परम्परा में इसी विशेषता के कारण लावणीकार ही शुद्ध रहस्यवादी कवि हैं, "जो लावणी में आनन्द और अद्वयता की धारा बहाते रहे ।"[4]

लोक में लावण्य शारीरिक कान्ति अथवा सौन्दर्य का ही वाचक है, जिसे इसी प्रगल्भ अर्थ में संस्कृत कवियों तथा लावणीकारों ने अपनाया है।

जिस प्रकार जल में घुलने के उपरान्त लवण को उससे अलग नहीं किया जा सकता है, उसी प्रकार हिन्दी के साहित्य-सिन्धु से सम्पृक्त लावणी सर्वथा अविभाज्य हे । इसी लोकप्रिय लावणी की लावण्य-श्री के कारण यह साहित्य के क्षेत्र में नित्य ही अनिंद्य सौन्दर्य-मयी, लय-मयी, रस-मयी, भव्य भाव-सम्भृता, सकल कला सम्वृता, अनृता तथा अमृता हे ।

'लावनी' बनाम राधिका :

रूढ़ि में लावनी शब्द एक विस्तृत साहित्य का द्योतक है, जिसकी परिभाषाएँ हम आगे चलकर प्रस्तुत करेंगे, परन्तु "लावनी छन्द शास्त्रानुसार एक छन्द का नाम हे जो बाईस (22) मात्रा का होता है, जिसे राधा छन्द भी कहते हैं"।[5]

---

1. जयशंकर प्रसाद, काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, पृष्ठ-124
2. श्रीमदानन्दवर्धनाचार्य, ध्वन्यालोक, उद्योत-1, श्लोक-4
3. डा. रामसागर त्रिपाठी, ध्वन्यालोक की तारावती टीका, प्रथम संस्करण, पृष्ठ-81,82
4. जयशंकर प्रसाद, काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध पृष्ठ-68
5. स्वामी नारायणानन्द, लावनी का इतिहास, पृष्ठ-20

लावनी का नाम 'राधा' या 'राधिका' क्यों पड़ा ? यहाँ यह विचारणीय है । राधिका सौन्दर्य, आराधना और आह्लाद की अधिष्ठात्री देवी है। अतः उस लावण्य लीलामयी राधिका के लावण्य पर, जिसमें कि लावणी से मिलते-जुलते समस्त रस-रूप और सौन्दर्य गुण विद्यमान हैं, संभवतः इस छन्द का नाम 'लावणी' या 'लावनी' पड़ गया हो ।

रस रूपा राधिका 'एषा पूर्ण रसा देवी, एषा च रस मन्थरा ।
एषा रसालया नाम, एषा च रस वल्लरी ।।'[1]

भक्ति रूपा राधिका

राधा का अर्थ आराधना से भी लिया जाता है ।

'अनयाऽऽराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः ।'[2]

उक्त श्लोक राधिका और लावनी दोनों की परिभाषा में समान सार्थक हैं। राधिका के पक्ष में यह रस की अधिष्ठात्री देवी है, रस से मन्थर गति वाली, रस की निधि और रस की वल्लरी है। निश्चय ही इसके द्वारा भगवान् की आराधना हुई है। 'लावनी' के पक्ष में यह शृंगार रस-परक और भक्ति चेतना-परक है, जिसके द्वारा राधापति भगवान् कृष्ण आराधित हुए हैं। इस प्रकार सौन्दर्य तथा वैयक्तिक आराधना भाव को व्यक्त करने वाली प्रवृत्ति राधा कही गई है। मेरी दृष्टि में लावनी के मूल में भी यही दो प्रवृत्तियाँ प्रमुख रूप से कार्य कर रही हैं, इसलिये लावनी और राधिका परस्पर एक मूलभाव की संवाहिका होने के कारण अभिन्न समझी जा सकती हैं।

लावनी के इतिहास मूलक जिन कालों को मैंने तीन प्रकार से विभाजित किया है उनमें से पहले दो अर्थात् भक्ति चेतना काल और शृंगार चेतना काल की अवतारणा भी इन दोनों श्लोकों से हो जाती है। राधा को समग्र काव्य सौन्दर्य का प्रतीक मानकर 15वीं शताब्दी के काचड़ा पाड़ा नामक ग्राम निवासी महाकवि कर्णपूर ने भी इसके सौन्दर्य का वर्णन इस प्रकार किया है :-

"आसां मध्ये सकलरमणी-मौलिमणि-मालेव, वैदर्भी रीतिरिव, माधुर्योजः प्रसादादि सकल गुणवती, सकलालंकारवती, रस-भावमयी च, कनककेतकीव प्रेमारामस्य, तडिन्मञ्जरीव मधुरिमजलधरस्य, कनकरेखेव सौन्दर्यनिकषपाषाणस्य, कौमुदीवानन्दकुमुदबान्धवस्य, भुजदर्पावलिरिव कुसुमायुधस्य, सारश्रीरिव लावण्यजलधेः, हासलक्ष्मीरिव मधुमदस्य, आकरभूरिव कलाकलापस्य, खनिरिव गुणमणिगणस्य कापि श्रीराधिका नाम ।"[3]

यहाँ 'राधिका' के स्वरूप की जो परिभाषा महाकवि कर्णपूर द्वारा की गई है, उससे 'लावणी' और राधिका की अद्वयता और अधिक प्रकाशित हो गई है, राधिका का लावणी के परिवेश

---

1. पद्मपुराण, पाताल खण्ड, वृन्दावन माहात्म्य, 70/10-11
2. श्रीमद्भागवत, दशम स्कन्ध, रास क्रीड़ा में कृष्णान्वेषण, अध्याय-30, श्लोक 28 की प्रथम पंक्ति
3. श्री आनन्द वृन्दावन चम्पू : प्रथम स्तवक, प्रथम सं0, पृष्ठ-49-50

में सांगोपांग वर्णन करता हुआ मानों महाकवि कहता है कि -

"अलंकार शास्त्र में वैदर्भी नाम की एक रीति है, वह जिस प्रकार माधुर्य, ओज, प्रसाद आदि गुणों से युक्त एवं उपमा आदि समस्त अलंकारों से तथा शृंगारादि समस्त रस और भावों से युक्त होती है, उसी प्रकार राधिका भी माधुर्य, ओज एवं प्रसाद आदि समस्त गुणों से विभूषित एवं समस्त अलंकारों से अलंकृत तथा समस्त रस भावमयी है।"[1]

'सारश्रीरिव लावण्यजलधेः' अर्थात् वह लावण्य रूपी जलधि की मूलभूत लक्ष्मी है, कह कर तो मानों महाकवि ने 'राधिका' और लावणी का शाब्दिक भेद ही दूर कर दिया है। अर्थात् राधिका ही लावणी है, और लावणी ही राधिका है।

छन्द:शास्त्रियों ने भी लावणी को 'राधिका' के नाम से अभिहित किया है -

"तेरा पै सज नव कला 'राधिका' रानी ।"[2]

परिभाषाएँ

1. **"लावनी** : संगीत राग कल्पद्रुम के अनुसार लावनी (लावणी) **उपराग** है- **'लावणी जोगिया जंगी अहंग सुहाना कोल्लिका'** । यह देशी राग के अन्तर्गत है। देशी राग के सम्बन्ध में कहा गया है कि भिन्न-भिन्न देशों में जो भिन्न-भिन्न नाम धारण करे, वह देशी राग है, **'देशे देशे भिन्न नाम तद्देशी गानमुच्यते'** (रा.-1-, पृ.17)।

दीपक राग की भार्या देशी रागनी से इसमें भिन्नता है, क्योंकि देशी राग को ग्राम्य राग भी कहा जाता है। स्पष्ट है कि लोक-गीतों से इसका विकास हुआ है, जिसका संस्कृतानुकरण लावणी में मिलता है। इसका सम्बन्ध लावनी देश (लावाणक*) से था, जो मगध के समीप था एवं उसी देश से सम्बद्ध होने के कारण उसका नाम लावनी पड़ा । मियां तानसेन ने जिन मिश्रित रागनियों को शास्त्रीयता प्रदान की थी, उनमें से लावनी भी थी। कुछ लोगों की धारणा है कि निर्गुण भक्तिधारा के साथ इसका सम्बन्ध था। वस्तुतः लोकरागिनी होने के कारण इसे लोककवियों ने अपनाया। सगुण-निर्गुण का इसमें विभेद उपयुक्त नहीं है। 'लावनी' के कई वर्ग होते हैं- लावनी-भूपाली, लावनी- देशी, लावनी- जंगला, लावनी- कलांगड़ा, लावनी- रेखता आदि । कबीर के कुछ गीतों की परिगणना लावनी के अन्तर्गत हुई है, किन्तु ग्रन्थावली में यह नाम नहीं मिलता। प्राचीन कवियों में हस्तिराम, हरिदास, रसरंग, कृष्णानन्द आदि लावनी के प्रसिद्ध कवि हुये हैं।"[3]

---

1. टीकाकार वनमालिदास शास्त्री, टीका वही, पृष्ठ 49-50
2. जगन्नाथ प्रसाद 'भानु', छन्दः सारावली

* 'लावणक' ग्राम में उदयन की रानी वासवदत्ता के जल जाने की अफ़वाह यौगन्धरायण मन्त्री ने फैलवाई थी, इसका उल्लेख श्री हर्ष की 'रत्नावली' नाटिका में है।

3. रामखेलावन पांडेय, हिन्दी साहित्य कोश, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 682-83

2. "लावनी केवल गीत नहीं, 'गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीत संज्ञकम् ।' - इस व्याख्या के अनुसार वह सम्पूर्ण संगीत है, और गायिकाओं की अदा और रंगीन चित्र से बीच-बीच में चलने वाले संवादों के कारण उसमें नाटक भी है।"[1]

3. "महाराष्ट्र प्रान्त में लावणी तथा **पोवाड़ा** को नृत्य एवं गान के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।"[2]

4. "कोई इसको लावनी कहते हैं और कोई **मरहठी** या **ख्याल** कहते हैं।"[3]

5. "लावनी शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक मतभेद पाये जाते हैं। एक मत के अनुसार 'लवण' अथवा लावण्य से 'लावणी' बना है, जिसका अर्थ सुन्दर रचना अथवा सौन्दर्य-वर्णन प्रधान रचना हो सकता है। महाराष्ट्र की लावणियों में युवतियों के सौन्दर्य का वर्णन प्रधान रूप में पाये जाने से संभवतः यह व्युत्पत्ति दी गयी होगी ।"[4]

6. "लावनी को मराठी में **'लावणी'** कहा जाता है। यह गीत का एक प्रकार है। इसका लावण्य से सम्बन्ध है। इसका मुख्य भाव शृंगार होता है। अभिवृद्धि के समय जनता लावणियों की ओर प्रवृत्त हुई थी। इस समय कई कवियों ने उत्तान शृंगार परक लावणियाँ की थीं। लावनियों का मुख्य विषय लौकिक हुआ करता है, परन्तु -

"काल्हि के सुकवि रीझिहैं तो कविताई, न तु -
राधिका - कन्हाई-सुमिरन को बहानो है ।"

के अनुसार कई लावनीकारों ने अपनी लावणियों का विषय राधाकृष्ण तथा महादेव पार्वती को भी बनाया है।"[5]

7. "यह साहित्य जन-साहित्य के रूप में प्रकट हुआ और जन-साधारण के मनोरंजन के लिये ही नहीं, किन्तु धार्मिक, सामाजिक एवं नैतिक पथ प्रदर्शन भी करने में अग्रसर हुआ था। 'लावनी' में देवी देवताओं की वन्दनायें, पौराणिक गाथाएं, रामकृष्ण की लीलाएं आदि बड़ी मधुर और ओजपूर्ण भाषा में लिखी गई हैं। ..... इस साहित्य में साहित्य और संगीत दोनों का सम्मिश्रण होने से इसकी तरफ सर्वसाधारण का आकर्षित होना स्वाभाविक ही था।"[6]

8. "लावनी-संज्ञा-स्त्री0 (देश) (।) एक प्रकार का छन्द (2) इस छन्द का एक प्रकार, जो प्रायः चंग बजा कर गाया जाता है। ख्याल ।"[7]

।. श्री घोंड, 'लावनी : एक मराठा शृंगारिक नृत्य', धर्मयुग, 28 जुलाई ।968, पृष्ठ ।4-।5
2. डा0 दशरथ राज, दक्खिनी हिन्दी का प्रेम गाथा काव्य, पृष्ठ 54
3. श्रीमत्परम हंस काशीगिरि बनारसी, लावनी ब्रह्मज्ञान, भूमिका पृष्ठ-3
4. कृष्णा जी गंगाधर दिवाकर, महाराष्ट्र का हिन्दी कोश काव्य, पृष्ठ-26
5. डा0 र.श. केलकर, मराठी हिन्दी कृष्ण काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृष्ठ-।98
6. स्वामी नारायणानन्द, लावनी का इतिहास, पृष्ठ-।
7. संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर, पंचम संस्करण, पृष्ठ-।033

9. "कुछ लोगों का विचार है कि लावनी का प्रचार लखनऊ, इलाहाबाद, कानपुर, बनारस, दतिया आदि शहरों में खूब था। लावनी गीत की भाषा हिन्दुस्तानी अर्थात् हिन्दी और उर्दू मिश्रित होती थी, क्योंकि लावनी गाने वाले हिन्दू और मुसलमान दोनों ही हुआ करते थे। ऐसा कहा जाता है कि लावनी पहले से गढ़ी नहीं होती, परन्तु चंग पर गाते समय गायक बनाता जाता था। इस प्रकार आगे की दो टेक और चार पंक्तियां चरण के रूप में लावनी हुआ करती थीं और बाकी गायक गाते समय गढ़ता जाता था। एक प्रसिद्ध लावनी की टेक का उदाहरण देखिये -

'लाख इबादत से ज़्यादा, दुनिया में हुस्न परस्ती है ।
सूरत उस माहरू की आँख में आपके बसती है ।।"

महाराष्ट्र में एक खास प्रकार के गीत को लावनी कह कर पुकारते हैं।"[1]

10. "सम्भवतः तत्कालीन समाज में लावनी का अर्थ **'लावण्यमयी'** समझा जाता रहा हो, जिसका प्रवेश तत्कालीन सभ्य समाज में सरलता पूर्वक हो सकता था।"[2]

11. "खेतों में अन्न काटने की क्रिया को हिन्दी में ही नहीं अपितु अन्य अनेक भारतीय भाषाओं में भी 'लावनी' कहते हैं, एतदर्थ खेती को काटने के समय गाये जाने वाले गीतों को 'लावनी' के गीत या लावनी कहा जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।"[3]

अंग्रेजी भाषा में लावनी की परिभाषा इस प्रकार है-

Lavani- (i) A mass, A collection, an assembly.
(ii) A obscene kind of ballad and its rustic tune.[4]

निष्कर्ष :

विभिन्न विद्वानों की दृष्टि में इस प्रकार 'लावनी' एक छन्द विशेष से विकसित होकर विभिन्न अवसरों पर लोक-जीवन को प्रभावित करने वाली, एवं शृंगार तथा भक्ति-परक भावों की अभिव्यञ्जना करने वाली गीति-विधा सिद्ध होती है, जिसमें संगीतात्मकता, आत्म-निवेदन, संश्लिष्टता, भाव-प्रवणता आदि सभी गीति-तत्त्व विद्यमान हैं।

लावनी का गीतात्मक स्वरूप

प्रत्येक लावनी साहित्य में कम से कम 4 चौक अवश्य होने चाहिएं और प्रत्येक चौक में प्रायः 4 पंक्तियाँ अनिवार्य हैं।

'चार चौक' के आधार पर ही **'चतुष्पद'** शैली की कविता का जन्म संस्कृत-साहित्य में हुआ होगा, चतुष्पद की परिभाषा लावनी से पूर्णतः मिलती-जुलती है।

---

1. शान्ति गोवर्धन एम·ए·, एल·टी·, संगीत शास्त्र-दर्पण, अष्टम संस्करण, पृष्ठ-7।
2. डा0 मानव, 'हिन्दी लावनी साहित्य पर हिन्दी सन्त साहित्य का प्रभाव', पृष्ठ-16
3. वही, पृष्ठ-20
4. Kittle's Cannad English Dictionary, Page-1360 (Edition 1894)

'अथ लास्याश्रयीभूताः कथ्यन्ते तु चतुष्पदाः ।
शृंगार रस सम्पन्नाः .... ।।'[1]

आजकल कवि-सम्मेलनों में रूबाइयात के ढंग पर पढ़े जाने वाले चौपदों या चतुष्पदियों ने 'चतुष्पद' का स्थान ले लिया है, जिनमें 4 पंक्तियां ही पर्याप्त समझी जाती हैं, परन्तु इसका वास्तविक अर्थ तो चार पद अर्थात् चार चौक ही है।

चतुष्पद-परम्परा और टेक

'प्राकृत पैंगलम्' में वर्णित चौपैया छन्द 30 मात्रा का सममात्रिक चतुष्पदी छन्द है। इसकी गण व्यवस्था 'सात चतुर्मात्रिक + ऽ' है, सम्पूर्ण छन्द में 120 मात्रा होती हैं। प्रायः इस छन्द में चार चतुष्पदियों की एक साथ रचना करने की प्रणाली रही है, अकेले एक छन्द की रचना नहीं की जाती। इसीलिये 'प्राकृत-पैंगलम्' में चौपैया के पद्य चतुष्टय में "480 (120 × 4) मात्राओं का संकेत किया गया है।"[2]

"चउपइया छन्दा, भणइ फणिंदा, चउमन्ता गण सन्ता ।
पाएहि सगुरु करि, तीस मन्त धरि, चउ अस ससि अणिरुन्ता ।।
चउ छन्द लविज्जइ, एक्कुण किज्जइ, को जाणइ ऐहु भेऊ ।
कह पिंगल भासइ, छन्द पआसइ, मिअण अणि, अमिअ एहू ।।"[3]

"गुजराती ग्रन्थ 'दलपत पिंगल' में 30 मात्रा का एक और छन्द मिलता है, जो वस्तुतः 'चौपाया' का ही दूसरा भेद है। ..... इसे वहाँ 'रुचिरा' छन्द कहा गया है।"[4]

'छन्दःकोश' के पद्य 45 में इसे 'हक्क' कहा गया है। हेमचन्द्र के 'आरनाल' (4-58) से इस छन्द की समानता है। विरहांक के 'वृत्तजाति समुच्चय' में भी 'चौपैया' जैसा छन्द है, जिसका नाम 'संगता' है। 'हिन्दी जैन साहित्य' परिशिष्ट (1), पृष्ठ 234 पर 'चउवाई' का उल्लेख किया है। 'छन्दार्णव' 5-227 पर भिखारीदास ने इसे 'चतुरपद' या 'चतुष्पद' माना है। केशव दास ने 'छन्द माला' में इसे 'चतुष्पदी' कहा है। मध्य युगीन हिन्दी काव्य परम्परा में 'मानस' में गोस्वामी तुलसी दास ने इसका प्रयोग 4 पदों में ही किया है, एक पद या छन्द के रूप में नहीं, उदाहरण के लिए बालकाण्ड के अन्तर्गत 'भए प्रकट कृपाला .....', 'ते न परहिं भवकूपा" पद संख्या 24-27 तक द्रष्टव्य हैं। इसी प्रकार केशव की 'चतुष्पदी' का उदाहरण 'रामचन्द्रिका' 7-45 पर अवलोकनीय है।

---

1. रामकृष्ण कवि, भरत कोश
2. डा0 भोलाशंकर व्यास, प्राकृत पैंगलम् - भाग 2, पृष्ठ 509
3. प्राकृत पैंगलम् - 1/97
4. डा0 भोलाशंकर व्यास, प्राकृत पैंगलम् - भाग 2, पृष्ठ 510

"आधुनिक हिन्दी काव्य परम्परा में 'चौपैया' नहीं प्रयुक्त हुआ है, इसका समान जातिक 'ताटंक' छन्द ज़रूर मिलता है । ..... प्राकृत पैंगलम् तथा मध्य युगीन हिन्दी में तो इसे चतुष्पदी मानना ही हमें अभीष्ट है।"[1]

परन्तु कुछ हेर-फेर के साथ आधुनिक लावनी-साहित्य में 'खड़ी रंगत' के वजन में इसका प्रचुर प्रयोग किया गया है। आरम्भ की दो मात्राएं यदि पंक्ति के अन्त में जोड़ दी जायं तो 'चौपैया' की गति या लय 'ताटंक' जैसी हो जाती है। ताटंक की परिभाषा के सन्दर्भ में कुछ विद्वानों का मत है कि -

"लावनी भी इसी धज पर गाई जाती है, लावनी के अन्त में गुरु लघु का कोई विशेष नियम नहीं है।"[2]

"तीस कला हों यति सोलह पर, तभी 'लावनी' छन्द बने ।"[3]

हिन्दी लावनी में 'टेक' की शैली का जन्म इसी 'चउपइया' छन्द के परिवर्तित रूप ताटंक या खड़ी रंगत की लय में सर्वप्रथम गोरखनाथ जी के 'नारी-परित्याग' पद में मिलता है -

'निरगुण नारी सूं नेह करंता, झबके रैण विहांणी जी ।' -टेक ।।

उस समय टेक में एक ही पंक्ति रखने की प्रथा थी, विकसित होते-होते आधुनिक काल में टेक में 2 पंक्तियां ही मान्य हो गई। कुछ गीतों में । पंक्ति की ही टेक होती है। टेक की भी दूसरी पंक्ति की ही पुनरावृत्ति 'चौक' की अन्त्य मिलान वाली पंक्ति के उपरान्त की जाती है। गोरख के उपरान्त फिर खुसरो ने इसे अपनाया । 'लोक गाथाओं की एक प्रमुख विशेषता, टेक पदों की आवृत्ति है। सिजविक के अनुसार टेक पद गाथाओं की एक दूसरी विशेषता है, जिससे यह पता चलता है कि ये गीत पहले सामूहिक रूप से गाये जाते थे। गवैया जब गीत की एक कड़ी गाता है, तब समुदाय के लोग मिल कर टेक पदों की आवृत्ति करते हैं ।..... अंग्रेजी में आवृत्त्यात्मक पदावली तीन प्रकार की होती है जिसे बर्डन, रिफ्रन और कोरस कहते हैं। ..... टेक पदों सम्बन्धी यह विशेषता गीतबद्ध रास काव्यों में उपलब्ध होती है । यह आवृत्ति प्रायः प्रति पद्य के बाद अथवा प्रति पंक्ति में होती है। उदाहरण के लिये 'वीसलदेव रासो' में टेक पद की आवृत्ति प्रति पद्य के पश्चात् है।"[4]

"यही टेक पद्धति परवर्ती कबीर, सूर आदि कवियों के गीतों में भी मिलती है। संगीत की दृष्टि में जहां छन्द सहायक होते हैं वहां टेक के दुहराने की शैली उसके संगीत को बढ़ाने में योग देती है। छन्द की दृष्टि से खुसरो ने अधिक उर्दू 'बहरों' का अनुकरण किया और जब

---

1. भोलाशंकर व्यास, प्राकृत पैंगलम् - भाग 2, पृष्ठ 513
2. जगन्नाथ प्रसाद 'भानु', छन्दः सारावली, 1917 ई0 में प्रकाशित संस्करण, पृष्ठ 28
3. पं0 तिलकधर शर्मा, छन्द पराग, पृष्ठ 36
4. डा0 सुमनदेव ,राजे, हिन्दी रासो काव्य परम्परा, प्रथम संस्करण, 1973, पृष्ठ 78-79

उन्होंने हिन्दी के छन्दों का चुनाव किया तब सार, चौपाई, ताटंक आदि का प्रयोग किया, और साथ ही छन्दों के प्रयोग में भी पूरी स्वतन्त्रता से काम लिया है। ऐसे छन्द लोकगीतों के प्रयोग में आये हैं। लोकगीतों से प्रेरित होने के कारण गीतिकाव्य का रूप यहां बिल्कुल नवीन हो उठा है।"[1]

ताटंक या 'रंगत खड़ी' के अतिरिक्त 'बहरे शिकस्ता' में भी खुसरो ने लावनी लिखी हैं, जो ग़ज़ल के ढ़ंग पर हैं, ग़ज़ल में भी 'मतला' की द्वितीय पंक्ति दोहराने की प्रथा है। कबीर के काव्य का रूप टेक पद्धति द्वारा अत्यन्त मधुर हो उठा है -

"लोक गीतों की अनोखी मिठास उनके पदों में अवश्य है। उनके पदों में 'टेक' की पद्धति ने गीतों की संगीतात्मकता में योग दिया है। इसी 'टेक' के तोल पर अन्य चरण स्वतः जुड़ते हुये चले जाते हैं, जहाँ कहीं भी उनके ये पद लोक-गीतों की माधुरी को अपने में लिये हुये हैं, वहाँ काव्य रूप अपेक्षाकृत मधुर हो गया है।"[2]

"कबीर के बीजक के अन्तर्गत कुछ ऐसे रूप आये हैं जो लोक-गीतों से लिये गये हैं। ..... कबीर ने 'कहरा' ताटंक छन्द में लिखा, जिसमें संगीत बिल्कुल लोक-गीतों के आधार पर नियोजित हुआ है।"[3]

उदाहरण -

'ओढ़न मेरे राम नाम के रामहिं के बनिजारा हो ।
राम नाम के करों बणिजारा, हरि मोरे हटवाई हो ।
सहस्र नाम का करों पसारा, दिन दिन होत सवाई हो ।।'[4]

17 वीं सदी में तुर्रा के प्रवर्तक सन्त तुकनगिरि जी महाराज की लावनियों में भी टेक में एक ही पंक्ति पाई जाती है, चारों चोकों के उपरान्त 'मिलान' के साथ उसी की पुनरावृन्ति है, यथा-

'साधू निकल सिधारा जब, रह गई मढ़ैया सूनी रे ।। टेक ।।
जब साधू परेदश सिधारा,
भवन भयानक बन गया सारा ।
तीरथ यात्रा को पग धारा,
नहि आया फिर लौट बिचारा ।। चौक ।।
चलनी उसको पड़ी वो मंज़िल दूनी रे ।। मिलान ।।
साधू निकल सिधारा जब, रह गई मढ़ैया सूनी रे ।। पुनरावृन्ति ।।"[5]

---

1. डा0 शकुन्तला दूबे, काव्यरूपों के मूलस्रोत और उनका विकास, पृष्ठ 170
2. वही, पृष्ठ 180-181
3. वही, पृष्ठ 181
4. मूल बीजक (रामखिलावन गोस्वामी, सन् 1930 ई0)
5. सन्त तुकनगिरि, रंगत श्याम, कल्याण, प्राप्ति स्थान - प्रभुदयाल यादव, जबलपुर

इसी क्रम से इस लावनी में 4 चौके हैं। टेक को 'धुर्पद' और 'मिलान' को 'उडान' भी कहते हैं।

18 वीं सदी में लावनी का स्वरूप पूर्ण विकसित हो गया था, जो आज भी उसी रूप में प्रचलित है। इसी सदी में महाराज रिसाल गिरि जी के शिष्य मदारी लाल की 4 चौक की एक 'ताटंक' या 'खड़ी रंगत' की लावनी का प्रथम चौक उदाहरणार्थ प्रस्तुत है, जिसमें टेक में दो पंक्तियाँ प्रयुक्त हुई हैं -

बिन प्रतिमा खाली नहीं देखा कोई फूल फुलवारी में ।
भंवर दृष्टि हो तमाम देखा, हमने बाग बहारी में।। टेक ।।
कृष्ण केतकी में देखे, रहे गेंदे में गोविन्द विराज ।
गुड़हल में गोविन्द विराजें, गुलाब में गिरधर महाराज ।।
चम्पा में चितचोर चतुर्भुज, चमेली में प्रभु पूरन काज ।
मदनवान में मोहन राजें मालती में रहे मुकुन्द राज ।। चौक ।।
मौलसिरी में मुरलीधर श्री कान्ह कली कचनारी में ।। मिलान ।।
भंवर दृष्टि हो तमाम देखा हमने बाग बहारी में ।। पुनरावृत्ति ।।"[1]

अस्तु, इस सारे विवेचन को समेटते हुए निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि - "लावनी उस प्रतियोगी गाने को कहते हैं, जो चंग बजा कर गाया जाता है, और जिसमें कम से कम चार चौक होते हैं।"

किसी भी सम्पूर्ण लावनी में पहले 2 पंक्तियों की टेक होती है, फिर प्रायः 4 पंक्तियों या इससे भी अधिक, कभी-कभी 8 पंक्तियों का चौक होता है जिसे बहर दूनी या आठ चौकी ख्याल भी कहते हैं। फिर एक पंक्ति उड़ान या मिलान की होती है, जिसके बाद टेक की प्रथम या द्वितीय पंक्ति की पुनरावृत्ति की जाती है। विकल्प रूप से मिलान से पूर्व शेर, दोहा या कोई भी अन्य छन्द रख कर किसी-किसी लावनी में लय बदल कर भावाभिव्यक्ति करने की भी परम्परा है, परन्तु यह सर्वत्र अनिवार्य नहीं । अन्तिम चौक में अपने अखाड़े के गुरुओं तथा शिष्यों के नाम की छाप लगाई जाती है, एवं अन्तिम उड़ान की पंक्ति में कवि 'मक़ता' के ढ़ंग पर अपना नाम या उपनाम प्रायः लिखता है। कुछ, छाप के बीच में अपना नाम देते हैं, जिससे रचयिता के अनुमान में कठिनाई होती है। कुछ अखाड़े आदि की छाप न देकर केवल अपना ही नाम छाप में देते हैं, ऐसे कवियों को लावनी जगत् में 'निगुरा' समझा जाता है।

---

1. मदारीलाल उस्ताद ख़्याल रंगत खड़ी, ला0 का इ0, पृष्ठ 100

इन नियमों के अन्तर्गत विभिन्न छन्दों में विभिन्न विषयों पर लावनी लिखने व गाने का प्रचलन है। इसके छन्द 'बहर' या 'रंगत' कहलाते हैं। 'मरैठी' और 'ख़याल' भी लावनी के पर्यायवाची शब्द हैं, इन्हें भी इन्हीं नियमों के अन्तर्गत समझना चाहिए । 'लावनी का विस्तार' प्रदर्शित करते समय लावनी के इन भेदों का भी विवेचन किया जायेगा।

लावनी साहित्य का उद्भव

'भूतं भव्यं भविष्यच्च सर्वं वेदात् प्रसिध्यति'[1]

मनु के इस निर्देश से भारतीय विद्वान् अपने विषय की स्थापना के लिये प्रायः वेद को प्रमाण रूप में प्रस्तुत करते हैं। वेद में लोक-गीतों की ऋचाएं संकलित मिलती हैं। इस छंद की लोकजीवन से सम्बद्धता रहने के कारण वैदिक ऋचाओं में लावणी ढूंढने का प्रयत्न चौंकाने वाला होकर भी रुचिकर होगा।

वैदिक ऋचाओं की लोकसंगीतपरकता की संभावना से आश्वस्त होकर ही लावनी गीतिका का स्रोत वैदिक संहिताओं में दिखाया जा रहा है।

"वेदों में गीत बतलाना उसके गौरव को घटाना नहीं है। 'गीत' शब्द का पूरा-पूरा महत्त्व 'श्रीमद्भगवद्गीता' में देखा जा सकता है। 'गीता' का भी तो अर्थ यही है कि जो गाया गया हो। स्वयं वेदों के गायकों ने उन्हें गीत कहा है - **'गीर्भिर्वरुण सीमहि'** । अर्थात् - हे मेरे वरणीय! मैं तुम्हें अपने गीतों से बांधता हूँ।"[2]

गाथा शब्द से लोक-काव्य की प्रतीति होती है, इस गाथा शब्द का उल्लेख भी सर्वप्रथम वेद में मिलता है:-

'प्रकृतान्यृजीषिणः कण्वा इन्द्रस्य गाथया । मदे सोमस्य वोचत ।'[3]

वेद से चल कर गाथा का प्रयोग संस्कृत में आया :-

'तामद्य गाथां गास्यामि स्त्रीणामुत्तमं यशः।'[4]

फिर संस्कृत से प्राकृत में 'गाथा' या 'गाहा' मात्रिक छंद के रूप में प्रसृत हो गई।

"गाथा शब्द मूलतः वैदिक है, तथा इसका सम्बन्ध 'गा' धातु से है। ऋग्वेद में इसका ठीक वही अर्थ है जो 'गातु' शब्द का, अर्थात् 'गेय छंद'। किन्तु गाथा मूलतः वे छन्द थे जो मन्त्रभाग न

---

1. मुनस्मृति अ0 12/97
2. गुलाबराय, काव्य के रूप, पृष्ठ 127
3. ऋग्वेद 8/32/1
4. पारस्कर गृह्यसूत्र का0 1, कं0 7, सूत्र 2

हो कर, देवस्तुति परक छंद न होकर, 'नाराशंसी' तथा 'रमी' की तरह मनुष्यों की दानस्तुतियों या अन्य सामाजिक विषयों से सम्बद्ध थे। अथर्वसंहिता के भाष्यकारों ने कतिपय छंदों को गाथा ही कहा है। ऐतरेय आरण्यक में छंदों को 'ऋक्', 'कुम्भ्या' तथा 'गाथा' इन वर्गों में बांटा गया है तथा वहीं ऋक् तथा गाथा का यह भेद किया है कि ऋक् देवी है, गाथा मानुषी।"[1]

गाथा शब्द कथामूलक या वर्णनात्मक ढ़ंग की लम्बी रचनाओं के लिये आज भी समाज में व्यवहृत होता है।

"ऐसा जान पड़ता है आरम्भ में गाहा (गाथा) में प्रथम अर्धाली में 30 तथा दूसरी अर्धाली में 27 मात्रा का विधान था।"[2]

लावनी साहित्य में प्रयुक्त 'रंगत लंगड़ी' इसी से विकसित हुई है, जिसमें मात्राओं का विधान तो यही है परन्तु लय और गति में अन्तर है।

'रंगत लंगड़ी' की पहली पंक्ति में 16 + 14 = 30 मात्राएँ ताटंक छंद के समान तथा दूसरी पंक्ति में 8 + 19 = 27 मात्राएं होती हैं।"[3]

अतः सिद्ध होता है कि लावणी का छंदःशास्त्रीय ढ़ाँचा इन्हीं गाथाओं पर आधारित है।

"अयमात्मा वाङ्मयः मनोमयः प्राणमयः।"[4]

अर्थात् यह आत्मा वाङ्मय, मनोमय और प्राणमय है। इस आत्मा के मनोमय वाङ्मय और प्राणमय होने से साहित्य और अध्यात्म दोनों ही समान स्तर के हैं, क्योंकि वाङ्मय आत्मा की अनुभूति ही कवित्व है। लावनी में यह अनुभूति प्रभूत मात्रा में अनुस्यूत है, परन्तु वाङ्मय वेत्ताओं ने गाथाओं के समान इसे 'नाराशंसी' की कोटि में रख कर उपेक्षा भरे स्वरों में लोक-साहित्य की ही संज्ञा दी है।

वस्तुतः 'लावनी' और 'लावणी' में सूक्ष्मतम भेद है। 'लावनी' लोक-काव्य की एक शैली है, 'जिसका संस्कृतानुकरण 'लावणी' में मिलता है।"[5]

अतः संस्कृत-लावणी के स्वरूप का चिन्तन भी यहाँ किया जा रहा है।

---

1. डा0 भोलाशंकर व्यास, प्राकृत पेंगलम्, भाग 2, पृष्ठ 411
2. वही, पृष्ठ 312
3. द्रष्टव्य, लावनी का इतिहास, पृष्ठ 46
4. बृहदारण्यक उपनिषत्, अध्याय 1, ब्राह्मण 5, मन्त्र 3 का अन्तिम भाग, ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषदः, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ 81
5. डा0 रामखेलावन पाण्डेय, हिन्दी साहित्य कोश, भाग 1, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ 1

वैदिक साहित्य में लावनी-छंदों का पूर्वाभास

सर्व प्रथम वेदो में लावनी सर्वाधिक प्रचलित 'यशोदावृन्त' के दर्शन होते हैं। सम्प्रति यह भ्रान्ति है कि यह छंद उर्दू-फ़ारसी से हिन्दी लावनी-साहित्य में आया है, जिसको 'बहरे-शिकस्ता' कहते हैं। इसका वज़न इस प्रकार के विद्वान यों मानते हैं -

।S। S।। ।S। S।। ।S। S।। ।S। S।।

फऊल फेलन फऊल फेलन फऊल फेलन फऊल फेलन ।[1]

हिन्दी में यह छंद मात्रिक है, इसमें 32 मात्राएँ होती हैं। संस्कृत में इसका लक्षण है-

जिसकी प्रत्येक पंक्ति में जगण और दो गुरु क्रमशः चार बार प्रयुक्त हों, वह 'यशोदावृन्त' है। **यशोदा जगौ गः ।**

उर्वशी पुरूरवा से कहती है - प्रियतम ! 'इन मेरी तुम्हारी बातों से क्या होगा मैं तो उषा के समान तुमसे अलग हो चुकी हूँ, पुरूरवा! तुम घर लौट जाओ, क्योंकि -

'दुरापना वात इवाहमस्मि ।'[2]

'मैं वायु के समान तुम्हें दुष्प्राप्य हूँ।' - यह पंक्ति पद्य काव्य में लय पद्धति के अनुसार एवं भाषा विज्ञान के संक्षिप्तीकरण सिद्धान्त से इस प्रकार भी पढ़ी जा सकती है -

'दुरापना वातिवाहमस्मि ।'

और यों लावनी की 'बहर शिकस्ता' के दर्शन पूर्ण रूप से हो जाते हैं।

इसी प्रकार कुछ और वैदिक स्थल देखिये, जिन पर लावनी की लय ध्वनित हो रही है-

बहरे शिकस्ता (यशोदावृन्त) -

(क) सपर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रण .....।[3]

(ख) परीत्य भूतानि परीत्य लोकान्, परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च ।[4]

(ग) समानो मन्त्रः समितिः समानी .....।[5]

(घ) न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि ..... ।[6]

(ङ) इयं विसृष्टिर्यत आ बभूव ...... ।[7]

(च) प्रभूर्जयन्तं महां विपोधां .....।[8]

---

1. स्वामी नारायणानन्द, ला·का इ·, पृष्ठ 53
2. ऋग्वेद, मण्डल 10, सूक्त 95 के मन्त्र की प्रथम पंक्ति
3. यजु·अ·40 । मं· 8 का अर्धभाग
4. यजु·अ·32 । मं·11
5. ऋ·अष्टके 8 । अ·8 । वर्ग49, मं·3
6. ऋ·अष्टके 8 । अ·7 । वर्ग17, मं·2
7. ऋ·अष्टके 8 । अ·7 । वर्ग 17, मं·2
8. सामवेद,प्रथम प्रपाठक, द्वितीयार्घ तृतीया दशतिः 2/74 का पूर्वार्घ

लावनी, रंगत छोटी (राधिका) -

(क) तद्विष्णोः परमं पदं, सदा पश्यन्ति.....।[1]

(ख) ऊँ सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा ।

(ग) ऊं सूर्यो वर्च्चो ज्योतिर्वर्च्चः स्वाहा ।

(घ) ऊं ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा ।

(ङ) ऊं अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा।

(च) ऊं अग्निर्वर्च्चो ज्योतिर्वर्च्चः स्वाहा ।[2]

छंद वेद के चरण हैं, "**छन्दः पादौ तु वेदस्य**' अतः वेदों में अनेक छंदों के दर्शन होते हैं। ये बहरें फ़ारस के रागों में भी मिलती हैं, दोनों साहित्यिक धाराओं का मूलस्रोत एक हो सकने का सर्वप्रथम परिणाम भी इसे माना जा सकता है। बहुत संभव है कि फ़ारसी प्रभाव से इन लोक धुनों की तर्ज पर अमीर खुसरो ने ख्याल के ढ़ंग की उक्त बहरों की परिकल्पना की हो।

इतना ही नहीं छोटे-छोटे लौकिक छंदों की धुन में भी कुछ वेदमंत्र विद्यमान हैं, यथा-

अग्निर्होता कविक्रतुः
सत्यश्चित्रश्रवस्तमः ।
देवो देवेभिरागमत् ।।[3]

हिन्दी में इस छंद का नाम 'हाकलि' है, इसमें इसमें 14 मात्राएं होती हैं। इस वज़न की रचना का नमूना देखिये -

(क) **प्राकृत में** -

उच्चउ छाअण विमल घरा,
तरुणी धरणी विणअ परा ।
वित्रक पूरल मुद्दहरा,
वरिसा समआ सुक्खकरा ।।[4]

(ख) **हिन्दी में** -

यह शैली 'लावण्यमयी' ।
रंगत इसमें नयी नयी ।।
कलग़ी तुर्रा रत्न - जड़ा ।
'ख्याल' 'मरहठी' नाम पड़ा ।।[5]

इसके अतिरिक्त और भी अनेकों लौकिक छंदों की लय का साम्य वेदों में मिलता है। कुछ विद्वान् लावणी को नाट्य का ही रूप मानते हैं।

1· ऋ·अष्टके 1, अध्याये 2, वर्गे 7, मन्त्रः 5
2· यजु·अ·3 मन्त्र 9-10, अग्निहोत्रे होमकरण प्रातःकाल सायंकाल मन्त्राः
3· ऋग्वेद, प्रथम सूक्त 5
4· प्राकृत पैंगलम् भाग-1, सं·डा0 भोलाशंकर व्यास, पृष्ठ 150
5· 'अजेय', स्फुट पद्य

"सभी क्रियाओं का उद्देश्य किसी अभाव व आवश्यकता की पूर्ति ही होता है। कई प्रवृत्तियाँ पूर्व अभ्यास एवं अनुकरण से की जाती हैं तो कई इच्छा की उत्कटता से अभावों और आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए । कुछ प्रवृत्तियाँ जीवन धारण के लिए अनिवार्य होती हैं, तो कुछ जीवन को सरस बनाने के लिए स्वीकार की जाती हैं । नाटक, खेल, ख्याल आदि इसी दूसरी प्रकार की प्रवृन्ति में सम्मिलित हैं। मानव जीवन में कर्तव्य है तो क्रीड़ाएं भी हैं। नाटक, खेल, ख्याल मानव जीवन को सरस बनाने के लिए बहुत आवश्यक होने से प्रत्येक व्यक्ति के लिए समान रूप से प्रिय है। इसलिए इनको विशुद्ध लोककला कहा जा सकता है। जब से मानव में सुख-दुःख का विकास हुआ तभी से उनमें थोड़े समय के लिए भी जिनसे मनोरंजन व आनन्द की प्राप्ति हो, उनके अपनाने में प्रवृन्त होना स्वाभाविक है।"[1]

अतः जब से मनुष्य के मन में सुख और दुःख की अनुभूति हुई होगी तभी से 'लावणी' की भी उत्पन्ति हुई होगी, या जब से मनुष्य के हृदय में सौन्दर्यानुभूति की भावना का स्फुरण हुआ होगा, तभी से सहसा लावनी के गीत उसके कण्ठ से मुखरित हुए होंगे। मानव जाति के पास प्राचीनतम साहित्य वेद है एवं लावनी का परिचय वैदिक साहित्य से ही प्राप्त होता है, अतः इस छंद की लोकप्रियता और प्राचीनता का इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है !

वेदवाणी विज्ञजनों से ही ग्राह्य है, अज्ञ होने के कारण शूद्र एवं स्त्रीजाति उसके स्वाध्याय का आनन्द उठाने में कभी असमर्थ थे, अतः जिनका मन सामगान में न लगे उनके लिये लौकिक गीत की व्यवस्था देते हुए याज्ञवल्क्य ने कहा था -

अपरान्तकमुल्लोप्यं मद्रकं प्रकरीं तथा ।
ओवेणकं सरोविन्दुमुत्तरं गीतकानि च ।।
ऋग्गाथा पाणिका दक्ष विहिता ब्रह्म गीतिका ।
गेयमेतत्तदाभ्यासकरणान्मोक्षसंज्ञितम् ।।
वीणा-वादन तन्त्वज्ञः श्रुतिजातिविशारदः ।
तालज्ञश्चाप्रयासेन मोक्षमार्गं नियच्छति ।।[2]

अर्थात् जो वेदाध्ययन में असमर्थ हो वह अपरान्तक आदि मोक्षदायक गीतों को अभ्यास पूर्वक गाएं। वीणा आदि को बजाने वाला, तालज्ञ पुरुष संगीत के माध्यम से ही मुक्ति को प्राप्त कर लेता है।

इस व्यवस्था के अनुसार ताल सहित गाए जाने वाले गीत 'लावनी' का विकास धीरे-धीरे वेदों से संस्कृत में हुआ। संस्कृत साहित्य में शोध करने से इसके बहुत से उदाहरण मिल सकते हैं।

---

1. अगरचन्द नाहटा, ख्याल संज्ञक काव्य, हस्तलिखित लेख, पृष्ठ ।
2. याज्ञवल्क्यस्मृति, प्रायश्चित्ताध्याय, श्लोक सं. ।।3-।।5 तक

संस्कृत साहित्य में लावनी -

वैदिक साहित्य के पश्चात् संस्कृत साहित्य में श्रीमद्भागवत, महापुराण में मधुर लोक-गीतों की ध्वनि व्यंजित हुई है। दशम स्कन्ध में 'वेणुगीत' की प्रशंसा करती हुई गोपियां कहती हैं -

गोविन्दवेणुमनुमन्तमयूरनृत्यम् ।
प्रेक्ष्याद्रिसान्वपरतान्यसमस्तस त्वम् ।।[1]

यद्यपि यह 'वसंत तिलका' है, परन्तु 'मयूर' का 'मयूरी' तथा 'समस्त' का 'समस्तं' करने से 22 मात्रा की 'लावणी' बन जाती है।

वृन्दावन में क्रीडा के समय गोपियों द्वारा प्रस्तुत युगल गीत देखिये-
वामवाहुकृतवामकपोलो वल्गितभ्रूरधरार्पितवेणुम् ।
कोमलाङगुलिभिराश्रितमार्गं गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्दः।।[2]

यह गीत ऐसे 24 छंदों में पूर्ण हुआ है। यद्यपि तुकान्त-नियम तो संस्कृत में नहीं है, परन्तु इसका प्रवाह अबाध एवं रोचक बन पड़ा है, इसमें लावनी की रंगत सोहनी (32 मात्रा) है । इसमें दो पंक्ति होने से या दो गोपियों द्वारा सम्मिलित रूप से गाये जाने से इसका नाम **'युगल'** दिया गया है । महाकवि **कर्णपूर** ने **'श्री आनन्दवृन्दावनचम्पू'** काव्य में श्लोक संख्या 154 से 190 तक 4 शाखाओं में लावनी की शैली में रचना की है। सबसे पहले 32 मात्रा की लावनी, त्रिभंगी (बहर खड़ी तिकड़िया) है, जो **'रंगत सोहनी'** के वजन में लिखी गयी है, इसे **'मुखफ्फा'** की तर्ज पर भी पढ़ा जा सकता है । बीच-बीच में 'शेर' के स्थान पर छंद 'पंच चामर' का प्रयोग है। मिलान के रूप में -

'श्रीधर धीर ! व्रजवरवीर ! प्रकटाऽऽभीर श्याम शरीर !'

तथा कहीं कुछ बदल कर -

'जय जय धीर ! व्रज वर वीर ! प्रकटाऽऽभीर श्याम शरीर ।'[3]

यह पंक्ति दोहराई गई है । इसे **'चौताला'** भी कह सकते हैं, क्योंकि 8-8 मात्राओं के बाद इसमें ताल का नियम सर्वत्र निबाहा गया है। इसमें कुल 26 पंक्तियाँ हैं, टेक देखिये -

'जय जय नन्दाऽऽत्मज, जय वृन्दावन रस कन्दाऽतुल गुण वृन्दा ।
धिकतर नन्दच्चिन्मकरन्द स्वपदरविन्दद्वय कुरु विन्द ।।'[4]

इसके पश्चात् **'बहरे तबील'** आरम्भ हो जाता है। कहीं-कहीं गण बढ़ गये हैं, कहीं घट

---

1. महर्षि वेदव्यास, श्रीमद्भागवत महापुराण, 10,21,10
2. वही, 10,35,2 पृष्ठ 343
3. श्री आनन्दवृन्दावन चम्पू, पञ्चदश स्तवक : गोवर्धन धारण लीला, पृष्ठ 588-589
4. वही, पृष्ठ 588

गये हैं, परन्तु प्रवाह और लय अभंग है। प्रारम्भ की 26 पंक्तियों के उपरान्त 'बहरे तबील' का वजन अंत तक है, बीच-बीच में **'पंच चामर'** प्रयुक्त हुआ है। दो पंक्तियाँ देखिये -

'विक्षर दक्षर नर्मद मर्म रस ग्रहण ग्रह जल्प विकल्पह ।
सुश्रुत विश्रुत जल्पित कल्पित कर्ण रसार्णव शुद्ध रसोद्भव ।।'[1]

द्वितीया शाखा, तृतीया शाखा एवं चतुर्थ शाखा में भी यही 'बहरे तबील' का क्रम है, तथा पूर्ववत् बीच-बीच में 'पंचचामर' का प्रयोग है। इस छंद को संस्कृत साहित्य के अन्तर्गत **'द्विगादिगण वृन्त'** में **'द्विगादि कलिका'** या **'कोरकाख्या'** कहा गया है।

'गीत गोविन्द' में लावणी :

महाकवि जयदेव संस्कृत वाङमय में तुकान्त गीति-प्रवृत्ति के आदि प्रवर्तक हैं, उन्होंने टेक 'ध्रुपदम्'के रूप में ग्रहण की है -

रासे हरिमिह विहित विलासम् ।
स्मरति मनो मम कृत परिहासम् ।। ध्रुपदम् ।[2]

यदि दोनों पंक्तियों को एक कर पढ़ा जाय तो **'रंगत सोहनी'** से साम्य हो जाता है।

स्तनविनिहितमपि हारमुदारम् ।
सा मनुते कृशतनुरिव भारम् ।।
राधिका विरहे तव केशव ।। ध्रुपदम्।[3]

इस गीतिका में 8 छंद हैं जिसे रंगत **'बेनजीर'** कह सकते हैं।

विगलितवसनं परिहृतरशनं घटय जघनमपिधानम् ।
किशलयशयने पंकजनयने, निधिमिव हर्षनिदानम्।।[4]

इस गीतिका में 8 छंद हैं। यदि अन्त में 'ऽ' जोड़ दिया जाय तो 'रंगत खड़ी' बन जाती है, त्रिभंगी के समान इसे द्विभंगी या 'दुकड़िया' भी कह सकते हैं। हिन्दी में यह **'ललित'** या **'सार'** छंद है ।

रमते यमुनापुलिनवने विजयी मुरारिरधुना । ध्रुपदम् ।[5]

इसमें 'रंगत नवेली'. (16 + 10 = 26 मात्राएँ) हैं।

आधुनिक युग में भी संस्कृत भाषा में 'लावणी' लिखने का प्रचलन है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी द्वारा **'रंगत हक्कानी'** में लिखित एक संस्कृत 'लावणी' का उदाहरण देखिये, सम्वत्

---

1. श्री आनन्दवृन्दावन चम्पू, पञ्चदश स्तवक : गोवर्धन धारणलीला, पृष्ठ 593
2. जयदेव, गीतगोविन्द, गुर्जरी रागे प्रतिमण्ड ताले (टीका, वनमालि भट्ट), सर्ग 2, प्रबन्ध 1, श्लोक 1
3. वही, देशारवरागे एक ताली ताले, सर्ग 4, श्लोक 1
4. वही, गुर्जरी रागे, एक ताली ताले, सर्ग 5, श्लोक 6
5. वही, सर्ग 7, श्लोक 1

1931 में यह लावनी **'हरिश्चन्द्र मैगजीन'** में प्रकाशित हुई थी -

'कुञ्जं कुञ्जं सखि। सत्वरम् ।
चल चल दयितः प्रतीक्षते त्वां तनोति बहु आदरम् ।।
सर्वा अपि संगताः ।
नो दृष्ट्वा त्वां तासु प्रिय सखि, हरिणाऽहं प्रेषिता ।।
मानं त्यज वल्लभे
नास्ति श्रीहरि सदृशो दयितो, वच्मि, इदं ते शुभे ।।'[1]

इसी प्रकार पं0 प्रताप नारायण मिश्र ने भी संस्कृत में कुछ लावणियाँ **'दौड़'** की तर्ज पर लिखी हैं -

'किमप्यन्यत्तु न याचेऽहम् ।
देहि मे नाथ दृढ़स्नेहम् ।।'[2]

इसी प्रकार आधुनिक लावनीकारों की संस्कृत 'लावणी' के कुछ नमूने देखिये -

बहरे शिकस्ता (यशोदा): नमानि पञ्चाननं त्रिनेत्रं भजामि विश्वेश्वरं महेशम् ।
शिवं सदा साम्ब शान्तचिन्तं धृताङगभस्मं परं परेशम् ।।[3]

× × × × ×

गजाननं शैलजासुतं तं शिवात्मजं सुन्दरं भजेऽहम् ।
यशस्विनं शोभनं गुणज्ञं समस्तविद्याधरं भजेऽहम् ।।
नरामरष्यार्दयो यमादौ, यजन्ति सम्यडनु पूजयित्वा ।
शुभङकरं, सिद्धिदं, दयालुं, दुरन्तदैन्यात्मकं विदित्वा ।।
अनन्य-चिन्तेन चिन्तयन्ति, स्वमोह निद्रां सुखेन हित्वा ।
फलं यथेष्टं लभन्त एवं विभिन्नविघ्नापदश्च छित्वा ।।
मुद-प्रदं मोदकाशनं वै, सदैव विघ्नेश्वरं भजेऽहम्।
यशस्विनं, शोभनं, गुणज्ञं, समस्त विद्याधरं भजेऽहम् ।।'[4]

रंगत नवेली: 'स्वार्थ-पंकिले सरसि निमग्नाः, नेतृ-जना आलि !
किं करणीयं तरुं छिनन्ति, स्वयं यत्र माली ।।'[5]

---

1. भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 666
2. 'प्रताप' ना. सन्दर्भांकित 'अजेय', हिन्दी कवियों में लावनी प्रेम, सहयोगी सा0, कानपुर, सितम्बर 1951
3. स्वामी नारायणानन्द जी, लावण्य-लता, लावनी, सं0 2
4. पं0 हृषीकेश चतुर्वेदी, हृषीकेश रचनावली, खण्ड 1, पृष्ठ 1
5. सत्यव्रत शास्त्री, अप्रकाशित लावणी-संग्रह

प्राकृत में लावनी

लावनी साहित्य के अन्तर्गत प्रयुक्त होने वाले कितने ही छंद नामान्तर से प्राकृत में प्रयुक्त होते रहे हैं, जैसे - त्रिभंगी (मात्रिक)। इसका लक्षण है -

पढमं दह रहणं, अट्ठवि रहणं पुणु वसु रहणं, रस रहणं ।
अंतं गुरु सोहइ, महिअल मोहइ, सिद्ध सराहइ, वर तरुणं ।
जइ पलइ पओहर, किमइ मणोहर, हरइ कलेवर, तासु कई ।
तिब्भंगी छंदं, सुक्खाणंदं, भणइ फणिंदं, विमल मई ।।(194)[1]

यह सम मात्रिक चतुष्पदी छंद है। 10, 8, 8, 6 मात्राओं पर यति और पादान्त में गुरु होना चाहिये। पयोधर जगण निषिद्ध है। सिद्ध इसकी सराहना करते हैं। सिद्ध सम्प्रदाय में यह छंद विशेष प्रचलित था, इससे यह ध्वनि निकलती है, और सिद्धों की परम्परा में लावनी गायक आते हैं। लावनी साहित्य में यह छंद **'बहर खड़ी तिकड़िया'** के नाम से सम्प्रति प्रचलित है। तुलना के लिये प्राकृत और आधुनिक लावनी का एक-एक पद दिया जा रहा है -

प्राकृत -
सिर किज्जिअ गंगं गौरि अधंगं हणिअ अपंगं पुर दहणं ।
किअफणि वइहारं तिहुअणसारं बंदिअ छारं रिउ महणं ।।
सुर सेविअ चरणं मुणि गण सरणं भवभअ हरणं सूलधरं ।
साणंदिअ वअणं सुन्दर णअणं गिरिवर सअणं णमह हरं ।।'[2]

आधुनिक लावनी:
'सरजू को कूल, मंगल को मूल, सब हरण शूल, जग अघहर जू ।
सुकृत को सेतु, कीरति को केतु, आनंद को हेतु, गुण को घर जू ।।
शुचि पुण्य पौर, सन्तन को ठौर, मुनि जन को मौर, सर्वोपर जू ।
तट कर निवास, सब विधि सुपास, दुख द्वन्द्व त्रास, जावें टर जू ।।'[3]

प्रवाह में परिवर्तन हो गया और 'जगण-निषेध के बन्धन को राजमल्ल ने ढीला कर दिया था ।'[4] डा0 वेलणकर इसे 'षोडशपदी' मानते हैं।[5]

इस प्रकार षोडशपदी से 'चार चौक' निर्धारित होकर **'पूर्णलावनी'** का स्वरूप विकसित होता है। इसी प्रकार 'प्राकृत पैंगलम्' में वर्णित चौबोला छंद (1-131) लावनी साहित्य में 'रंगत खड़ी' के नाम से अभिहित हुआ है, कुछ लोग इस छंद को 'लावनी' छंद भी कहते हैं। हिन्दी साहित्य में इसका नाम **'ताटंक'** प्रसिद्ध हुआ। हेमचन्द्र ने 'छंदोऽनुशासन' (6-20) पर इसे

---

1. प्राकृत पैंगलम्, भाग 1, प्रृष्ठ 166
2. वही, प्रृष्ठ 167
3. स्वामी नारायणानन्द सरस्वती, लावण्य लता, संख्या 28
4. देखो - हिन्दी जैन साहित्य, पृष्ठ 236
5. देखो - प्राकृत एण्ड अपभ्रंश मीटर्स (जे.बी.आर.ए.एस.वोल्यूम 23, 1947, पार्ट फर्स्ट)

'मन्मथ विलसित' माना है। यह चतुष्पदी छंद है। इसके प्रथम, तृतीय चरण में 16, 16 तथा द्वितीय, चतुर्थ चरण में 14, 14 मात्राएँ होती हैं। इस प्रकार प्रत्येक पंक्ति में 30 मात्राएँ होती हैं।

प्राकृत उदाहरण - रे धणि मन्त मअंगअ गामिणि, खंजण लोअणि चंदमुही ।
चंचल जुब्बण जात ण जाणहि, छइल समप्पइ काइं णही ।।[1]

आधुनिक लावनी उदाहरण- कोई नही स्थिर सदा जगत् में, लगी सभी को चलाचली ।
सूर्य चले शशि चले नखत-गण चले, वो विद्युत-छटा चली ।।[2]

इसी प्रकार लावनी के और भी **'वजन'** प्राकृत तथा अपभ्रंश में पाये जाते हैं।

डिंगल में लावनी :

राजस्थान की बोलचाल की भाषा के साहित्यिक रूप को डिंगल कहते हैं, इसमें ओज की मात्रा विशेष रूप से रहती है।

'डिंगल गीतों में कम से कम 3 पद्य होते हैं, इन पद्यों की कड़ी को वहां **'द्वाला'** कहा जाता है ।'[3]

इसमें **'पद्‌मावती'** के अनुरूप **'गध्धर निसाणी'** गीत चतुष्पदी है, जिसमें 32 मात्राओं का विधान है। **'मुखफ्फा'** बहर से इसका वजन मिलता है, यदि इसकी प्रथम 2 मात्राएँ हटा दी जायं तो लावनी साहित्य में इसका समावेश **'खड़ी रंगत'** में हो जाता है -

'जिण पुर चुप राजै, अवरन गाजै, केवल मेघ घुरायंदा ।
सब रहे ठिकाणे, हुकुम प्रमाणें, मारुत चले चलायंदा ।
कालाद अराणें, भय नहिं आणें, भय दुज दीन लयंदा ।
राघव राजिंदा, अवधति नंदा, अैसा राज सिया यंदा ।।'[4]

सम्वत् 1737 वि0 में डिंगल में **'बहरे तबील'** के दर्शन होते हैं

'करि ताक संभारि संभारि सुहक्कत बेधत बान अभंग रली ।
तनु त्रान संधान सुआन स प्रानहि बेधत आनहि होत रली ।।'[5]

'खड़ी रंगत' गीत की पंक्तियाँ देखिये -

मन में फेर घणी री माला, पकड़े नहं जमदूत पलो ।
मिले नहीं बकणां सूं माया, भाया कम बोलणो भलो ।।'[6]

---

1. प्राकृत पैंगलम्, भाग 1, पृष्ठ 119
2. स्वामी नारायणानन्द, लावण्य लता, ला0 संख्या 39
3. डा0 भोलाशंकर व्यास, प्राकृत पैंगलम्, भाग 2, पृष्ठ 397
4. मंछाराम, रघुनाथ रूपक, पृष्ठ 27।
5. मान, राजविलास
6. बांकीदास, स्फुट गीत, डिंगल में वीर रस, द्वितीय सं0, पृष्ठ 46

बहर **'दौड़'** अर्थात् **'पद्धरी'** छंद का नमूना प्रस्तुत है -

हिंदवान थान उत्तम सुदेस, तहं उदत द्रुग्ग दिल्ली सुदेस ।
संभरि नरेस चहुवांन थांन, प्रथिराज तहां राजन्त भांन ।।'[1]

चन्द ने त्राटक छंद का प्रयोग **'रासो'** में बहुत किया है, यदि त्रोटक की दो पंक्तियों को एक कर दिया जाय तो वह **'बहरे तबील'** में समाविष्ट हो जाता है।

अकबर कालीन कवि पृथ्वीराज के गीतों में 'ताटंक' के अतिरिक्त **'वीरछंद'** का भी समावेश हो गया था । यह दोनों छंद 'खड़ी रंगत' में मिला कर लावनी साहित्य में प्रयुक्त करने की पद्धति है।

इनकी समर्थ रचना की दो पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -

'जासी हाट बात रहसी जग, अकबर ठग जासी एकार ।
है राख्यो खत्री धूम राणैं, सारा लै बरतो संसार ।।'[2]

'खड़ी रंगत' में ही इसी समय के रससिद्ध प्रसिद्ध **कवि दुरसा** जी की रचना का नाद-सौन्दर्य यों प्रकट हो रहा है -

'अरुपत इन्द्र अवनि आह्वडियां धारा झड़ियां सहे धका ।
घण पड़ियां साकड़ियां घड़ियां, ना धीहड़ियां पढ़ीं नका ।।'[3]

पिंगल में लावनी :

पिंगल (व्रज-भाषा) में मध्यकालीन कवियों की रचनाओं में तथा वर्षा के लोकगीतों में अनेक लावनियों के वजन मौजूद हैं। केशव की 'रामचन्द्रिका' (11-15) में भी यह छंद पाया जाता है। भारतेन्दु के समय तक पिंगल में स्वतन्त्र रूप से भी लावनियाँ लिखी जाती रही हैं। विस्तारभय से लोकगीत की केवल दो पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं -

'अहो लाल ! दृग लाल लाल, नहि तिलक है भाल, जगे कहं रात ।
खड़े उनींदे नींद के माते, बिखरे बाल, जगे कहं रात ।।'[4]

इसमें 'रंगत खड़ी' का प्रयोग हुआ है।

इस प्रकार यह लावण्य का स्रोत युगानुरूप भाषा परिवर्तनके साथ-साथ निरन्तर प्रवाहित होता रहा और मध्यकालीन हिन्दी साहित्य तक पहुंचते-पहुँचते इसने अपना सही स्वरूप निश्चित कर लिया, जिसके दर्शन 17वीं सदी के कुछ लावनीकारों की रचना में होते हैं ।

---

1. महाकवि चंद वरदाई, पृथ्वीराज रासो, बीसवां समय, पद्मावती विवाह कथा
2. पृथ्वीराज, गीत, डिंगल में वीर रस, पृष्ठ 46
3. दुरसा जी, गीत, वही, पृष्ठ 60
4. पं0 गोपीनाथ, लावनी का इतिहास पृष्ठ 46

इसके उद्‌भव के विषय में अनेक विद्वानों के विभिन्न मत हैं, जिनमें से कुछ यहाँ उद्धृत किये जाते हैं -

1. 'कोई इसको लावनी कहते हैं और कोई मरहठी वा ख्याल कहते हैं, असल में इसका बनाना और गाना दक्षिण से उत्पन्न है और इसके दो कर्ता हुए, एक का नाम **तुकन गिरि** और दूसरे का नाम **शाहअली** था । उन्होंने दो मत खड़े किए - **तुर्रा** और **कलगी** ।'[1]

2. '15 वीं शताब्दी के लगभग **'किलगी तुर्रा'** नामक एक गीत शैली का उदय मालवा में हुआ। किलगी तुर्रा के दो पक्ष हैं। किलगी अखाड़े के लोग **'किलगी'** को माता और **'तुर्रा'** को पुत्र मानते हैं। 'तुर्रा' अखाड़े के लोग 'किलगी तुर्रा' को दम्पती बतलाते हैं। इन्हीं दोनों पक्षों में संवादात्मक नोक-झोंक प्रायः आयोजित होती है। मध्यस्थ का कार्य **'टुंडा'** नामक पक्ष द्वारा किया जाता है। 'टुंडा' वस्तुतः लुप्त होते हुए प्रश्न को उभाड़ने अथवा तर्क शांत करने में सहायक होता है। दार्शनिक व्याख्यानुसार किलगी और तुर्रा आदि शक्ति और शिव के सूचक हैं। किलगी पक्ष का विश्वास है कि आदिशक्ति ही शिव की उत्पत्ति का कारण है। तुर्रा पक्ष शक्ति को शिव की पत्नी घोषित करता है। उसकी मान्यता बहुत कुछ शिव पार्वती के सगुण रूप से मेल खाती है। स्पर्धा इन्हीं मतभेदों में विद्यमान है। परवर्ती संतों की परम्परा से इस क्षेत्र की बंदिशों में निर्धारित पदावली का समावेश हुआ। 18वीं और 19वीं शताब्दी के किलगी तुर्रा साहित्य में हिन्दू और मुसलमान विश्वासों के बीच समन्वय की चेष्टा लक्षित होती है।

मालवा में इस साहित्य पर मुसलमानों और मराठों का भी प्रभाव पड़ा एवं लावनी को स्थान मिला। 'ख्याल' का प्रवेश उत्तर भारत के प्रभाव से आया उसकी भिन्न-भिन्न धुनों का इसमें समावेश हुआ । आगर (मध्यप्रदेश) के किलगी अखाड़े के मेरू, मोती, मुगलखां और चेतराम तथा तुर्रा अखाड़े के बलदेव उस्ताद का नाम दूर-दूर तक फैला। नीमाड के कसरावद एवं चोली ग्राम में किलगी तुर्रा का बहुत-सा साहित्य उपलब्घ है। सन् 1726 के आसपास होलकर राज्य की रानी अहिल्या बाई ने इस शैली को प्रोत्साहन दिया था। मन्दसौर (दशपुर) के निकट ग्रामों में भी 'किलगी तुर्रा' की परम्परा मिलती है। टोने टोटके से सम्बन्धित **जंजीरा** नामक गीत-शैली इसी के अन्तर्गत आती है, जिसका प्रयोग अब लुप्त हो चुका है। 'किलगी तुर्रा' की अनेक हस्त लिखित पोथियाँ उपलब्ध हैं, जिनमें परम्परा से गाई जाने वाली रचनाएं लिखी हैं, यह परम्परा मौखिक होकर भी लिखित रूप में प्राप्त है।'[2]

3. 'ख़याल', 'मरैठी', 'लावनी' इन तीन नामों से यह गाना प्रसिद्ध है। ..... खयालों

---

1. काशी गिरि बनारसी परमहंस, लावनी ब्रह्मज्ञान, भूमिका, पृष्ठ 3
2. डा0 श्याम परवार, मालवी लोक साहित्य, 'हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास' (16 वां भाग) पृष्ठ 464

के साथ चंग बजाया जाता है, ... क्योंकि लावनी के प्रवर्तक या मूजिद संत महात्मा माने जाते हैं अतः इसके साथ यह बाजा उन्हीं के द्वारा प्रयुक्त हुआ, इस लिये कि इस बाजे के साथ किसी दूसरे बाजे की आवश्यकता नहीं होती, यानी बिना किसी की अपेक्षा के अपने आनन्द के लिए साधु-संतों ने इसको ही पसन्द किया। किन्तु यह गाना फकीरों, साधु-संतों और महात्माओं का होते हुए भी सभी को आनन्दप्रद है, इसलिये जन-साधारण में इसका खूब प्रचार हुआ, जो लगभग 200 वर्षों तक क़ायम रहा ।

लावनीबाजों के मुख्यतया दो थोक माने जाते हैं - 1. तुर्रा और 2. कलग़ी । तुर्रे वाले अपने को शिव का उपासक मानते हैं और 'कलग़ी' वाले शक्ति के उपासक होने का दम भरते हैं। .....तुर्रा सम्प्रदाय के प्रवर्तक महात्मा तुकन गिरि जी और कलग़ी के प्रवर्तक संत शाह अली जी माने जाते हैं। यह दोनों महात्मा परस्पर मित्र और सूफी ख़याल के थे, जिनको हम वेदान्तवादी कह सकते हैं। वेदान्त में ब्रह्म का महत्त्व माना गया है और माया को ब्रह्म की विशेष शक्ति कहा है अतः यहीं से तुर्रा-कलग़ी का वाद-विवाद शुरू हो जाता है। सुनते हैं कि इन उभय महात्माओं ने गान कला को महाराष्ट्र प्रान्त से हासिल किया था। इसीलिये इस गानकला का नाम 'मरैठी' भी है। दोनों ही महात्मा शायर दिमाग़ थे। इन्होंने उन्हीं छंदों को अपनी भाषा में अपने तौर पर अपने विचारों के साथ प्रकट किया और उनको गा कर आनन्द प्राप्त करने लगे। एक बार यह उभय महात्मा भ्रमण करते हुये किसी मराठा दरबार में गए और वहां जाकर इन्होंने अपनी इस गान कला का परिचय दिया, जिसको दरबार ने बहुत पसंद किया। उपहार स्वरूप महात्मा तुकन गिरि जी को एक बेशक़ीमती 'तुर्रा' और महात्मा शाह अली को बहुमूल्य 'कलग़ी' बड़े सम्मानपूर्वक दरबार की तरफ़ से प्रदान किये गए, जिनको दोनों ने अपने-अपने चंगों पर चढ़ा कर कृतज्ञता प्रकट की । बस तभी से यह तुर्रे वाले तुकन गिरि जी और शाहअली 'कलग़ी' वाले मशहूर हुए । तुकन गिरि जी दसनामी संन्यासी थे और संत शाहअली मुसलमान फ़कीर थे। इन्हीं दोनों महापुरुषों को इस गान कला के ईजाद करने एवं उत्तर भारत में लाने का श्रेय प्राप्त है। इनका समय सन् 1700 के लगभग अनुमान किया जाता है। संभवतः उस समय ये नौजवान रहे होंगे। यद्यपि यह उभय महापुरुष उत्तर भारत के निवासी थे, किन्तु मध्य प्रदेश, छोटा नागपुर में बहुधा रहा करते थे।[1]

4. "तुर्रा कलग़ी ख्यालों का बीजारोपण तुकन गिरि तथा शाहअली नामक दो संतों ने संयुक्त रूप से किया। दोनों दक्षिण के निवासी थे। तुकन गिरि गुसाईं महात्मा थे। वे भगवा वस्त्र धारण करते और शिवजी के उपासक थे। शाहअली मुसलमान फकीर थे जो हरे कपड़े पहनते थे और शक्ति की उपासना करते थे। दोनों प्रकाण्ड पण्डित, पहुँचे हुए संत, आत्मज्ञानी, तत्त्वदर्शी तथा आशु

---

1. स्वामी नारायणानन्द, ला0 का इ0, पृष्ठ 17,18,19

लावणीबाज थे।..... लावणी से प्रभावित यह परम्परा महाराष्ट्र में लावणी, मराठी अथवा मरैठी ख्याल के रूप में प्रसिद्ध हुई।"[1]

5. "लावणी वह शुद्ध मराठी काव्य प्रकार है जो 'लावणे'[2], इस मराठी क्रिया के आधार पर बना है। ..... अधिकांश मराठी आलोचकों ने 'लावणी' शब्द की व्युत्पत्ति का विचार करते समय यह धारणा कर रखी है कि 'लावणी' यह केवल महाराष्ट्र का विशेष छंद है, परन्तु वैसी वास्तविक स्थिति नहीं है। वस्तुतः लावनी लोक-काव्य की एक अत्यन्त प्रमुख तथा महत्त्वपूर्ण शैली है। इसकी रचना लोक भाषाओं, हिन्दी बोलियों और साहित्यिक भाषाओं में समान रूप से हुई। ..... मराठी के लावणी साहित्य का मूल प्राचीन है, और उसका प्रचलन न केवल महाराष्ट्र तक ही सीमित था, बल्कि उत्तर भारत में भी इसका प्रचलन था। तुर्रा पक्ष के प्रवर्तक महात्मा तुकन गिरि और कलग़ी सम्प्रदाय के प्रवर्तक संत शाहअली थे, जो उत्तर प्रदेश के निवासी थे। तुकन गिरि वेदान्त से प्रभावित थे और शाहअली सूफी दर्शन से प्रभावित थे।"[3]

6. "लावनी का उद्‌भव तो बारहवीं शताब्दी के हेमचन्द्र के 'काव्यानुशासन' से पूर्व ही हो चुका था, परन्तु इसे विकास का अवसर सम्राट् अकबर के समय में विशेष प्राप्त हुआ।"[4] "सम्राट् अकबर ने इसे 'तुर्रा और कलग़ी' द्वारा अभिषिक्त किया ।"[5]

7. "ख्यालबाजी अर्थात् लावनी भी प्रसिद्ध संगीत कला है, और काव्य कला से सम्बद्ध है, ख्यालों की बहुत सी रंगतें पिंगल के छंदों से मिलती हैं। सोलहवीं शताब्दी में 'शर्की' वंश का आखिरी बादशाह हुसैन शाह बहुत मशहूर संगीत का विद्वान् हुआ। ख्याल अथवा लावनी गाने की तर्ज इसी की निकाली हुई है। इसके गाने की उन्नति आगे चलकर दिल्ली के बादशाह मुहम्मद शाह के समय में न्यामत खां और सदारंग ने की है। कहते हैं कि मुहम्मद शाह के दरबार में दो गाने वाले महात्मा उपस्थित हुए जिनमें से एक मुसलमान फ़क़ीर 'शाहअली' और दूसरे 'तुकन गिरि' नाम के संन्यासी थे । दोनों का गाना सुनने के बाद बादशाह सलामत ने अपने ताज में से निकाल कर 'शाहअली' को कलग़ी और 'तुकन गिरि' को तुर्रा प्रदान किया। दोनों गवैये बादशाह सलामत को दुआ देते हुए प्रसन्नचित्त चल पड़े और इधर-उधर विचरण कर अपना-अपना गाना सुनाने लगे तथा दोनों ने अपने सम्प्रदाय और अखाड़े कायम किये ।"[6]

8. "सन् 1600 ई0 मं जिस वक्त जहाँगीर बादशाह भारत में राज्य कर रहा था, उस समय लावनी गायन का जन्म हुआ था। जहाँगीर बादशाह एक विद्वान् संगीतज्ञ था, जहाँगीर ने ही

---

1. डा0 महेन्द्र भानावत, राजस्थान के तुर्रा कलग़ी, पृष्ठ 2,3
2. लावणे = किसी चीज़ को सुव्यवस्थित रूप में लगाना ।
3. कृष्णा जी गंगाधर दिवाकर, महाराष्ट्र का हिन्दी-लोक-काव्य, पृष्ठ 26,27,28
4. डा0 मानव, हिन्दी लावनी साहित्य पर हिन्दी सन्त साहित्य का प्रभाव, पृष्ठ 19
5. वही, पृष्ठ 62
6. डा0 लक्ष्मीप्रसाद 'रमा' इटा दमोह के 10-12-73 के पत्र से

मृदंग के दो भाग करके तबले को जन्म दिया और इसने ही सहतार जिसको आज सितार के नाम से पुकारते हैं, बनाया । सहतार उर्दू का शब्द है। सह के मायने छह हैं, परन्तु अब सितार में छह के बजाय सात तारों का इस्तेमाल होता है और सितार में तर्वों का भी प्रचलन बढ़ गया है। भारतवर्ष में सदा से ही राजा, महाराजा नवाब, बादशाह शिकार खेलने के शौकीन रहे हैं। जहाँगीर भी एक समय अपने लश्कर के साथ शिकार खेलने जंगल गया, जहाँगीर एक जानवर के पीछे दौड़ा और लश्कर के कुछ आदमी इसके साथ-साथ रहे बाकी लश्कर पीछे रह गया और इससे बिछड़ गया। काफी दूर निकल जाने के उपरांत जहाँगीर को प्यास लगी तो बादशाह ने उन लोगों से जो इसके हमराह थे, पानी तलाश करने का आदेश दिया। ..... उनमें से एक साथी ने कुछ दूर पर एक झोंपड़ी पड़ी देखी। वह उसकी जानिब गया। वहाँ उसने दो साधुओं को दायरा बजाते हुए देखा। ..... उसने सब किस्सा जहाँगीर से जाकर कहा। बादशाह उसके साथ साधुओं की झोंपड़ी पर पहुँचा । उस समय भी दोनों साधु अपना-अपना दायरा बजा कर भगवान के गुण गान कर रहे थे। चूँकि बादशाह संगीतज्ञ था, तुरन्त उसने पूछा कि आप यह क्या बजा रहे हैं और क्या गाना गा रहे हैं? साधुओं ने बताया कि हम भगवान के गुणों का गान कर रहे हैं। जहाँगीर ने दोनों साधुओं को अपने दरबार में आने और गाना सुनाने का निमन्त्रण दिया। ..... एक दिन दोनों साधु बादशाह के दरबार में आ उपस्थित हुए। ..... बादशाह ने गाना सुनाने का आदेश दिया। दोनों साधु आशुकवि थे, अतः उन्होंने शाही ताज जिसमें कलग़ी व तुर्रा दोनों ही होते हैं, की तारीफ में गाना आरम्भ किया। एक ने कलग़ी की तो दूसरे ने तुर्रे की तारीफ की। एक का नाम 'शाह अली' और दूसरे का नाम 'तुकन गिरि' था। ..... दरबार में फौजी अफसरान भी मौजूद थे, उस समय फौज में अधिकतर मरहठे लोग होते थे, दो बड़े फौज के अफसर, जो साधुओं के गाने से ज़्यादा मुतस्सिर हुए थे, उनके शिष्य हो गए। इसके उपरान्त इस लावनी गायन का नाम मरहठीबाजी पड़ा, और दो सम्प्रदाय, 'कलग़ी' तथा 'तुर्रा' बने, जो आज तक मौजूद हैं।"[1]

9. "लावनी की उत्पन्ति कई विद्वान् पेशवा कालीन कवियों के अपरिमित कल्पना-वैभव तथा भाषा-शिल्प से मानते हैं, किन्तु यह युक्तियुक्त नहीं प्रतीत होता, क्योंकि पेशवाकाल से बहुत पहले लावणी लोकगीत का प्रचलन महाराष्ट्र की ब्राह्मण, अहीर तथा चमार जातियों में था। ये लोकगीत खेतों में चावल के पौधे लगाते समय गाये जाते थे, इसीलिये इनका नाम 'लावणी' पड़ा। आज भी छोटा नागपुर, छत्तीसगढ़ आदि भागों में ये गीत चावल के पौधे लगाते समय बड़ी भावभंगी से गाये जाते हैं। ये गीत कुछ खास व्यक्ति ही गाते हैं और शेष-स्त्री पुरुष केवल सुर में सुर मिला कर उनका साथ देते हैं। ये गीत कथाप्रधान होते हैं, तथा इनका स्वरूप भी घरेलू सा सरल और

---

1. पं0 देवीप्रसाद गौड 'मस्त', बरेली, के हस्तलिखित पत्र से ।

स्वाभाविक होता है। लावणी लोकगीतों का यह मूल रूप पेशवा कालीन शाहिरी काव्य से सर्वथा भिन्न है। इन गीतों के निश्चित स्वरूप का पता लगाने के लिये पिछले कई वर्षों से प्रयत्न हो रहा है, और जब तक पर्याप्त शोध कार्य नहीं होता, तब तक इनकी कथावस्तु के विषय में निश्चित रूप से कुछ कहना अनुचित होगा। इतना अवश्य है कि महाराष्ट्र में स्वराज्य की स्थापना होते ही पराक्रम के साथ वैभव की भी वृद्धि होने लगी, और शिवाजी कालीन सीधे, सरल और गद्य सदृश 'पोवाड़ा' काव्य-प्रकार को पीछे छोड़ कर वीर श्री और शृंगार से युक्त लावणी-गीतों की नई परम्परा चल पड़ी । ये शृंगार-रस-प्रधान लावणी गीत महाराष्ट्र में अत्यन्त लोक-प्रिय हुये हैं। कई लावणी-गीतों में गीतों का वर्ण्य विषय राधा और कृष्ण का विलास है, यथा -

'होली खेलतो हरी करनि राधा नट आपण नटी ।'

स्वयं नटी बनकर और राधा को नट बना कर कृष्ण होली खेल रहे हैं ।"[1]

10. "ढ़ाई तीन सौ वर्ष पहले मराठों का उत्थान काल था, और उसी समय उनकी भाषा का भी स्वर्णयुग था । उन्होंने यह ओजः-स्रोत महाराष्ट्र भर में फैला दिया जिसका नाम 'मरैठी' हुआ। तदनन्तर इसके लावण्य को देखकर विद्वानों ने सम्भव है इसका नाम 'लावनी' रख दिया और प्रचार होने पर इसे 'खयाल' कहने लगे।"[2]

11. "उसने (खुसरो ने) अपनी विलक्षण बुद्धि द्वारा भारतीय रागों को फारस के रागों से मिला कर पंद्रह, बीस नये रागों की कल्पना की, जिनमें से पाँच-छह आज भी हिन्दुस्तानी संगीत में प्रसिद्ध हैं। खयाल (लावनी) परिपाटी का गाना उन्होंने निकाला था ।"[3]

12. "हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल में राम और कृष्ण की भक्ति का बोलबाला हो जाने से संत कबीर के ज्ञानयोग और सूफी संतों के प्रेमयोग की तेजस्विता मंद पड़ने लगी, तो हिन्दू संत तुखनगिरि या तुकनगिरि और मुसलमान फकीर शाहअली ने चंग वाद्य पर सरल, सहज, स्वरचित गीतों से अपार जनसमूह को पुनः कबीर, जायसी जैसे कवियों की भावधारा से जोड़ने का प्रयास किया । ये दोनों गायक-कवि मध्य प्रदेश के चंदेरी राज्य के निवासी थे। ये ख़ासतौर से गोपीचंद, भरथरी और सामान्यतौर से पुरानी भारतीय गाथाओं के आधार पर गीत गा कर पुरानी स्मृति को जीवन्त कर देते थे। इस प्रक्रिया के कारण लोकमानस में इस परम्परा को खयालगायकी के नाम से भी अभिहित किया गया। इसी खयालगायकी का उत्तर प्रदेश में भगत, स्वांग तथा नौटंकी लोकनाट्यों के गठन एवं विकास में अभूतपूर्व योगदान रहा है। तुखन तथा शाह की इस परम्परा में एक बड़ी शिष्य मण्डली तैयार हो गयी। चंदेरी के महाराज तक जब इस परम्परा की ख्याति पहुँची

---

1. डा0 र·श·केलकर, मराठी हिन्दी कृष्ण काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृष्ठ 116
2. स·ब्र· शर्मा, हिन्दी साहित्य और लावनी, दैनिक प्रताप, 4 नवम्बर 1951
3. डा0 श्यामसुन्दर दास, हिन्दी साहित्य, षष्ठ संस्करण, पृष्ठ 75

तो राज दरबार में ये दोनों गायक-कवि सादर निमन्त्रित किये गए। इनके गायन से महाराज इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने अपने मुकुट का तुर्रा तुखन को तथा कलगी शाह को भेंट करके उन्हें सम्मानित किया। इसी दिन से तुखन के शिष्य तुर्रा वाले तथा शाह के शिष्य कलगी वाले प्रसिद्ध हुए।"[1]

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि लावणी साहित्य का उद्भव वैदिक युग में ही हो गया था, परन्तु उसका पूर्ण विकास संस्कृत साहित्य में भी पूर्णतः परिलक्षित नहीं होता। समयान्तर से हिन्दी के आविर्भाव-युग में 'लावनी' नाथ और सिद्धों के मन में समाई, परन्तु उसका शुद्ध स्वरूप अमीर खुसरो द्वारा प्रस्तुत किया गया। 'हिन्दी के आदियुग के अन्तिम दिनों में हमें गीत काव्य के चिह्न यदि कहीं देखने को मिलते हैं तो वह खुसरो के पदों में। इनका काल (1310-1381) है। इन्होंने यों तो अधिकांशतः फ़ारसी में ही कविता की, परन्तु हिन्दी में सर्वप्रथम खड़ीबोली का प्रयोग इन्होंने ही किया।'[2]

इनके द्वारा लावनी की 'बहर शिकस्ता' का प्रयोग प्रमाणस्वरूप अवलोकनीय है-

'सखी, पिया को जो मैं न देखूँ,
तो कैसे काटूँ अंधेरी रतियाँ ।'

इस प्रकार गोरख और खुसरो से निकल कर कबीर, तुलसी, सूर और मीरा के मन को मोहती हुई लावण्यमयी लावणी की यह अजस्र स्वरधारा महाराष्ट्र में समा गई। सन् 1700 ई0 में संत तुकन गिरि और शाहअली के भागीरथ प्रयास से यह धारा नवीन आध्यात्मिक संगीत की सृष्टि करती हुई फिर उत्तर भारत में आ गई। 'मरैठी' और 'ख़याल' भी इसी की संज्ञाएँ हैं। 'चंग' इसका अविभाज्य अंग है। यह उभय महात्मा दक्षिण के नहीं अपितु उत्तर भारत के ही मूल निवासी थे। 'गुसाईं' तुकन गिरि को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी मिर्जापुर (उत्तर प्रदेश) का निवासी माना है।"[3]

"अतः तुकन गिरि और शाह अली दोनों के सम्बन्ध में डा0 महेन्द्र भानावत तथा डा0 पुण्यम चन्द 'मानव' का यह कथन कि 'दोनों दक्षिण के निवासी थे', निर्मूल एवं भ्रामक है। एवं डा0 कृष्ण मोहन सक्सेना का इन्हें मध्यप्रदेश के चंदेरी राज्य के निवासी बताना भी भ्रामक है, अलबत्ता ये छोटा नागपुर (मध्यप्रदेश) में बहुधा रहते थे। 'तुर्रा' और 'कलग़ी' किस सम्राट् द्वारा भेंट किए, इस विषय में भी विद्वानों के विभिन्न मत हैं, जो ऊपर प्रदर्शित किये गए हैं। हमारी दृष्टि में यह

---

1. डा0 कृष्णमोहन सक्सेना, मिर्जापुरी लावनी की लुप्तप्राय परम्परा, धर्मयुग, 17 अक्टूबर 1982, पृष्ठ 7
2. डा0 शकुन्तला दूबे, 'काव्य रूपों के मूलस्रोत और उनका विकास', प्रथम सं0, पृष्ठ 26
3. द्रष्टव्य - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, 16 वां संस्करण, पृष्ठ 572

पुरस्कार बाजीराव द्वितीय मराठा सम्राट् द्वारा ही इन गायकों को मिला था, क्योंकि लावनीकारों ने अपने काव्य में बाजीराव की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। "मराठी कवि 'प्रभाकर' के कई लावणी गीतों के नायक स्वयं बाजीराव पेशवा थे, उनका विलास वर्णन करते समय कवि ने उन्हें कृष्ण बना डाला है।"[1]

"बाजीराव द्वितीय (राज्यकाल 1796-1818 ई0) के समय में अभिनयात्मक लावनी को विशेष मान्यता प्राप्त हुई, तभी लावनी ने शिष्ट समाज में प्रवेश किया ।"[2]

इस मत के अनुसार यदि हम तुकन गिरि और शाह अली को मराठा दरबार द्वारा पुरस्कृत होने की घटना का सम्बन्ध बाजीराव द्वितीय के दरबार से जोड़ें तो स्वामी नारायणानन्द द्वारा निर्धारित इन दोनों शायरों का समय 1700 ई0 न ठहर कर 1800 ई0 का उत्तरार्द्ध ठहरता है। महाराष्ट्र में 17वीं सदी में लावनी का प्रचार डोम, कहार आदि छोटी जातियों में ही विद्यमान था, जबकि मालवा में इस शैली का उदय 15वीं सदी में हो चुका था, परन्तु शिष्ट-समुदाय में इसका समावेश सन् 1726 ई0 के आसपास होलकर राज्य की रानी अहिल्याबाई द्वारा प्रोत्साहन पाकर हुआ। महाराज तुकन गिरि व संत शाह अली द्वारा 17वीं सदी के उत्तरार्ध में लावनी के माध्यम से विशुद्ध अद्वैत की धारा प्रवाहित हुई, जिसमें विद्वत्समाज मग्न हो गया। यह दोनों महात्मा सैंकडों वर्ष जिये होंगे। जब सन् 1796 में इनकी अवस्था का अंशुमाली अस्ताचल की ओर अग्रसर रहा होगा तब यह दोनों रहस्यवादी वयोवृद्ध कवि उक्त मराठा दरबार द्वारा 'तुर्रा' और 'कलग़ी' पदकों से विभूषित हुए होंगे। अतः इस मत के अतिरिक्त अन्य कथनों की भाँति डा0 पुण्यम चन्द 'मानव' का यह कथन भी असंगत एवं भ्रामक प्रतीत होता है कि 'सम्राट् अकबर ने इसे तुर्रा और कलग़ी द्वारा अभिषिक्त किया।' हाँ, सम्राट् अकबर, मुहम्मद हुसैन शाह, जहाँगीर बादशाह और चंदेरी के महाराज भी इस कला के प्रशंसक और पोषक अवश्य रहे। यह मत सर्वसम्मत है कि तुकन गिरि 'तुर्रा' और शाह अली 'कलग़ी' सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे।

हिन्दी साहित्य के मध्यकालीन युग तक आते-आते लावनी वह त्रिवेणी बन गई जिसने संस्कृत-सरस्वती सहित हिन्दी और उर्दू की गंगा-यमुनात्मक संयुक्त विशिष्ट वाग्धाराओं को अपने 'आप' में समाविष्ट कर हिन्दू-संस्कृति तथा यवन-संस्कृति को समत्व भाव से ममत्व प्रदान कर राष्ट्रीय एकता की मूल का सिंचन किया ।

---

1. डा0 र.श.केलकर, मराठी हिन्दी कृष्णकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृष्ठ 117

2. प्राध्यापक घोंड, धर्मयुग, 28 जुलाई 1968, पृष्ठ 15

आधुनिक लावनी - साहित्य का क्रमिक विकास

लावनी साहित्य विषयक प्राप्त सामग्री के आधार पर सिद्ध होता है कि लावनी अपने आप में समर्थ साहित्य है । इसमें शृंगारपरक काव्य रचना से लेकर विशुद्ध अद्वैतवाद और रहस्यवाद का समावेश है । लावनी की प्रत्येक पंक्ति रसात्मक है । इसके रचयिताओं पर सन्त कवियों, नाथों और सूफियों का प्रभाव परिलक्षित होता है । लावनी-काव्य में आनन्द प्राप्ति की साधनावस्था और सिद्धावस्था दोनों विद्यमान हैं। इसमें जो अनिर्वचनीय प्रेमतन्त्व है, उसे कोई मननशील भावुक ही अनुभव में ला सकता है ।

भाषा के क्षेत्र में यह लावनी कहीं संस्कृतगर्भित है तो कहीं उर्दू और फ़ारसी की शब्दावली से परिपूरित है । गुजराती, मराठी, व्रज, अवधी आदि विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं में भी इसकी मनोरम छटा दृष्टिगोचर होती है। इसमें एक ओर आध्यात्मिकता है तो दूसरी ओर भौतिकता; कहीं दार्शनिकता, कहीं रहस्यवादिता; कहीं राष्ट्रीयता, कहीं केवल कलाकारिता । कहीं हिन्दी की गम्भीरता, कहीं उर्दू का चुलबुलापन ! कहीं जाम, कहीं मीना, कहीं सोज़ कहीं साज ? वस्तुतः इसमें प्रेम, पश्चात्ताप, निर्लेप, वैराग्य, आत्मविस्मृति, ब्रह्मज्ञान एवं प्राप्ति की ऐसी सोपानपरम्परा है, जिसके सहारे साधक ही क्या साधारण सहृदय पाठक भी आत्मसाक्षात्कार की स्थिति में अनायास पहुँच जाता है। सूफी साधकों ने साधनावस्था के यही सात मक़ाम स्वीकार किये हैं । उर्दू में इन्हें तौबा, इश्क, जुहद, मार्फ़त, वज्द, हक़ीक़त और वस्ल कहते हैं। इस प्रकार आदि से अन्त तक सर्वेक्षण करने के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि शृंगार की संवाहिका लावनी काम-कैपसूल में भरी भव्य-भाव-भैषज्य है। आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति ही सच्चा रहस्यवाद है, इसमें अद्वैत की सौंदर्यमयी व्यंजना है, 'अहम् और इदम्' का समन्वय है । यह भारत का निजी दृष्टिकोण है । यह रहस्यवाद काव्य में वैदिक काल से आगमानुयायी सिद्धों की परम्परा तक मिलता है। "बीच में रहस्यवादी सम्प्रदायों के बौद्धिक गुप्त कर्मकाण्ड की व्यवस्था भयानक हो चली थी और वह रहस्यवाद की बोधमयी सीमा को उच्छृंखलता से पार कर चुकी थी, यही अवसर रहस्यवादियों के ह्रास का था। किन्तु फिर भी इस धारा का अत्यन्ताभाव कभी नहीं हुआ।"[1]

"यद्यपि कुछ लोगों ने इसमें सहज आनन्द की योजना भी की थी और उसमें माधुर्य महाभाव के उज्ज्वल नीलमणि को परकीय प्रेम के कारण गोप्य और रहस्यमूलक बनाने का प्रयत्न भी किया था, परन्तु द्वैतमूलक होने के कारण तथा बाह्य आवरण में बुद्धिवादी होने से यह विषय में साहित्यिक ही अधिक रहा । निर्गुण सम्प्रदाय वाले सन्तों ने भी राम की बहुरिया बन कर प्रेम

---

1. नन्ददुलारे वाजपेयी, प्राक्कथन, काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, पृष्ठ 10

और विरह की कल्पना कर ली थी, किन्तु सिद्धों की रहस्य-सम्प्रदाय की परम्परा में तुकनगिरि और रिसालगिरि आदि ही शुद्ध रहस्यवादी कवि लावनी में आनन्द और अद्वयता की धारा बहाते रहे।"[1] तुकनगिरि शिव के उपासक थे तो शाहअली शक्ति के, यही दोनों महानुभाव क्रमशः तुर्रा और कलग़ी सम्प्रदायों के प्रवर्तक भी हैं ।

रंगत श्याम कल्याण में तुकनगिरि जी की लावनी का एक नमूना देखिये -

मन को मार बनाया चेला ,
किया जगत् का दूर झमेला ।
कहे 'तुकनगिरि' सुख दुख झेला
अन्त गया फिर आप अकेला ,
ये निरगुन कब समझे, सख़्त जिनूनी रे ।

खड़ी रंगत में रिसाल गिरि जी द्वारा त्रिगुण-त्रिवेणी पर लिखित दो पंक्तियाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं -

सन्तन की सुखधाम करन सब, काम सकल फल देनी है ।
त्रिगुन-तत्त्व की हरदम बहती, काया बीच त्रिवेणी है ।।

तुर्रा और कलग़ी ब्रह्म और माया के ही प्रतीक हैं, यही धारा आशिके हक्कानी बाबा बनारसी ने अपनी लावनियों द्वारा अजस्र प्रवाहित की है, 'लावनी ब्रह्मज्ञान' उनकी प्रसिद्ध रचना है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस सत्य को यों स्वीकारा है -

"कहते हैं कि मिरजापुर के तुकनगिरि गुसाई ने सधुक्कड़ी भाषा में ज्ञानोपदेश के लिये लावनी की लय चलाई । ..... लावनीबाजों में काशीगिरि उपनाम 'बनारसी' का बड़ा नाम हुआ ।"[2]

उस्ताद भैरों सिंह पंजाब के बीच में लावनी का डंका बजाते रहे, यह बाबा बनारसी के समकालीन थे, इनका दिल तो उस परवरदिगार पर ऐसा फ़िदा था कि -

"दिल गिरफ्तार बेवजह हुआ, मालूम नहीं क्यों कर के छूटे ।
जीते जी छुटे या मर के छुटे, या दिन हिसाब महशर के छूटे ।।"[3]

पं0 रामदयाल त्रिपाठी प्रभु की भक्ति में ही लीन रहे, साथ ही ज्योतिष और संगीत को भी प्रकाशित करते रहे ।

धीरे-धीरे शैली के क्षेत्र में क्रान्ति का युग आया और लावनी में जन शैली और अधिक

---

1. जयशंकरप्रसाद, काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, चतुर्थ सं0, पृष्ठ 68
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, 16 वां संस्करण, पृष्ठ 572-73
3. उस्ताद भैरों सिंह, लावनी का इतिहास, पृष्ठ 121

विकसित हुई, हिन्दी साहित्य के "प्रथम उत्थान में हमें ग्राम साहित्य का स्वर कजली, ठुमरी, लावनी इत्यादि में मिलता है ।"[1]

"जन जागृति के अग्रदूत भारतेन्दु ने काव्य-धारा का प्रवाह ग्रामीणों में प्रवाहित करने के लिये ही कजरी, ठुमरी, लावनी, खेमटा, कहरवा, अद्धा, चैती, होली, सांझी, लम्बैं, जातें के गीत, विरहा, चनैनी, ग़ज़ल इत्यादि ग्रामीण छन्दों को काव्य में अपनाया ।"[2] इन्होंने "फूलों का गुच्छा" में निर्गुण रहस्यवादी परम्परा का अनुसरण किया, तो 'प्रेम तरंग' में विरह को चित्रित किया, 'प्रेम प्रलाप', 'मधु मुकुल', 'वर्षा विनोद' शृंगार से ओत-प्रोत हैं । उनकी स्फुट लावणियों में देशभक्ति का स्वर निनादित हुआ है - 'हा, हा, भारत दुर्दशा न देखी जाई' आपकी प्रसिद्ध राष्ट्रीय लावनी है । सुखलाल ने 'मनोहर बाग' के माध्यम से निर्गुण-सगुण का जलवा देखा, ग़ौहर ने 'चमनिस्तान ख़यालात-ग़ौहर' में अपने आशिकाना और आरफ़ाना ख़यालात ज़ाहिर किये । 'शीशराम' सारे संसार में सनम को ढूंढ कर हार गये, और उम्र ढ़लने पर भी पी को मिलने के लिये तड़पते रहे । पं0 प्रतापनारायण के 'मन की लहर' अजीब मस्ती से भरी हुई है, वह ऐसे प्रेम के दीवाने हैं कि रस और विष को एक समान ही मानते रहे। पं0 श्रीधर पाठक किसी स्वर्गीय बाला की मंजु वीणा की तान सुन कर सुध-बुध खोते रहे और 'एकान्तवासी योगी' बन गये । लावनी साहित्य में उनका यह एकमात्र खण्डकाव्य है -

"श्रीधर पाठक अपेक्षया अधिक सामर्थ्य के कवि थे और उन्होंने हिन्दी में जो कविता की वह केवल टेकनीक और रूप की दृष्टि से ही नहीं, विचार-वस्तु की दृष्टि से भी नवीन थी । परम्परागत ब्रजभाषा काव्य से भिन्न तो थी ही, राष्ट्रीय जागरण के आरम्भ काल की प्रतिनिधि भी थी । उन्होंने लावनी की शैली पर 'एकान्तवासी योगी' की सन् 1887 ई. में रचना की, जिसने हिन्दी कविता का सूत्रपात किया ।"[3]

बाबू आनन्दी प्रसाद वर्मा खयाल की विभिन्न रंगतों में गो-रक्षा आन्दोलन को बढ़ाते रहे। उस्ताद नत्था सिंह 'तालिब' 'अनन्तगिरि' बन कर विशुद्ध रहस्यवाद, दर्शन एवं अध्यात्म का मन्त्र फूंकते रहे और दुनिया को गिन-गिन कर नाम रखते रहे -

"खुदा भी हो दुनिया भी हो, यह बात है नामुमकिन बाबा ।
खुदा के तालिब, रखें दुनिया को नाम गिन गिन बाबा ।।"[4]

इनकी रचना प्रौढ़ एवं प्राञ्जल है । इन्हीं के शिष्य 'खुशदिल' भी अपने ज़माने के विद्वान् ख़यालगो थे, इन्हें भी हिन्दी के अतिरिक्त उर्दू-फ़ारसी का पूरा ज्ञान था, यह लतीफ़तर

---

1. डा0 जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल, हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, सप्तम संस्करण, पृष्ठ 303
2. वही, पृष्ठ 303
3. शिवदान सिंह चौहान, हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष, पृष्ठ 34
4. उस्ताद नत्थासिंह 'तालिब', लावनी का इतिहास, पृष्ठ 72

दिलपसन्द मज़मूं लिखने में उस्ताद थे। अपने सामयिक कवियों को उन्होंने चुनौती दी -

"सखुनवरों में हो ज़ोर जिसको वो छन्द पर मेरे छन्द लिक्खे ।"

गणेश प्रसाद की रचनाएँ जन-मानस में समा गई । आज भी उनकी एक रचना, सिनेमा और रेडियो से लेकर मन्दिरों तक में आदर के साथ गाई जाती है। इनके काव्य में पूर्ण तन्मयता है, सहज शब्द-सौन्दर्य है, द्रौपदी की पुकार मानों सभी दीन-दुखियों की पुकार बन गई -

"बिन काज आज महाराज लाज गई मेरी ।
दुख हरो द्वारकानाथ, शरण मैं तेरी ।।"[1]

पं0 रूपकिशोर विशुद्ध हिन्दी लिखने में अद्वितीय हुये, उनकी रचनाओं में अलंकारों की अद्‌भुत छटा है, यह 'रूपराम' के नाम से भी रचना करते थे। इनकी उत्प्रेक्षा का एक उदाहरण है-

"है शीशपर शीश फूल शोभित, स्वरूप आभा अखण्ड का है ।
मनो भुजंगों की भूमिका पर, निवास श्री मारतण्ड का है ।।"[2]

लावनी-साहित्य में इसी प्रकार की विशुद्ध हिन्दी लिखने वाले दूसरे महात्मा स्वामी नारायणानन्द जी हैं। इन्होंने 'लावण्य-लता' पर नीति, धर्म, ज्ञान, वैराग्य एवं भक्ति के भांति-भांति के सुमन खिलाये । इनके उपदेश भी बड़े सरस हैं -

"जिसने पा नर-जन्म जगत् में, काव्य-सुधा रस पिया नहीं ।
लिया नहीं हरि-नाम और जिसने कर से कुछ दिया नहीं ।।
देश-धर्म पर जिसने निज तन मन धन अर्पण किया नहीं ।
जीवित नहीं, मृतक है वह नर, जिया भी तो कुछ जिया नहीं ।।"[3]

श्यामलाल अग्रवाल, दुर्गादास, लक्ष्मीप्रसाद 'रमा' का मन भी लावनी के विविध रूपों में रमा रहा । लावनी कलाकान्त पं0 हरिवंश भी शुद्ध हिन्दी के हिमायती थे, उनकी रचनाओं में भक्ति और उपदेश का आधिक्य है । पं0 मणिलाल मिश्र कलग़ी सम्प्रदाय के थे, इनकी भाषा में व्रजभाषा की माधुरी मिश्रित हे, भावों में श्रृंगार की अनूठी उक्तियाँ हैं। वेगराज जालान, बाबू ओंकार प्रसाद, श्री बजरंग बगड़िया ख्यालों के 'गुलशन' में 'बेमिसाल' 'संगीत' निनादित करते रहे । पं0 चन्द्रशेखर 'तुर्रे कलग़ी' का विवाह रचाते रहे । श्री निर्भयराम, रघुवरप्रसाद आदि भी श्रृंगार रस के साथ साधारण भक्ति की रचना करते रहे। स्फुट रूप से लिखने वाले और भी बहुत-से कवि हैं। कांनपुर के अतिरिक्त दिल्ली, लखनऊ, आगरा, जोधपुर, जबलपुर, सागर, दमोह, बरेली और भिवानी के अखाड़ों में एक से बढ़ कर एक लावनीकार हुए हैं ।

---

1. गणेशप्रसाद, लावनी-विलास, भाग-1, पृष्ठ 14
2. रूपकिशोर, दैनिक 'अमर उजाला' आगरा, 9-9-73 का अंक
3. स्वामी नारायणानन्द, लावनी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 352

अब से लगभग 75 वर्ष पूर्व कुछ विद्वानों का ध्यान लावनी के लावण्य की ओर गया। श्री अयोध्याप्रसाद जी पाठक, स्वामी नारायणानन्द सरस्वती, पं0 लक्ष्मीधर वाजपेयी, बाबू नारायणप्रसाद अरोड़ा एवं पं0 बनारसीदास चतुर्वेदी आदि कतिपय मूर्धन्य लेखकों ने लावनी साहित्य पर ऐतिहासिक लेख और निबन्ध विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लिखे । डा0 केसरी नारायण शुक्ल, डा0 त्रिलोकी नारायण दीक्षित और डा0 पुण्यम चन्द 'मानव' ने अपने लेखों में लावणी के प्रत्येक अंगों पर प्रकाश डाला । प्राध्यापक श्री घोंड ने 'लावणी' को एक मराठा शृंगारिक नृत्य प्रतिपादित किया। डा0 महेन्द्र भानावत ने राजस्थान की ख्याल-सम्पदा पर दृष्टिपात किया । उदयशंकर शास्त्री का लेख भी लावनी साहित्य का सर्वांगीण विवेचन है । श्री अगरचन्द नाहटा, देवीलाल बंसल ने ख़याल या लावनी को ब्रज की एक विशेष काव्य-धारा माना है । इसके अतिरिक्त लावनी लेखकों पर कुछ परिचयात्मक लेख श्रीकृष्ण गोपाल दुबे और रामचन्द्र सैनी के प्रकाशित हुए, मैंने भी आज से 45 वर्ष पूर्व लावनी विषय पर 4-5 गवेषणात्मक लेख लिख कर कानपुर से प्रकाशित 'प्रताप' तथा 'सहयोगी' आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कराए थे ।

समालोचना के क्षेत्र में लावनी साहित्य निबन्ध या लेखों तक ही सीमित नहीं रहा अपितु 'लावनी का इतिहास' (स्वामी नारायणानन्द), 'राजस्थान के तुर्रा कलग़ी' (डा0 महेन्द्र भानावत), 'करोली के क्षेत्र का खयाल साहित्य' (कल्याणप्रसाद वर्मा) एवं 'हिन्दी लावनी साहित्य पर हिन्दी सन्त साहित्य का प्रभाव' (डा0 पुण्यम चन्द 'मानव') आदि अनेक ग्रन्थ-रत्न भी सामने आए । इनके विषय में सीमा-निर्धारण करते समय प्रकाश डाला जाएगा ।

मराठी में अनन्तफन्दी, होना जी, राम जोशी, सगन भाऊ, प्रभाकर और परशराम कवि की लावणियों के संग्रह प्रकाशित हुए । यह सभी कवि उत्तान शृंगारपरक लावणी-लेखक थे । परशराम ने रामायण और महाभारत के कथानकों को लेकर भी कुछ लावणियां लिखी हैं । रामजोशी की करम्भक शैली की लावणियां बहुत प्रसिद्ध हुई । श्री मधुकर वासुदेव घोंड ने 'मऱ्हाठी लावणी' नामक ग्रन्थ में मराठी लावणी का छन्दःशास्त्रीय मूल्यांकन किया है ।

राजस्थान खयालों का केन्द्र है । श्री अगरचन्द नाहटा ने अपने 'खयाल संज्ञक काव्य' में 190 खयाल की पुस्तकों का उल्लेख किया है । इनमें अधिकतर धार्मिक, सामाजिक या ऐतिहासिक नेताओं के चरित्र चित्रित किये गए हैं । यहाँ यह खयाल रंगमंच पर खेले जाते हैं, इसलिए इन्हें 'खेल' भी कहा जाता है । चंग लावनी या ख्याल का प्रमुख वाद्य है । लावनी-गायक पहले भी मण्डली बना कर लावनी का प्रदर्शन किया करते थे । इस विषय में महाकवि जयशंकर 'प्रसाद' का यह कथन ध्यान देने योग्य है -

"सच्चे रहस्यवादी पुरानी चाल की छोटी-छोटी मण्डलियों में लावनी गाने और चंग खड़काने लगे ।"[1]

हस्तलिखित सामग्री कुछ ही लावनी-प्रेमियों के पास अब सुरक्षित बची है, क्योंकि 30-40 वर्षों से लावनी का गाना-बजाना प्रायः बन्द हो गया है; अब इस क्षेत्र में प्रतिभा सम्पन्न पढ़े-लिखे कवियों की रुचि भी नहीं रही, क्योंकि इसमें अनपढ़ व्यक्ति भी शरक़त करने लगे थे। मेरी खोज में अब तक श्री बैजनाथ जिल्दसाज - ज्वालापुर, श्री नेकसाराम - फिरोजाबाद, श्री बाबूराम बरेली, ला0 लच्छीप्रसाद जी - दतिया, श्री नारायण प्रसाद चतुर्वेदी - लखनऊ, गोपाल दास मुनीम - आगरा, दिनेशचन्द्र कौशिक - खुरजा, कालिका प्रसाद 'सुन्दर' - कानपुर, वासुदेव जी नायक - खतौली, श्री गोपाल दास चौरासिया - आगरा, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी - बीकानेर, श्री बजरंग बगड़िया-भिवानी, श्री अम्बाप्रसाद - दादरी, और दीनदयाल अग्रवाल - भिवानी के पास विभिन्न रचयिताओं की लावणियों के हस्त-लिखित अमूल्य संग्रह जानकारी में आए हैं । भारत सरकार को चाहिए कि उक्त सभी सज्जनों से या उनके उत्तराधिकारियों से येन-केन-प्रकारेण उक्त संग्रह प्राप्त कर प्रकाशित कराये, जिससे हिन्दी साहित्य का यह अमूल्य काव्यकोष यों ही काल-कवलित न हो जाये । इस कार्य को हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग या काशी नागरी प्रचारिणी सभा जैसी उच्च साहित्यिक संस्थाएं भी पूर्ण कर सकती हैं । इन दोनों संस्थानों ने पर्याप्त सामग्री खोज भी ली है । सभा के संग्रहालय में लावनी की 25 पुस्तकें सुरक्षित हैं, जिनमें दुर्गादास, प्रभुदयाल, दौलत सिंह, पन्नालाल, दुल्ली चेत सिंह, पं0 रूपकिशोर या रूपराम, रूपरसिक, लछमन प्रसाद और महाराज रिसालगिरि जी की रचनाएँ प्रमुख हैं । हिन्दी साहित्य के अध्येताओं ने इनमें से सम्भवतः कुछ के नाम भी न सुने हों, संभवतः उन्हें यह भी जानकारी नहीं होगी कि ब्रजभाषा के प्रसिद्ध कवि रूपरसिक भी लावणीकार थे ।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग में डा0 वाचस्पति गैरोला के सौजन्य से संग्रहालय में सुरक्षित 15 लावणी-काव्यसंग्रह मुझे देखने को मिले । ग्रन्थकारों में मोतीलाल मारवाड़ी, भक्तकवि नाथूराम, रामकृष्ण, जयाजीराव, तुलसीदास, जिनदास, सुमतनाथ, 'सुन्दर' देवीदास, रूपचन्द और ऋषभदेव प्रमुख हैं । इनमें अधिकतर जैनी कवि हैं । जैनियों ने लावनी के माध्यम से जैनधर्म का प्रचार किया। इनमें तुलसी (हाथरसी) एवं नाथूराम की लावनियाँ साहित्य की दृष्टि से उच्चकोटि की हैं । यदि यह सब साहित्य प्रकाश में आ जाय तो हिन्दी साहित्य के इतिहास की रूपरेखा ही बदल जाएगी और इतिहास-लेखकों को नए सिरे से हिन्दी-साहित्य का इतिहास लिखने पर पुनर्विचार करना पड़ेगा ।

---

1. जयशंकर प्रसाद, 'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध', पृष्ठ 118

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि खड़ीबोली को परिष्कृत कर राष्ट्रभाषा का रूप देने में एकमात्र लावनी का महत्त्व है, इसमें उच्चकोटि का साहित्य विद्यमान है । यह केवल लय पर आधारित लोक-साहित्य ही नहीं है, अपितु इसमें रस, छन्द और अलंकारों का साहित्यिक सौन्दर्य के साथ समावेश हुआ है । हिन्दू-मुसलिम ऐक्य को भी हिन्दी-उर्दू के समन्वय से लावनी ने सिंचित किया है, इसमें ऐहिक और पारलौकिक हित-चिन्तन किया गया है ।

आज जिन्हें हम साहित्यिक गीत कहते हैं, वह भी लोक-ललाम लावनी की ही उपज है, 'लोक-मानस का जो साहित्य है, वह समुद्र है, उससे उठते हैं कुछ बादल जो हमारे यहाँ बरस जाते हैं, जिसको हम संस्कृति-साहित्य या शिष्ट-साहित्य कहते हैं । जैसे समुद्र के बिना कोई बादल नहीं बना सकता, उसी तरह लोक-मानस से पृथक् रह कर साहित्य का सृजन नहीं हो सकता। जन-मानस ने ही हमारे साहित्य बनाए हैं, हमारे गीत-संगीत बनाए हैं, हमारी शास्त्रीयता उसी पर निर्भर है ।"[1]

"साहित्यिक गीतों का उदय लोकगीतों के विकसित और संगठित रूप हैं । बहुत से साहित्यिक गीत भी लावनी आदि लोक-गीतों के अनुकरण में बने हैं ।"[2]

उक्त कथन की सत्यता के लिए 'कामायनी', 'साकेत' और 'कुरुक्षेत्र' अवलोकनीय हैं । उक्त महाकाव्यों में लावनी का प्रयोग इस शोध-प्रबन्ध के षष्ठ अध्याय में 'आधुनिक हिन्दी कवियों में लावणी-प्रेम' प्रदर्शित करते समय व्यक्त किया जाएगा ।

वस्तुतः हिन्दी का भाषा-विधान एवं उसका छन्दःशास्त्रीय ढ़ांचा पूर्णतः लावनी पर ही आधारित है । लावनी-जगत् में एक ओर तो अपने-अपने अखाड़ों के शब्द-शिल्पी, आचार्य-जन एक से एक बढ़ कर साहित्यिक गीतों का सृजन करते रहे, दूसरी ओर अन्तेवासी गायक-गण चंग बजाकर अजीब मस्ती और उमंग के साथ उन्हें दंगलों में सुना-सुनाकर जन-मानस को तरंगित कर अपना रंग जमाते रहे। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में -

"नूतन वृत्तों में कवि-कोविद, नये गीत रच लाते हैं ।
नव रागों में नव तालों में, गायक उन्हें जमाते हैं ।।
नये नये साजों-बाजों की, शिल्पकार करते हैं सृष्टि ।
गूढ़ रहस्यों पर ही प्रतिभा, डाल रही है अपनी दृष्टि ।।"[3]

हिन्दी साहित्य में आज भी लावनी की लय में लिखने का प्रचलन बराबर ज़ारी है, भले ही लावनी गाने का सिलसिला समाप्त हो गया हो ।

---

1. महादेवी वर्मा, राष्ट्रभाषा सन्देश, 15 मई 1981, पृष्ठ 7
2. बाबू गुलाबराय, काव्य के रूप, चतुर्थ संस्करण, पृष्ठ 117
3. साकेत, भरत के प्रति शत्रुघ्न की उक्ति, चतुर्थ वृन्ति, एकादश सर्ग, पृष्ठ 377-378

प्रस्तावित अध्ययन की उपादेयता

हिन्दी साहित्य के प्रांगण में जहाँ अनेक साहित्यिक विधाओं का स्वरूप अपनी परम्पराओं के साथ अब तक विकासोन्मुखी होकर हमारे समक्ष आता है, वहीं लावनी साहित्य की भी अपनी एक विशिष्ट परम्परा है । अब तक हिन्दी अनुशीलकों, अनुसन्धानकर्ताओं एवं वाङमयवेन्ताओं ने जिन हिन्दी साहित्यिक समृद्ध दिशाओं का निरूपण किया है उनमे लावनी साहित्य एक प्रकार से उपेक्षित विषय रहा है, जिस पर अब तक अपर्याप्त या नहीं के बराबर कार्य हुआ है । जीवन के बहुमुखी दृष्टिकोणों में लावनी भी एक महन्त्वपूर्ण अंग रहा है । लावनी सामाजिक जीवन के उस परिवेश का स्पर्श करती है, जिसमें जीवन की मार्मिक अनुभूतियों का लोकपक्ष और अध्यात्मपक्ष में वरण हुआ है । इसमें जीवन से जीवन की ओर, तथा जीवन के लिए लोकजीवन का वह पक्ष अभिव्यन्क्त हुआ है जिसे सच्चे रूप में लोक-जीवन कहा जाता है । इसीलिये लावनी लोक-साहित्य का मुखरण है । उसमें लोक-जीवन की मार्मिक अनुभूतियाँ, प्रवृन्तियाँ तथा आकांक्षाएं हैं, एवं जीवन के विराट् तल का संस्पर्श सन्निहित है । हिन्दी साहित्य यदि एक असीम आकाश है तो लावनी उसके एक कोने का अरुण प्रकाश है, जिसमें प्रभात कालीन विभा जैसी मादकता किंवा उषा जैसी आध्यात्मिक पावन प्रेरणा हे ।

लावनी साहित्य पर अभी तक आलोचनात्मक और गवेषणात्मक दृष्टि से लिखी गई कोई साधिकारिक शोध-कृति देखने में नहीं आई । सबसे पहले सन् 1951 में पूज्य पं0 बनारसीदास जी चतुर्वेदी का ध्यान इस ओर गया, उन्होंने श्रद्धेय स्वामी नारायणानन्द जी सरस्वती (कानपुर) को टीकमगढ़ से 4-7-51 ई0 को लावनी की कीर्ति-रक्षा की दिशा में एक पत्र लिखा था-

"श्रद्धेय स्वामी जी, सादर प्रणाम ! ..... इस बीच में आप एक गश्ती चिट्ठी अपने नाम से छपा कर अपने सब मित्रों, भक्तों, प्रशंसकों तथा सहयोगियों को लिख भेजिये कि वे भिन्न-भिन्न स्थानों के खयालगो लोगों के चित्र, चरित्र तथा रचनाएँ आपको भेज दें । मुझसे जो सेवा इस महान् यज्ञ में बन पड़ेगी, करूंगा । ..... ख़यालबाजी का इतिहास ज़रूर लिखा जाना चाहिये । आपके बाद इस यज्ञ को कराने वाला दूसरा कोई नहीं है । शुभस्य शीघ्रम् ।"[1]

श्रद्धेय स्वामी जी ने चतुर्वेदी जी की प्रेरणा से 1953 ई0 में 'लावनी का इतिहास' लिख कर छपवाया । उसके पश्चात् हिन्दी साहित्य में कुछ विद्वानों का ध्यान इस ओर गया, जिसका वर्णन **'उपलब्धि और सीमाएँ'** प्रकरण में किया जाएगा ।

---

1. बनारसीदास चतुर्वेदी, हस्त लिंखित पत्र का अंश ।

स्वर्गीय स्वामी जी के सान्निध्य में रहने से मुझे भी लावनी-साहित्य से प्रेम हो गया था, **मेरी प्रेरणा के स्रोत स्वामी जी ही हैं ।**

लावनी-साहित्य का क्षेत्र बहुत विस्तृत है । यों तो इसका प्रचलन सारे ही भारत में था, परन्तु यह महाराष्ट्र, राजस्थान एवं उन्तर प्रदेश में अधिक प्रचलित रहा । इस विषय पर कुछ साहित्यकारों के पत्र देखिए जिनसे लावनी की वर्तमान स्थिति प्रकाशित होती है, और जो लावनी-साहित्य को उपयोगी बनाने और अन्वेषण की दिशा में प्रेरणा-प्रद हैं ।

बम्बई

31-12-73

भाई श्री सत्यव्रत जी,

सादर सप्रेम प्रणाम !

..... लावनी साहित्य मूलतः मराठी से हिन्दी में गया है, उसकी परम्परा अब भी अक्षुण्ण है, हिन्दी में तो लुप्तप्राय है, हां, उसके जीर्णोद्धार की आवश्यकता है, उसे लोकगीत की व्याख्या के अन्तर्गत लेकर पनपाया जा सकता है । बनारस के एक तरुण लावनी गायक 'लोलार्क' इस दिशा में सक्रिय हैं, तथा चंग उनकी जीवन-संगिनी है, यहाँ भी उनके कई कार्यक्रम रखे गये, जो सफल रहे । लोलार्क स्वयं की रचनाएं सुनाते हैं-

'संघर्ष न कर सकता, उसको है जीने का अधिकार नहीं ।'

यह रचना काफी लोकप्रिय हुई, पूरी लावनी है ।"[1]

बीकानेर

11-11-73

श्री सत्यव्रत जी,

पत्र मिला । लावनी-साहित्य इधर काफी मिलता है, जैन कवियों के रचित लावनी संग्रह प्रकाशित भी हैं । राजस्थानी ख्यालों में लावनियाँ बहुत गाई जाती रही हैं । सैकड़ों ख्याल प्रकाशित हो चुके हैं । मेरा एक लेख 'लोक-कला' में पहले निकला था फिर जयपुर के एक व्यक्ति ने राजस्थानी ख्यालों पर शोध-प्रबन्ध लिखा, पर वह प्रकाशित नही हुआ । राजस्थान विश्वविद्यालय में जाकर देख सकते हैं । हस्तलिखित ख्याल भी बहुत से मिलते हैं । अतः आप बीकानेर, जोधपुर, जयपुर और उदयपुर में आकर काफी जानकारी और सामग्री प्राप्त कर सकते हैं।

डा0 महेन्द्र भानावत, भारत लोककला मंडल, उदयपुर से विशेष जानकारी प्राप्त करें।"[2]

---

1. श्रीनिधि द्विवेदी साहित्याचार्य, नागनिकुञ्ज, मोतीशा की चाल, जबेरी बाजार, बम्बई-2 के हस्तलिखित पत्र का अंश ।
2. अगरचन्द नाहटा, बीकानेर के हस्तलिखित पत्र की अविकल प्रतिलिपि।

ज्ञानपुर, वाराणसी
14-11-73

..... यह जान कर प्रसन्नता हुई कि आप हिन्दी लावनी साहित्य पर शोध-कार्य कर रहे हैं । आपको विदित होगा कि 19 वीं शती की लगभग प्रत्येक हिन्दी पत्रिकाओं में लावनियाँ अधिकाधिक संख्या में प्रकाशित हुआ करती थीं । **'हिन्दी-प्रदीप'** भी उससे अछूती नहीं है । सन् 1877 से 1910 तक अनवरत प्रकाशित होने वाली इस पत्रिका में शताधिक लावनियाँ छपी हैं।"[1]

185, सिविल लाइन्स, बरेली
1-12-73

प्रिय श्री सत्यव्रत जी,

..... बचपन में मेरे पड़ौस में एक शान्तिप्रसाद वर्मा रहते थे, उनके यहाँ ख्यालगो कभी-कभी इकट्ठे होते थे । ..... आप इस महत्त्वपूर्ण विषय पर शोध-कार्य कर रहे हैं, यह प्रसन्नता की बात है । ख्याल और लावनी की बड़ी धूम किसी समय में थी । भारतेन्दु जी और श्रीधर पाठक तक उससे प्रभावित थे ।"[2]

आगरा
1-12-73

माननीय अजेय जी,

..... इस समय लावनी साहित्य मृतप्राय अवस्था में चल रहा है, उसका प्रमुख कारण ये है कि पहले तो लावनी में मनीषी लेखक एवं गायनकला में प्रवीण गायक रहे, जिनमें आचार, विचार, संयम, साधना सभी गुण मौजूद थे, और उन्होंने अपने जीवन को लावनी में समर्पित कर दिया, उनके लेख आज से 100 वर्ष पहले लिखे जाने पर भी नवीनता के दर्शन कराते हैं, और ऐसे सुन्दर साहित्यिक मार्मिक लेख लिखे हैं जिनको सुनकर आश्चर्य होता है, किन्तु दुर्भाग्यवश वही साहित्य आज के युग में जिन लोगों के पास बचा है वे उसकी गहनता से अनभिज्ञ हैं और साथ ही जनता की रुचि भी इस ओर आकर्षित करने का कोई प्रयास है नहीं। इस कारण दिन प्रतिदिन यह साहित्य विलुप्त होता चला जा रहा है । सैकड़ों पुस्तकें हस्तलिखित रद्दी में बिक गई । आपका इस ओर ध्यान देना एक ईश्वरीय ही चमत्कार माना जायेगा, जो इस अमूल्य साहित्य की रक्षा हेतु आपको प्रेरणा हुई है ।

---

1. मधुकर भट्ट, ज्ञानपुर के हस्तलिखित पत्र का अंश ।
2. निरंकारदेव 'सेवक', बरेली, के हस्तलिखित पत्र का अंश ।

..... हिन्दी साहित्य सम्मेलन, आगरा में जब राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त पधारे थे तब वे लावनी साहित्य के श्रवण से बहुत प्रसन्न हुये थे ।

..... श्रद्धेय बनारसीदास चतुर्वेदी इस सम्बन्ध में बहुत प्रयत्नशील हैं, उनकी आज्ञानुसार यहां पर भी एक सज्जन लावनी पर शोध-ग्रन्थ लिख रहे हैं ।"[1]

उक्त पांचों पत्रों से यह स्पष्ट है कि लावनी हिन्दी में लुप्तप्राय हो चुकी है । राजस्थान में भी ख्यालों पर तो कुछ कार्य हुआ है जो रंगमंचीय नाट्य के अन्तर्गत **'खेल'** कहे जाते हैं, पर लावनियां अभी तक उपेक्षित ही हैं । आधुनिक युग-प्रवर्तकों ने लावनी के माध्यम से ही खड़ी बोली हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन कराया परन्तु आज के हिन्दी साहित्य के इतिहास का विद्यार्थी इस तथ्य से अनभिज्ञ है । साधारण जनता भी लावनी के स्वरूप और उसके गुण-प्रकर्ष की अज्ञता के कारण अब उसमें कोई रुचि नहीं रखती । लावनी का हस्तलिखित साहित्य दिन प्रतिदिन काल के विकराल गाल में समाता जा रहा है ।

"आधुनिक परिचयात्मक ग्रन्थ **'मिश्रबन्धु विनोद'**, **'हिन्दी-रत्न'**, **'साहित्य-प्रभाकर'**, **'कविता कौमुदी'** इत्यादि में इन लावनी-ख्याल बनाने वाले सन्तों, महन्तों, फकीरों और शायरों का परिचय व उनकी रचनाएँ देखने को भी नहीं मिलतीं । मालूम होता है इन ग्रन्थों के रचयिताओं ने उन्हें निरे तुक्कड़ और उनकी रचनाओं को तुकबन्दी मात्र समझ कर छोड़ दिया होगा। उनकी इस लापरवाही से लगभग एक चौथाई हिन्दी साहित्य नष्ट-भ्रष्ट हो रहा है । उन्होंने इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि लाल गुदड़ियों में भी छिपे रहते हैं। इस ख्यालबाजी की वाटिका में इतिहास, पुराण, कथा, वार्ता, ज्योतिष, विज्ञान तथा हर एक विषयों पर नवरसों में रचित पद्यप्रसून पाए जाते हैं। सम्भव है कोई ही विषय इनसे अछूता रहा हो । किन्हीं-किन्हीं शायरों ने तो इन लावनियों को ऐसी टकसाली भाषा में लिखा है कि जिसमें फ़ारसी, उर्दू, हिन्दी, हिन्दुस्तानी के प्रचलित शब्द मौजूद हैं, जो सुनने वालों की समझ में सहज ही आ जाते हैं, जिसमें खासा हिन्दी-हिन्दुस्तानी का सामञ्जस्य हो जाता है, और कहीं-कहीं शायरों ने ऐसी उपमाएँ वर्णन की हैं कि जिन्हें सुन कर केशव, देव, बिहारी, पद्माकर आदि शृंगारी कवियों की रचनाएँ फीकी जँचने लगती हैं, इस ख्यालबाजी में अद्भुत भण्डार भरा हुआ है ।"[2]

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन एवं डा0 कृष्णदेव उपाध्याय के सम्पादकत्व में सम्वत् 2017 वि0 में नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से **'हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास'** (षोडश भाग) प्रकाशित हुआ है । इसमें 20 जनपदीय भाषाओं के लोक साहित्य का चयन हुआ है । खड़ीबोली **'कौरवी'** के अन्तर्गत रखी है । लावनी या ख्याल पर पृथक् से कोई विचार नहीं हुआ, केवल

---

1. गोपालदास मुनीम, 1405 बेलन गंज, आगरा के हस्तलिखित पत्र का अंश ।
2. डॉ0 लक्ष्मीप्रसाद 'रमा' ख्यालबाजी का इतिहास (अप्रकाशित लेख) से ।

प्रासंगिक उल्लेखमात्र है । प्रस्तावना पृष्ठ 56 पर जो **'लोक-गीत-वृक्ष'** दिया गया है उसमें लावनी का उल्लेख नहीं है । प्रस्तावना के पृष्ठ 130 पर ख्याल का उल्लेख मात्र है । महाराष्ट्र के पंवाडे का उल्लेख पृष्ठ 131 पर है, परन्तु लावनी का ज़िक्र नहीं । इस ग्रन्थ का आद्योपान्त अनुशीलन करने से ऐसा प्रतीत होता है कि लावनी, ख्याल या मरैठी लोक-साहित्य के प्रति सम्पादक महानुभावों को कोई रुचि नहीं ।

ऐसी स्थिति में यह कहना उचित ही होगा कि - "हिन्दी साहित्य के अनेक इतिहास ऐसे हैं, जिनमें कूड़े-कबाड़ को भी स्थान दिया गया है, किन्तु जिनमें उन साहित्यकारों की, जिन्होंने हिन्दी साहित्य की सेवा में अपने आपको मिटा दिया है, कहीं चर्चा नहीं है ।"[1]

"वास्तव में हिन्दी प्रदेश का लोक साहित्य महान् समुद्र सदृश है, उसमें ज्यों-ज्यों शोध के पग बढ़ेंगे, त्यों-त्यों अमूल्य मणियों एवं रत्नों से भरे रस-कलश प्राप्त होते जायेंगे ।"[2]

इन लोकगीतों में स्वाभाविकता है । स्वाभाविकता आत्मा की अपनी वस्तु है-

"लोक-साहित्य के अध्ययन, उसके उद्धार से हम कृत्रिमता का कवच तोड़ सकेंगे, और स्वाभाविकता की शुद्ध हवा में फिरने-डोलने की शक्ति प्राप्त कर सकेंगे। स्वाभाविकता से ही आत्म-शुद्धि सम्भव है ।"[3]

ये "ग्राम-गीत प्रकृति के उद्‌गार हैं ।"[4]

सर्वसाधारण के लिए मनोरंजन एवं उपदेश के माध्यम भी यही हैं -

"ग्राम्य-गीत आर्येतर सभ्यता के वेद हैं, श्रुति हैं ।"[5]

फिर भी इतिहासकारों तथा शोधार्थियों ने इस लोक-साहित्य के तल तक पहुँचने का प्रयास नहीं किया अतः "लोक जीवन की अभिव्यक्तियों का अध्ययन क्षितिजीय (*Horizontal*) ही नहीं होना चाहिये, वरन् तलगामी (*Perpendicular*) भी होना चाहिये ।"[6]

" जिस वृक्ष का फल हम चख रहे हैं उसके बीज को भुलाना भी उचित नहीं होता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, अम्बिकादत्त व्यास, 'प्रेमघन' बद्रीनारायण चौधरी, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र और गोविन्दनारायण मिश्र उस युग के नाम हैं जो हमारे बहुत निकट है, किन्तु हमसे अब कुछ हट गया है । जिस डोर ने हमें उनसे बाँध रखा है, वह अभी बहुत स्पष्ट है । जो केन्द्र उन्होंने बनाया था, हम उसी की सीधी किरणें हैं, यद्यपि हमने अपना भी अब नया केन्द्र बना लिया है,

---

1. गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश', साहित्य वार्त्ता, प्रथम सं0, 'एक बात', पृष्ठ 'ख' ।
2. कुन्दनलाल उप्रेती, लोकसाहित्य के प्रतिमान, पृष्ठ 85
3. वही, पृष्ठ 183
4. पं0 रामनरेश त्रिपाठी, कविता कौमुदी, भाग 5, पृष्ठ ।
5. हजारीप्रसाद द्विवेदी, छत्तीसगढ़ी लोकगीतों का परिचय, पृष्ठ 5
6. डा0 सत्येन्द्र, लोकसाहित्य विज्ञान, प्रथम सं0, पृष्ठ 11-12

अपना निकास स्थान अभी हमारी आँख के सामने है, उसकी याद मीठी और प्यारी है । जिन प्रतिभाओं ने वह युग बनाया और हमारे युग का बीज डाला उनकी कृतियाँ हमारी सम्पत्ति है और रक्षा के योग्य है । आगे के लिये जो नया रास्ता बनाने वाले हैं, उनके लिये यह जानना उचित है कि किस रास्ते से वे आये हैं ।"[1]

भले ही आज कुछ पढ़े-लिखे इस लोक-साहित्य की उपेक्षा करते हों, परन्तु "हिन्दी का साहित्य आरम्भ से ही लोक-भाषा का साहित्य रहा है, इस बात का मेरी दृष्टि में बड़ा ही महत्त्वपूर्ण अर्थ है ।"[2]

"आश्चर्य है कि अभी तक खड़ीबोली के उद्‌गम और विकास पर भी व्यवस्थित रूप से अनुसन्धान कार्य नहीं हुआ है । ..... साहित्य की विभिन्न शैलियां जो हिन्दी में रीतिकाल तक पल्लवित होती रही हैं, अभी तक अनुसन्धान का विषय बनी हुई हैं । इसी प्रकार लोक प्रचलित अनेक शैलियों के भी अध्ययन की आवश्यकता है । ..... वास्तव में सम्पूर्ण प्राचीन और मध्यकालीन साहित्य का इतिहास फिर से लिखा जाना चाहिये ।"[3]

हमें सबसे पहले लावनी में ही खड़ीबोली का रूप दिखाई पड़ता है । यह शैली आदिकाल में उत्पन्न, रीतिकाल में पल्लवित और आधुनिक काल में पुष्पित हुई है ।

"दर असल खड़ीबोली का सबसे स्वाभाविक रूप जैसा यहां निखरा है, ऐसा और कहीं नहीं निखरा । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की भी सबसे सरस रचना या तो कविन्त सवैया (ब्रज) में है या लावनी-ख्यालों (खड़ीबोली) में । ..... यदि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने लावनीबाजों की संगत न की होती तो वह कभी आधुनिक हिन्दी के जन्मदाता न बन पाते । इस परम्परा का महन्त्व इस बात से ही प्रकट हो जाता है ।"[4]

"हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत जहाँ कई क्षेत्रों में तात्त्विक अनुसन्धान की उच्च भूमिकाएँ बन चुकी हैं, वहीं अनेक क्षेत्र ऐसे हैं, जिनमें तथ्यानुसन्धान भी अभी पूरा नहीं हुआ है । उसका कारण यही है कि हिन्दी साहित्य रचना का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक रहा है, और विभिन्न भाषा-भाषियों के द्वारा भी रचा जाकर विभिन्न क्षेत्रों में उपलब्ध होता है । साथ ही देवनागरी के अतिरिक्त अन्य लिपियों में भी मिलता है । अतः इन सभी बातों का ध्यान रख कर हिन्दी तथ्यानुसन्धान को परिपूर्ण करना आवश्यक है ।"[5]

---

1. राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन, प्रेमघन सर्वस्व, प्रथम भाग, (दो शब्द), पुष्ठ आमुख ।
2. हजारीप्रसाद द्विवेदी, अनुसन्धान की प्रक्रिया
3. डा0 हरवंशलाल शर्मा, 'हिन्दी अनुसन्धान की प्रगति' लेख से ।
4. डा0 रामविलास शर्मा, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 12 अगस्त 1956 ई0
5. भगीरथ मिश्र, हिन्दी साहित्य शोध और समीक्षा, भूमिका-भाग ।

उपर्युक्त सभी तथ्यों को ध्यान में रख कर हिन्दी के बहुमुखी विकास की दिशा में इस न्यूनता की पूर्ति के लिये यह कार्य मैंने अपने शोध-विषय के रूप में लिया है। इससे उपेक्षित लावनी साहित्य के उद्‌भव, विकास, परिवेश, उपलब्धि, सीमाएँ, शास्त्रीय दृष्टि, प्रतिपाद्य विषय और लावनी के विविध घरानों और कानपुर के लावनीकारों पर नूतन प्रकाश पड़ेगा, तथा खड़ीबोली के विकास में लावनी का योगदान और साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों, इसके अनेक प्रतीकों, प्रकारों और मूल्यांकनों का निरूपण भी होगा। लावनी के क्रमबद्ध इतिहास की आवश्यकता, काल-विभाजन और इस साहित्य की वर्तमान गतिविधियां प्रस्तुत करते हुये लावनी साहित्य के भविष्य पर भी विचार प्रस्तुत होगा। वस्तुतः इस शोध-प्रबन्ध से हिन्दी साहित्य की एक ऐसी समृद्ध विधा का प्रकाशन होगा जिस पर आज साहित्य के सर्वांगीण विकास के लिये दृष्टिपात नितान्त आवश्यक है, एवं यह भी विश्वास है कि हिन्दी साहित्य के इतिहास तथा आलोचनात्मक नवीन मानदण्डों के स्थिति-स्थापन में भी यह शोध-प्रबन्ध सहायक सिद्ध होगा, जिससे सर्वसाधारण की बोध-वृद्धि होगी।

गुप्त जी के शब्दों में -

"करते हैं ज्ञानी विज्ञानी, नित्य नये सत्यों का शोध ।
और सर्वसाधारण उनसे, बढ़ा रहे हैं निज-निज बोध ।।"[1]

निष्कर्ष

वास्तव में लावनी एक छंद का नाम होते हुए भी गीतिका विशेष के रूप में जन-मानस में अवस्थित है, इसका वाद्य-यन्त्र चंग है। इसका सम्पूर्ण काव्य वैयक्तिक तत्त्व से युक्त मुक्तक रूप में है। एक सम्पूर्ण लावनी में कम से कम चार चौक आवश्यक हैं। इसका उद्‌भव वेद-विहित एवं व्याकरण सम्मत है। लोक-साहित्य में इसका विकास गाथा-साहित्य से हुआ। प्राकृत, अपभ्रंश, डिंगल और पिंगल में क्रमशः इसकी छटा छिटकी पड़ी है। आज से लगभग 400-500 वर्ष पूर्व यह गाना प्रतियोगी बन गया और तुकनगिरि से **'तुर्रा'** तथा शाहअली से **'कलग़ी'** का प्रवर्तन हुआ। गुजरात, महाराष्ट्र, मालवा, हरियाणा, पंजाब और उत्तर प्रदेश में इसका पर्याप्त प्रचार हुआ। लावनी के अतिरिक्त **'मरैठी'** और **'ख़याल'** भी इसी गीतिका के नाम हैं। मराठों के ज़माने में इस कला की बहुत उन्नति हुई। वर्तमान काल में इसकी हिन्दी उर्दू-धाराओं ने हिन्दू-मुसलिम ऐक्य की भावना को परिपुष्ट किया है।

---

1. मैथिलीशरण गुप्त, साकेत, चतुर्थावृत्ति, सर्ग-11, पृष्ठ 377

शृंगारी काव्य के अतिरिक्त विशुद्ध अद्वैत और रहस्यवादी रचनाएं भी लावनी साहित्य में विद्यमान हैं। इसका छंद विधान, लय और ताल पर आधारित किन्तु शास्त्रसम्मत है । उर्दू या फ़ारसी के प्रभाव से इसमें छंद या **'बहरें'** निर्मित नहीं हुईं । इसका अलंकारशास्त्र भी अपना अनूठा और संस्कृत-साहित्यमूलक है । इसीलिये आधुनिक हिन्दी गीतों की सृष्टि का श्रीगणेश भी लावनी से हुआ । इस युग के नवीन महाकाव्यों पर भी लावनी का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित है ।

इस अध्ययन से हिन्दी साहित्य की सम्पदा द्विगुणित होगी, लोक-साहित्य की नवीन विधा प्रकाश में आएगी, कितने ही अज्ञात कवियों की कीर्ति-रक्षा हो सकेगी तथा आने वाले शोधार्थियों को इस क्षेत्र में कार्य करने की प्रेरणा मिलेगी और यह लक्ष्य भी पूरा हो सकेगा -

"प्रत्येक क्षेत्र, प्रत्येक सन्त की बानी ।
सम्पूर्ण विश्व में घर घर है पहुंचानी ।।"[1]

''''''''''''

---

1. नन्दकुमार अवस्थी, विश्व हिन्दी का स्वरूप, (लेख) राष्ट्रभाषा सन्देश, रविवार, शक माघ 27, सं0 1896, प्रयाग ।

द्वितीय अध्याय

काल-विभाजन

लावनी - साहित्य-विषयक प्राप्त सामग्री

जिस प्रकार बीज विशाल वट-वृक्ष में परिणत होते ही लोक की दृष्टि से ओझल हो जाता है, इसी प्रकार हिन्दी लावनी साहित्य खड़ीबोली को पुष्पित एवं पल्लवित कर स्वयं आज हमारी आँखों से अदृश्य हो गया है, परन्तु उसका महत्त्व एवं अस्तित्व प्रगट या प्रच्छन्न रूप से हिन्दी-जगत् में अविच्छिन्न रहेगा। यद्यपि यह लावनी साहित्य लगभग एक शताब्दी पूर्व प्रायः अप्रकाशित अवस्था में ही था तो भी पिछले 100 वर्षों में पर्याप्त मात्रा में इसका प्रकाशन हुआ है । यह गीतिका के रूप में होने के कारण वैयक्तिकता के तत्त्व को अपनाये हुये है अतः प्रबन्ध या महाकाव्यों का इसमें अभाव है । यह प्रतिस्पर्द्धात्मक होने के कारण अधिक प्रकाश में नहीं आ सका। क्योंकि गायक अपनी रचना अपने तक ही सीमित रखना चाहता था, और उसे मुद्रित कराना नहीं चाहता था । यों भी सौ-सवासौ वर्ष पूर्व समग्र हिन्दी साहित्य मुद्रण के क्षेत्र में अपरिमित किंवा न के बराबर ही था ।

मैंने अपनी खोज में जो सम्बन्धित सामग्री उपलब्ध की है, उसका वर्गीकरण **मुद्रित** और **अमुद्रित**, इन दो भागों में किया है ।

1. **मुद्रित** :
   1. पद्य-संग्रह - हिन्दी, उर्दू, गुजराती
   2. विवेचनात्मक निबन्ध
   3. इतिहासपरक ग्रन्थ

4. मराठी लावणी-साहित्य

5. राजस्थानी ख़याल-साहित्य

2. **अमुद्रित :** 1. हस्तलिखित सामग्री (निजी खोज)

2. काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा खोज में उपलब्ध सामग्री ।

3. हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के संग्रहालय में सुरक्षित सामग्री ।

उक्त प्रक्रम के अनुसार ही सम्पूर्ण सुलभ सामग्री की सूचना संक्षेप में प्रस्तुत है -

मुद्रित

(1) पद्यसंग्रह - हिन्दी, उर्दू, गुजराती

1- **लावनी ब्रह्मज्ञान,** ले0 - बाबा बनारसी, प्रकाशक - नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, सन् 1874 ई0 में प्रकाशित । तत्पश्चात् इसके विभिन्न संस्करण खेमराज कृष्णदास, बम्बई; देहाती पुस्तक भण्डार, दिल्ली; तथा श्याम काशी प्रेस, मथुरा आदि विभिन्न प्रकाशन-संस्थानों द्वारा प्रकाशित हुए हैं । व्यवसाय की दृष्टि से प्रकाशकों ने संस्करण-संख्या तथा सन् की अथवा सम्वत् की सूचना नहीं दी है । यह पुस्तक सम्प्रति भारत के सभी प्रमुख नगरों में पुस्तक-विक्रेताओं के यहाँ प्राप्य है। इसका बहुत प्रचार है । इसकी प्रति 'ब्रिटिश म्यूजियम', क्रामव्यल रोड, लन्दन, एस.डब्लू-7 में भी सुरक्षित है ।

बाबा बनारसी प्रसिद्ध ख़यालगो थे। 'वह अक्सर कानपुर आते थे'[1]। इसकी भूमिका में उन्होने आत्म-निवेदन इस प्रकार किया है -

"जब ईश्वर ने मेरे ऊपर कृपा करी तो इस पाप से मुझको छुड़ाया और फ़कीर बनाया, अपना जलवा मुझको दिखलाया, उसको देखते ही वह मस्ती का आलम हुआ कि आली आली मज़मून नज़र आने लगे, तो मैंने अपने दिल में यह विचारा कि तू इसी लावनी से भगवत् आराधना कर, तो उर्दू बोली में मैंने इश्क मार्फ़त मतलब तौहीद और हिन्दी में उपासना ब्रह्मज्ञान को कहा, इस वास्ते कि जो कोई इसके असल मतालिब को पायेगा वह जीते ही जी उसमें मिल जायेगा ।"[2]

'लावनी अहंकार नाशिनी' की दो पंक्तियाँ देखिए -

"जो कहता, हम करते, वो दुःख भरता है ।
जो करता जग के कार, वही करता है ।।"[3]

---

1. लावनी का इतिहास, पृष्ठ 36
2. लावनी ब्रह्मज्ञान, भूमिका, पृष्ठ 4
3. वही, पृष्ठ 4

मेरी दृष्टि में **'हम करते'** पद के स्थान पर **'मैं करता'** का प्रयोग अधिक उपयुक्त था क्योंकि इस वाक्य में **'कर्ता'** और **'क्रिया'** दोनों एक वचन में ही प्रयुक्त हैं ।

2. **लावनी कलग़ी** ले0 बनारसी हक्कानी । यह पुस्तक भी सन् 1874 के आस-पास छपी होगी, इस समय बाज़ार में यह उपलब्ध नहीं । पुस्तक के नाम से ऐसा प्रतीत होता है कि शायद यह बाबा बनारसी की प्रथम रचना हो, क्योंकि यह पहले कलग़ी पक्ष के अनुयायी थे, बाद में इन्होंने यह बन्धन त्याग दिया था और किसी भी पक्ष से इनका कोई सम्बन्ध नहीं रहा था । **"कलग़ी" "तुर्रे"** से ऊपर उठ कर स्वयं को तथा लावनी के स्वरूप को बाबा ने यों निर्धारित किया है:-

हमने उसका किया भजन, तब अपने को पहिचाना है ।
फ़क़त देख लो, यहां पर निर्गुण गुण का गाना है ।।

3. **लावणी अर्थात् मरहठी ख़्याल** - ले0 काशीगिरि बनारसी परमहंस। प्रकाशक- मुंशी नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, चतुर्थ संस्करण, सन् 1884; ऐसा अनुमान है कि इसका प्रथम संस्करण सन् 1872 ई0 में हुआ होगा ।

4. **लावनी संकलन** - विभिन्न ख़यालगो, वाराणसी, सन् 1876 ई0 ।

5. **गुलशने तुर्रा लावनी** - भाग 1-4, उस्ताद भैरों सिंह; (सूचना मात्र), लगभग सन् 1876 ई0 ।

6. **लावनी : संकलन** - विभिन्न ख़यालगो, हनीफी प्रेस, दिल्ली, सन् 1877 ई0।

7. **काव्यभूषण** - पं0 रामदयाल त्रिपाठी, कानपुर, सन् 1880 ई0। यह पुस्तक लीथु में छपी, इसमें नवग्रहों के फलाफल का विचार लावणी में किया गया है ।

8. **फूलों का गुच्छा** - भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, खड्गविलास प्रेस, बांकीपुर, पटना, सम्वत् 1939 वि0, सन् 1882 ई0 । इसके रचना काल के विषय में बाबू शिवनन्दन सहाय लिखते हैं कि - "1872 ई0 में बनारसी लावनीबाजों की लावनियों की बड़ी चर्चा थी, उसी समय उन्होंने (भारतेन्दु ने) 'फूलों का गुच्छा' नामक लावनियों का एक ग्रन्थ बनाया था। प्रतीत होता है कि 1882 ई0 में उस पुस्तक की कोई नूतन आवृत्ति हुई थी, क्योंकि 'खड्गविलास' में जो संस्करण हुआ है, उसमें हमारे चरित नायक की 1939 सम्वत् की लिखी भूमिका देखी जाती है ।"[1]

वैसे सम्वत् और सन् में 57 वर्षों का ही अन्तर है, 1939-57 = 1882 ही शेष रहता है, अतः मेरी दृष्टि में 1872 ई0 में प्रथम आवृत्ति ही हुई होगी, नूतन नहीं ।

---

1. श्री किशोरीलाल गुप्त कृत भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि : उपक्रम, पृष्ठ 1।

इसमें 13 लावनियाँ उर्दू की हैं। "ये सभी रचनाएँ लावनी की निर्गुण रहस्यवादी परम्परा का अनुसरण करती हैं।"[1]

9. **प्रेम-तरंग** भारतेन्दु हरिश्चन्द्र । इसमें क्रमांक 80, 81, 82, 87 और 89 वीं रचनाएँ लावनीबद्ध हैं, पाँचों लावनियाँ विरहिणी, व्रजवनिताओं की विरह-व्यथा व्यक्त करती हैं। उदाहरण देखिए -

"प्रिय प्राणनाथ मनमोहन सुन्दर प्यारे ।
छिनहूँ मत मेरे होहु दृगन सों न्यारे ।।"[2]

× × × × × ×

"मोहिं छोड़ि प्राण प्रिय कहूँ अनत अनुरागे ।
अब उन बिनु छिन-छिन प्रान दहन दुख लागे ।।"[3]

10. **प्रेम प्रलाप** - भारतेन्दु हरिश्चन्द्र । इसमें 54 व 56 वीं संख्या पर 2 लावनियां संकलित हैं । विषय क्रमशः दूलह कृष्ण वर्णन एवं दूती द्वारा राधा को माधव से मिलाने का प्रयत्न ।

11. **मधु मुकुल** - भारतेन्दु हरिश्चन्द्र । इसमें 56 वीं संख्या पर एक लावनी है, विषय है - राधा कृष्ण का फाग खेलना ।

12. **वर्षा विनोद** - भारतेन्दु हरिश्चन्द्र । इसमें क्रम संख्या 6 तथा 10 पर दो लावनियाँ हैं। दोनों का विषय विरह-वर्णन है ।

13. **मनोहर बाग (भाग 1-4)** - सुखलाल, मथुरा यन्त्रालय, मथुरा, जनवरी सन् 1893; इसके दूसरे भाग के सामने कोष्ठक में (मरहटी तुर्रा) छपा है, जिससे सिद्ध होता है कि कवि तुर्रा पक्ष का समर्थक था । रचना का नमूना -

"पन घट रोके खड़ा कन्हैया, सखियों से करता झंझट ।
किसी की मटकी, किसी का झटके चीर, खड़ा जमना के तट ।।"[4]

14. **चमनिस्तान ख़यालात गौहर** - मुंशी गेंदन लाल साहब 'गौहर' बदायुंनी । नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, सन् 1894 ई0 । इसमें पहले तथा दूसरे हिस्से में 100-100 खयाल हैं। पहले हिस्से में शृंगार रस की रचनाएँ, अनेक अलंकार (सनअत) सहित विभिन्न छंदों में लिखी हैं। हिस्सा दोयम यानी द्वितीय भाग में गणेश जी, महादेव जी, हनुमान जी, गंगा जी, रामचन्द्र जी, काली देवी जी, व श्रीकृष्ण जी के खयालात हैं । इसके अतिरिक्त हरिभक्तों की कथा सम्बन्धी 4 खयाल

---

1. श्री किशोरीलाल गुप्त कृत भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि : उपक्रम, पृष्ठ 11
2. प्रेम-तरंग, लावनी संख्या-89
3. वही, सं0 -87
4. मनोहर बाग, पृष्ठ 50

तथा मुतफर्रिक़ आर्फानह 8 ख़यालात व राग हाय आरफ़ाना 27 ख़यालात हैं, जिनमें गीत, आरती, झूलना, भजन, मलार, होली, ठुमरी का प्रयोग किया गया है । इस हिस्से को **'साई के सौ ख़्याल'** नाम दिया गया है । मुंशी देवीप्रसाद इस पुस्तक के विषय में फरमाते हैं -

"सम्वत् 1934 यानी सन् 1877 ई0 मुताबिक सन् 1293 हिजरी में यह किताब तसनीफ़ हुई । .... उसी ज़माने में चन्द ख़्यालात मुजमिलन् और बेतरतीब और हिस्सा आरिफ़ानह के मुख़्तसर मज़ामीन मतबा ज़ख़ीरा रफ़ाह आम स्याल कोट से साया हुये, हिस्सा आशिक़ाना अब तक अलहिदह नहीं छापा गया था। शायक़ीन का तक़ाज़ा था लिहाज़ा अब इस की तबा में जनाब मुंशी नवल किशोर साहब ने अपनी हिम्मत आली को सर्फ़ फ़रमाया तिशनिगान सखुन की प्यास को बुझाया। ..... छपा यह नुस्ख़ये रश्के गुलिस्ताँ, लिखो यह मिसरये तारीख़ एसिह् । ख़्याले गौहरे मर्दे सख़ुनदाँ 1881 ई0 ।"[1]

इसी प्रकार मुंशी शिवप्रसाद ने इसका रचना काल सम्वत् 1937 विक्रमी माना है। अन्य विद्वानों के विभिन्न मत हैं । कुछ इसका रचना काल 1293 हिजरी व कुछ 1298 हिज़री मानते हैं । परन्तु वास्तव में नवल किशोर प्रेस लखनऊ से यह पुस्तक देवनागरी लिपि में बमाह जनवरी 1894 ई0 जेवर तबासे आरास्ता होकर रौनक़ बज़्म मुश्ताक़ां हुई ।

उदाहरण देखिए -

"ग़लत कहा है जिसने कहा है, जो है फूल वही खार भी है ।
हो नहीं सकता, कि जो सहेरा है वही गुलज़ार भी है ।।"[2]

× × × × ×

"शिव जी के लाल करो प्रतिपाल मूरति विशाल गजराजवदन ।
जय जय गनेश काटो कलेश सुख दो हमेश गिरजानन्दन ।।"[3]

15. **गौहरे नायाब तुर्रा** - 'गौहर' बदायुंनी । यह पुस्तक भी लगभग 1877 ई0 से 1894 ई0 के दरम्यान ही प्रकाशित हुई होगी । अब अप्राप्य है ।

16. **मन की लहर** - पं0 प्रतापनारायण मिश्र, कानपुर, सन् 1885 ई0। मिश्र जी भारतेन्दु के समकालीन थे। 'मन की लहर' उनकी लावनियों का उत्तम संग्रह ग्रन्थ है । मिश्र जी की मस्ती और मन की लहर प्रत्येक पंक्ति में उमड़ी पड़ती है -

"रसहू अनरस में एक सरिस रस राखे ।
सोइ सरस हृदय बस - प्रेम-सुधा रस चाखे ।।"[4]

---

1. चमनिस्तान ख़्रयालात गौहर, पृष्ठ 3-4
2. वही, पृष्ठ 99
3. वही, पृष्ठ 179
4. मन की लहर

17. **हिन्द ब्रिटेनियां** - मिस्टर ब्लाकट साहब, कानपुर; प्रकाशक - धार्मिक यन्त्रालय, प्रयाग, द्वितीय संस्करण, सन् 1895 ई0, प्रथम संस्करण, सन् 1890 ई0 के आस-पास हुआ होगा। पृष्ठ 18, विषय देश-भक्ति।

उदाहरण -

"हाकिम नहीं शिकायत सुनते,पुलिस की अब बन आई है।
धन्य धन्य मलका महारानी, जिसकी फिरे दुहाई है।।"

18. **खयाल चौबीसा** - पं0 सुखलाल वर्मा, शाहदरा, द्वितीय संस्करण, प्रकाशक - मुंशी इब्राहीम खाँ का छापाखाना, दिल्ली, सन् 1896 ई0 में प्रकाशित; प्रथम संस्करण 1891 ई0 के आस-पास हुआ होगा।

"लटक रही जुल्फें, जुलफों में लट, लट में उलझी बिलकुल।
बिलकुल सिर में बाल, बाल में जाल, जाल में जिसके जुल।।"[1]

19. **शीशराम के ख्याल** - (भाग 1-2) - पं0 शीशराम, सूप (जि. मेरठ) निवासी, भूषण बुक स्टोर, मुज़फ्फ़रनगर। प्रकाशक ने सन् या सम्वत् साया नहीं किया। सम्भवतः यह रचना सन् 1900 ई0 पूर्व प्रथम बार मुद्रित हुई होगी। फिर जनरल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ आदि अनेक प्रकाशकों ने इसे छाप कर धन कमाया। सचमुच मेरठ कमिश्नरी की तमाम साहित्य प्रेमी जनता में इसकी कुछ लावनियाँ बहुत प्रसिद्ध हुई। उदाहरण प्रस्तुत है -

"मैं सनम की खातिर ढूंढ फिरी जग सारे।
नहिं मिले मुझे दिलदार दिलों के प्यारे।।"[2]

× × × × ×

"तू कल कल करती रही समय सब गल गई।
अब पी को ढूँढ़न चली उमर जब ढ़ल गई।।"[3]

20. **एकान्तवासी योगी** - पं0 श्रीधर पाठक, सन् 1886 ई0। यह गोल्डस्मिथ के 'हरमिट' नामक खण्डकाव्य का अनुवाद खड़ीबोली, लावनी छंद में निबद्ध है।

"आधुनिक काव्यधारा के द्वितीय उत्थान में 'एकान्तवासी योगी' अपनी सार्वभौम मार्मिक कथा के कारण स्वच्छन्दतावादी धारा में प्रमुख स्थान रखता हे। केवल कथा के कारण ही इस काव्य को इतनी मान्यता नहीं प्राप्त हुई, किन्तु इसका श्रेय लोकप्रिय लावनी की लय पर आधारित है।"[4]

उदाहरण देखिए -

---

1. ख्रयाल चौबीसा, पृष्ठ 40
2. ख्याल-प्रेम परिचय, शीशराम के ख्याल, प्रथम भाग, पृष्ठ 11
3. वही, (द्वितीय भाग), पृष्ठ 8
4. डा0 रामचन्द्र मिश्र, श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्ततदावादी काव्य, पृष्ठ 100

"प्राण पियारे की गुणगाथा, साधु कहां तक मैं गाऊं ।
गाते-गाते चुके नहीं वह, चाहे मैं ही चुक जाऊं ।।"[1]

21. **गो अष्टक विलाप — (भाग-1)** - बाबू अनन्दी प्रसाद वर्मा, प्रथम संस्करण, शुभचिन्तक यन्त्रालय, कानपुर, सम्वत् 1948 वि0, सन् 1891 ई0। इसमें लावनी रंगत छोटी 1, ख्याल रंगत लंगडी 4, ख्याल शिकस्ता बहर 1, ख्याल रंगत डेढ़ खमी 1, ख्याल रंगत मेरी जान 1, कुल 8 रचनाएँ हैं ।

एक झलक -

"रो-रो कर के कहे गऊ, गो प्राण बचैया तुम्हीं तो हो ।
गो हित कारण, प्रगट गोपाल कन्हैया तुम्हीं तो हो ।।"[2]

22. **ख्याल सागर** - बाबू अनन्दी प्रसाद, शुभचिन्तक यन्त्रालय, कानपुर, सन् 1890-91 ई0। यह पुस्तक अब अप्राप्य है । वर्मा जी ने "ख्याल शिकस्ता" आदि और भी कुछ रचनाएँ लिखकर उक्त प्रेस से छपवाई थीं जो अब अलभ्य हैं ।

23. **तालिबे दीवान** - उस्ताद नत्था सिंह 'तालिब' खतौली, मुज़फ्फ़रनगर निवासी ।। यह 'अनन्तगिरि' के नाम से भी रचना करते थे । इनकी रचनाएँ अध्यापक श्री वासुदेव नायक, खतौली जि0 मुज़फ़रनगर के पास हैं। उक्त 'दीवान' अब अलभ्य है। इसका प्रकाशन लगभग सन् 1905 में हुआ ।

एक झलक -

"यों ही दैरो हरम में भटकते रहे जहां जाना है वाँ की खबर ही नहीं ।
वो तो घट के ही पट में निहां है मियां बले अन्धों को आता नज़र ही नहीं ।।"

24. **लावनिएं खुशदिल** - श्री मुकन्दीलाल 'खुशदिल' कांधला, मुज़फ्फ़रनगर निवासी। यह 'तालिब' के योग्य शिष्य थे, इनका यह ग्रन्थ 1910 ई0 में छपा होगा । यह भी अलभ्य है। रचना का नमूना देखिए -

"तेरा तीरे निगाह सनम ऐसा, रगे जान में मेरी ख़लीदा हुआ ।
दिल एक तरफ़ पारीदा हुआ, जिगर एक तरफ़ है दरीदा हुआ ।।"

25. **लावनी विलास (भाग-1)** - ले0 गणेशप्रसाद जी, प्रकाशक - श्रीकृष्ण प्रेस, हाथरस। दीपक-ज्योति कार्यालय, हाथरस द्वारा यह पुस्तक वितरित हुई, परन्तु वितरक या प्रकाशक महोदय ने पुस्तक पर सन् या सम्वत् नहीं छापा, अतः अनुमान है कि यह रचना सर्वप्रथम 1900 ई0 के आसपास छपी होगी । श्री गणेशप्रसाद जी बहुत सरस लावणीकार थे । इनकी रचना के कुछ प्रसिद्ध नमूने देखिए -

---

1. एकान्तवासी योगी
2. गो अष्टक विलाप लावनी प्रथम भाग, पृष्ठ 5

"घर घर प्रभु देखत फिरत सखिन की नारी ।
बनि आये गोपी नाथ वैद्य बनवारी ।।"[1]

× × × ×

"बिन काज आज महाराज लाज गई मेरी ।
दुख हरो द्वारिकानाथ शरण मैं तेरी ।।"[2]

26. **कलियुग लीला** - श्री श्यामलाल अग्रवाल, चतुर्थ संस्करण, लक्ष्मीनारायण प्रेस, मुरादाबाद, सम्वत् 1969 वि0, सन् 1912 ई0। उदाहरण देखिए -

"कर्म हीन तन छीन विषय में लीन सकल संसारी है ।
इस कलियुग ने, बहुत से लोगों की मति मारी है ।।"[3]

27. **श्री रेवा महात्म** - लक्ष्मी प्रसाद मिस्त्री 'रमा' कृष्णा प्रेस, इटावा, फर्वरी सन् 1914 ई0। यह 'कलग़ी' सम्प्रदाय के मानने वाले पं0 हरिराम तिवारी के शिष्य हैं । इन्हें मानद 'डाक्टरेट' की उपाधि मिल चुकी है और अब यह डा0 लक्ष्मी प्रसाद 'रमा' के नाम से लिखते हैं । इस पुस्तिका में 2 लावनियां संकलित हैं, नमूना देखिए -

"एक समय मुनि पारासर ने अपने मन में किया विचार ।
जाते थे वो, कुटी को जो थी सरिता के उसपार ।।"[4]

28. **ख्याल रत्नावली (प्रथम भाग)** - पं0 रूपकिशोर जी, दि कोरोनेशन प्रेस, शीतला ग़ली, आगरा, सम्वत् 1972 वि0, सन् 1915 ई0 ।

29. **श्रीगऊ पुकार** - बाबू लक्ष्मीप्रसाद मिस्त्री 'रमा', हितचिन्तक प्रेस, रामघाट, बनारस सिटी, सन् 1915 ई0। इसमें 2 ख्याल हैं ।

30. **लावनी चौदा रत्न कलग़ी** - लक्ष्मीप्रसाद मिस्त्री, हितचिन्तक प्रेस, बनारस, सन् 1920 ई0 इसमे रंगत लंगडी - गंगा का उत्कर्ष, केल वर्णन, सर्वांग उपमा, रदों की उपमा, प्रभाती, रंगत खड़ी - नायिका खण्डिता, नायिका प्रोषितपतिका, लट की उपमा, बहर शिकस्ता दुगों की उपमा, सर्वांग की उपमा, स्त्री की उपमा चौदह रत्नों में, बहर तबील - कृष्णाभिसारिका, दुगों की उपमा और रंगत छुटकड़िया (वशीकरण) - उद्धव के प्रति गोपियों का कथन । इस प्रकार कुल 14 लावनियाँ हैं।

---

1. लावनी वैद्य लीला, लावनी विलास, पृष्ठ 1
2. लावनी द्रौपदी उद्धार, लावनी विलास, पृष्ठ 14
3. ख्याल रंगत लंगडी, कलियुग लीला, पृष्ठ 4
4. व्यास मुनि का जन्म, रंगत लंगडी, श्री रेवा महात्म, पृष्ठ 9

31. **काल का चक्र** - लक्ष्मी प्रसाद मिस्त्री 'रमा', हितचिन्तक प्रेस, बनारस, सन् 1921 ई0। इसमें एक लावनी 'रंगत मेरी जान' की है ।

32. **लावण्य लता** - स्वामी नारायणानन्द सरस्वती 'अख़्तर', सद्धर्म प्रचारक यन्त्रालय, देहली, जुलाई 1922 ई0।

"हमें यह कहते हुये कुछ भी संकोच नहीं होता है कि ख्यालों की अन्यान्य पुस्तकों की तुलना में यह पुस्तक अपने ढंग की अनोखी और सर्वोत्तम है ।"[1]

इसमें नीति, धर्म, ज्ञान, वैराग्य, भक्ति सम्बन्धी अनेक रचनाएँ हैं, अनेक सनअ़त व अलंकार हैं। विभिन्न रंगतों में 71 लावनियां हैं। रूपक की एक झलक देखिए -

"सुख-सुगन्ध लोभी मन-मधुकर, काम-कमल पर जा बैठा ।
प्रेम-पांखुरी में फंस कर, अपने को आप गंवा बैठा ।।"[2]

33. **गुलजार सखुन तुर्रा (भाग 1-4)** - श्री सुखलाल, द्वितीय संस्करण, हिन्दू प्रेस, दरीबा कलां, देहली-6, सन् 1932 ई0। प्रकाशक - ला0 नारायण दास जंगलीमल बुकसेलर, दरीबा कलां, देहली ।

रंगत अजीब सांगीत में इनकी रचना का नमूना देखिए -

"सुन्दर सुन्दर नारी, जिनकी सूरत लागे प्यारी ।
मोतिन से तो मांग संवारी, गावें हमजोली ।।
भर-भर रंग की झारी मारे, सारी ब्रज की नारी ।
खेलें मनमोहन गिरधारी, मच रही होली ।"[3]

34. **हरिवंश विलास** - पं0 हरिवंश खुर्जा निवासी 'साहित्य निधि मरहटी गायनाचार्य', मुद्रक - हरप्रसाद प्रेस, बुलन्दशहर, सन्, सम्वत् नहीं छपा, अनुमानतः इसका प्रकाशन सन् 1935-36 में हुआ होगा । इसमें लावनियों के अतिरिक्त गाने भी हैं -

उदाहरण -

"मिटा दे जड़ता की नींद प्रानी, अभी तो पट घट हैं बन्द तेरे ।
जो दिल की आंखें खुलें तो दीखे, हृदय में माधव मुकुन्द तेरे ।।"[4]

---

1. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', भूमिका भाग, लावण्य लता, प्रथम पृष्ठ
2. ख़याल रंगत लंगडी - रूपक अलंकार वैराग्य, लावण्य लता, पृष्ठ 6
3. गुलज़ार सख्खुन तुर्रा, भाग 3, द्वितीय सं0, पृष्ठ 10
4. लावनी शिकस्ता, हरिवंश विलास, पृष्ठ 48

35. **श्री पार्वती मंगल** - पं0 हरिवंश खुरजा, माडर्न प्रेस, नमक मण्डी, आगरा, सन् 1936 ई0 इसमें विभिन्न गाने हैं, बहरे शिकस्ता, रंगत छोटी, रंगत महाराज की आदि कुछ लावनियों का समावेश है ।

36. **ख्याल बहार कलग़ी** - मणिलाल मिश्र, कानपुर, सन् 1941 ई0। इस पुस्तक का उल्लेख 'लावनी का इतिहास' पृष्ठ 283 पर है। एक उदाहरण देखिए - ख्याल रंगत खड़ी -

"ललित लवंगलता सी ललना, मान करे क्यों नितै नितै ।
तव वियोग में मन बहलावें, श्याम, चन्द्र को चितै चितै ।।"[1]

37. **श्री गांधी श्रद्धांजलि** - लक्ष्मी प्रसाद मिस्त्री 'रमा', संजय प्रिंटिंग प्रेस, देहली, मार्च 1949 ई0। इसमें 'बापू का निर्वाण' और 'बापू का चरखा' नामक दो लावनियां हैं । एक उदाहरण देखिए -

"पड़ी है जय की गले में माला, मुदित हो करता है गान चरखा ।
सभी जगत् को विमोह लीना, स्वतन्त्र गा कर के तान चरखा ।।"[2]

38. **महिला गायन** - लक्ष्मी प्रसाद मिस्त्री 'रमा', सुकवि प्रेस, कानपुर, 1950 ई0। इसमें अनेक राग-रागनियां हैं, रंगत 'नवेली' की लावनी का नमूना देखिए -

"अब मूरख बन गये बहुत से, पिंगलाचारी जू ।
बातें ऐसी करत गुणों की, मनहु पिटारी जू ।।"[3]

39. **ख्याल गुलशन तुर्रा** - श्री वेगराज जालान, भिवानी । यह पुस्तक अब अप्राप्य है। अनुमानतः 1925 ई0 में छपी होगी । इसके लेखक का रचना काल सन् 1900 से 1925 के मध्य है ।

40. **ख्याल बेमिसाल** - बाबू ओंकार प्रसाद, जबलपुर । यह पुस्तक सम्भवतः सन् 1950 ई0 के आस-पास प्रकाशित हुई होगी। अब अप्राप्य है।

उदाहरण, ख्याल शहादत नामा -

"सितम के खंजर से टुकड़े टुकड़े, हुआ जिगर बन्द मुस्तफा का ।
कलम का भी फट गया कलेजा, लिखा जो अहवाल करवला का ।।"[4]

---

1. लावनी का इतिहास, पृष्ठ 285
2. श्री गांधी श्रद्धांजलि, पृष्ठ 15
3. महिला गायन, पृष्ठ 18
4. हिन्दी लावनी साहित्य पर हिन्दी सन्त साहित्य का प्रभाव, पृष्ठ 212

41. **सांगीत चन्द्रावली** - श्री बजरंग बगडिया, भिवानी। यह पुस्तक अब अप्राप्य है । उदाहरण, लावणी - गणागण विचार -

"कर सुमिरन गन का दोष गनागन वरनूँ, महाराज, अष्टगन सब विधान कर के ।
कहूँ देवफल सहित कवी जन, सुनो ध्यान कर के ।।"[1]

42. **तुर्रे कलग़ी का विवाह** - पं0 चन्द्रशेखर 'चैनराम' गौड़ । यह पुस्तक अब अप्राप्य है। सम्भवतः 1950 ई0 के आस-पास छपी होगी । इसका उल्लेख डा0 भानावत ने 'राजस्थान के तुर्रा-कलग़ी', पृष्ठ 15 व 16 पर किया है ।

43. **प्रताप लहरी** - पं0 प्रतापनारायण मिश्र, ज्ञान मन्दिर, पटकापुर, कानपुर, सन् 1952 ई0 श्री नारायणप्रसाद जी अरोड़ा ने मिश्र जी की समस्त कविताओं का संकलन 'प्रताप लहरी' नाम से छापा है, जिसमें मिश्र जी की अनेक लावणियाँ हैं। ख़याल रंगत लंगड़ी का उदाहरण देखिए -

"यह भी मैं किस तरह कहूं मैं तेरा हूं तू मेरा है ।
मेरे प्यारे, यहां तो जो कुछ है सो तेरा है ।।"[2]

44. **निर्भय विलास** - श्री निर्भयराम जी, श्री वेंकटेश्वर प्रेस प्रकाशन, बम्बई-4, संवत् 2013, शके 1878, सन् 1956 ई0। यद्यपि प्रकाशक ने संस्करण का उल्लेख नहीं किया, हमारी दृष्टि में यह पुस्तक का अन्य संस्करण होगा, मूल संस्करण 1900 ई0 पूर्व हुआ होगा, कवि की भाषा स्वयं साक्षी है -

"हां इतना जानता हूं जो कुछ यह सर्व है सर्व आपका विलास है,
देश काल शब्द अर्थ को चैतन्य करने हारा आपका ही प्रकाश है।"[3]

आपकी लावनी का एक नमूना देखिए -

"पहिला जो अपना नामो निशां मिटावे ।
फिर उसको पूरण ब्रह्म साफ दिखलावे ।।"[4]

45. **उत्संग पत्र** - श्री गंगा विष्णु मंडन, श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई-4, प्रकाशक ने इसकी सूचना 'निर्भय विलास' के अन्त में विज्ञापन रूप में दी है। इस ग्रन्थ में 'सुदामा-चरित' चटकीली लावनी, ख्यालों में लिखा गया है । सन् 1956 ई0।

---

1. हिन्दी लावनी साहित्य पर हिन्दी सन्त साहित्य का प्रभाव, पृष्ठ 177
2. प्रताप-लहरी
3. निर्भय विलास, पृष्ठ 4
4. वही, पृष्ठ 26

46. **गुल बहार** - विविध कविगण, श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई-4; प्रकाशक ने इसकी सूचना 'निर्भय विलास' के विज्ञापन-पृष्ठ 2 पर दी है, सन् 1956 ई0। इसमें लावनी ख्याल तुर्रा संगृहीत हैं।

47. **गुलजार चमन** - विविध ख्यालगो, श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई-4; प्रकाशक ने इसकी भी सूचना 'निर्भय विलास' के विज्ञापन पृष्ठ 2 पर दी है। प्रकाशन सन् 1956 ई0। इसमें शृंगार रस प्रधान अच्छे-अच्छे ख्याल हैं।

48. **दिल विलास लावनी** - भोलानाथ यादव, बनारस बुक डिपो, जानसेन गंज, इलाहाबाद, प्रकाशक ने सम्वत् नहीं छापा है, साधारण ग्राम्य रचना है।

49. **लावनी मनमोहनी** - रघुवीर प्रसाद, श्री दुर्गा पुस्तक भण्डार, खेमामार्ग, इलाहाबाद, प्रकाशक ने सन्, सम्वत् नहीं छापा है। एक उदाहरण देखिए -

"बरसत जल मूसल धार विकल नर नारी।
व्रज डूबत लिये उबार कृष्ण गिरधारी।।"[1]

50. **हंस वच्छ चरित्र** - मुनि श्री चौथमल जी महाराज, महलों की पीपल, राजस्थान, तृतीयावृत्ति, सम्वत् 2017 वि0, सन् 1960 ई0। इसमें ख्याल तर्ज के अनेक जैन धर्म सम्बन्धी गीत हैं।

51. **लाल किले की ललकार** - लक्ष्मी प्रसाद 'रमा', विद्यालय प्रेस, वृन्दावन, सन् 1964 ई0 यह रचना चीन के आक्रमणकाल में लिखी गई है। सभी लावनियों में चीन के प्रति चुनौती है। उदाहरण देखिए -

"अब अनीति नहीं रहने पावे, वीरों ! हिन्दुस्तान के बीच।
आज चीन में आग लगा दो, रहो नहीं अपमान के बीच।।"[2]

52. **ओम् तुर्रा (पहला भाग)** - विविध ख़यालगो, प्रकाशक सुबोध विचार भांडार, बोम्बे। इसका प्रकाशन गुजराती भाषा में किया गया है।

उदाहरण -

"छो आथ गुरु गणपती, दियो शुभ मती, कृपा करो रती, दास दुखियारो।
रस राता, करो सुख साहाता, दया उर धारो।।"

---

1. लावनी मनमोहिनी, पृष्ठ 10
2. लाल किले की ललकार, पृष्ठ 6

53. **रोढू सिंह के ख्याल (भाग 1-2)** - रोढू सिंह, हापुड़, प्रकाशक - हरीराम बुक सेलर, हापुड़, मेरठ। शृंगार रस एवं भक्तिपरक साधारण रचनाएं इनमें संकलित हैं। प्रकाशन का सन् नहीं दिया गया ।

54. **ख्याल दीदार दर्पण** - चौ0 शंकर सिंह तथा खचेडू खां, जानी, जि0 मेरठ निवासी, प्रकाशक - जवाहर बुक डिपो, भारतीय प्रेस, गुजरी बाजार, मेरठ । कुल पृष्ठ संख्या 32, प्रकाशन सन् 1963 ई0।

उदाहरण -

"कवके के दिन जग में तेरी ज़िंदगानी ।
ना रहा अमर कोई सदा जगत् में फ़ानी ।।"

55. **तेजसिंह शतक (द्वितीय भाग)** - रचयिता चौ0 तेजसिंह वर्मा, प्रकाशक - हिन्दी पुस्तकालय, मथुरा, संस्करण - द्वितीय, प्रकाशन सन् 1940 ई0।

उदाहरण -

"अपने हाथों आग लगाई, अब कोई यत्न बनावे क्या ।
पानी का सामान नहीं फिर कुआ खोद बुझावे क्या ।।"

56. **सभा प्रसन्न** - रचयिता चौ0 नवल सिंह साहिब वर्मा, कस्बा मुज़फ्फराबाद, जि0 सहारनपुर, प्रकाशक वैदिक यंत्रालय, प्रयाग, सम्वत् 1941 वि0। यह आर्य समाजी थे, इन्होंने वैदिक विचारों को लेकर कतिपय अच्छी रचनाएँ की हैं। भूमिका में इन्होंने कहा है -

"..... सब महाशयों से प्रार्थना है कि यदि **"पुस्तक में कोई वेद-विरुद्ध शब्द पड़ गया हो, उसको मेरी भूल जान कर क्षमा करें"** छाप में इन्होंने मिश्रीलाल लावनीकार का भी उल्लेख किया है। अमृतसर-समाज के सालाना जलसे पर इन्होंने यह लावनी गाई थी -

"अमृत की वर्षा बरसी अमृत सर में ।
हैं तुच्छभागी ना आये इस अवसर में ।।"

× × × ×

"है प्रभु वही सब से है जिसे बड़ाई ।
है भक्त वही जिन प्रीति प्रभू से लाई ।।"

2. **प्रकाशित विवेचनात्मक निबन्ध :**

1. **खयालबाजी** - अयोध्याप्रसाद जी पाठक, मनोरमा, प्रयाग, जुलाई 1927 ई0।
2. **ख्यालबाजी** - अयोध्याप्रसाद चतुर्वेदी, विशाल भारत, कलकत्ता, 1929 ई0
3. **ख्यालबाजी** - स्वामी नारायणानन्द सरस्वती, विशाल भारत, कलकत्ता, 1929 ई0
4. **ख्यालबाजी** - पं0 लक्ष्मीधर वाजपेयी, विशाल भारत, कलकत्ता, 1938 ई0
5. **ख्यालबाजी पर टिप्पणी** - श्री पाठक जी (अयोध्यापसाद),साहित्यसंदेश,अगस्त 1946 ई0
6. **कानपुर के कलग़ी वाले** - नारायणप्रसाद अरोड़ा, प्रताप, कानपुर, 1950 ई0
7. **ख्यालबाजी का इतिहास : टिप्पणी** - बनारसीदास जी चतुर्वेदी, साप्ताहिक हिन्दुस्तान दिल्ली, 29 जुलाई, 1951 ई0।

अपनी इस टिप्पणी की सूचना पूज्य बनारसीदास चतुर्वेदी ने टीकमगढ़ से मुझे अपने 29-7-1951 के पत्र द्वारा इस प्रकार दी थी -

"प्रियवर, ... 29 तारीख के 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में मेरा नोट ख्यालबाजी के इतिहास के विषय में छप गया है, उसे कृपया पढ़ लीजिये।"

इस सम्बन्ध में इससे पूर्व 15-7-51 को चतुर्वेदी जी ने एक पत्र स्वामी नारायणानन्द जी को भी लिखा था -

"श्रद्धेय स्वामी जी, सादर प्रणाम ! ..... 'ख्यालबाजी' के इतिहास पर एक नोट मैंने दिल्ली के 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' के लिये लिख कर भेजा है, जो शायद 31 जुलाई के अंक में छपेगा। उसमें आपके शुभ नाम का उल्लेख है। 'भ्रमर' नामक ख्याल का भी उसमें ज़िक्र कर दिया गया है।"

8. **कानपुर के ख्यालबाज़** - स्वामी नारायणानन्द सरस्वती, साप्ताहिक 'रामराज्य' कानपुर, 26-11-1951 ई0। यह विस्तृत लेख क्रमशः 'रामराज्य' के कई अंको में प्रकाशित हुआ।
9. **लावनी साहित्य (निबन्ध)** - डा0 केसरी नारायण शुक्ल, ओरियण्टल कान्फ्रेन्स, लखनऊ द्वारा 1951 ई0 में प्रकाशित सन् 1950-51 में श्री शुक्ल जी ने ओरियण्ट कान्फ्रेन्स, लखनऊ के हिन्दी सेक्शन में लावनी साहित्य पर यह निबन्ध पढ़ा था। डा0 शुक्ल ने अपने 2-2-74 के पत्र द्वारा मुझे यह सूचना दी थी।

10. **हिन्दी कवियों में लावनी प्रेम** - सत्यव्रत शर्मा 'अजेय', 'सहयोगी' साप्ताहिक, कानपुर, 10 सितम्बर, 1951 ई0।

11. **हिन्दी साहित्य और लावनी** - सत्यव्रत शर्मा 'अजेय', दैनिक 'प्रताप', कानपुर, 4 नवम्बर, 1951 ई0

12. **लावनी का विस्तृत क्षेत्र** - सत्यव्रत शर्मा 'अजेय', दैनिक 'प्रताप', 27 जुलाई 1952 ई0

13. **लावनी का इतिहास** - सत्यव्रत शर्मा 'अजेय', दैनिक प्रताप, 13 जुलाई 1953 ई0

14. **कानपुर के कुछ प्रसिद्ध लावनीबाज** - स्व0 स्वामी नारायणानन्द जी सरस्वती, ज्ञान, कानपुर, नवम्बर 1955 ई0 ।

यह अंक स्वामी नारायणानन्द जी की स्मृति में प्रकाशित हुआ । इसमें स्वामी जी के सम्बन्ध में अनेक लेख एवं कविताएँ तथा लावनियाँ श्रद्धांजलि के रूप में प्रकाशित हुई हैं ।

15. **लावनी गायक कवि 'सुन्दर'** - सत्यव्रत शर्मा 'अजेय','टंकार',कानपुर, 19 मई 1960 ई0

16. **लावनी साहित्य** - डा0 त्रिलोकी नारायण दीक्षित, सप्त सिन्धु,पटियाला,जून 1963 ई0 ।

17. **राजस्थान की ख्याल सम्पदा** - महेन्द्र भानावत, लोक-कला निबन्धावली, भाग-4, पृष्ठ 65, अगस्त 1966 ई0 ।

18. **आगरा की साहित्यिक देन** - श्री तोताराम 'पंकज', मासिक 'साहित्यालोक', आगरा साहित्यकार अंक, आगरा, अक्टूबर 1967 ई0 । इसमें लावनीकार पं0 पन्नालाल व पं0 रूपकिशोर का साहित्यिक परिचय दिया गया है ।

19. **लावणी एक मराठा शृंगारिक नृत्य** - प्राध्यापक श्री घोंड, 'धर्मयुग' साप्ताहिक, अंक 28 जुलाई, 1968 ई0 ।

20. **महाकवि पं0 रूपकिशोर** - श्री रामचन्द्र सैनी, दैनिक 'आज की आवाज', आगरा, 16 फरवरी, 1969 ई0 ।

21. **हिन्दी लावनी साहित्य** - डा0 पुण्यम चन्द 'मानव', भाषा विभाग, हरियाणा, चण्डीगढ़, 1972-73 ई0 ।

24 पृष्ठों का यह निबन्ध भाषा-विभाग हरियाणा की वार्षिक लेख-गोष्ठी में सन् 1972-73 में पढ़ा गया, एवं पुस्तिकाकार छप कर वितरित हुआ । यह निबन्ध लेखक के शोध-प्रबन्ध पर आधारित है ।

22. **लोक-गायक पं0 रूपकिशोर ख्यालगो** - कृष्ण गोपाल दुबे, दैनिक 'अमर उजाला', आगरा, 9-9-73 ई0 ।

23. **ख्याल गायक नेकसाराम** - कृष्ण गोपाल दुबे, बी.ए., यह लेख स्वतन्त्र रूप से प्रकाशित कर वितरित किया गया ।

24. **लावनी साहित्य** - उदय शंकर शास्त्री, देशबन्धु, वर्ष 2, अंक 7

25. **राजस्थान के ख्याल** - श्री देवीलाल सामर, नट रंग, वर्ष 1, अंक 3, पृष्ठ 72 नईदिल्ली।

26. **राजस्थान के लोक नाटक : ख्याल** - श्री मनोहर शर्मा, लोक कला, उदयपुर, भाग-1, अंक 1, पृष्ठ 49; इसमें 66 ख्यालों की नामावलि दी है ।

27. **ख्यालों की पूर्व परम्परा** - अगर चन्द नाहटा, लोक कला, (उदयपुर), भाग 1, अंक 2, पृष्ठ 94

28. **तुर्रा कलग़ी के खेल** - देवी लाल सामर, लोक-कला, भाग 3, अंक 2

29. **ख्याल संज्ञक काव्य** - श्री अगरचन्द नाहटा, बीकानेर, राजस्थान। यह लेख नाहटा जी की 'प्राचीन काव्यों की रूप परम्परा' नामक पुस्तक में प्रकाशित हुआ है ।

30. **ब्रज जनपद की एक विशेष काव्यधारा : ख्याल लावनी** - श्री रतनलाल बंसल। यह लेख 'पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ' में 'पृष्ठ 887' पर छपा ।

31. **तमाशा और लावणी** - डा.इन्द्र पवार, धर्मयुग, 5 नवम्बर 1978, वर्ष 29, अंक 43, पृष्ठ 29

32. **क्या मिर्जापुरी लावनी की परम्परा लुप्त हो जायेगी ?** - डा0 अर्जुनदास केसरी, धर्मुग, 5 सितम्बर 1982, वर्ष 33, अंक 33, पृष्ठ 28; लेखक ने इस लेख में लावनी गायकी की दो शाखाओं 'तुर्रा' और 'कलग़ी' का शिव और शक्ति से सम्बन्ध बतला कर मिर्जापुर जनपद से लावनी-परम्परा की शुरूआत की सम्भावना व्यक्त की है ।

33. **मिर्जापुरी लावनी की लुप्तप्राय परम्परा (पत्र)** - डा0 कृष्णमोहन सक्सेना, धर्मयुग, 17 अक्टूबर 1982, वर्ष 33, अंक 37, पृष्ठ-7; इस टिप्पणी में लेखक ने तुकनगिरि और शाहअली को स्वरचित गीतों से अपार जनसमूह को पुनः कबीर जायसी जैसे कवियों की भावधारा से जोड़ने वाले कवि प्रदर्शित किया है ।

34. **लोकसाहित्य निधि : लावनी** - कृष्णगोपाल दुबे, युवक, मार्च 1982, वर्ष 32, अंक 3, पृष्ठ 49,

इसी प्रकार 'होली और तमाशा' साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 14 मार्च 1976, पृष्ठ 29 पर श्री मीनकेतन ने पेशवा दरबार के रंगोत्सव में होली के अवसर पर गाई जाने वाली लावनियों का उल्लेख किया है। **'एक रंगीन लोक नाट्य : तमाशा''** साप्ताहिक हिन्दुस्तान 6 मार्च,1977,पृष्ठ 6 पर श्री बसंत माने ने लावनी के नृत्य के दृश्यों को फिल्मों द्वारा अपनाए जाने एवं बाजीराव पेशवा (द्वितीय) के दरबार में लावनी के साथ तमाशे के प्रवेश पर प्रकाश डाला है । इसी अंक में 'नौटंकी' नामक लेख में पृष्ठ 20 पर श्री रामनारायण अग्रवाल ने भरत पुराधीश द्वारा कवि सोमनाथ को आदेश देकर सम्वत् 1809 वि0 में भवभूति के 'मालती माधव' नाटक को 'ख्याल' शैली में लिखवाये जाने का वर्णन करते हुए 'नौटंकी' को लावनी का ही एक रूप माना है। 'पुरुष जो महिला बनते हैं' साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 5 दिसम्नर, 1982, पृष्ठ 26 पर डा0 महेन्द्र भानावत ने राजस्थान के लोक नाटक ख्यालों में पात्रों की भूमिका पुरुषों द्वारा निभाए जाने का वर्णन किया है ।

लोक-साहित्य के संरक्षण की दिशा में यदा-कदा लावनी-साहित्य की चर्चा विश्वविद्यालय स्तर पर आयोजित गोष्ठियों में भी सुनाई पड़ जाती है। कुछ विद्वानों के भाषण पत्र-पत्रिकाओं में छपते रहते हैं। नवभारत टाइम्स, नई दिल्ली, 28 अगस्त 1975, पृष्ठ-3, कालम-4, पर विदर्भ साहित्य संघ के प्रसिद्ध विद्वान् श्री म0वि0 घोंड द्वारा नागपुर में दिये गए भाषण का समाचार छपा है, जिसमें लावनी के बारे में व्याप्त ग़लत फहमियों का निराकरण करते हुए विद्वान् वक्ता ने लावनियों में राधाकृष्ण-संवाद एवं कृष्णगोपी-विलास के साथ ही नवरसों के योग का भी प्रतिपादन किया है ।

3. **इतिहासपरक ग्रन्थ :**

1. **लावनी का इतिहास** - स्वामी नारायणानन्द सरस्वती, ज्ञान मन्दिर, पटकापुर, कानपुर, सितम्बर 1953 ई0।

अपने ढंग की यह सर्वप्रथम और अनूठी पुस्तक है । स्वामी नारायणानन्द जी लावनी साहित्य के आचार्य थे, उन्हें इस विषय का पर्याप्त ज्ञान था । इस इतिहास में प्रस्तावना और भूमिका भाग पृष्ठ 1-96 तक बहुत उपादेय हैं, इनमें लावनी-परिभाषा, परिवेश, नियम, छंद, अलंकार आदि का साहित्यिक चिंतन करते हुए सर्वप्रथम लावनी की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत की है, एवं हिन्दी साहित्य में लावनी की स्थापना की है।

यद्यपि यह इतिहास केवल कानपुर के लावनीकारों का ही इतिहास है, इसमें कानपुर के तुर्रा-कलग़ी दोनों पक्षों के कवियों और शायरों का रचना सहित संक्षिप्त जीवन परिचय दिया है, तो भी भूमिका भाग 'लावनी का इतिहास' नाम को सार्थक कर रहा है। अन्त में नगर के कतिपय प्रतिष्ठित सज्जनों का लावनी प्रेम प्रदर्शित करते हुए वहाँ के हिन्दी के कुछ श्रेष्ठ कवियों की लावनियाँ भी उद्धृत की हैं।

यह 352 पृष्ठों का महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है, हिन्दी साहित्य के मनीषियों ने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। राजस्थान के शिक्षा विभांग के डायरेक्टर ने ता0 25-11-53 के आदेश संख्या 3 डी.बी.जी.सी.एन.-15(1)-10434 के द्वारा 'लावनी का इतिहास' पब्लिक लाइब्रेरियों के लिए स्वीकृत किया है।

यह ग्रन्थ लावनी साहित्य के इतिहास लेखकों के लिए प्रामाणिक संदर्भ-ग्रन्थ है। भारतीय लोक-कला मण्डल, उदयपुर से प्रकाशित 'करोली क्षेत्र का ख्याल-साहित्य' में स्थान-स्थान पर इस ग्रन्थ से प्रमाण प्रस्तुत कर 'ख्याल साहित्य' के स्वरूप का चिंतन किया गया है। 'हिन्दी लावनी साहित्य पर हिन्दी सन्त साहित्य का प्रभाव' नामक शोधप्रबन्ध में डा0 'मानव' ने पृष्ठ 64 पर इस ग्रंथ की अपूर्ण चर्चा की है।

2. **राजस्थान के तुर्रा कलग़ी** - डा0 महेन्द्र भानावत, भारतीय लोककला मण्डल, उदयपुर, अगस्त 1968 ई0।

"राजस्थानी लोक नाट्यों में 'ख्याल' अत्यन्त समृद्ध विधा है। इन ख्यालों में तुर्रा कलग़ी ख्याल सर्वाधिक लोकप्रिय एवं लोकानुरंजन से परिपूर्ण रहे हैं, राजस्थान के तुर्रा कलग़ी ख्याल पर डा0 महेन्द्र भानावत का यह अध्ययन सर्वथा नवीन, मौलिक एवं अनूठी सामग्री प्रस्तुत करता है।"[1] परिशिष्ट में कुछ ख्याल भी समाविष्ट किए हैं।

3. **करोली क्षेत्र का ख्याल साहित्य** - कल्याणप्रसाद वर्मा, भारतीय लोक-कला मण्डल, उदयपुर, अक्टूबर 1972 ई0।

"श्री कल्याणप्रसाद वर्मा ने इस पुस्तक में करोली अंचल में प्रचलित मुख्यतः तुर्रा कलग़ी और हेला ख्याल पर बड़ी रोचक सामग्री प्रस्तुत की है, उनके एम.ए. के लघुप्रबन्ध का भी यही विषय था।"[2]

---

1. देवीलाल सागर, राजस्थान के तुर्रा कलग़ी, भूमिका, पृष्ठ 5
2. डा0 भानावत, करौली क्षेत्र का ख्याल साहित्य, प्रकाशकीय, पृष्ठ 1

श्री वर्मा ने ठोस अध्ययन के उपरांत यह पुस्तक लिखी है। 'लावनी का इतिहास' आदि संदर्भग्रन्थों का यथास्थान सदुपयोग हुआ है। परिशिष्ट में विशिष्ट ।2 ख्याल भी उद्धृत किये हैं, एवं 'चित्रकाव्य' के भी दो उदाहरण प्रस्तुत किए हैं ।

4. **हिन्दी लावनी साहित्य पर हिन्दी संत साहित्य का प्रभाव** - डा0 पुण्यमचन्द 'मानव' सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा, ।972 ई0।

यह मैसूर विश्वविद्यालय से पी-एच.डी. उपाधि के लिए स्वीकृत शोधप्रबन्ध है । इसमें चार परिच्छेद हैं, पहले परिच्छेद में आठ अध्याय हैं, जिनमें लावनी गीतकाव्य के उद्भव विकास पर प्रकाश डालते हुए लावनी के थोक, दंगल, अखाड़े आदि का भी वर्णन है। हिन्दी कवियों का लावनी प्रेम भी प्रदर्शित किया है। प्रकाशित-अप्रकाशित लावनी साहित्य को नाममात्र के लिए छुआ है। दूसरे परिच्छेद में छह अध्याय हैं, जिनमें लावनी की रंगतें, रस, अलंकार एवं छंदों का वर्णन है। प्रतिपाद्य विषयों का भी चिंतन है। तीसरे परिच्छेद में छह अध्याय हैं, लावनी और लावनीकारों का विवेचनात्मक अध्ययन है । चौथे परिच्छेद में हिन्दी लावनी साहित्य पर हिन्दी सन्तसाहित्य का प्रभाव प्रदर्शित किया है, इसमें प्रथम खण्ड में तीन अध्याय हैं, एवं द्वितीय खण्ड में भी तीन अध्याय हैं, द्वितीय खण्ड में हिन्दी लावनी साहित्य पर अन्य हिन्दी भक्त कवियों का प्रभाव प्रदर्शित है।

ऐतिहासिक दृष्टि से ग्रन्थ विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं है, क्योंकि "प्रस्तुत ग्रन्थ के रचयिता ने उचित ही, अपने जन्मप्रदेश हरियाणा और उसके साथ लगने वाले उत्तर प्रदेश के कुछ भूखण्डों की प्रचलित लावनियों को ही अपने शोध का विषय बनाया है।"[1]

फिर भी इस ग्रन्थ से लावनी साहित्य की हिन्दी साहित्य में यत्किंचित् प्रतिष्ठा हुई ही है ।

4. **प्रकाशित मराठी लावणी काव्य तथा साहित्य** :

।. **अनन्त फन्दीकृत कविता** - अनन्त फन्दी, प्रकाशक - शंकर तुकाराम शालिग्राम, चित्रशाला प्रेस, पूना, सन् ।908 ई0 ।

यह संगमनेर के निवासी थे। इनका जन्म सन् ।744 ई0 में तथा स्वर्गवास सन् ।8।9 ई0 में हुआ था । "इनकी रचनाओं में पौवाडे तथा लावनियाँ दोनों प्रकार के लोक छंदों के प्रयोग मिलते है ।"[2]

।. धर्मवीर, राज्यपाल - मैसूर राज्य, हिन्दी लावनी साहित्य का हिन्दी सन्त साहित्य का प्रभाव, पृष्ठ 2
2. महाराष्ट्र का हिन्दी लोक-काव्य, पृष्ठ 55

इनकी एक शृंगारिक लावनी का नमूना देखिए -

करंज फूल कानों में चमकत, भाया ऊपर शाल जरी ।
नयनों में कजरा डार दिया पनघट पर था सिर पर पगरी ।।

2. **होना जी बाला कृत लावण्याँ** - होना जी, प्रकाशक - शंकर तुकाराम शालिग्राम, चित्रशाला प्रेस, पूना ।

जन्म सन् 1754 ई0 एवं मृत्यु सन् 1844 ई0, जन्मस्थान पूना, जाति अहीर, बाजीराव द्वितीय के समय में यह प्रभावशाली हो चुके थे। कविताओं में इनका नाम 'होना जी बाला' प्रसिद्ध है। "होना जी की लावनियाँ इतनी लोकप्रिय हुई कि नृत्यशालाओं में भी उन्हीं की मांग होने लगी। जो वारांगनाएं ख्याल, ग़ज़ल, ठप्पा, चीज़ आदि को संगीत की राग-रागिनियों में गाती थीं उन्हें होना जी की लावनियाँ सीखनी पड़ीं।"[1]

इनकी रचना का उदाहरण -

कहे होना जी बाला कर्म लिखे का रोना ।
क्यों रोती यक दिन होगा तेरा मिलना ।।

3. **परशराम कविच्या लावण्या** - परशुराम, प्रकाशक - शंकर तुकाराम शालिग्राम, चित्रशाला प्रेस, पूना ।

जन्म सन् 1754 ई0 के आस पास हुआ, नासिक जिलान्तर्गत सिन्नर तालुके के वावी नामक ग्राम के निवासी, जाति दर्जी ।

"कहते हैं कि स्वप्न में प्राप्त पांडुरंग के आदेशानुसार इन्होंने संत परम्परा के अभंगों की पद्धति छोड़ तत्कालीन समाज में प्रिय लावनी छंदों में अपनी रचनाएं कीं। रामायण, महाभारत ग्रन्थों की कथाओं को लावनी छंद के नए परिवेश में प्रस्तुत करने का सफल प्रयास इन्होंने किया।"[2]

उदाहरण -

जमुना के तीर धेनु चरावे, नट चालक गिरधारी ।
सुनो राधा प्यारी, किने बजायो मुरली ,
राधा किने बजायो मुरली ।[3]

---

1. महाराष्ट्र का हिन्दी लोक-काव्य, पृष्ठ 62
2. वही, पृष्ठ 66
3. परशराम कविच्या लावण्या, पृष्ठ 70

4. **रामजोशी कृत लावण्या** - रामजोशी, प्रकाशक - शंकर तुकाराम शालिग्राम, चित्रशाला प्रेस, पूना ।

जन्म सन् 1754 ई0 के आसपास, एवं स्वर्गवास 1812 ई0 । ये सोलापुर के निवासी थे, जाति ब्राह्मण। यह श्रृंगार परक लावनियां लिखने में सिद्धहस्त थे। इनकी एक करम्भक[1] शैली की लावनी का नमूना देखिए जिसमें इन्होंने क्रमशः संस्कृत, मराठी, कन्नड और हिन्दी चार भाषाओं का प्रयोग किया है -

'त्वं तु रमे मयोचिता ।
न को भाव धरु दुसरा ,
इष्ट मात निम्न केलु दिल्ला ।
सखी क्यों उतर गया चेहरा ।।'

5. **सगनभाऊ कृत लावण्या व पौवाडे** - सगनभाऊ सं0 जागीरदार व अधिकारी । जन्म सन् 1778 ई0, मृत्यु सन् 1840 के आसपास हुई । जन्मस्थान जेजुरी, पूना, जाति मुसलमान। रचनाएं साधारण कोटि की हैं ।

परिजात करिन कुल ज्वाहार नग सारा ।
सब दक्खन के लही जा कछु लग प्यारा ।।

6. **प्रभा कृत कविता** - प्रभाकर, शं0 न0 जोशी, चित्रशाला प्रेस, पूना। ये रत्नागिरि के मुरुड नामक ग्राम के निवासी थे, इनका रचनाकाल सन् 1794-1830 ई0 है।

"इनकी समस्त रचनाएं लावनियां, पोवाडे, पद आदि स्फुट छंदो में बिखरी पड़ी हैं।"[2] इन्होंने अपनी लावनियों के सम्बन्ध में लावनी छंद में स्वयं कहा है -

'किति प्रभाकराचें कवन मधुर दिलदारी ।"

7. **ढोल की वरील लावण्या** - यह मराठी भाषा में बम्बई से प्रकाशित हुई ।

8. **परशरामी लावण्या** - इसके सम्पादक तु.प्र. शैट्ये हैं ।

9. **मरहाठी लावणी** - श्री मधुकर वासुदेव घोंड, मोज प्रकाशन, पूना ।

---

1. करम्भकम् = "करम्भकं तु भाषाभिर्विविधाभिर्विनिर्मितम् ।" - विश्वनाथ, साहित्यदर्पण 7/337
2. कृष्ण जी गंगाधर दिवाकर, महाराष्ट्र का हिन्दी लोक-काव्य, पृष्ठ 49

इस विवेचनात्मक ग्रंथ में "श्रीमान घोंड जी ने मराठी लावनियों के छंद विधान के सम्बन्ध में परिश्रम पूर्वक काम किया है। मराठी लावनियों में पुंडरीक, केशवकरणी, शुभवदना, हरिभगिनी, मदनशर आदि छंदों को खोज लिया है ।"[1]

मराठी लावनी का छंद शास्त्रीय मूल्यांकन करता हुआ लेखक एक स्थान पर कहता है -

"जन समूह के सामने सुन्दर कण्ठ से लावनियाँ गाई जातीं थीं, उनकी अधिकांश रचना आठ मात्राओं में पद्मावर्तनी वृत्त में पाई जाती हैं। कहीं-कहीं छह मात्राओं के मृगवर्तनी वृत्त में पाई जाती हैं। ये लावनियाँ जातिवृत्तों में रहती थीं ।"[2]

प्रकाशित राजस्थानी ख़्याल साहित्य :

राजस्थान में ख्याल 'तुर्रा कलग़ी' का बहुत प्रचार है । इस विषय पर श्री अगरचन्द नाहटा, श्री देवीलाल सामर और डा0 महेन्द्र भानावत कुछ विश्लेषणात्मक ग्रन्थ प्रस्तुत कर चुके हैं।

डा0 महेन्द्र भानावत, उपनिदेशक (अनुसंधान) भारतीय लोककला मण्डल, उदयपुर (राजस्थान) ने दिनांक 7-12-73 को मुझे पत्र द्वारा इस सम्बन्ध में यह सूचना दी थी -

"राजस्थान में लावणी ख्यालों का इतना अधिक ज़ोर रहा कि ख्यालों का नामकरण ही **'लावणीबाजी के ख़्याल'** नाम से चल पड़ा, ख्यालों की पुस्तकें भी लावणी नाम से छपी हैं, **'लावणी'** तथा **'लावनी-पञ्चरत्न'** नामक मुख्य पुस्तकें मेरे देखने में भी आई।"

भानावत जी ने 'लोक नाट्य परम्परा और प्रवृत्तियां' नामक अपने शोध-प्रबन्ध में भी इस विषय पर कुछ सामग्री प्रस्तुत की है ।

श्री अगरचन्द नाहटा ने अपने **'ख्याल संज्ञक काव्य'** लेख में राजस्थानी में लिखित एवं प्रकाशित लघु-दीर्घ 190 पुस्तकों का नामोल्लेख किया है। राजस्थानी ख्यालों पर सर्वप्रथम पादरी रोब्सन द्वारा सम्पादित समालोचनात्मक पुस्तक **'मारवाड़ी ख्यालाज'** मिलती है, जिसे स्केच प्रेस, लेरिओमिशन, ब्यावर से प्रकाशित किया गया था। यह पुस्तक अब अप्राप्य है, परन्तु इसमें प्रकाशित डूँग जी जवार जी के ख्यालों के कतिपय उद्धरण एस.एच.केलॉग के 'ए ग्रामर आफ दि हिन्दी लैंग्वेज' नामक पुस्तक में देखने को मिलते हैं ।

---

1. कृष्ण जी गंगाधर दिवाकर, महाराष्ट्र का हिन्दी लोक-काव्य, पृष्ठ 107
2. म.वा.घोंड, मऱ्हाठी लावणी, पृष्ठ 14

'ख्याल संज्ञक काव्य' में उल्लिखित 190 पुस्तकों में से कुछ के नाम नीचे दिये जाते हैं -

1. केसरी सिंह का ख्याल, 2. केसर गुलाब का ख्याल, 3. ख्याल दोहपाली संग्रह, 4. ख्याल मारवाड़ी गीत, 5. ख्याल सुन्दर नगीना, 6. ख्याल निहालदे का बड़ा, 7. ख्याल नाग दे, 8. ख्याल गोपीचन्द भर्त्तृहरि, 9. ख्याल सालंगा सदावृक्ष, 10. ख्याल मणियार, 11. ख्याल रिसाल बेला दे, 12. ख्याल रिसालू काम दे, 13. ख्याल काकी जेठता का, 14. ख्याल शनिश्चर का, 15. जौहारी का ख्याल, 16. जाट को ख्याल, 17. डूंगर सिंह का ख्याल, 18. ढ़ोला सुलतान निहाल दे का ख्याल, 19. तेजा जी को ख्याल, 20. ध्रुव जी का ख्याल, 21. नागणी मारवाड़ी ख्याल, 22. नेनें खसम को ख्याल, 23. पंच फूला रानी का ख्याल, 24. पूरण भगत का मारवाड़ी ख्याल, 25. पनियारी लखेरे का ख्याल, 26. बूढ़ा बाल का ख्याल, 27. बुढ़ापे के ब्याह का ख्याल, 28. मोरध्वज को ख्याल, 29. रोहत कुंवर को ख्याल, 30. रामलीला को ख्याल, 31. रामदेव जी का ख्याल, 32. विक्रमादित्य को ख्याल, 33. विजय को ख्याल, 34. सोरठ बीझा को ख्याल, 35. सोने लोहे के झगड़े को ख्याल, 36. सासू बहू को ख्याल, 37. हरिश्चन्द्र का बड़ा ख्याल ।

उपर्युक्त सभी पुस्तकें 19 वीं तथा 20 वीं सदी में राजस्थान में प्रकाशित हैं और बाज़ार में उपलब्ध हैं। मोतीलाल, नानू, पूनमचन्द, गणेश वैद्य, केसरी सिंह, बंशीधर शर्मा, लच्छीराम, व्रजलाल, झालीराम 'निर्मल', गंगा बख्श, डूंगर जी जवार जी, प्रहलादीराम, डालूराम, भगवानदास, वजीरा, बंशीधर, जगन्नाथ उपाध्याय, गजानन्द तेजकवि, बख्शीराम, पं0 किशनलाल, प्रेमसुख भोजक, चुन्नीलाल, लालचन्द, फतहचन्द, गोकलराम, गोविन्दराम आदि इनके रचयिता हैं ।

राजस्थान में **'ख्याल'** को **'खेल'** भी कहते हैं, वहां इनका पर्याप्त प्रचार है। इसके अतिरिक्त भी वहाँ इस विषय पर छोटी-मोटी बहुत-सी प्रकाशित पुस्तकें हैं। कुछ अन्य बहुचर्चित पुस्तकें इस प्रकार हैं -

1. **मस्तपरीका ख्याल** - घनश्याम शर्मा, रामश्याम प्रिंटिंग प्रेस, कटला बाजार, जोधपुर सं.1997, सन् 1940 ई0।

मेरे आया महल फकीर सुनोरी गोरी ।
मेरे आ सपना के बीच खेल गयो होरी ।।[1]

2. **ख्याल बिरम सिंह नौटंकी का** - चुन्नी लाल
3. **विक्रम राजा और चन्द्रकला का ख्याल** - उजीरा तेली।

ये विक्रम को नयो तमासो, पीरू सोनी कथ कर गाया ।[2]

4. **ख्याल संग्रह चरित्र** - नानू राणा ।
5. **मोरध्वज चरित्र** - मनीराम ।
6. **ध्रुव चरित्र का ख्याल** - धन्ना लाल ।
7. **प्रणवीर तेजा जी** - अम्बालाल, फूलचन्द बुकसेलर, पुरानी मंडी, अजमेर, प्रकाशक ने सन्, सम्वत् नहीं छापा, अनुमानतः 1960 ई0 की रचना है ।

"दुनिया में मान की शान बड़ी है भाई ।
नहिं करवाणो अपमान ज़िन्दगी माई ।।[3]

8. **ख्याल राजा केसर सिंह** - प्रकाशक - फूलचन्द बुकसेलर, पुरानी मंडी, अजमेर, राजस्थान। यह पुस्तक साँग के ढंग की है, पृष्ठ संख्या 31 है ।

बोले जदां बत्तीसी चमकें, चूंपां चिलके न्यारी ।
तीखा रेख नैन काजल की, झीणी झीणी सारी ।।[4]

---

1. मस्तपरी का ख्याल, पृष्ठ 18
2. विक्रम और चन्द्रकला का ख्याल, पृष्ठ 1
3. प्रणवीर तेजा जी, पृष्ठ 21
4. ख्याल राजा केसर सिंह, पृष्ठ 31

अमुद्रित

1. **हस्तलिखित सामग्री : निजी खोज**

1. **लावनी संग्रह - भाग 1,2,3** : विभिन्न ख्यालगो, लगभग 300 लावनियां, प्राप्ति-स्थान श्री बैजनाथ जिल्दसाज, मौहल्ला धीरवाली, ज्वालापुर (हरिद्वार)

2. **लावनी संग्रह** : विभिन्न ख्यालगो, लगभग 1000 लावनियां, प्राप्तिस्थान - श्री नेकसाराम, खयालगो, नाज की मण्डी, फिरोजाबाद ।

3. **लावनी संग्रह : भाग 1,2** : रजिस्टर, स्वामी नारायणानन्द (लगभग 500 लावनियां) प्राप्तिस्थान - श्री बाबूराम खयालगो, तुर्रा, बरेली । यह संग्रह श्री पन्नालाल जी पीलीभीत से स्वामी जी के देहावसान के पश्चात् स्वामी जी के सुपुत्र श्री रामस्वरूप तिवारी से ले आए थे, इसकी जानकारी श्री पं0 देवीप्रसाद गौड 'मस्त', 448, साहूकारा, बरेली ने अपने 22-2-74 के पत्र द्वारा मुझे दी ।

4. **रहस-लावनी** : नवल सिंह, सम्वत् 1926 वि., प्राप्तिस्थान - लाला लच्छी प्रसाद, दतिया, लश्कर, म.प्र. ।

5. **लावनी शतक** : विभिन्न खयालगो, 100 खयाल, प्राप्तिस्थान - श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी, 53 खुर्शेद बाग, लखनऊ-4

6. **लावनी संग्रह** : विभिन्न खयालगो, 1000 लावनियाँ, महाराज पन्नालाल के घराने के कवि, प्राप्तिस्थान - गोपालदास मुनीम, बेलन गंज, आगरा ।

7. **लावनी संग्रह** : पं0 हरिवंश लाल जी, खुर्जा, 200 लावनियाँ, प्राप्तिस्थान - रमेश कौशिक, हिन्दी अधिकारी, दिल्ली परिवहन निगम, नई दिल्ली तथा दिनेश चन्द कौशिक, खुर्जा, बुलन्द शहर ।

8. **लावनी संग्रह** : (चुन्नी गुरु तथा तुर्रा सम्प्रदाय के कानपुरी खयालगो), 1000 लावनियाँ, प्राप्तिस्थान - कालिका प्रसाद 'सुन्दर' 25/11, किराची खाना, कानपुर ।

9. **लावनी संग्रह** : (उस्ताद नत्था सिंह 'तालिब' व मुकन्दी लाल 'खुशदिल' की रचनाएँ, लगभग 1000 रचनाएँ), प्राप्तिस्थान - श्री वासुदेव जी नायक, अध्यापक, खतौली, मुजफ्फरनगर।

10. **लावनी संग्रह** : (विभिन्न ख़यालगो) आगरा के अखाड़े की 500 लावनियाँ, प्राप्ति-स्थान - श्री गोपालदास चौरसिया, नमक की मंडी, आगरा ।

11. **खयाला** (भाषा मारवाड़ी) - 19वीं सदी में संकलित कुछ पद्य, प्राप्तिस्थान - अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर ।

12. **लावनी कुंज** - श्री बजरंग लाल बगड़िया, भिवानी ।

13. **लावनी पुंज प्रकाश** - श्री अम्बा प्रसाद, दादरी ।

14. **लावनी माला** - श्री दीनदयाल अग्रवाल, भिवानी ।

15. **लावनी संग्रह** - मा. कन्हैयालाल बालकवि, अखाड़ा दादरी, भिवानी, प्राप्तिस्थान- श्री बजरंग लाल गुप्त, भिवानी ।

16. **दीवान-ए-बादल** (उर्दू) 1,2 हिस्सा - बादल, कानपुर, सन् 1810 में लिखित, प्राप्ति स्थान - ख्याल खोजक मंडल, कानपुर ।

टिप्पणी - 1950 में इस मंडल की स्थापना हुई थी, इसके सदस्यों की नामावलि है - सर्वश्री पं.बनारसीदास जी चतुर्वेदी, पं. लक्ष्मीधर वाजपेयी, बाबू नारायणप्रसाद अरोड़ा, पं.हरिशंकर शर्मा, पं.जगदम्बा प्रसाद मिश्र 'हितैषी', लाला शालिगराम बजाज, बाबू किशोर चन्द्र कपूर, लाला शंकरलाल कानोडिया, पं. किशोरीलाल जी वकील, नरेश चन्द्र चतुर्वेदी, पं. लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी, पं. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', सरल जी तथा स्वामी नारायणानन्द जी । खेद है कि इनमें से अधिकतर व्यक्ति दिवंगत हो चुके हैं और मण्डल की प्रगति अवरुद्ध हो गई है।

2. काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा खोज में उपलब्ध सामग्री

काशी नागरी प्रचारिणी सभा का हिन्दी साहित्य की खोज के सन्दर्भ में स्तुत्य कृत्य है। सभा के प्रयास से अनेक लुप्त कवि प्रकाश में आए हैं। स्व. डा. पीताम्बरदत्त बडथ्वाल के संपादन में सम्वत् 2011 वि. में सभा ने हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का पन्द्रहवां त्रैमासिक विवरण (सन् 1932-34 ई.) प्रकाशित किया था, उसमें लावनी साहित्य सम्बन्धी अनेक संकलनों का उल्लेख है। इस प्रकरण में सभा द्वारा अन्वेषित ग्रन्थों का ही परिचय दिया जा रहा है।

1. **ख्याल शिवजी का** - पृष्ठ 1, पंक्ति प्रति पृष्ठ 27, ले. दुर्गादास, प्राप्तिस्थान - मुंशी सुखवासी लाल जी, प्रधानाध्यापक, प्राइमरी स्कूल, टूंडला, आगरा ।

इनकी कविता की भाषा सधुक्कड़ी, भाव भक्तिपूर्ण एवं रचना सामान्य है, उदाहरण -

"कुन्द इन्दु दुति शोभित वदनं दहित प्राक्षत अमित अकामम् ।
आदि अनादि अगाध अगम गत, सहज सलिल सम करुणा धामम् ।।"

2. **ख्याल बहर खड़ी** - पृष्ठ 1, पंक्ति 27, ले. दुर्गादास, प्राप्तिस्थान - मुंशी सुखवासी लाल जी, प्रधानाध्यापक, प्राइमरी स्कूल, टुंडला, आगरा ।

इस रचना में ओंकार की उत्पत्ति पर प्रकाश डाला गया है, रचना शैली साधारण कोटि की है। उदाहरण -

"प्रथम सर्व उच्चारण में क्या, ओंकार निकाला शब्द ।
घर से निकल जब ज़बां पै आया, हुआ ये सबसे आला शब्द ।।"

3. **बारहमासी लावनी की** - ले. प्रभुदयाल, स्थान सिरसा गंज मैनपुरी पत्र-2, आकार 9'×5.5', पंक्ति प्रति पृष्ठ 24, प्राप्तिस्थान - पं. दौलतराम जी मटेले, स्थान कुतुबपुर, डा. मदनपुर, जि. मैनपुरी ।

इसमें व्रज-वनिताओं की विरह दशा का वर्णन है, उदाहरण -

अजहु न आये स्याम कहा जिय धारी ।
सखि, निपट कटिन बेपीर भये बनवारी ।।

4. **खयाल त्रिया चरित्र** - रचयिता - दौलत सिंह, पृष्ठ 27, प्राप्तिस्थान - सुखवासी लाल जी प्रधानाध्यापक, प्राइमरी स्कूल, टूण्डला, आगरा । उदाहरण -

"पास करे तिरिया का तू तिरिया चरित्र को क्या जाने ।
काट पती का सीस सती हो जाती नार पल दरम्याने ।।"

5. **ख्याल** - रचयिता - पन्नालाल, आगरा, पृष्ठ 42, आकार 13'×8', पंक्ति प्रति पृष्ठ 28, समय सम्वत् 1764 वि., प्राप्तिस्थान - श्री जगन्नाथ प्रसाद वैद्य, नूरी दरवाजा, आगरा ।

इसमें कृष्ण-विनय, इश्क, साक़ी और शराब, विरह, रति, सौन्दर्य आदि विभिन्न विषयों की लावनियाँ हैं, उदाहरण -

"मेरो देह सों नेह रह्यो है नहीं, मोहिं सूरत स्याम दिखा तो सही ।
फिरे भटकत जीव वृंदावन में, निर्जीव को जीव बना तो सही ।।"

6. **बारह मासी** - दुल्ली चेतसिंह, दिल्ली, पत्र 13, आकार 5.5 × 4.5, प्रति पृष्ठ पंक्ति 8, लिपिकाल 1924 विक्रमी, प्राप्तिस्थान - हविलिया, मैनपुरी।

इसमें लौंद सहित बारह महीने की विरहिनी नायिका के विरह का वर्णन है। ग्रन्थ के अन्त में 'सरदार खां', 'बहलाल' तथा 'परमानन्द' के नाम दिये हैं। उदाहरण -

कहीं बोले बैरी दादुर,
मैं पिया बिना बेआदर,
रोय रोय भीजे हमारी चादर,
चहुँ ओर बोलते मोर, घटा घनघोर, सूझे अम्बर ना ।
मेरे दिल में ऐसी आवे जहर खाय मरना ।।

7. **ख्याल** - रचयिता पं. रूपकिशोर या रूपराम, आगरा, पत्र 78, आकार 10'× 8', पंक्ति प्रतिपृष्ठ 22, प्राप्तिस्थान - पं.रामचन्द्र, नीलकण्ठ महादेव सिटी स्टेशन, आगरा ।

इसमें ईश्वर महिमा, ज्योतिष, प्रेम, विरह, कृष्णलीला आदि विषयक लावनियाँ हैं। उदाहरण -

"भज श्यामा मधुसूदन भव भय विषय ताप त्रय भंजनहार ।
रस रसना के, त्यागि तो मुक्ति होइ श्रुति कहें पुकार ।।"

8. **हिन्दी उर्दू ख्याल संग्रह** - रचयिता पं. रूपराम, आगरा, पत्र 76, आकार 12'×8', पंक्ति प्रतिपृष्ठ 28, प्राप्तिस्थान - पं.रामचन्द्र, नीलकण्ठ महादेव सिटी स्टेशन, आगरा ।

इसमें ईश्वर प्रार्थना, फ़ारसी के ख्याल, आध्यात्मिक ख्याल और उर्दू के स्फुट ख्याल हैं, उदाहरण -

परब्रह्म पूरण परमातम, पतित पाल प्रभु मोचन पाप ।
पावन पद पंकज अज पूजत परम प्रीति परिहरि सन्ताप ।।

9. **कलग़ी** - रचयिता पं.रूपराम, आगरा, पत्र 8, प्राप्तिस्थान - पं.रामचन्द्र, नीलकण्ठ महादेव सिटी स्टेशन, आगरा ।

इसमें शिव-शोभा, पनिहारी, राधा माधव, उद्धव को व्रज-वनिताओं का विरह सन्देश आदि का वर्णन है। उदाहरण -

"भगत भय भंजनं हो निरवान,
करो करुणानिधि करुणा कान ।
नाव काया मेरी कर घात,
विपत सागर में डबी जात ।।"

10. **ख्याल बारह कड़ी** - रचयिता पं.रूपराम, आगरा, पत्र 132 आकार 10'×8', पंक्ति

प्रतिपृष्ठ 22, प्राप्तिस्थान - पं. रामचन्द्र, नीलकण्ठ महादेव सिटी स्टेशन, आगरा ।

इसमें आध्यात्मिक विषय का विस्तृत वर्णन है। उदाहरण -

"लुत्फ़ कहां महफ़िल का यार बिन, और रौनके हीर कहाँ ।
मज़ा कहाँ मयकशी कहां और शमा कहां गुलगीर कहां ।।"

11. **ख्याल बाजी** - रचयिता पं. रूपराम, पत्र 200, आकार 10'×8', पंक्ति प्रतिपृष्ठ 22, प्राप्तिस्थान - पं. रामचन्द्र, नीलकण्ठ महादेव सिटी स्टेशन, आगरा ।

इसमें ईश महिमा, भक्त वियोग, विश्व की नश्वरता, शृंगार, साक़ी, शराब के अतिरिक्त आध्यात्मिक लावनियां भी हैं। उदाहरण -

"अय साहिब सलतनत तेरे इसरार के मारे फिरते हैं ।
सर पर सौ सौ हुमा कदम में पदम बिचारे फिरते हैं ।।"

12. **ख्याल चिन्तामणि** - रचयिता पं. रूपराम, पत्र 137, आकार 10'×8', पंक्ति प्रतिपृष्ठ 22, प्राप्तिस्थान - पं. रामचन्द्र, नीलकण्ठ महादेव सिटी स्टेशन, आगरा ।

विषय - नवोढ़ा आदि नायिकाओं का वर्णन, पाप और भवसागर, नखशिख, स्त्री-सौन्दर्य, गणेश, गंगा, विष्णु, राम, कृष्ण की स्तुति, ब्रह्मज्ञान, चित्रकाव्य, कलि-महिमा, ज्योतिष-फलित आदि का विशद वर्णन है । उदाहरण -

"लख इकन्त में कन्त प्रिया, कछु सकुच सहित बतरान लगी ।
पास पिया के जान लगी, कछु मन्द मन्द मुस्कान लगी ।।"

13. **ख्याल मंजूषा** - रचयिता रूपराम, पत्र 69, आकार 10'×8', पंक्ति प्रतिपृष्ठ 22, प्राप्तिस्थान पं. रामचन्द्र, नीलकण्ठ महादेव सिटी स्टेशन, आगरा ।

इसमें गणेश वन्दना, बरसाने का फाग, कामरु कामाक्षी देवी की स्तुति, धनंजय-युद्ध, शंकर की अमर कथा, शृंगार वर्णन, मंसूर, मूसा की प्रेम कथा, लैला-मजनू आदि विभिन्न विषयों की लावनियाँ हैं। उदाहरण -

"टटोल के पग बढ़ा कुटिल है, वर घाटी की बाट विकट ।
टीला जहाँ शिव समाधि का है, तहां सरोवर है औघट ।।"

14. **ख्याल संग्रह** - रचयिता रूपराम या रूपकिशोर, पत्र 9, आकार 12'×8', पंक्ति प्रतिपृष्ठ 30, प्राप्तिस्थान - पं. रामचन्द्र, नीलकण्ठ महोदव सिटी स्टेशन, आगरा ।

इसमें प्रार्थना और शृंगार विषयक उर्दू फ़ारसी के पद्य हैं। उदाहरण-

"बसे हैं दिल अन्दर मेरे उस माहेलका जवाब के पाऊँ ।
बरहम गर होगा तो लूंगा पकड अपने अहबाब के पाऊँ ।।"

15. **ख्याल संग्रह** - रचयिता रूपराम या रूप किशोर, पत्र 54, आकार 13'×8', पंक्ति प्रतिपृष्ठ 28, प्राप्तिस्थान - श्री जगन्नाथ वैद्यराज, नूरी दरवाजा, आगरा ।

इसमें स्त्री-सौन्दर्य, राजा भर्तृहरि का वैराग्य, व्रज-विरह, गोपियों का गुमान, मध्या नायिका, ग्रीष्म वर्णन, दृष्टि कूट, ज्योतिष और वैद्यक, कृष्ण की प्रार्थना, ज्ञान कथन, ब्रह्म और शक्ति का निरूपण पिंगल वर्णन, कर्म और वैराग्य तथा उर्दू फ़ारसी के ख्याल हैं। उदाहरण-

"न खोल घूंघट के पट तू प्यारी, चलेंगे नाराच चितवनी के ।
सरोज सकुचेंगे चन्द्र वदनी, ये तेरी लखते ही चांदनी के ।।"

16. **योग ब्रह्म** - रचयिता पं.रूपराम या रूप किशोर, पत्र 52, आकार 10'×8', पंक्ति प्रतिपृष्ठ 28, प्राप्तिस्थान - पं.श्रीरामचन्द्र, नीलकण्ठ महोदव के सामने, सिटी स्टेशन, आगरा ।

इसमें पंच तत्त्व, माया, दश इद्रियों का मारना, काम क्रोध लोभ मोह विजय, स्वाँस नियन्त्रण, समाधि, आसन, मुद्रा, ब्रह्मध्यान, ब्रह्म वर्णन तथा रहस्यवादी रचनाओं का समावेश है। उर्दू और फ़ारसी के भी ख़्याल हैं। उदाहरण -

"जिन्हें याद स्वांसा साधन चौबीस भूमि भेदन करना ।
उन्हें न बाधा करे जगत् में, जरा, ज्वाल, जीना, मरना ।।"

17. **ख्याल संग्रह** - रूप रसिक, वृन्दावन, पत्र 20, आकार 5'×4', पंक्ति प्रतिपृष्ठ 15, प्राप्तिस्थान - श्री नत्थीलाल गोस्वामी, स्थान व डा. बरसाना, जि. मथुरा।

इसमें आध्यात्मिक प्रेम, भक्ति, व्रजशोभा, उद्धव-गोपी संवाद सम्बन्धी मधुर लावनियां हैं। उदाहरण -

"मत करो इश्क ये इश्क बड़ा काफिर है,
मेरी जान जहाँ ये पैदा होता है।
माल, मुल्क, जी, जान, हया, हुरमत सब खोता है ।।"

18. **ख्याल निर्गुन सगुन** - रचयिता सुखलाल कवि, पत्र 1, आकार 13.5'×11', पंक्ति प्रतिपृष्ठ 27, प्राप्तिस्थान - मुंशी सुखवासी लाल जी प्रधानाध्यापक, प्राइमरी पाठशाला टूंडला, आगरा।

इसमें निर्गुण की व्याख्या की गई है। उदाहरण -

"जेवर सोने का हर कोई, अलग अलग बनवाता है ।
सबके अन्दर, एक वो ही सोना रूप कहाता है ।।"

19. **ख्याल शहादत** - रचयिता सुखलाल, पत्र 4, आकार 13.5'×11', पंक्ति प्रतिपृष्ठ 27, प्राप्तिस्थान - मुंशी सुखवासी लाल जी प्रधानाध्यापक, प्राइमरी पाठशाला टूंडला, आगरा ।

इसमें 'कासिम की करबला में वीरता' दिखाने का वर्णन है । उदाहरण -

"सद रहमत इस बहादुरी पर, लाख मरहबा दरूद दम ।
जाय ख़ुल्द तलवार के रखते, सर के बल पहुंचे क़ासम ।।"

20. **ख्याल** - रचयिता सुखलाल कवि, प्राप्ति स्थान - पं. महादेव प्रसाद, डा.जसवंत नगर, इटावा, प्रकरण निर्देश - 38-148 बी.ना.प्र.सभा । विषय शृंगार ।

21. **लावणी समझ प्रकाश** - रचयिता सुखलाल कवि, प्रकरण निर्देश 38-148 ए. प्राप्तिस्थान - ना.प्र.सभा काशी, पं.प्रह्लाद शुक्ल, शाहदरा ।

इसमें स्वामी दयानन्द के मत का खण्डन किया गया है ।

22. **बारह मासी ग़दर** - रचयिता अज्ञात, पत्र 8, आकार 8'×3', प्राप्तिस्थान - श्री ओंकार नाथ जैन, मु.पो. रुनकता, तहसील किरावली, जि. आगरा ।

इस पुस्तिका में ग़दर सन् 1857 के 12 महीनों का चित्र खींचा है। उदाहरण -

लगी षेम बैसाष लगी इक साहिब पै चीठी ।
अब तुम हो हुसियार लडाई मेरठ में बीती ।।
सुनत सब साहब घबराने ,
धरि दये टोप उतारि, करे जिनि हिन्दुन के बाने ।
भजे वे झंकनि में डोले,
अपनी गरज के काज बहुत वे नरमी ते बोले ।।

23. **ख्याली दंगल** - रचयिता विभिन्न ख्यालबाज, पत्र 24, आकार 13'×8', पंक्ति प्रतिपृष्ठ 28, प्राप्तिस्थान - श्री जगन्नाथ प्रसाद वैद्य, नूरी दरवाजा, आगरा । उदाहरण -

"आने के हज़रते जिनूं के बने हैं हम दीवाने से ।
मस्ताने से, हो गये इश्क के यक पैमाने से ।।"
- मुंशी नारायण प्रसाद कायस्थ, शाहजहांपुर ।

इसके अतिरिक्त सभी कविजन आगरा के रहने वाले हैं, जिनके नाम हैं - मुंशी जगन प्रसाद, लछमन प्रसाद,अजुद्धीराय, पं. पन्नालाल और पं.रूपराम जी ।

24. **नरसी लो** - रचयिता श्री लछमन प्रसाद सीकरी, आगरा।

इसका उल्लेख ना.प्र.सभा के खोज विवरण, 1929-31 सं. 181, 1926 - सं.255 पर मिलता है ।

25. **बारहमासी** - रचयिता महाराजा रिसाल गिरि जी, रचना काल सम्वत् 1704 वि. (सन् 1647 ई.), प्राप्तिस्थान - पं.द्वारिकाप्रसाद पुरोहित, खेड़ा बुजुर्ग, डा.बलरई, जि.इटावा ।

यह ग्रन्थ पुरोहित जी से ना.प्र.सभा को सन् 1935 ई. में प्राप्त हुआ। इसमें विरह प्रधान लावनियाँ हैं।

26. **ख्याल संग्रह** - ग्रन्थकार अज्ञात, लिपिकाल अज्ञात ।

इस ग्रन्थ की सूचना 'नागरी पत्रिका' अक्टूबर, 1974, काशी ना.प्र.सभा के पृष्ठ 18-19 पर प्रकाशित हुई है। इस वर्ष 1974 ई. में श्री पशुपतिनाथ पांडेय बिजनौर जिले में वहां के सुप्रसिद्ध साहित्यिक प्रो.रामस्वरूप जी आर्य (अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, वर्धमान कालेज) की देखरेख में खोज कार्य करते रहे। परिणामस्वरूप हिन्दी के अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों के साथ उन्होंने इस ग्रन्थ को भी खोज निकाला । विवरण में प्राप्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों में इसका स्थान 37वां है। इसमें विभिन्न विषयों पर लिखे गये ख़यालों का संग्रह है ।

3. हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग के संग्रहालय में सुरक्षित सामग्री

हिन्दी साहित्य सम्मेलन वास्तव में हिन्दी के विविध साहित्य का सम्मेलन है, इसका संग्रहालय पर्याप्त समृद्ध है। हिन्दी की कीर्तिरक्षा में काशी नागरी प्रचारिणी सभा के पश्चात् द्वितीय स्थान इसी को प्राप्त है। मैंने हस्त लिखित लावणी साहित्य की खोज में सम्मेलन के संग्रहालय का दिनांक 22-11-72 व 27-2-73 से 28-2-73 तक तथा 23-3-74 से 25-3-74 तक तीन बार निरीक्षण किया । डा.रामकुमार वर्मा द्वारा सम्पादित हस्तलिखित ग्रन्थों की विवरणात्मक सूची भी देखी । जो ग्रन्थ मुझे दृष्टिगोचर हो सके उनका उल्लेख यहां किया जा रहा है -

1. **गोपीचन्द रो ख्याल** - ग्रन्थकार मोतीलाल मारवाड़ी, पत्र सं.20, पृष्ठ 40, प्रकरण निर्देश, 11-54/2203, लिपिकाल 1789 वि.।

इसमें गोपीचन्द विषयक लावणियाँ हैं। बीच-बीच में दोहों के द्वारा कथानक को बढ़ाया है। उदाहरण -

खड़ा बाग जब पड़ा ज़मीं पर लगा शीस भाला ।
मत करना परतीत रांड की, मारा सेर दे गई टाला ।।

2. **लावनी संग्रह** - रचयिता भक्त कवि नाथूराम प्र.नि. 3-38/2069 तथा 8-66/3980 प्राप्तिस्थान - श्री शिवप्रसाद खरे, गोपी गंज, वाराणसी।

वेष्टन संख्या 1337 पर यह लावनी संग्रह का अर्द्धभाग रखा गया है, सम्पादक ने सूची में इसी का अर्द्धभाग इसी नाम से 8-66/3980 पर पृथक् रखा है, और अतिरिक्त विवरण पृष्ठ 398 पर लिखा है कि -

"प्रस्तुत ग्रन्थ में कुल 10 लावणियाँ हैं, आरम्भिक 10 लावणियां इसमें नहीं हैं ।"

यह कथन भ्रामक है । यदि उक्त दोनों वेष्टन के पत्रों को मिलाकर एकसाथ रखा जाय तो ग्रन्थ पूर्ण रूप में हो जाएगा, इसमें निम्नलिखित 18 लावणियां हैं -

परमेश्वर के स्तवन की लावनी, पिंगल की लावनी, संसार दुख की लावनी, प्रबल उदयागत की लावनी, उपदेशी लावनी, त्रिधा जन्म की लावनी, गुरु स्तुति की लावनी, कृष्ण आदि सत्पुरुषों की लावनी, सिंहावलोकन शिकस्ता बहर, शिकस्ता बहर बाबा जी की लावनी, पतिव्रता सती, कुमति कुनारि की लावनी, सुमति सुनारि की लावनी, कुमति चेतन के झगड़े की लावनी और मतवारों का मतवालापन हरने की लावनी; साखी दौड़ और परब्रह्मस्वरूप की दो लावणियाँ । उदाहरण -

"है यह संसार असार दुःख का घर रे ।
ये विषय-भोग दुख-खान, तू इनसे डर रे ।।"

3. **गज सुक माल री कथा** - रचयिता रामकृष्ण, रचनाकाल सम्वत् 1867 वि.। इसमें 22 छन्द हैं। छाप की दो पंक्तियां देखिए-

"पूज 'सुखजी' सुख के दाता, 'हीरानँद जी' गुण भण्डारी ।
'रामकृष्ण' यह कहत लावणी, सुरता जन कूँ सुखकारी ।।

4. **लावनी-ग्रन्थकार** - ऋषभदास, लिपिकार जया जी राव, लिपि काल सं.1909, प्र.नि. 8-59/5349, प्राप्ति स्थान - श्री सूरजराज धारीवाल, ग्वालियर ।

5. **बारहमासी लावनी** - ग्रन्थकार तुलसीदास, लिपिकार केशवदेव, प्र.नि.3-34/2536 इसमें बारहमासी के परिवेश में निर्गुण का वर्णन है। उदाहरण -

"पिया दरस बिना दीदार दरद दुख भारी ।
बिन सन्त गुरु के धृग् जीवन संसारी ।।"

6. **लावनी और दूहा** - ग्रन्थकार जिनदास, पृष्ठ 58, ग्रंथ काल अज्ञात। प्र.नि.8-65/4690 प्रस्तुत ग्रन्थ में जैन धर्म का सैद्धान्तिक विवेचन मिलता है। उदाहरण -

"तजो काम मद मान लाल जिनवर गुण भज लीजै ।
कमाई सुकृत की कीजै ।।"

7. **लावनी संग्रह** - रचयिता सुमतनाथ तथा जिनदास, लिपिकाल सं.1916 वि., लिपिकार बालचन्द, प्रकरण नि.8-61/5151, विषय जैन धर्म ।

यह संग्रह श्री सूरजदास धारीवाल, ग्वालियर ने हि.सा.सं. को भेंट किया। सम्मेलन ने अपनी खोज में इस संग्रह का रचयिता जिनदास को माना है, परन्तु लावणियों के अन्त में दी गई 'छाप' से सुमतनाथ का भी नाम स्पष्ट है। दोनों के प्रमाण प्रस्तुत हैं -

प्रथम : 'विकट घाट जो जल पीवै तो, होवे हैराणां ।
जल खारो अति रोग बघारो, राग धेष मानां ।।
'सुमुत नाथ' सद्गुरु की बतियां, एक चिन्त जाणां ।
देव कदे नइ सुरपुर पहुंचे, सोइ सावधानां ।।"

द्वितीय : 'जिन वर मुख पूनम चन्दा ।
'जिणदास' तुमारा बन्दा ।।"

8. **नेमि नाथ जी री लावणी** - ग्रन्थकार जिणदास, लिपिकार बालचन्द, लिपिकाल 1941 विक्रमी, पौष ।।, दिन शनिवार, प्राप्ति स्थान - श्री सूरजमल धारीवाल अग्रवाल, ग्वालियर, विषय - जैनधर्म । उदाहरण -

"मैं अरज करूँ कर जोर सुनो सब हेली ।
मेरे नेमि बिना नहिं और जगत्में बेली ।।"

9. **लावणी** - ग्रन्थकार सुन्दर, प्रकरण नि. 8-63/4995, प्राप्ति स्थान - श्री सूरजमल धारीवाल, ग्वालियर, विषय भक्ति। उदाहरण -

"अरज हमारी सुणो दीनपति, कौन भांति तिरणा ।
हम दुखी फिरत संसार चतुर्गति, सो तुम से निरणा ।।"

अनेक स्तवनों के संग्रह में उक्त वेष्टन में 'लावणी री चाल आरती पार्श्वनाथ जी री' भी मिली । उदाहरण -

"आरत कर श्री पारस प्रभु की, जनम बनारस है जिनका ।
घनन घनन बाजै घन्टा घन, ऐसा ध्यान धर जिनवर का ।।"

सात बन्द में लावणी सम्पूर्ण हुई। इसी वेष्टन में एक और महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'राग लावणी' भी मिली, उदाहरण देखिये -

"खबर नहीं है जग में पल की ।
सुकृत करणां जोय सो कर ले कौन जाने कल की ।।

* * *

तारा मंडल रवी चन्द्रमा, सभी चलाचल की ।
दिवस चार का चमत्कार है, बिजली बादल की ।।

* * *

मात पिता सुत भाई बान्धव, सब जन मतलब की ।
काया माया नार सनेही, ए तेरी कब की ।।

छाप में 'विनती' 'अखेमल' की आया है। इससे सिद्ध होता है कि इसका रचयिता 'अक्षयमल' (अखेमल) नाम का कोई सन्त कवि होगा ।

10. **लावनी एवं कवित्त** - ग्रन्थकार देवीदास, प्रकरण निर्देश 3-63/3857/4

इसमें शृंगार रस की लावणियां एवं कवित्तों का संग्रह किया गया है ।

11. **पद एवं नेमिनाथ जी की लावनी** - ग्रन्थकार रूपचन्द, प्राप्ति स्थान - श्री सूरजदास धारीवाल, ग्वालियर, प्रकरण नि. 8-33/5662, विषय जैनधर्म ।

12. **लावणी** - ग्रन्थकार ऋषभदेव, लिपिकार रूपसागर, ग्रन्थकाल सं. 1825 वि., लिपिकाल 1874 वि., पौष सुदी, बुधवार, प्राप्ति स्थान - श्रीमती चन्द्र कुंवरि जी, जोधपुर, राजस्थान, विषय जैन धर्म, प्र.नि. 8-57/3904

प्रारम्भ में सरस्वती की स्तुति की गई है। उदाहरण -

सरस्वती माता सुमति की दाता, तुही विधाता त्रिपुरारी ।
अकल बुध तुम ईश्वर कू दिये, कहूँ ल्यावणी अति न्यारी ।।"

* * *

अष्ट कमल दल घेर रह्या है, जिन सूं समरण नहिं बनता ।
भव भव जिन जी सेवा दीज्यौ, तुम साहिब का हम मंगता ।।"

13. **लावणी** - ग्रन्थकार अज्ञात, लिपिकाल सं. 1888 वि., प्रकरण निर्देश 8-62/4942 प्राप्ति स्थान - श्री सूरजराज धारीवाल, ग्वालियर । विषय जैन धर्म ।

14. **लावणी** - ग्रन्थकार अज्ञात, लिपिकार सं. 1916 वि., प्रकरण निर्देश 8-64/4668, प्राप्ति स्थान - श्री सूरजराज धारीवाल, ग्वालियर, विषय जैन धर्म ।

15. **लावणी** - ग्रन्थकार अज्ञात, प्रकरण निर्देश 8-60/5082, प्राप्ति स्थान - श्री सूरज राज धारीवाल, ग्वालियर, विषय जैन धर्म ।

उपलब्धि और सीमाएं

आधुनिक काल में यों तो जितने भी हिन्दी साहित्य के इतिहास लिखे गए, लगभग उन सभी में खड़ी बोली के विकास के प्रसंग में लावनी का लोक साहित्य की विधा के रूप में यत्र तत्र उल्लेख मिलता है। ऐसे सभी इतिहासों में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा सम्वत् 1986 वि. में लिखा गया 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' सबसे अधिक प्रामाणिक और सन्दर्भ-ग्रन्थ माना जाता है। इसमें शुक्ल जी ने आधुनिक काल के अन्तर्गत खड़ीबोली के विकास के सन्दर्भ में लावणी साहित्य की अपूर्ण-सी चर्चा की है। उनके द्वारा प्रस्तुत लावनी प्रवर्त्तन का इतिहास भी दोषपूर्ण है। लावनी पर उनकी टिप्पणी अविकल उद्धृत की जाती है -

"इसके उपरान्त ही लावनीबाजों का समय आता है। कहते हैं कि मिरजापुर के तुकनगिरि गुसाईं ने सधुक्कड़ी भाषा में ज्ञानोपदेश के लिये लावनी की लय चलाई। लावनी की बोली खड़ी बोली रहती थी। तुकनगिरि के दो शिष्य रिसालगिरि और देवीसिंह प्रसिद्ध लावनीबाज हुये, जिनके आगे चल कर दो परस्पर प्रतिद्वन्द्वी अखाड़े हो गये। देवीसिंह का बाना 'सखी का बाना' और उनका ढ़ंग 'कलग़ी' कहलाया जो भक्ति और प्रेम लेकर चलता था। लावनीबाजों में काशीगिरि उपनाम 'बनारसी' का बड़ा नाम हुआ। लावनियो में पीछे उर्दू के छन्द अधिकतर लिखे जाने लगे। 'ख्याल' को भी लावनी के अन्तर्गत ही समझना चाहिये। इसके अतिरिक्त रीतिकाल के कुछ पिछले कवि भी, जैसा कि हम दिखा आये हैं, इधर उधर खड़ी बोली के दो-चार कवित्त सवैये रच दिया करते थे। उधर लावनीबाज और ख्यालबाज भी अपने ढ़ंग पर कुछ ठेठ हिन्दी में गाया करते थे। इस प्रकार खड़ी बोली की तीन छन्द प्रणालियां उस समय लोगों के सामने थी, जिस समय भारतेन्दु जी के पीछे कविता की भाषा का सवाल लोगों के सामने आया - हिन्दी के कवित्त सवैया की प्रणाली, उर्दू छन्दों की प्रणाली और लावनी ढंग। सं. 1943 में पं. श्रीधर पाठक ने इसी पिछले ढ़ंग पर 'एकान्तवासी योगी' खड़ी बोली पद्य में निकाला । इसकी भाषा अधिकतर बोलचाल की और सरल थी। नमूना देखिये -

"आज रात इससे परदेसी चल कीजै विश्राम यहीं ।
जो कुछ वस्तु कुटी में मेरे, करो ग्रहण, संकोच नहीं ।।
तृण शय्या औ अल्प रसोई पावो स्वल्प प्रसाद ।
पैर पसार चलो निद्रा लो, मेरा आसिर्वाद ।।"

* * *

प्रान पियारे की सुन गाथा, साधु कहां तक मैं गाऊं ।
गाते गाते चुके नहीं वह, चाहे मैं ही चुक जाऊं ।।"[1]

उपर्युक्त कथन में शुक्ल जी ने रिसालगिरि को 'तुर्रे' का और देवीसिंह को 'कलग़ी' का प्रवर्त्तक ठहराया है। उनका यह कथन भ्रामक है । वास्तव में 'तुर्रे' का प्रवर्त्तन तुकनगिरि से और 'कलग़ी' का प्रवर्त्तन शाहअली से हुआ । लावनी जगत् में आरम्भ से अब तक ऐसा ही माना जाता है।

इसी प्रकार अन्य इतिहासकारों ने हिन्दी साहित्य के प्रमुख अंग लावनी साहित्य के विषय में अज्ञता अथवा अल्पज्ञता ही प्रकट की, और हिन्दी के राष्ट्रभाषा पद पर आसीन होने के समय तक भी भरत के समान यह लावनी साहित्य किसी से पूछा तक नहीं गया। अतएव 1953 ई. में स्वामी नारायणानन्द जी ने इस अभाव की पूर्ति के लिये 'लावनी का इतिहास' लिखा। इसकी प्रस्तावना और विस्तृत भूमिका में विद्वान् लेखक ने लावनी के सभी स्वरूपों का स्वल्प संस्पर्श किया है। लावनी की परिभाषा, अखाड़े, छाप, गाने के नियम, चंग पूजा, रंगतें, सनअ़त आदि पर संक्षिप्त प्रकाश डाल कर शोधार्थियों के लिये शोध का द्वार खोला है।

डा.पुण्यमचन्द 'मानव' ने अपने शोध प्रबन्ध में प्रकाशित और अप्रकाशित लावनी साहित्य पर प्रकाश डालते हुए इस ग्रन्थ के विषय में लिखा है -

"कानपुर के महात्मा स्वामी नारायणानन्द ने लावनी में ही लावनीकारों का इतिहास प्रकाशित कराया था, यद्यपि यह बहुत युक्तिसंगत नहीं था, और आजकल प्राप्त भी नहीं है।"[2]

डा. मानव की उक्त अयुक्त राय तथ्यों के विपरीत है क्योंकि यह इतिहास न तो लावनी में लिखा गया है और न डाक्टर साहब ने उसके दर्शन ही किये हैं । वास्तव में 'लावनी का इतिहास' अब भी प्राप्य है, जिसकी एक प्रति मेरे पास भी सुरक्षित है।

स्वामी जी इस ग्रन्थ के माध्यम से 80-90 लावणीकारों कों प्रकाश में लाये हैं, प्रस्तावना में इस ग्रन्थ के विषय में उन्होंने स्वयं लिखा है -

"सम्भव है कि इस कार्य में, जो अहम कार्य था, कुछ त्रुटियां रह गई हों, यह भी सम्भव है कि किसी अन्य योग्य व्यक्ति द्वारा यह कार्य और भी उत्तमता से सम्पादित होता, परन्तु हमने जिन कठिनाइयों और दिक्कतों से गुजर कर जो कुछ खोज निकाला है, वह आपके सामने प्रस्तुत है। हमारा ध्येय केवल लावनी वालों की कीर्ति-रक्षा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।"[3]

1- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, 16 वां संस्करण, पृष्ठ 572-573
2- हिन्दी लावनी साहित्य पर हिन्दी सन्त साहित्य का प्रभाव, पृष्ठ 64
3- लावनी का इतिहास,पृष्ठ 12-13

स्वामी जी ने प्रत्येक लावनीकार कवि का ऐतिहासिक परिचय देते हुये उसकी कुछ रचनाएं प्रस्तुत की हैं। 'कविता कौमुदी' के ढ़ंग पर केवल परिचयात्मक दृष्टिकोण अपनाया गया है। इतिहास का अधिकतर भाग स्वामी जी का चश्मदीद है। यह लावनी साहित्य के इतिहास लेखन में प्रथम प्रयास है। एक तरह से यही प्रथम प्रामाणिक सन्दर्भ ग्रन्थ भी माना जा सकता है, इस विषय पर लिखने वालों के लिये यह पथ-प्रदर्शक ध्रुव-तारा है।

जिस प्रकार स्वामी जी ने कानपुर से सम्बन्धित लावनी का इतिहास लिखा उसी प्रकार **डा. महेन्द्र भानावत** ने सन् 1968 में **'राजस्थान के तुर्रा कलग़ी'** नामक पुस्तक लिखी। यह पुस्तक भी एकांगी है, जैसा कि इसके नाम से ही प्रगट है। लेखक ने इसमें राजस्थान में ख्यालों की परम्परा, थोक, पक्ष, ख्यालों की विभिन्न रंगतें और शैलियाँ, उद्‌भव एवं विकास वर्णित करते हुए अलंकार, छन्द आदि पर प्रकाश डाला है। ख्याल की दार्शनिक पृष्ठभूमि पर चिन्तन करते हुए तुर्रा, कलग़ी अखाड़ों के उस्तादों की परम्परा पर भी विचार किया है। प्रदर्शन-पीठिका, पात्र एवं चरित्र चित्रण का भी उल्लेख किया है। परिशिष्ट में तीन ख्याल दिये हैं।

एक प्रकार से इसमें राजस्थान में खेले जाने वाले खेल अथवा ख्याल के तुर्रा कलग़ी थोकों का स्वरूपगत परिचय ही है, इसमें राजस्थान के लावणीकारों का परिचय भी अतिसूक्ष्म है। अतः यह तो पूर्णतः एकांगी है, इसमें केवल 32 पृष्ठ हैं।

इसी परम्परा में **कल्याणप्रसाद वर्मा** ने **"करौली क्षेत्र का ख्याल साहित्य"** सन् 1972 में लिखा। इसमें 84 पृष्ठ हैं। लेखक ने इसमें भी ख्याल की क्षेत्रीय विशेषताएं और ख्याल के विविध रूपों का चिन्तन करते हुए कतिपय भावात्मक एवं वर्णनात्मक ख्याल उद्धृत किये हैं। लेखक ने स्वामी **नारायणानन्द** जी के **'लावनी का इतिहास'** का ठोस अध्ययन किया है और अपने मत की पुष्टि के लिये इस इतिहास से जगह-जगह उद्धरण अंकित किये हैं। लेखक ने इतिहास की दृष्टि से यह पुस्तक नहीं लिखी अपितु **'ख्याल क्या है ?'** करौली क्षेत्र में वह किस रूप में उपलब्ध है ? केवल इन्हीं विषयों का विश्लेषण किया है। ख्यालबाज या लावनीकारों से लेखक का कोई सम्बन्ध नहीं है।

जिस विषय पर इतना विस्तृत कार्य हो चुका हो उस पर अनुसन्धित्सुओं का ध्यानाकर्षण स्वाभाविक था, अतः डा.पुण्यम चन्द 'मानव' ने इस विषय पर "हिन्दी लावनी साहित्य पर हिन्दी सन्त साहित्य का प्रभाव" नामक शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया, जो मैसूर विश्वविद्यालय से पी-एच.डी. उपाधि के लिये स्वीकृत हो कर सन् 1972 में प्रकाशित हो चुका है। इसमें 327 पृष्ठों में लावनी के विभिन्न रूपों पर विचार किया गया है। इसमें चार परिच्छेद और अनेक अध्याय हैं। पहले परिच्छेद में लावनी शब्द पर विचार करते हुए लावनी साहित्य का उद्भव और विकास, लावनी के अंग, दंगल आदि पर प्रकाश डाला है, हिन्दी कवियों की लावणियों पर एवं लावनी की प्राचीन और वर्तमान स्थिति पर विचार किया है। दूसरे परिच्छेद में रंगतें, रस, अलंकार का प्रदर्शन कर भावों का निरूपण है। तीसरे परिच्छेद में लावनीकार, भिवानी के अखाड़े और दादरी, नारनौल, अम्बाला तथा आगरा क्षेत्र के लावनीकारों का परिचय है। चौथा परिच्छेद दो खण्डों में विभक्त है, पहले खण्ड के पहले अध्याय में सन्त शब्द का विवेचन, दूसरे में भक्ति और कबीर का परिचय दिया है। तीसरे में गुरु महिमा, इन्द्रिय निग्रह, नाड़ी वर्णन, योग समाधि, माया आदि विषयों को लक्ष्य बना कर हिन्दी लावनी साहित्य पर हिन्दी सन्त साहित्य का प्रभाव दिखाया है। द्वितीय खण्ड में पहले अध्याय में प्रेममार्गी सूफी कवियों का लावनी साहित्य पर प्रभाव, दूसरे में राममार्गी सगुण भक्त कवियों का लावनी साहित्य पर प्रभाव, तीसरे में कृष्णमार्गी सगुण भक्त कवियों का लावनी साहित्य पर प्रभाव दिखाया गया है।

इस शोध प्रबन्ध में डा.मानव ने दो तिहाई भाग में केवल लावनी साहित्य को और एक तिहाई से भी कम भाग में अपने मुख्य प्रतिपाद्य विषय को स्थान दिया है। प्राक्कथन में लेखक महोदय ने अपने शोध के क्षेत्र का सीमा निर्धारण स्वयं इस प्रकार किया है -

"..... यही कारण है कि हरयाणा प्रदेश के नगरों में अम्बाला, नारनौल, दादरी और भिवानी तथा उनके निकटवर्ती क्षेत्र, साथ ही उत्तर प्रदेश के आगरा नगर में उपलब्ध लावनी साहित्य का इस शोध प्रबन्ध में उपयोग किया है।"[1]

इसलिये यह शोध प्रबन्ध भी एकांगी या एकदेशीय ही है, इसमें और भी सैद्धान्तिक, छन्दःशास्त्रीय, आलंकारिक, ऐतिहासिक एवं तात्त्विक भूलें हैं जिनका यथास्थान तत्तत्प्रसंग में विवेचन करते समय दिग्दर्शन कराया जाएगा।

1- डा0 मानव, हिन्दी लावनी साहित्य पर हिन्दी सन्त साहित्य का प्रभाव, प्राक्कथन, पृष्ठ 2

लावनी जगत् में इस पुस्तक के प्रकाशन से जो प्रतिक्रिया हुई उसकी एक झलक इस प्रकार है -

"लावनी के सम्बन्ध में मैसूर से एक पुस्तक प्रकाशित हुई है, उस पर पी-एच.डी. भी मिल गई है लेकिन उसमें बड़ी ग़लतियां हैं, ऐसी पुस्तक प्रकाशित होने से बड़ी गडबड़ी पैदा होती है, इस थोथे ग्रन्थ की कीमत भी 25/- रुपया रखी है।"[1]

लावनी साहित्य में उपलब्ध सामग्री का लेखक ने पूर्णत: अध्ययन नहीं किया, उपलब्धि और सीमा निर्धारण के क्षेत्र में भी यह शोध-प्रबन्ध अधूरा है। प्रकाशित और अप्रकाशित लावनी साहित्य की सूचना अतीव अपरिमित किंवा नाममात्र है।

लावनी के दो अन्य नामों ख्याल और मरैठी पर विस्तृत विवेचन प्रस्तुत नहीं किया गया है। उर्दू के ख्यालों का समावेश नहीं के बराबर है, जबकि हिन्दी-उर्दू दोनों ही भाषाओं में समान रूप से लावणियां लिखी गई हैं और दोनों ही लावनी की समान धाराएं हैं।

अत: लावनी के परिवेश, परिभाषा, उद्भव तथा विकास पर पुनर्विचार करना भारतीय चिन्तन के परिप्रेक्ष्य में उसकी उपलब्धि और सीमाएं निर्धारित करना, उसका इतिहास मूलक विभाजन तथा, ख़ासतौर से कानपुर के लावनीकारों का साहित्यिक परिचय देना, स्वरूपगत भेदों का उल्लेख कर विविध घरानों को प्रकाश में लाना, उर्दू भाषा के ख्यालों का परिचय देना, और आधुनिक युग में लावनी द्वारा खड़ी बोली की प्रतिष्ठा पर तात्त्विक प्रकाश डालना नितान्त अपेक्षित था। इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखते हुए इस शोध-प्रबन्ध की रचना की। इसमें लावनी साहित्य के अंग-उपांगों पर ठोस अध्ययन प्रस्तुत कर लावनीकारों को कवियों की कोटि में प्रतिष्ठित करना ही मेरा लक्ष्य है।

1- श्री गोपाल दास मुनीम, बेलन गंज, आगरा का 11-12-73 ई. का हस्तलिखित पत्र

हिन्दी लावनी साहित्य का इतिहासमूलक काल-विभाजन

डेढ़ हजार वर्ष पूर्व से अब तक हिन्दी लावनी साहित्य के दर्शन होते हैं, परन्तु हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने लावनी के साथ सौतेला-सा व्यवहार किया जिसके कारण यह साहित्य उपेक्षित ही रहा और आज तक भी इतिहास में स्थान नहीं पा सका। इतिहासकारों ने केवल आधुनिक खड़ीबोली के विकास की बेला में भूले-भटके लावणी का नामोल्लेख किया है। इसी कारण इसकी श्री-सम्पदा टूटे हुये हीरक-हार की बिखरी मणिराजि-सी ढूँढ़ने पर यत्र तत्र स्फुट रूप में मिल जाती है। इसमें ऐतिहासिक सामग्री का नितान्त अभाव है, फिर भी अन्तःसाक्ष्य या बाह्य साक्ष्य के आधार पर जो भी सामग्रीं मिलती है, उसी के आधार पर इस प्रकरण में लावनी साहित्य का इतिहासमूलक विभाजन किया जायेगा।

लावणी साहित्य केवल शृंगार रस का संवाहक ही नहीं अपितु उसमें दार्शनिक तत्त्व धार्मिक भावनाएँ, ब्रह्मज्ञान और भक्ति के भी दर्शन होते हैं। स्फुट रूप से ज्योतिष, आयुर्वेद, राजनीति, संगीत आदि का भी इसमें समावेश पाया जाता है।

इसका साहित्य पद्यमूलक एवं गीतिका-तत्त्वों से युक्त है। 'मक़ता' या छाप में कवि द्वारा अपने व अपने अखाड़े के लोगों के नामोल्लेख की परम्परा पाई जाती है। यह छाप-साहित्य ही अन्तः साक्ष्य है। ऐतिहासिक स्थान जो लावणीकारों से सम्बद्ध हैं, एवं उनसे सम्बन्धित जन-श्रुतियां ही बाह्य साक्ष्य हैं। मुझ से पूर्व जो कार्य इस क्षेत्र में हुआ, उसमें ऐतिहासिक तथ्यों का समावेश नहीं है। जो भी कार्य थोड़ा बहुत हुआ वह एकदेशीय है। सबसे पहले पादरी रोब्सन ने राजस्थानी ख्यालों पर 'मारवाड़ी ख्यालाज' पुस्तक लिखी जोकि ख्यालों की परिचायक थी, न कि ख्यालगो वर्ग की। इसी प्रकार उपलब्धि और सीमा प्रकरण के अन्तर्गत अन्य इतिहास-परक ग्रन्थों की एकांगिता पर पूर्व ही प्रकाश डाला जा चुका है।

पूर्व कालीन कवियों में आत्म परिचय देने की प्रवृत्ति का अभाव रहा, और इस समय जो लावनीकार या ऐसे व्यक्ति विद्यमान हैं जिनके पास लावनी विषयक सामग्री है वह भी विचार-संकीर्णता के कारण या स्वार्थवश उसे प्रकाशित करने में सहायक सिद्ध नहीं होते। अतः इतिहास लिखने में इन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। लावनी साहित्य राजस्थान में मेवाड़ी

और मारवाड़ी, मथुरा के समीप ब्रजभाषा, पूर्व में कन्नौजी, उत्तर में गढ़वाली और कुमायुंनी, पूर्व में (अयोध्या में) अवधी, दक्षिण में बुन्देली और बाघेली, सुदूर पूर्व में भोजपुरी तथा बिहार और बंगाल की सीमा पर मैथिली, पश्चिम में कौरवी और खड़ी बोली नामक बोलियों में पाया जाता है। दिल्ली और मेरठ कमिश्नरी में बोली जाने वाली उर्दू भी हमारी दृष्टि में हिन्दी या हिन्दुस्तानी की ही एक शैली है, उसमें भी लावणी साहित्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है।

वैदिक भाषा का परिष्कृत रूप संस्कृत है। प्राकृत स्वाभाविक रूप से बोली जाने वाली भाषा है। प्राकृत को ही पाली कहा जाता है। प्राकृत के विकसित रूप महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी और अर्धमागधी से ही आधुनिक हिन्दी निर्मित हुई है। विकृत रूप ब्राचड और उपनागर अपभ्रंश है। राजस्थान की साहित्यिक भाषा 'डिंगल' और ब्रज की साहित्यिक भाषा 'पिंगल' कहलाई ।

डा.रामकुमार वर्मा ने सं.750-1000 वि. तक हिन्दी साहित्य का सन्धिकाल माना है। उस समय वज्रयानी सिद्ध-साहित्य और जैन-साहित्य अध्यात्मक की धारा बहा रहे थे। उत्तरार्ध में नाथ-सम्प्रदाय सांसारिक नश्वरता प्रतिपादित कर भोग की प्रवृत्ति से मन को निवृत्ति की ओर ले जाने का उपदेश दे रहे थे।

लावणी साहित्य के उद्भव पर प्रकाश डालते हुये पिछले प्रकरण में वैदिक, संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं में लावणी के कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जा चुके हैं।

"हमारा ऐसा अनुमान है कि गाथा वर्ग के मात्रिक जातिच्छन्द मूलतः लोकगीतों के छन्द रहे हैं, जिनकी जन्मभूमि आन्ध्र या महाराष्ट्र जान पड़ती है, ... इस छन्द का प्रचलन भी सर्व प्रथम महाराष्ट्री प्राकृत के लोकगीतों में हुआ जान पड़ता है। वहीं से यह कालिदास कों भी मिला है।"[1]

कविकुल चूड़ामणि महाकवि कालिदास ने अपभ्रंश में सर्वप्रथम ऐसी लोकधुन का प्रयोग किया जिसे लावनी में 16 मात्रा की **'रंगत सोहनी'** और हिन्दी में **'अरिल्ल'** छन्द कहा जा सकता है।

1- डा0 भोलाशंकर व्यास, प्राकृत पैंगलम् भाग-2, पृष्ठ 335

"पर हुअ मधुर पलाविणि कंती,
णंदण वण सच्छंद भमंती ।
जइ पइँ पिअ अम सा महु दिट्ठी,
ता आ अक्खहि महु पर पुट्ठी।।"[1]

उस समय छन्द लय पर आधारित थे, अपभ्रंश में और भी कुछ ऐसे वज़न मौजूद हैं जिनमें लावनी की कई रंगतों का साम्य है।

"अपभ्रंश छन्द उस काव्य परम्परा के अभिन्न अंग हैं जो जन-सामान्य के लिये विकसित हुई थी, और जिसका परिवेश लोकगीतों की संगीतात्मकता से समृद्ध है। अनेक अपभ्रंश छन्दों में इसीलिये मूलतः विभिन्न प्रकार की तालों का नियमन पाया जाता है और ये छन्द किसी न किसी वाद्य यन्त्र के साथ गाये जाते हैं ।"[2]

डा. भोला शंकर व्यास गेय पदों के प्रयोग के विषय में अपना मत इस प्रकार प्रकट करते हैं -

"साहित्य में गेय का सर्वप्रथम प्रयोग करने वाले, जहां तक हमारी जानकारी है, बौद्ध सिद्ध ही हैं ।"[3]

बौद्ध धर्म 500 ई. में प्रचलित हुआ, कुमारिल और शंकराचार्य ने वैदिक धर्म 800 ई. में प्रतिष्ठित किया। सिद्ध परम्परा सं. 797 से 1257 वि. तक मानी जाती है, इसमें चर्यागीत लिखे, जो 'लावनी' में 'रंगत सोहनी' (16 मात्रा) से मिलते-जुलते हैं । उदाहरणार्थ एक छन्द देखिये -

"जोइनि तइं बिनु खनहिं न जीवमि ।
तो मुह चुम्बी कमल रस पीवमि ।।"[4]

600 ई. में जैनधर्म प्रचलित हुआ। सम्वत् 800 विक्रमी में जैन कवि स्वयंभू हुये, इन्होंने 'पज्झटिका' छन्द में 'सखीदौड' के वजन में रचना की है। मुनि रामसिंह रहस्यवादी कवि थे। इन्होंने 'हाकलि' छन्द (14 मात्रा) की लय में कुछ रचनाएँ की हैं, यथा -

---

1- विक्रमोर्वशीयम्, 4/24
2- प्राकृत पैंगलम्, भाग-2, पृष्ठ 336-337
3- वही, पृष्ठ 342
4- गंडरीपा

"पंडिय पंडिय पंडिया ।
कणु छंडिवि तुस कंडिया ।।
अत्थे गंथे तुट्ठोसि ।
परमस्थुण जाणहि मूढोऽसि ।।"

जैन कवियों ने प्रमुख रूप से चतुष्पदी छन्दों का प्रयोग किया है। जिनका विकसित रूप आगे चल कर लावणी साहित्य में **'चार चौक'** हो गया ।

लावणी के क्षेत्र में भावाभिव्यक्ति का माध्यम आरम्भ से खड़ी बोली ही रहा। "साहित्य के क्षेत्र में खड़ी बोली के आदि प्रयोग गोरख वाणी तथा बाबा फरीद शररगंज की वानियों में मिलते हैं।"[1]

यह खड़ी बोली ही बाद में चल कर आधुनिक हिन्दी कहलाई ।

"खड़ी बोली शब्द का प्रयोग आरम्भ में उसी भाषा शैली के लिये हुआ जिसे 1823 ई. के बाद हिन्दी कहा गया ।"[2]

गोरखनाथ को गोरक्षपा भी कहते हैं, यह मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य थे, इन्होंने नाथ पन्थ चलाया। तिब्बती जनश्रुति में इन्हें **'बौद्ध बाजीगर'** कहा जाता है। कुछ लोग इन्हें नवम शताब्दी में उत्पन्न मानते हैं, परन्तु यह 1250 विक्रमी के लगभग जनमें होंगे, यह सिद्ध परम्परा के अन्तिम कवि थे। यह गोरखपुर के रहने वाले ब्राह्मण थे। इन्होंने नेपाल में शैव मत का प्रचार किया था। यह हिन्दी, संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे, 'शिव' इनके आराध्य थे। लावनीकारों ने इन्हीं शिव को **'तुर्रा'** के रूप में अंगीकृत किया है।

"लोकभाषा में जनता के अपने गीतों का प्रचलन इनकी पुष्ठभूमि प्रतीत होता है।"[3]

इन्होंने इस तथ्य को भी भलीभांति जान लिया था कि पदों में राग के साथ संगीत का समन्वय भी अत्यन्त आवश्यक है, अतः उन्होंने जो टेक देकर पद लिखे हैं उनका विकसित रूप ही 'लावनी' में पाया जाता है। 'खड़ी रंगत' में इनके 'नारी परित्याग' पद की कुछ पंक्तियां देखिये-

"निरगुण नारी सूँ नेह करंता, झबके रैंणि बिहांणी जी ।। टेक ।।
डाल न मूल, पत्र नहिं छाया, बिण जल पिंगुला सींचे जी ।
बिण ही मढ़ीयाँ मंदला बाजै, यण विधि लोका रीझै जी ।।"

1- हिन्दी साहित्य कोश, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 25।
2- वही, पृष्ठ 250
3- डा0 रांगेय राघव, गोरखनाथ और उनका युग, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 170

इसके उपरान्त जन-साधारण की भाषा खड़ी बोली को साहित्यिक रूप प्रदान करने वाले अमर गायक खुसरो का ज़माना आता है।

यहीं से लावनी की धारा अपना पथ प्रशस्त कर अजस्र प्रवहमान होती हुई दृष्टिगोचर होती है। अतः इससे परवर्ती साहित्य को ही लेकर मैंने लावनी साहित्य का इतिहास मूलक काल-विभाजन किया है। इससे पूर्ववर्ती काल को यदि कोई चाहे तो **'सन्धिकाल'** के नाम से अभिहित कर सकता है।

काल-विभाजन

1- आदि काल : भक्ति चेतना-काल, सन् 1250-1600 ई.
2- मध्य काल : शृंगार चेतना - काल, सन् 1601-1870 ई.
3- आधुनिक काल : राष्ट्रीय चेतना-काल, सन् 1871-अब तक
(क) प्रथम उत्थान, भारतेन्दु युग, सन् 1870-1893 ई.
(ख) द्वितीय उत्थान, श्रीधर पाठक युग, सन् 1894-1918 ई.
(ग) तृतीय उत्थान, नारायणानन्द युग, सन् 1919-1947 ई.
(घ) चतुर्थ उत्थान, स्वातन्त्र्योतर युग, सन् 1948-अब तक ।

विशिष्ट विचारधारा या तत्तत्कालीन प्रमुख प्रवृत्तियों के आधार पर अथवा युग-प्रवर्तक लावणीकारों के नाम पर ही लावणी साहित्य का यह काल-विभाजन कर नामकरण किया गया है। इससे पूर्व लावणी साहित्य के क्षेत्र में किसी भी विद्वान् ने इस ओर ध्यान नहीं दिया। केवल स्वर्गीय स्वामी नारायणानन्द जी सरस्वती ने उत्थान शब्द को **'दौर'** की संज्ञा देकर लावणी में वर्णित विषयों का क्रम निर्धारित किया था, समय का नहीं। इस सम्बन्ध में **'लावनी का इतिहास'** पृष्ठ 77 से 84 तक द्रष्टव्य है, जहां प्रथम दौर इष्टदेव स्तुति, द्वितीय दौर महापुरुषों की जीवनी, तृतीय दौर रामकृष्ण लीला, चतुर्थ दौर नखशिख वर्णन का वाचक है। विषय-विभाजन की दृष्टि से पहले और तीसरे दौर का समावेश भक्ति चेतना-काल में और दूसरे दौर का राष्ट्रीय चेतना-काल में एवं चौथे दौर का शृंगार चेतना-काल में हो जाता है ।

लावनी लोक-साहित्य की एक विधा

लो कृ 'दर्शने' धातु में 'घ' (पुंसि संज्ञायां घ प्रायेण) प्रत्यय लगाने से लोक शब्द की सिद्धि होती है। लोक का अर्थ 'देखना' देशी बोलियों में भी व्यवहृत होता है, जैसे 'क्या लोंकता है?' काव्य में 'वि' और 'अव' उपसर्ग लगाने से भी यही अर्थ निकलता है, जैसे -

"लोक विलोक लिया तुझको, मुझको अब मोह रहा नहीं तेरा।"[1]

आगे चल कर लोक का अर्थ जन में रूढ़ हो गया -

"लोक में बसने वाले जन, जन की भूमि और भौतिक जीवन तथा तीसरे स्थान में जन-संस्कृति इन तीन क्षेत्रों में 'लोक' के पूरे ज्ञान का अन्तर्भाव होता है ।"[2]

इस प्रकार लोक का समष्टिगत अर्थ जन-समूह हो जाता है । गीता में भी लोक का अर्थ 'जन' ही मान है -

"यद् यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ।।"[3]

इससे और ऊपर उठ कर लोक का अर्थ सृष्टि हो गया, ऐसे चौदह लोक, त्रिलोक, भूलोक आदि। **'लोकस्तु भुवने जने।'**

भारतीय साहित्य में लोक और वेद दोनों में भेद है -

"वेदान्नो वैदिकाः शब्दाः सिद्धा, लोकाच्च लौकिकाः ।"[4]

* * *

"यथा लौकिकवैदिकेषु प्रिय तद्धिता दाक्षिणात्या यथा लोके वेदे चेति प्रयोक्तव्ये यथा लौकिके वैदिकेष्विति प्रयुञ्जते ।"[5]

1- अजेय, प्रार्थना, कानपुर, ज्येष्ठ, सम्वत् 2009 वि॰ सन्दर्भांकित - कुणाल, पृष्ठ 14
2- डा0 वासुदेवशरण अग्रवाल, पृथिवी पुत्र, पृष्ठ 85
3- श्रीमद्भगवद्गीता 3/21।
4- पतंजलि, व्याकरण महाभाष्य, पसपशाह्निक : अनु0 चारुदेव शास्त्री, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 16
5- वही, पृष्ठ 27-28

लोक साहित्य का अर्थ लोगों की दृष्टि में ग्रामीण जनता द्वारा ग्रामीण भाषा में ग्रामीण जनता के लिये बनाया गया असंस्कृत साहित्य है। यह धारणा ग़लत है, क्योंकि वेद से भिन्न समस्त बातें लौकिक होती हैं, यदि लोक साहित्य को उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाएगा तो वेदेतर वाल्मीकि रामायण से लेकर आज तक का सम्पूर्ण संस्कृत वाङमय भी लोक-साहित्य की परिधि में पर्यवसित हो कर अवहेलना का पात्र बन जाएगा। अतः लोक-साहित्य का अर्थ लोक के सुख-दुःख आदि की अनुभूति कराने वाला उसका अपना साहित्य समझ कर उसे उच्च शिष्ट साहित्य की कोटि में रख कर सम्मान की दृष्टि से देखा जाना चाहिए ।

'लावनी' लोक साहित्य की ही एक विधा रही, इसके प्रमाण में रासविलास वर्णन का हम यह श्लोक उद्धृत करते हैं जिससे गोपियों द्वारा स्वनिर्मित लावण्य युक्त लोकगीतों का उल्लेख कवि ने किया है -

"लावण्य सार-सरसानि विलास लास्य,
वैदग्ध्यमुग्धमधुराणि तदीहितानि ।
कारुण्यमात्रपिशुनानि जगुः सुगीत-
बन्धेन ता निज निज प्रतिभाकृतेन ।।"[1]

"उस समय वे सभी गोपियां परम प्रसन्न होकर अपनी-अपनी प्रतिभा के द्वारा बनाये हुए सुन्दर गीतमय निबन्ध के द्वारा, श्रीकृष्ण सम्बन्धी लीलाओं का ही गायन करने लग गईं। वे सभी गीत लावण्य के सार से सरस थे विलासमय नृत्य के चातुर्य से मुग्ध एवं मधुर थे, तथा श्रीकृष्ण की अहैतुकी करुणा के भावमात्र के सूचक थे ।"[2]

इस प्रकार आदिकाल से ही लोक साहित्य, आभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पाण्डित्य के अलंकार से रहित सरल जीवन बिताने वाले प्राणिवर्ग की निधि है। जब पढ़ने लिखने के साधन नहीं थे, तब दुःख की उद्वेगावस्था में सहज भावुक प्राणी कुछ न कुछ अवश्य गुनगुनाता होगा। सुख दुःख की अनुभूति की स्वाभाविक भाषा में अभिव्यक्ति ही लोक साहित्य की पृष्ठभूमि है।

1- महाकवि कर्णपूर, श्री आनन्दवृन्दावन चम्पू, पृष्ठ 805
2- टीकाकार वनमालिदास शास्त्री, वही, पृष्ठ 805

(अ) "लोक साहित्य के अन्तर्गत वह समस्त बोली या भाषागत अभिव्यक्ति आती है, जिसमें- आदिम मानस के अवशेष उपलब्ध हों।

(आ) परम्परा मौखिक क्रम से उपलब्ध बोली या भाषागत अभिव्यक्ति हो, जिसे किसी की कृति न कहा जा सके, जिसे श्रुति ही माना जाता हो, और जो लोक-मानस की प्रवृत्ति में समाई हो ।

(इ) कृतित्व हो किन्तु वह लोक-मानस के सामान्य तत्त्वों से युक्त हो कि उसके किसी व्यक्तित्व के साथ सम्बद्ध रहते हुये भी लोक उसे अपने ही व्यक्तित्व की कृति स्वीकार करें।"[1]

लोक-मानस की मार्मिक अभिव्यक्ति लिये हुए कुछ ऐसे प्रिय लोकगीत होते हैं जो दैवी वाक्य के समान सद्यः प्रभावकारी होते हैं, कभी-कभी यह भी ज्ञात नहीं होता कि ऐसे हृदयस्पर्शी अमर काव्य का स्वर-सन्धाता कौन है । ये लोकगीत किसी एक की सम्पन्ति न होकर सम्पूर्ण लोक की निधि हैं । ये ताल और लय पर आधारित होते हुए भी स्वच्छन्द, छन्द्-बन्ध-विनिर्मुक्त होते हैं, यहां भाषा छन्द का नहीं अपितु छन्द ही भाषा का अनुसरण करते हैं।

जैसाकि हमने पहले प्रकरणों में यह सिद्ध किया है कि लावणी का उद्भव तो वेद से हुआ फिर संस्कृत से प्राकृत और अपभ्रंश से हिन्दी में आते-आते वह लौकिक 'लावनी' बन गई । मेरी दृष्टि में लावनी लय पर आधारित मात्र लोकगीत ही नहीं अपितु विशिष्ट साहित्य भी है। एक समर्थ साहित्य में जो भाव और भाषा का सौन्दर्य अपेक्षित है, वह इसमें विद्यमान है। और तो और लावनी स्वयं एक शास्त्रीय छन्द का नाम है, जिसमें 22 मात्राएं होती हैं, और जिसे 'राधिका' या 'वशीकरण' भी कहते हैं। फिरभीआधुनिक साहित्य में लावनी को लोकसाहित्य की एक विधा ही माना है। इसका प्रमुख कारण यह है कि इसके रचयिता प्रकाशन से दूर भागते रहे और जब अनुकूल समय आया तो इसमें अनपढ़ व्यक्ति भी हिस्सा लेने लगे और पढ़े लिखे भी परस्पर प्रतिस्पर्द्धा के कारण एक-दूसरे पर कीचड़ उछालने लगे, "इस कदर से कि आपस में लड़ भी पड़ते हैं, इसी सबब से इसको कोई भला आदमी पसंद नहीं करता है।"[2]

1- डा0 सत्येन्द्र, लोक साहित्य विज्ञान, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 4-5
2- काशीगिरि बनारसी, ला0 ब्र0 ज्ञा0 भूमिका, पृष्ठ 2

"ख्याल को भी लावनी के ही अन्तर्गत समझना चाहिये ।"[1]

"जब तक ख़यालबाजी में उस्ताद लोग रहे तब तक उसकी क़द्र होती रही, किन्तु जब यह अनपढ़ लोगों के हाथ में आई तब उसका पतन होने लगा ।"[2]

इतिहासकारों ने भी इसे सर्वसाधारण का साहित्य ही माना है -

"इस साहित्य में साहित्य और संगीत दोनों का सम्मिश्रण होने से इसकी तरफ़ सर्व साधारण का आकर्षित होना स्वाभाविक ही था ।"[3]

पूर्व या अपर पद्यों की अपेक्षा न रखने वाला यह लावणी साहित्य एक प्रकार से मुक्तक साहित्य है, क्योंकि जो रस-चर्वणा में किसी पूर्व या अपर पद्य की अपेक्षा नहीं रखता और रस-सृष्टि में स्वयं समर्थ है, ऐसे रस-युक्त पद्य को मुक्तक कहते हैं।

"मुक्तमन्येन नालिंगितं मुक्तकम् । तस्य संज्ञायांकन् । पूर्वापर निरपेक्षेणापि हि येन रस-चर्वणा क्रियते तदेव मुक्तकम् ।"[4]

सचमुच यह मुक्तक साहित्य जनता के मनोभावों का प्रतिबिम्ब था, वैसे इसमें भावात्मक गीतों के अतिरिक्त इतिवृत्तात्मक कथानकयुक्त गीत भी पर्याप्त मात्रा में लिखे गए ।

"साहित्य शब्द के साहचर्य के कारण लोकहृदय की करुण मधुर अनुभूतियों से उसका कुछ न कुछ सम्पर्क बना रहता था।"[5]

कुछ विद्वानों की दृष्टि में ख्याल लोक-नाट्य का रूप है ।

"लोक नाट्य का वह रूप, जो परम्परागत बंधी बंधाई रंग शैली में लोक जीवन में प्रचलित आख्यानों का प्रदर्शन कर सामान्य जनता का मनोरंजन करता है, ख्याल कहलाता है।"[6]

ख्याल और लावनी लिखने वाले लोक-कवि के रूप में ही प्रतिष्ठित हुए ।

"मालवा के ख्यालों के दंगलों से लेकर लावनी, झूलना, कजली आदि की प्रतियोगिताएं लोक-कवियों के काव्यत्व एवं पाण्डित्य प्रदर्शन का अवसर प्रदान करती हैं ।"[7]

1- रामचन्द्र शुक्ल, हि0 सा0 का इतिहास, अष्टम संस्करण, पृष्ठ 598
2- नारायण प्रसाद अरोड़ा, ला0 का इ0 भूमिका, पृष्ठ 3
3- स्वामी नारायणानन्द, वही, प्राक्कथन, पृष्ठ ।
4- अभिनव गुप्त, लोचन, पृष्ठ 323
5- डा0 नगेन्द्र, अनुसन्धान की प्रक्रिया, लेख से
6- डा0 महेन्द्र भानावत, लोक नाट्य परम्परा एवं प्रवृत्तियाँ, पृष्ठ 2।
7- डा0 श्रीराम शर्मा, लोक साहित्य सिद्धान्त और प्रयोग, पृष्ठ 23।

"लावनी अथवा ख्याल अपने प्रवाह तथा तन्मयता के लिये प्रसिद्ध है, इसका प्रयोग आशु कविता के लिये भी जन साधारण में होता है। अपनी रुचि का विषय लेकर आशुकवि ढ़फ बजाकर कथा को पद्यबद्ध करते हुये, गाते चले जाते हैं। इस ख्यालबाजी की प्रतियोगिताएं भी होती हैं, और जनता इनमें विशेष रुचि रखती है। ऐसे छन्द का प्रयोग निस्सन्देह जनता की भावनाओं तथा उसके आकर्षण का द्योतक है।"[1]

"व्रज जन पद की यदि हम उन काव्य धाराओं का पर्यवेक्षण करें, जिन्होंने साधारण जनता की रसानुभूति को जागृत रक्खा और उस पर धार चढ़ाई तो हमें ज्ञात होगा कि ख्याल या लावनी ने इस महत् कार्य में कितना महत्त्वपूर्ण योग दिया है। ख्याल या लावनी मुख्यतः उस वर्ग का साहित्य है, जिसे हम नगरों में रहने वाला श्रमजीवी वर्ग कह सकते हैं, यह वर्ग ग्रामों से दूर पड़ जाने के कारण एक ओर राजपूती - होली, जिकड़ी के भजन, ढ़ोला, रसिया आदि ग्रामीण साहित्य के उपादानों से अपनी तृप्ति करने में असमर्थ था तो दूसरी ओर अपनी शिक्षा सम्बन्धी विशेष स्थिति के कारण पद्माकर, बिहारी जैसे कवियों के काव्यामृत से भी लाभ न उठा सकता था। ऐसी स्थिति में ख्याल-लावनी साहित्य की उत्पत्ति हुई और उसके प्रचार, प्रसार का भी मुख्य क्षेत्र जनता का यही वर्ग रहा ।"[2]

एक ज़माना था जब लोगों का लावनी की हास्य व्यंग्यात्मक फटकेबाजी सुनने का शौक़ वर्तमान सिनेमा आदि देखने से भी बढ़ कर था । लावनी के ऐसे शौकीनों को लक्ष्य कर पं. प्रताप नारायण मिश्र ने लिखा था -

"लावनीबाजों के फटके, पर बड़े प्रेम से हँस हँस के खड़े खड़े धक्का खाते हुये घन्टों सुना करेंगे ।"[3]

"काव्यरूप की दृष्टि से आधुनिक गीति-काव्य का प्रारम्भ सम्भवतः गांवों में प्रचलित लोक-गीतों से होता है। संयुक्त प्रान्त के पशिचमी प्रान्तों में लावनी का बहुत प्रचार है और साधारणतः लावनी बाजों के दो अखाड़ों में बढ़ा बढ़ी चला करती है । ..... आधुनिक गीति-काव्य के रूप पर इन लोक गीतों का बहुत प्रभाव पड़ा है, विशेष कर लावनी का।"[4]

1- डा0 व्रजकिशोर मिश्र, अवध के प्रमुख कवि, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 260-261
2- रतनलाल बंसल, पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ 887
3- देशोन्नति - लेख, गद्य-काव्य संकलन, सम्पादक शम्भुनाथ सिंह, नवम संस्करण, पृष्ठ 20
4- डा0 श्रीकृष्णलाल, आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृष्ठ 107

"जिन लोगों का ग्रामीणों से सम्बन्ध है, वे गांव में ऐसी पुस्तकें भेज दें, जहां कहीं ऐसे गीत सुनें उसका अभिनन्दन करें इस हेतु ऐसे गीत बहुत छोटे-छोटे छन्दों और साधारण भाषा में बनें, वरंच गँवारी भाषा में भी और स्त्रियों की भाषा में विशेष हों। कजली, ठुमरी, खेमड़ा, कहरवा, आल्हा, चैती, होली, सांझी लावनी, जांते के गीत, विरहा, चनैनी, ग़ज़ल इत्यादि। ग्राम-गीतों में इनका प्रचार हो और सब देश की भाषाओं में भी इसी के अनुसार हों, अर्थात् पंजाब में पंजाबी, बुन्देलखण्ड में बुन्देलखण्डी बिहार में बिहारी। ऐसे देशों में जिस भाषा का साधारण प्रचार हो उसी भाषा में गीत बनें।" - भारतेन्दु के ये शब्द आज भी हमारे लिये मैनीफेस्टो' के रूप में काम आ सकते हैं।"[1]

"भारतेन्दु - युग की कविता में कजरी, ठुमरी, लावनी, मुकरी, पहेली इत्यादि जन-वाणी के रूप हैं।"[2]

वास्तव में अगर आप भारतीय यथार्थ जीवन के दर्शन करना चाहते हैं तो लावनी का संगीत सुनने का प्रयत्न कीजिये।

वस्तुतः लावनीकार जन्मजात प्रतिभा सम्पन्न, बहुश्रुत अनुभवी होते थे, एवं गुरुजनों से काव्य-रचना का ज्ञान प्राप्त कर कविता लिखते थे। हिन्दी साहित्य में इनके कवित्व गुण के प्रथम पारखी एकमात्र काव्य-कला-कोविद श्री जयशंकर 'प्रसाद' हुये हैं जिन्होंने इन्हें 'शुद्ध रहस्यवादी कवि' कह कर सम्मानित किया है। "[3]

यद्यपि यह बहुत सत्य है कि सभी लावनीकार वेद, व्याकरण या दर्शन आदि शास्त्रों के बहुत बड़े पंडित नहीं होते थे, परन्तु सन्तों और सुधी सज्जनों के संसर्ग से कबीर की भांति उन्हें विविध विषयों का आवश्यक ज्ञान अवश्य होता था, फिर कवि की कसौटी विद्वत्ता नहीं, अपितु उसकी भाव-प्रवणता, रसात्मकता और प्रतिभा है।

जिस प्रकार कबीर आदि को हिन्दी साहित्य में सम्मानित स्थान मिला है, उसी प्रकार लावनीकारों को भी आदर मिलना चाहिये, मैं कबीर की 'साखी' और 'बानियों' के समान ही लावनी को लोक-साहित्य की एक विशिष्ट विधा मानता हूँ। निश्चय ही ऐसे कवियों की रचनाओं के संचय से हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि होगी। उनकी वर्णन-शैली आनन्दवर्धक, अनूठी और उपदेशप्रद है, अधिक पढ़े लिखे न होते हुये भी ये संस्कृति के रक्षक और सभ्यता के शिक्षक रहे हैं। अतः 'बोलना उनसे सीखिये जो पढ़े-लिखे नहीं हैं।"[4]

1- श्यामसुन्दर लाल दीक्षित, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र - प्रकाशन विभाग, भारत सरकार
2- डा0 जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल, हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, सप्तम संस्करण, पृष्ठ 339
3- देखो -'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध', पृष्ठ 68
4- कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', 'सम्मेलन-पत्रिका', लोक संस्कृति अंक, सं0 2010 वि.

निष्कर्ष

लावनी अथाह रत्नाकर के समान है जिसमें अनेक रत्न भरे हुए हैं, इसमें अवगाहन करने पर अब तक पद्य पुस्तकें-56, निबन्ध-34, इतिहासपरक ग्रन्थ-4, मराठी काव्य संकलन-8, मराठी आलोचना ग्रन्थ2, राजस्थानी ख्याल की पुसतकें-198, राजस्थानी समालोचना ग्रन्थ-3; कुलयोग 305 प्रकाशित पुस्तकें उपलब्ध हुई हैं ।

कुछ लावनी प्रेमियों के पास लावनी साहित्य की हस्तलिखित सामग्री सुरक्षित है, ऐसे व्यक्तियों की संख्या 16 है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा खोज में उपलब्ध पुस्तकों की संख्या 26 है, और हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के संग्रहालय में लावनी पद्य की 15 पुस्तकें हैं। यह सब सामग्री अमुद्रित है, जो हिन्दी लावनी साहित्य की अमूल्य निधि है।

लावनी के इतिहास-परक आलोचनात्मक सभी ग्रन्थ एकांगी हैं, अन्य हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने भी लावनी साहित्य की उपेक्षा की है। इस प्रकार उपलब्धि और सीमाएं निर्धारित करते हुए अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से हमने इतिहास-मूलक विभाजन कर हिन्दी लावनी-साहित्य को तीन कालों में बांटा है। आदि काल को भक्ति चेतनाकाल, मध्य काल को शृंगार चेतनाकाल, और आधुनिक काल को राष्ट्रीय चेतनाकाल के नाम से अभिहित किया है। इससे पूर्व लावनी साहित्य में इतिहास-परक काल विभाजन, उपलब्ध मुद्रित और अमुद्रित सामग्री न ढूंढ सकने के कारण तथा काव्यगत प्रवृत्तियों के व्यवस्थित अध्ययन के अभाव में किसी विद्वान् द्वारा सम्पन्न नहीं हो सका था ।

लावनी साहित्य सर्वांगीण काव्य-तत्त्वों से परिनिष्ठित होने से यद्यपि उच्च शिष्ट साहित्य है तो भी विशेष रूप से लयात्मक एवं वैयक्तिक होने के कारण उसकी परिगणना यहां लोक साहित्य के अन्तर्गत प्रतियोगी गीतिका के रूप में ही की गई है।

....

तृतीय अध्याय

प्रतिपाद्य विषय एवं शैलियाँ

लावनी का प्रतिपाद्य

लावनीकारों ने उस अजर, अमर, अछेद्य, अभेद्य, निर्गुण, निराकार, निर्विकार, परब्रह्म को अपना प्रिय मान कर चारु चित्रमयी भाषा में अनेक प्रकार के हार्दिक प्रेम की अभिव्यक्ति की है। ऐसे शिव-शक्ति की उपासना राधा-कृष्ण की भक्ति एवं विभिन्न देवी-देवताओं की स्तुतियाँ भी इन्होंने की हैं, परन्तु उन सभी में उद्दाम शृंगार का ही शुद्ध स्वरूप सर्वत्र झलकता है, जिससें अध्यात्मपरक रचनाएँ भी सौन्दर्योपासना की परिधि में परिणत हो गई हैं। इन्होंने अनेक लौकिक आलम्बनों द्वारा अलौकिक सत्ता का प्रतिपादन किया है, इनकी सभी उक्तियाँ प्रायः समासोक्तियों के रूप में हैं। आत्मा की परमात्मा के साथ भावात्मक ऐक्यानुभूति को प्रकाशित करना, कल्पना के पंख लगाकर चिरन्तन अचिन्त्य को चिन्तन में लाना एवं द्वैत की भावना को अद्वैत के अब्धि में बोरना ही इनका अन्तिम लक्ष्य रहा है। आशा-निराशा, सुख-दुःख एवं मान-अपमान को समान मान अपनी सीमा को असीम में विलीन करने वाले ये अलमस्त लावनीकार ही सच्चे रहस्यवादी कवि हैं, 'जो लावणी में आनन्द और अद्वयता की धारा बहाते रहे।'[1]

अज्ञान से ज्ञान की ओर, असत् से सत् की ओर चलने की प्रेरणा देते हुए प्रकृति-पुरुष का पर्यवेक्षण, **'रसो वै सः'** की प्राप्ति, राम और श्याम की ललित ललाम लौकिक लीलाओं का अपने अनवद्य पद्यों में मुखरण कर परमानन्द, परात्पर, पूर्ण ब्रह्म के अस्तित्व का चित्रण ही प्रमुख रूप से इन काव्य-पुरुषों का प्रतिपाद्य रहा है। वैसे भक्ति, रहस्य और आत्म-समर्पण के साथ-साथ राष्ट्रीय भावना को भी लावणीकारों ने अपनी रचनाओं में स्थान दिया है।

---

1. जयशंकर प्रसाद, काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, पृष्ठ 68

'स्वामी नारायणानन्द सरस्वती ने लावनी के इतिहास में लावनी के चार दौर प्रदर्शित किये हैं।'[1]

तदनुसार पहले दौर में गणेश, शिव, महावीर, राम, कृष्ण, गंगा, यमुना, सरस्वती, दुर्गा, गौरी, महाकाली आदि देवी-देवताओं की स्तुति तथा पैगम्बरों, पीरों और औलियाओं की इबादत सम्बन्धी रचनाएँ ही अधिकतर लावनीकारों ने विरची हैं, उदाहरणार्थ -

'शंकर भोनानाथ तुम्हारे, क्या है कमी ख़ज़ाने में।
तीन लोक बस्ती में बसाये, आप बसे वीराने में।।'[2]

ऐसे ही भक्तिपरक बहुत-सी लावनियाँ हैं, जो भक्तों को कण्ठस्थ हैं। कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं -

— 'हरी हरी दीनता न तुमने, हो दीनबन्धु महान कैसे।
न की जो करुणा है कान्ह। मुझ पर, बने हो करुणानिधान कैसे।।'[3]

— 'मोर मुकुट मकराकृत कुंडल, सकल श्याम-शृंगार लिखूँ।
नख-शिख-शोभा, मनोहर गल मोतियन के हार लिखूँ।।'[4]

— 'पंच तत्त्व को ईश मिलावे, शक्ति नहीं किसी और में है।
ज्ञान के चक्षु खोल के देखो, वो व्यापक सब ठौर में है।।'[5]

— 'जाम वहदत का साकी ने भर पिलाया,
तो जलव - ए - खुदा नज़र आया।'[6]

दूसरे दौर में पौराणिक तथा ऐतिहासिक पुरुषों की जीवनियाँ लिखी गई। उदाहरणार्थ -

'प्रण विदेह भृगुपति नाराजे, बड़े बड़े राजों का ग़रूर।
साथ धनुष के, रामचन्द्र ने किया तोड़ कर चकनाचूर।।'[7]

---

1. द्रष्टव्य, ला. का इ., पृष्ठ 77
2. बाबा बनारसी, लावनी ब्रह्म ज्ञान
3-5 अज्ञात
6. लाला लाल, ला. का इ., पृष्ठ 76
7. भैरों सिंह, ला. का इ., पृष्ठ 79

इसी प्रकार महाभारत और रामायण के चरित-नायकों को लेकर भी बहुत-सी लावनियाँ लिखी गईं ।

तीसरा दौर राम-भक्ति और कृष्ण-भक्ति का है। कलापक्ष और भावपक्ष की दृष्टि से हिन्दी-साहित्य की राम-भक्ति शाखा और कृष्ण-भक्ति शाखा के समान ही लावनी-साहित्य का भी यह काल स्वर्णिम कहा जा सकता है । दोनों धाराओं का एक-एक उदाहरण देखिये -

— 'घर घर प्रभु देखत फिरत सखिन की नारी ।
बन आये गोपीनाथ वैद्य बनवारी ।।' [1]

— 'किया राम वन-गमन मान कर पितु की बानी को ।
तापस वेष बनाय चले, तज के रजधानी को ।।' [2]

चतुर्थ दौर में नख-शिख वर्णन, और नायिका-वर्णन ही अधिकतर किया गया है, जैसे -

— 'अटपट बैन, नैंन आलस अति, मन्द भई मुख-अरुणाई ।
कहो रात की बात पियारी, क्यों तन पर जरदी छाई ।।' [3]

— 'पाती श्याम सुख-थाती चाहे, निशि दिन आग जलाती है।
पाती ना भेजी, उसका इस कारण बिस्तर पाती है ।।' [4]

— 'सोवत राधा, बाधा यह, कहुँ मुख से पट हट जावे ना।
चन्द्र के धोखे, चकोरी मुँह पर चोंच चलावे ना ।।' [5]

इसी प्रकार अध्यात्म-परक और उपदेश-परक लावणियाँ भी प्रत्येक युग में लिखी गई हैं, यथा -

— 'ये काया है काम-धेनु कर प्रेम, प्रीति हमने पाली ।
सभी पदारथ, इसी में इच्छा फल देने वाली ।।' [6]

---

1. गणेश प्रसाद, ला॰का॰इ॰, पृष्ठ 80
2. नारायण, वही, पृष्ठ 83
3. अज्ञात
4. अज्ञात
5. ला॰का॰इ॰, पृष्ठ 84
6. अज्ञात

— 'माया की जुस्तजू में बाबा, बैल न बनियो तेली का ।
इस माया को, समझते रहना मैल हथेली का ।।'[1]

हालावादी रचनाओं का भी दौर चला। एक रिन्द की मयनोशी का अंदाज़ देखिये -
'भर भर प्याले दे शराब सक़िया सुबह से शाम तलक ।
मैं वह पीने वाला हूँ, खाली कर दूँ गोदाम तलक ।।'[2]

युगानुरूप गाँधीवाद और आर्यसमाज का प्रभाव भी लावणी-साहित्य पर पड़ा और उसमें विधवा-विवाह और अछूतोद्धार, पोप-पाखण्ड-खण्डन, देश-भक्ति, शहीद-स्तवन, सत्य, अहिंसा, स्वदेशी-आन्दोलन, सत्याग्रह और जेल-यात्रा आदि विषयों पर भी पर्याप्त सृजन हुआ ।

महर्षि दयानन्द की प्रशंसा देखिये -
— 'दयानन्द आनन्द कन्द भये, पाखण्डिन के मत टारन ।
हुये जगत्-विख्यात चहूँ दिशि, परमारथी तरन-तारन ।।'[3]

— 'दयानन्द स्वामी किया मण्डन,
नास्तिक मत सब किये खण्डन ।
मिटा दिये झूठे पाखण्डन ,
काट दिये कपट - जाल बन्धन ।
नवल सिंह दर्शन अभिलाषी ।
काट दे फन्दा चौरासी ।।'[4]

लावनी सामाजिक सुधार में कवि कहता है -
'जिनको वैदिक विज्ञान महा फल पाया ।
उन वीरों ने अखिलेश एक अपनाया ।।'[5]

---

1. अज्ञात
2. अज्ञात
3. चौ.नवल सिंह साहिब वर्मा, सभा प्रसन्न, सम्वत् 1941 का संस्करण
4. वही
5. नाथूराम शर्मा शंकर, भारतोदय, वर्ष 1, अंक 3, 1966 विक्रमी

जब सत्य और अहिंसा का शस्त्र संभाले हुए स्वतन्त्रता-सेनानी, ब्रिटिश-शासन के विरुद्ध सविनय अवज्ञा-आन्दोलन एवं सत्याग्रह-संग्राम में बढ़-बढ़ कर भाग लेने लगे और भारत की मुक्ति के लिए स्वयं को सहर्ष गिरफ्तार कराने लगे, तो लावनीकार भी उनकी बांकी झाँकी का चित्रांकन करने में पीछे नहीं रहे -

'हो प्रसन्न मन चले भक्त जन, पुण्य पर्व की बेला है ।
रेल-पेल हो रही जेल मे, मनो कुम्भ का मेला है ।।'[1]

परतन्त्रता काल में देश-भक्ति का ऐसा असर लावणीकारों के भावुक हृदय पर पड़ा कि उन्हें हर शै में राष्ट्र का ही जलवा नज़र आने लगा। यहाँ तक कि प्रियतमा की श्यामल अलकावलि और गौर मुख मण्डल क्रमशः भारतीयों तथा गौरांगों के प्रतीक बन गए -

'गोरे गोरे गालों पर क्या घिरी घटा बालों की है ।
मचा शोर है, चढ़ाई लन्दन पर कालों की है ।।'[2]

महात्मा गांधी के महाप्रयाण पर शोकोद्गार इस प्रकार मुखरित हुए -

— 'एक बधिक जाचक बन आया, दे जीवन का दान चले ।
इन्द्रप्रस्थ से इन्द्रलोक, कर राष्ट्रपिता प्रस्थान चले ।।'[3]

— 'न टूटे क्यों हाथ वे सितमगर, चलाई थी गोलियां जो भर के।
हिला न जालिम का किस लिये दिल, हुये न टुकड़े रिवालवर के।।'[4]

विश्वबन्धुत्व एवं राष्ट्रीय एकता पर भी पर्याप्त मात्रा में लिखा गया है -

'हो देश कोई, हो वेश कोई, हो रूप कोई, हो रंग कोई ।
स्वरूप हम सब हैं एक जल के, भवंर है कोई, तरंग कोई ।।'[5]

इस प्रकार ईश-उपासना, आत्म-चिन्तन, तत्त्व-निरूपण, सौन्दर्यासक्ति, प्रेम, भक्ति, रहस्य, समर्पण और स्वदेशानुराग की उदात्त भावनाओं का प्रतिपादन लावनी साहित्य में सर्वत्र परिलक्षित होता है।

---

1. स्वामी नारायणानन्द, लेख, 'प्रताप' सा. 6 अक्टूबर, 1952
2. लावनी का इतिहास, पृष्ठ 277
3. पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ
4. वही
5. अजेय, भव्य भारत, 1973, माह नवम्बर का अंक, पृष्ठ 12

लावनी साहित्य की शैलियाँ

जैसा कि हम पूर्व निर्दिष्ट कर चुके हैं कि लावनी को **'मरैठी'** और **'ख़याल'** भी कहते हैं, अब यहाँ लावनी साहित्य का विस्तार प्रदर्शित करते हुए इन दोनों शैलियों (रूपों) का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है -

■ **मरैठी :**

महाराष्ट्र की भाषा को **'मरैठी'** या **'मराठी'** कहते हैं। प्राकृत-काल तथा अपभ्रंश-काल में सर्वाधिक लोक-साहित्य का निर्माण इसी प्रदेश में हुआ। पेशवा-काल में लावणी-साहित्य का वहाँ बहुत प्रचार और प्रसार था।

"**ज्ञानेश्वर-युग**(13 वीं शती) में मराठी तमाशा और लावणी दोनों चीज़ें विद्यमान थीं। हाँ, ज्ञानेश्वर युगीन मराठी तमाशा और लावणी का स्वरूप कैसा था? इसका सुस्पष्ट चित्र आज नहीं बताया जा सकता। ..... आगे चल कर मराठी लावणी के रूप-लावण्य पर रंगीन हुस्नो-शबाब की नयी बहार छा गयी, रंगीले पेशवाओं के काल (18 वीं शताब्दी) में मराठी तमाशा और लावणी अपने सम्पूर्ण उत्कर्ष पर पहुँच चुके थे, सवाई माधोराव और बाजीराव द्वितीय के समय इसे बहुत मान-सम्मान धन-सम्पदा और शासकीय प्रोत्साहन मिला। ..... मराठी-साहित्य के उत्तर मध्ययुग को '**शाहिरी वाङ्मय का काल**' माना जाता है। यह बड़ा विचित्र एवं सुखद संयोग है कि लगभग उसी समय दोनों साहित्यों में समानान्तर काव्य चेतना एवं काव्य-प्रवृत्तियाँ प्रवर्तित हुईं। अतः हिन्दी साहित्य के रीतिकाल, रीति-शृंगारकाल अथवा शृंगारकाल और मराठी-साहित्य के **'शाहिरी वाङ्मय काल'** की लगभग समान प्रवृत्तियों के कारण साहित्य में समानान्तर वाद का सिद्धान्त चरितार्थ होता है। भले ही हिन्दी के शृंगारकाल की अवधि दो-सौ वर्षों की (1700 से 1900 तक) और मराठी 'शाहिरी वाङ्मय काल' की अवधि केवल एक-सौ वर्षों की (1757 से 1857 तक) रही हो। ..... मराठी लावणी मूलतः प्रेम शृंगार की मधुर रागिनी है।"[1]

---

1. डा. इन्द्र पवार, तमाशा और लावनी, धर्मयुग, 5 नवम्बर 1978, पृष्ठ 3।

"उस समय प्रभाकर, सगन भाऊ, हैवती, होना जी बाला, राम जोशी आदि कई लावणीकार शाहीर निर्माण हुये और मराठी साहित्य शृंगार में डूब गया ।"[1]

छत्रपति शिवाजी महाराज के समय लावनियों का पर्याप्त प्रचार था। उस समय की भाषा पर संस्कृत के अतिरिक्त फ़ारसी का भी काफ़ी प्रभाव था ।

"मराठी पण्डित कवियों की भाषा अधिक संस्कृतनिष्ठ तथा सामान्य जनता के लिये दुर्बोध सी होने लगी थी। परिणाम यह हुआ कि जन-साधारण को इस दुर्बोध भाषा के प्रति आकर्षण न रहा और बहमनी राज्य में जिस तरह अरबी फ़ारसी शब्दों की बहुलता थी उसी तरह शाहीरों की लावनियों, पोवाड़ों तथा दरबारी भाषा में फिर से वह दिखाई देने लगी ।"[2]

महाराष्ट्र में सदैव हिन्दी का मान रहा है । प्रसिद्ध सन्त ज्ञानेश्वर, एकनाथ, तुकाराम, नामदेव, रामदास आदि भक्त कवियों ने हिन्दी में पद लिखे । चिन्तामणि, मतिराम, भूषण जैसे कवि मराठा राजाओं के आश्रित रहे, शिवा जी, संभा जी, तंजावर के शहा जी ने हिन्दी भाषा में रचना की। इतना ही नहीं, महाराष्ट्र ने हिन्दी को अन्तःप्रान्तीय भाषा के रूप में भी स्वीकार किया है ।

मराठी लोक-साहित्य को शाहिरी-साहित्य भी कहते हैं, इसमें पवाडों, लावनियों तथा तत्सम लोक-गीतों का समावेश होता है । शाहिर अथवा शाहर उर्दू के **'शायर'** अथवा अरबी के **'शाहर'** का तद्भव रूप है, जिसका शब्दार्थ **'कवि'** है। मराठी लोक-काव्य की रचना करने वाले कवियों के लिये ही 'शाहीर' शब्द — प्रयुक्त होता है । लावनी साहित्य का प्रचार एवं प्रसार अन्य प्रान्तों की अपेक्षा महाराष्ट्र में अधिक रहा है, इसीलिए लावणी का एक नाम **'मराठी'** या **'मरैठी'** भी प्रसिद्ध हो गया । लावणी और मरैठी में स्वरूपगत साम्य के साथ परम्पराओं की अन्य मान्यताएं भी समान हैं । सन् 1761 से 1818 ई. तक मराठा साम्राज्य की उत्कर्षावस्था में शृंगार रस युक्त लावनियों की रचना हुई ।

"सोलापुर में राम जोशी, कोंकण में प्रभाकर, गंगथड़ी में परशुराम तथा अनन्तफन्दी, पूना में सेना जी जैसे शाहीरों का महाराष्ट्र के कोने-कोने में उदय हुआ ।"[3]

---

1. रा.वा.चि., हिन्दी साहित्य कोश, प्रथम संस्करण, सम्वत् 2015, पृष्ठ 572
2. कृ.पा.कुलकर्णी, मराठी भाषा का उद्‌भव व विकास, पृष्ठ 235
3. कृ.गं.दिवाकर, महाराष्ट्र का हिन्दी लोक काव्य, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 34

इनकी कुछ लावनियाँ मराठी भाषा में हैं तो कुछ हिन्दी में तथा कुछ हिन्दी और मराठी मिश्रित हैं। कुछ लावनियाँ शृंगारपरक हैं तो कुछ अध्यात्मकपरक। 'कलग़ी' वाले अपने को शक्ति का उपासक तथा 'तुर्रा' वाले अपने को शिव का उपासक मानते हैं। होना जी, परशुराम, राम जोशी 'तुर्रा' पक्ष के तथा सगन भाऊ, हैबती, पट्ठे बापु, राव आदि शाहीर 'कलग़ी' पक्ष के माने जाते हैं। प्रभाकर तथा अनन्तफन्दी दोनों पक्षों से पृथक् रह कर स्वच्छन्द लावनी-सृजन करते रहे।

"राम जोशी, प्रभाकर, होना जी आदि लावणीकारों ने राधाकृष्ण प्रेम तथा गोप-गोपियों के विलास को लेकर कई लावणी गीत लिखे हैं। अनन्तफन्दी के 'चन्द्रावल' लावणी गीत का विषय यद्यपि गोपी-प्रेम ही है, फिर भी उसमें — उद्दाम लौकिक शृंगार का ही मादक वर्णन हुआ है। परशुराम के लावणी गीतों में राधा और कृष्ण के विलास-वर्णन पर अध्यात्म का रंग चढ़ाने का प्रयत्न दिखाई देता है। प्रभाकर के कई लावणी गीतों के नायक स्वयं बाजीराव पेशवा थे। उनका बिलास-वर्णन करते समय कवि ने उन्हें कृष्ण बना डाला है।"[1]

प्रभाकर ने हिन्दी भाषा में भी लावनियाँ लिखी हैं -

'अजब खुदा ने नूर बनाया,
चमन हुस्न है प्यारी का।'

"अनन्तफन्दी के साथी मलकफन्दी रतनफन्दी और राघवफन्दी के नाम उल्लेखनीय हैं। होना जी बाला ने ऐसी उत्कृष्ट लावनियों की रचना की जो संगीत की राग-रागनियों में गाई जा सकें। ..... जो वारांगनाएँ ख़याल, ग़ज़ल, ठप्पा, चीज़ आदि को संगीत की राग-रागनियों में गाती थीं उन्हें होना जी की लावनियाँ सीखनी पड़ीं।"[2]

परशुराम बिठोवा खत्री के शिष्य थे, पेशवा-राज्य में इनका सम्मान था, इन्होंने अभंग-पद्धति की रचना छोड़ कर लावनी छन्दों में लिखना आरम्भ किया था। राम जोशी को श्रीमन्त बाला जी बाजीराव पेशवा द्वारा तीस बीघा जमीन इनाम में मिली थी। चिनाबाई और बयाबाई नामक दो रूपवती युवतियाँ इनकी माशूका थीं, जो इनकी बनाई लावनियों को अपने सुरीले कण्ठ में गा-गा कर जनता का मनोरंजन किया करतीं थीं। इनका विशेष अनुराग बयाबाई पर था। यह तुर्रा पक्ष के समर्थक थे और मोरोपन्त को अपना काव्य-गुरु मानते थे।

---

1. डा॰ र॰ श॰ केलकर, मराठी हिन्दी कृष्ण काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृष्ठ 117
2. वही, पृष्ठ 62

सगन भाऊ जाति के मुसलमान थे। बाजीराव द्वितीय ने अन्य शाहीरों के समान इन्हें भी सम्मान दिया, इन्होंने लावनी को 'ख़्याल' नाम से भी अभिहित किया -

'भाऊ सगन गावते 'ख़्याल', बजे चौताल,
मिजालस रामा ने खुश किया।'[1]

इनके अतिरिक्त बालाबहिरू गंगु देवती और लहरी सिद्राम ने भी लावनियों की रचना की है।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन से सिद्ध होता है कि 17 वीं सदी से ही हिन्दी खड़ीबोली उत्तर भारत में ही नहीं अपितु महाराष्ट्र में भी जन-काव्य की भाषा बन गई थी। वस्तुतः संस्कृत के पश्चात् हिन्दी ही ऐसी समर्थ भाषा है जो सम्पूर्ण भारत की हृदय-साम्राज्ञी बन सकती है। 'मराठी' कहने से मराठी का बोध न होकर मराठी लोक-काव्य 'लावणी' का बोध होता है। भारतवर्ष के अन्य प्रान्तों में लावणी का प्रचार महाराष्ट्र से ही हुआ है। उत्तर भारत में लावणी के प्रचारक सन्त तुकनगिरि और शाहअली भी इस कला को महाराष्ट्र से ही लाये थे, उन्होंने मराठा राज्य से 'तुर्रा' और 'कलग़ी' पुरस्कार में प्राप्त किये थे, तभी से लावणी में यह दो थोक प्रचलित हुए। अतएव उत्तर भारत में आज भी 'लावणी' अथवा 'ख़याल' गायन 'मरैठी' गायन के नाम से प्रसिद्ध है।

■ **ख़याल या ख़्याल** :

यह फ़ारसी का शब्द है जिसका अर्थ ध्यान, चिन्ता, सोच-विचार, कल्पना, मत या विचार है, परन्तु रूढ़ि में इसका अर्थ पद्य में प्रयुक्त एक विशेष गान-पद्धति है।

"सम्वत् 1250 के लगभग का संगीताचार्य शार्ङ्गदेव का लिखा हुआ **'संगीत रत्नाकर'** नामक एक प्रामाणिक ग्रन्थ है। ..... शार्ङ्गदेव के उपरान्त इस देश में विदेशीय रागों के सम्मिश्रण से उस संगीत का जन्म हुआ जिसे हम हिन्दुस्तानी संगीत कहते हैं। लोकोत्तर प्रतिभाशाली, अद्‌भुत मर्मज्ञ और सहृदय अमीर खुसरो को इस नवीन परम्परा के सृजन का श्रेय प्राप्त है। उसने अपनी विलक्षण बुद्धि द्वारा भारतीय रागों को फ़ारस के रागों से मिलाकर 15-20 नए रागों की कल्पना की, जिसमें 5-6 आज भी हिन्दुस्तानी संगीत में प्रचलित हैं। ..... ख़्याल परिपाटी का गाना उन्हीं ने

---

1. सगन भाऊ, सन्दर्भांकित, मराठी हिन्दी कृष्ण काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृष्ठ 175

निकाला था। जौनपुर की पठान सल्तनत ने भी संगीत की विशेष उन्नति की थी। हुसैन शाह शर्की स्वयं बहुत बड़े गायक थे उन्होंने कई रागों की परिकल्पना की थी और एक दूसरी परिपाटी के 'ख़याल' का गाना चलाया था।"[1]

"मुहम्मद शाह (रंगीले) के समय में ध्रुपद्र बानी के ख़याल का खूब प्रचार हुआ था। ..... मराठी ने संगीत को खूब अपनाया, ख्याल के पिछले सभी आचार्य ग्वालियर में ही हुये। अब भी ख्याल का वह सबसे बड़ा केन्द्र है।"[2]

वर्तमान काल में उक्त ख़याल और प्रतिपाद्य ख़याल की गायन शैली में बहुत अन्तर हो गया है।

"राजस्थानी लोक मंच का अत्यन्त प्रचलित रूप ख्याल है। 18 वीं शताब्दी के आस-पास आगरा के समीपवर्ती क्षेत्रों में एक नई कविता शैली प्रचलित हो चली थी, जो आगे चल कर 'ख्याल' के नाम से प्रसिद्ध हुई। ख्याल में उर्दु-फ़ारसी का मिश्रण पाया जाता है। इसको नये-नये कथानकों में बाँधना अत्यन्त कठिन है। ख्यालियों में कई प्रकार के दल होते हैं जो सभी प्रकार के हैं। इसमें भी स्त्री पात्रों के स्थान पर पुरुष पात्र ही कार्य करते हैं। धार्मिक, पौराणिक तथा किंवदन्तियों पर आधारित कथाओं को ही इसमें अभिनीत किया जाता है। वास्तव में ये गीति-नाट्य की कोटि में आते हैं। इनमें संगीत की प्रधानता होती है। गांवों में इसका प्रचार अधिक है।"[3]

कुछ विद्वानों की दृष्टि में यह मालवी-गीत की विधा विशेष है -

"'ख्याल' लोक भाषा का परम्परागत शब्द बताया जाता है। ख्याल लोकनाट्य का एक प्रकार, गीत की एक शैली, हास्य प्रधान मालवी गीत अथवा चित्र के लिये प्रयुक्त लोक प्रचलित शब्द है। ख्यालबाजों के दो अखाड़े हैं - कलग़ी अखाड़ा और तुर्रा अखाड़ा। गाने की शैली और धुनों के अनुसार ढ़ाड़ा या खड़ी रंगत का ख्याल लम्बी रंगत या 'तबील ख्याल', 'शिकस्ता ख्याल' या लंगड़ी रंगत का ख्याल, लावनी या ख्याल, डेढ़ रंगती ख्याल, छोटी रंगत का ख्याल आदि उपभेद उल्लेखनीय हैं।

---

1. डा. श्यामसुन्दर दास, हिन्दी साहित्य, ष.सं. 1949, पृष्ठ 75-76
2. वही, पृष्ठ 77-78
3. डा. कुन्दनलाल उप्रेती, लोक साहित्य के प्रतिमान, पृष्ठ 85

कहा जाता है कि 18 वीं शताब्दी के आरम्भ में आगरा के इर्द-गिर्द एक नई कविता की शैली प्रचलित हो गई थी जो आगे चल कर 'ख्याल' कहलाने लगी। राजस्थान में 'ख़्याल' शब्द खेल के अर्थ में ग्रहण किया जाकर, 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में लोकप्रचलित ऐतिहासिक एवं परम्परागत कथाओं को नाट्यरूपों में अभिनीत करने की शैलीविशेष के लिये रूढ़ हो गया। आजकल 'ख़्यालों' की अनेक पुस्तकें बाज़ार में मिलती हैं। ख्यालों की लोकनाट्यशैली मालवा के 'नाच' और उत्तर प्रदेश की नौटंकी से बहुत मिलती है। पात्र प्रायः पद्यबद्ध संवाद भिन्न-भिन्न रंगतों में गाकर अभिनय करते हैं। गद्य का प्रयोग बहुत ही सीमित होता है। नगाड़ा, सारंगी और ढ़ोलक का प्रयोग किया जाता है। वस्तुतः ख्याल गीति-नाटक की कोटि में आते हैं। शेखावटी के चिढ़ावा (राजस्थान) ग्राम के निवासी नानूलाल के ख्याल उत्तर प्रदेश में बहुत प्रचलित हैं। उसने लगभग 40-50 ख्यालों की रचना की। उसके पोते अभी उन ख्यालों का प्रदर्शन करते हैं। ख्यालों की लगभग 300 पुस्तकें इस समय उपलब्ध हैं। ख्याल में लावणी, दूहा, चौबोला, दुबोला, चौपाई, शेर, उड़ान, कवित्त आदि छन्द मिले हैं। दूहे **'चन्द्रायणी'** और **'घूमणी'** तथा लावनी **'लंगड़ी'** और ज्यान की **'जान की'** रंगतों में गाई जाती हैं।"[1]

कुछ विद्वान ख़्यालों की उत्पत्ति 1457 ई. के लगभग मानते हैं -

"हुसैन शाह शरक़ी शाहे जौनपुर (1457 ई.) ने ध्रुपद के ढ़ंग पर ख़याल ईज़ाद किया।"[2]

किन्तु यह गाना फ़कीरों, साधु-सन्तों और महात्माओं के द्वारा आविष्कृत माना गया है, जिसका सम्बन्ध लावणी या मरैठी से है। जिन ख़यालों की बन्दिश ध्रुपद या द्रुत विलम्बित में होती है, वह हमारे विवेच्य विषय से पृथक् हैं।

"सन्तों ने ध्रुपद के साथ-साथ ख़्याल भी गाये हैं। यह अरबी शब्द है और फ़ारसी में भी प्रयुक्त होता है, जिसका अर्थ है विचार तथा गायन का एक विशेष प्रकार एवं छन्द विशेष में की हुई कविता। राग के नियमों का पालन करते हुये एक ताल, तीन ताल, चौताल आदि तालों में गाया जाता है, शृंगार रस इसका मुख्य विषय है। बड़े ख़याल विलम्बित तथा छोटे ख़याल द्रुत में गाये जाते हैं।"[3]

---

1. डा. श्याम परवार, हिन्दी साहित्य कोश, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 251-252
2. डा. असल अली, भक्तिकालीन हिन्दी साहित्य पर मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव, पृष्ठ 209
3. वही, पृष्ठ 209

कुछ विद्वान् इसका विकास **'रास'** आदि गीति-नाट्य से मानते हैं ।

"जन-साधारण में जो मध्यकाल में रास, चर्चरि, फागु आदि रमे व खेले जाते थे वही पीछे से रमत, रामत, खेल, ख्याल के रूप में प्रगटित हुए ।

श्री उदयशंकर शास्त्री ने 'देशबन्धु', वर्ष 2, अंक 7 में प्रकाशित अपने लेख में लिखा है कि - "ऐसा कहा जाता है कि 18 वीं शती के आस-पास ही आगरे के इर्द-गिर्द एक नई कविताशैली प्रचलित हो चली थी, आगे चलकर जिसका नाम 'ख़्याल' पड़ा ।" ख़्याल निश्चित ही उर्दू और फ़ारसी के मसाले से तैयार चीज़ थी । उनको नये-नये कथानकों में बांधना सबका काम नहीं था । आगरे में इन ख्यालियों के कई दल थे, जिनमें सभी प्रकार के लोग थे और सभी प्रकार की बंदिश बाँधने वालों के गोल थे, कभी-कभी वे परस्पर होड़ भी लगाते थे ।

15 वीं शताब्दी तक के **'रास'** साहित्य को देखने पर अधिकांश राग छोटे-छोटे ही मिलते हैं । उनका उद्देश्य खेले जाने में सुविधा रहे, यही प्रतीत होता है । अधिक लंबे रास एक दिन में व एक खेल में समाप्त नहीं किये जा सकते हैं और खेल देखने वाले प्रायः यही चाहते हैं कि एक दिन में ही वह समाप्त हो जाय । 15 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से बड़े-बड़े रास रचे जाने लगे, तब से वे रचित काव्य के रूपों में परिणत हो गये । इस समय से 18 वीं शताब्दी तक जन-साधारण के खेल तमाशे के रूप में किन काव्यों का प्रचार रहा एवं खेल किस प्रकार से खेले जाते थे ? इसका कोई ठिकाना नहीं है । रासकों की परम्परा **'रासलीला'** एवं **'गर्बा'** इत्यादि के रूप में आज भी चल रही है । लोक-भाषा में रचित प्राचीन नाटक तो बहुत ही कम मिलते हैं ।

श्री उदयशंकर शास्त्री ने ख्यालों का प्रारम्भ 18 वीं शताब्दी से आगरे के आस-पास प्रदेश में होना माना है, पर 18 वीं शताब्दी के रचित ख़्याल संज्ञक काव्य कोई भी उपलब्ध नहीं है । सम्भव है वे छोटे रूप में हों और मौखिक प्रचलित रहे हों ।

जहाँ तक राजस्थान में लिखित ख़्यालों के प्रचार का प्रश्न है, मेरे ख़्याल से 19 वीं शताब्दी से ही इनका प्रचार हुआ होगा । अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर की एक हस्तलिखित प्रति में मारवाड़ी में ख्याला लिखा मिलता है, पर वह थोड़े पद्यों का ही है । सम्भवतः यह प्रति 19 वीं सदी के उत्तरार्ध या 20 वीं के प्रारम्भ की होगी । श्री मोतीचन्द जी खजांची के संग्रह में **'हीर रांझा'** के तमाशे की एक छोटी प्रति देखने को मिली है जो 19 वीं सदी के उत्तरार्ध की है ।

प्रकाशित मारवाड़ी ख्यालों में जहाँ तक मुझे ज्ञात हुआ है, स्कॉच प्रेज्बिटीरियन मिशन, ब्यावर की प्रकाशित एवं पादरी **रोब्सन** की सम्पादित **'मारवाड़ी ख्यालाज़'** पुस्तक ही सर्वप्रथम है। यह पुस्तक प्रयत्न करने पर भी प्राप्त नहीं हो सकी। पर इसमें प्रकाशित **'डूंग जी ज्वार जी'** के ख्याल के कई उद्धरण **'ए ग्रामर ऑफ दि हिन्दी लैंग्वेज'** (लेखक — एस.एच.केलाग) में देखने को मिलते हैं।

लोक-कला के गतांक में **श्री मनोहर शर्मा** का 'राजस्थान के लोकनाट्य ख्याल' नामक एक सुन्दर लेख प्रकाशित हुआ है। उसमें उनके देखने में आए हुए प्रकाशित 66 ख़्यालों की नामावलि भी दी गई है। पर ख़्याल तो सैकड़ों की संख्या में हैं। राजस्थान में जोधपुर, भरतपुर, जयपुर, किशनगढ़, कूचामन, जैसलमेर के अतिरिक्त ब्यावर, मथुरा से ही नहीं पर सुदूर कलकत्ता, बम्बई व मध्यप्रदेश भारत से भी राजस्थानी जनता में विक्रय के लिये बहुत संख्या में ख्याल प्रकाशित हुए हैं।

ख्याल राजस्थानी लोक-साहित्य का एक अविभाज्य अंग है। इसमें वास्तविक रूप में संगीत है। वाद्य, नृत्य एवं गीत की त्रिवेणी में स्नान कर के जन-साधारण की आत्मा बड़ी प्रसन्न होती है। ख़्यालों में ये तीनों अपनी विशेषता के साथ प्रयुक्त होते हैं। ये गीत-नाटक राजस्थान की महाप्राणता के अनुरूप भी हैं। साधारण आदमी के लिये इनका अभिनय बड़ा कठिन है। इनके लिये गायक के गले में शक्ति होना ज़रूरी है। इसी ज़ोर के लिये प्रत्येक गायक मंच पर आते ही सर्वप्रथम शारदा की वंदना करता है। ख़्याल के गायकों में गुरु के प्रति भी अपार श्रद्धा मिलेगी। ये गुरु का नाम लेकर ही अखाड़े में नाच प्रारम्भ करते हैं। यह मंगल प्रेरणा भी ख्यालों की एक विशेषता है फिर भी खेद है कि लोक-साहित्य के अन्य अंगों की तरह ख्यालों के प्रति भी लोगों का ध्यान कम होता जा रहा है। साहित्य-शोधकों का कर्तव्य है कि इस धारा को सूखने न दें। अब ख़्यालों को नया जीवन मिलना चाहिये। उनके नये-नये प्रसंगों का प्रयोग होना चाहिए। राजस्थान के लोगों के पास महापुरुषों का संदेश पहुँचाने मे ये ख्याल बड़े ही सहायक सिद्ध हो सकते हैं। वास्तव में इसी भावना को ये ख्याल निभाये भी चले आ रहे हैं, प्रत्येक युग के विशिष्ट पुरुषों के जीवन पर ख़्याल बने हैं और उनका अभिनय हुआ है। पुस्तकें बदलती रही हैं, परन्तु अभिनय का रूप वही प्राचीन चला आ रहा है। लोक-जीवन को ऊँचा उठाने का यह एक आम साधन है। किसी देश की वास्तविक उन्नति उसके लोक-जीवन का उत्थान ही है।"[1]

---

1. अगरचन्द नाहटा, ख्याल संज्ञक काव्य (हस्तलिखित लेख)

राजस्थानी लोक-नाटकों के वर्गीकरण में डॉ. महेन्द्र भानावत ने 'ख्याल' को सर्वप्रथम स्थान दिया है।[1]

"लोक-नाट्य का वह रूप - जो परम्परागत बंधी-बंधाई रंगशैली में लोकजीवन में प्रचलित आख्यानों का प्रदर्शन कर सामान्य जनता का मनोरंजन करता है, 'ख्याल' कहलाता है।"[2]

शिल्प के आधार पर किये गए लोकनाट्य के वर्गीकरण में ख्याल के सम्बन्ध में वे आगे कहते हैं -

"(अ) **ख्याल** - ये धार्मिक, ऐतिहासिक, सामाजिक और लौकिक कथा-घटनाओं से सम्बन्धित होते हैं।"[3]

राजस्थान में लोक-नाट्य के रूप में ख्याल झामटडे, किशनगढ़ी ख्याल, जयपुरी ख्याल, झाड़शाही ख्याल, नारों का ख्याल, तुर्रा-कलग़ी के ख्याल, कूचामणी ख्याल, शेखावटी ख्याल, मेवाड़ी ख्याल, अली बख़्शी ख्याल, गन्धर्वों के ख्याल, हाथरसी ख्याल, अभिनय और कथा वाचनी ख्याल, कड़ा शैली के ख्याल, चौबोला ख्याल और चिड़ी ख्याल आदि प्रसिद्ध हैं।

व्रज-लोकसाहित्य में ये ख्याल **'बहर'** के रूप में प्रचलित हैं, यथा - पुरानी बहर, कन्हैया ख्याल की बहर, हाथरसी बहर, बहर रोहतकी बारहमासी, लावनी और मल्हार भी इसी लोक-गीत के अन्तर्गत हैं, यथा -

बारहमासी — 'सदा पन भगतन के पारे।
समझि आपनो दास खबरि लै लै बंसी बारे।।'

— 'तारि दियो सदन कसाई है।
पूरे करि दिये बाट न पल देर लगाई है।।'

---

1. द्रष्टव्य, लोक नाट्य परम्परा एवं प्रवृत्तियाँ, पृष्ठ 16
2. डा. भानावत, लोक नाट्य परम्परा एवं प्रवृत्तियाँ, पृष्ठ 2।
3. वही, पृष्ठ 2।

ख़्याल का स्वरूप :

"ख्याल या लावनी वालों ने एक ख़याल के चार चौक माने हैं । ख़याल के प्रथम और द्वितीय मिसरे या कड़ी को टेक कहते हैं । ग़ज़ल वाले जिसको **'मतला'** कहते हैं, ख़याल की परिभाषा में इसको **'टेक'** या **'ध्रुपद'** कहेंगे, इसके बाद के चार मिसरों को **'चौक'** कहते हैं, और पाँचवाँ मिसरा **'उड़ान'** (मिलान) कहलाता है, जिसके साथ 'टेक' का दूसरा मिसरा या 'कड़ी' मिला दिया जाता है । यानी एक लावनी में कम से कम चार चौक माने गये हैं । रहा **'चौक'**, यह चार कड़ी का भी होता है और कम-ज्यादा का भी होता है । कुछ रंगतें ऐसी भी हैं जिनके चौक में दो ही कड़ी रहती हैं और कुछ ऐसी भी हैं जिनमें 3 कड़ी, 5 कड़ी भी रह सकती हैं, 6 मिसरे, 8 मिसरे भी हो सकते हैं, किन्तु चार चौक होना हर हालत में अनिवार्य है ।"[1]

ख़याल की साहित्यिकता :

"लोकगीतों में चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति भी पाई जाती है, जिसके अन्तर्गत ऐसी-ऐसी विशेषताएँ देखने को मिलती हैं जो शिष्ट साहित्य में भी कम देखने को मिलती है । रीतिकालीन दरबारी कवियों ने काव्य के जितने भी चमत्कारिक प्रयोग किये होंगे वे सभी लोक-साहित्य में मिल जाते हैं । निरोष्ठ, अमात्र से लेकर कमल-बन्ध, कपाट-बन्ध, वृक्ष-बन्ध, खड्ग-बन्ध, डमरु-बन्ध जैसे चित्रालंकार तक लोकगीतों में मिल जाते हैं । यही नहीं, गतागत, सिंहावलोकन, षटाक्षरी, एकाक्षरी, सनद, दुहरफी, दुबयानी (द्वयर्थक) और न जाने कितने-कितने प्रकार के वाणी-विलास का रूप भी लोक-साहित्य के उस अंश में देखने को मिलता है जिसे **'रचित'** वर्ग में विभक्त किया जाता है । प्रायः प्रत्येक जनपद में लोकगीतों के क्षेत्र में लोककवियों की पारस्परिक प्रतियोगिताओं की एक समृद्ध परम्परा चली आती है । उन्हीं प्रतियोगिताओं में सर्वश्रेष्ठ लोककवि बनने की झोंक में इस प्रकार के चमत्कारिक लोककाव्य की रचना की जाती है । मालवा के ख्यालों के दंगलों से लेकर लावनी, झूलनों, कजली आदि की प्रतियोतगताएँ लोक-कवियों के काव्यत्व एवं पाण्डित्य-प्रदर्शन का अवसर प्रदान करती हैं ।"[2]

---

1. स्वामी नारायणानन्द सरस्वती, लावनी का इतिहास, पृष्ठ 2।
2. डा. श्रीराम शर्मा, लोक साहित्य सिद्धान्त और प्रयोग, पृष्ठ 250

यद्यपि ख्याल को विद्वानों ने लोक-साहित्य के अन्तर्गत ही समाविष्ट किया है तो भी मुक्तकण्ठ से उसकी विशिष्ट साहित्यिकता को भी स्वीकार किया ही है।

"रचित साहित्य में लोक-साहित्य की वे विधाएँ आती हैं जो किसी ग्रामीण कवि द्वारा रची जाती हैं, इनके बड़े-बड़े दंगल होते हैं। ये रचनाएँ प्रायः पुरुष समाज में ही प्रचलित हैं। जिकड़ी, समादी, भजन, रसिया, होली, स्वाँग, भगत, ढ़ोला तथा ख्याल आदि ऐसी ही रचनाएँ हैं। ढ़ोला तथा खयाल आदि बनाकर गाये जाते हैं। ख्याल में कलापक्ष पर विशेष ध्यान रहता है। अलंकारों का बहुधा प्रयोग होता है। इनमें नागरिक रुचि का समावेश **'नफासत और नाजुक बयानी'** के रूप में मिलता है।"[1]

खयाल के विभिन्न घराने :

जिन गायकों ने अपनी प्रतिभा से पुराने संगीत से नई-नई ध्वनि निकाल कर नई गायन प्रणाली स्थापित की, गीत की नई-नई बन्दिशें ईज़ाद कीं, उन्हीं के नाम पर उनके शिष्यों ने उनके द्वारा आविष्कृत शैली को **'घराना'** नाम दिया।

खयाल के वर्तमान-प्रमुख घराने इस प्रकार हैं -

1. **ग्वालियर घराना :** इनके जन्मदाता स्वर्गीय नत्थन पीर बख्श हैं, गायकों में हस्सू खाँ और नत्थू खाँ आदि प्रसिद्ध हैं। ध्रुपद अंग के ख़यालों की जोरदार तथा खुली आवाज में गाना इस घराने की विशेषता है।

2. **आगरा घराना :** इसके प्रवर्तक तानसेन के दामाद हाजी सुजान साहब थे। इस घराने का सम्बन्ध ग्वालियर घराने से रहा है। खुदा बख़्श, जुंगू खां और नत्थन खां आदि इसके प्रसिद्ध गायक थे। इस घराने को लय और ताल पर विशेष अधिकार है, ख्याल गायकी के अतिरिक्त ध्रुपद धमार गाने की विशेषता भी इस घराने में पाई जाती है।

---

1. डा. कुन्दनलाल उप्रेती, लोक साहित्य के प्रतिमान, पृष्ठ 235

3. **दिल्ली घराना** : इसके प्रवर्तक तानरस खां थे। अमराव खां आदि इसके गायक थे, तानों का निराला ढ़ंग और ख़यालों की कलापूर्ण बन्दिश इस घराने की विशेषता थी।

4. **जयपुर घराना** : इसके प्रवर्तक मुहम्मद अली खां थे। आगे चल कर यह दो घरानों- (अ) **पटियाला घराना** और (ब) **अल्लादिया खाँ का घराना** - में बँट गया। बड़े गुलाम अली खाँ, केसरबाई केसकर, माधूबाई कुर्डीकर तथा शंकरराव सर नाइक आदि इसके प्रसिद्ध गायक हैं। ख़यालों की कलापूर्ण बन्दिश, संक्षिप्त ख़याल तथा गीत की संक्षिप्त बन्दिश, वक्र तानें आदि इस घराने की विशेषताएँ हैं।

5. **किराना घराना** : इस घराने का सम्बन्ध बीकानेर के बन्दे अली खाँ से माना जाता है। अब्दुल करीम खाँ और अब्दुल वहीद खाँ इस शैली के प्राणदाता थे। हीराबाई बडोदेकर, सरस्वतीबाई राने, गंगूबाई हंगल, रोशन आरा बेगम (पाकिस्तान) उस्ताद अमीर खाँ आदि इस घराने के प्रमुख प्रतिनिधि हैं। आलाप प्रधान गायन इस घराने की विशेषता है।

वस्तुतः हमारे विवेच्य **'ख़्याल'** इन ख्यालों से सर्वथा भिन्न हैं। उनकी लय तथा गाने के तरीके भी भिन्न हैं। यह ख़याल पूर्णतः संगीत के संवाहक हैं और हमारे 'ख़याल' हार्दिक भावों की काव्यात्मक अभिव्यक्ति के साधक हैं, जिनमें संगीत का सम्मिश्रण उतना ही हुआ है जितना आटे में नमक। एक ही नाम होते हुए भी ये दोनों विधाएं पृथक्-पृथक् हैं। इनमें से एक का सम्बन्ध संगीत-कला से है तो दूसरी का साहित्य-कला से। फिर भी दोनों का उद्गम, विकास, प्रचार और प्रसार संगीत के आधार पर हुआ है, अतः दोनों में यत्किञ्चित् एकरूपता भी है और उसी एकरूपता के कारण 'घरानों' का यहाँ उल्लेख कर दिया गया है।

■ ख्याल या ख्यात :

'लावणी' शुद्ध संस्कृत शब्द है, **'मराठी'** उसका नाम इसलिये पड़ा क्योंकि उसने महाराष्ट्र के संगीत को अपने में समाविष्ट कर लिया है, परन्तु 'ख़्याल' जो फ़ारसी का शब्द है उससे इसका क्या सम्बन्ध? यह एक विचारणीय प्रश्न है।

सम्भवतः 'ख्यात' शब्द बिगड़ कर 'ख्याल' बन गया हो, क्योंकि पहले प्रेस आदि की सुविधा न होने से 'लावणी' कही ही जाती थी, प्रकाशित नहीं होती थी। **'ख्यात'** शब्द का अर्थ है-

'प्रसिद्ध, कथित, वर्णित'[1] । **'कथन'** भी इसी का पर्यायवाची है । लावणी में 'कथन' सम्पूर्ण कविता का बोधक है, यथा -

" 'कथन' मदारी की बांकी 'रागनी' श्याम सिंह साथ गई ।"

इससे कुछ प्रसिद्ध वीरपुरुषों के चरित्र-चित्रण भी किये जाते थे इसलिये भी इन रचनाओं को **'ख्यात'** कहा जाता होगा ।

इस प्रसंग में **डॉ0 यादव** की सम्मति भी द्रष्टव्य है -

"हमने लोक-गाथाओं को अवदान, साका, राग या किस्सा के नाम से अभिहित किया है । इस साहित्यिक विधा का एक नाम राजस्थानी में **'ख्यात'** भी प्रचलित है । ये ख्यातें रासों से भिन्न वस्तु हैं । रासो साहित्यिक वीर कथाएं हैं और ख्यातें मौखिक कथाएं हैं ।"[2]

उर्दू का प्रचार-प्रसार लावणी के क्षेत्र में होने से धीरे-धीरे यही **'ख्यात'** शब्द **'ख्याल'** बन गया, और इसमें शृंगार के अतिरिक्त दार्शनिक चिन्तन, इश्क मार्फ़त इश्क हक़ीकी एवं अध्यात्म विषयक रचनाओं का निर्माण भी बहुतायत से होने लगा । अर्थ की दृष्टि से भी **'ख्याल'** या **'विचार'** की बनिस्बत **'कथन'** ही काव्य-रचना के अधिक निकट है । अतः मेरी दृष्टि में ख्याल **'ख्यात'** का भी विकृत या विकसित रूप हो सकता है ।

चंग और लावनी-गायन

लावनी-गायन चंग नामक वाद्य के साथ होता है, प्रत्येक गायक अपना-अपना चंग अपने-अपने साथ रखता है। इस गायन के साथ चंग के अतिरिक्त अन्य किसी वाद्य यन्त्र की अपेक्षा नहीं, जब एक साथ कई चंग मिल कर ध्वनित होते हैं तो एक प्रकार के अद्भुत आनन्द की सृष्टि करते हैं, लावनीके भाव-सौन्दर्य के साथ संगीत का यह सूक्ष्म सम्मिश्रण सोने में सुगन्ध है ।

---

1. कालिका प्रसाद, बृहत् हिन्दी कोश, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 350
2. डा॰शंकरदयाल यादव, हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, पृष्ठ 37

"चंग एक गोल घेरा होता है जो चमड़े से मढ़ा रहता है । यह एक हाथ से बजाया जाता है, जिस हाथ में घेरा होता है उसमें छल्ले पहने जाते हैं जो घेरे पर बजते हैं। यों तो यह बाजा पुराना है किन्तु लावनी से इसका सम्बन्ध ख़ासतौर पर हो गया है।"[1]

हिन्दी साहित्य के अनेक प्राचीन कवियों की कविता में चंग का उल्लेख मिलता है। यथा - —— "चंग उपंग नाद सुर तूरा ।
महुंअर वंसि बाज भरपूरा ।।"[2]

—— "महुवर वांसुरि चंग लाल रंग भीजी ग्वालिनि ।"[3]

डा0 प्रेमनारायण टण्डन द्वारा "सूर काव्य से जो सूचियां दी गई हैं (अ- प्रमुख रागों के नाम, आ- बाजे ..... चंग)[4] उनसे कवि के समकालीन समाज की सांस्कृतिक स्थिति का बहुत कुछ परिचय सहज ही मिल जाता है।"[5]

इसी प्रकार सूर के समकालीन, अष्टछाप के अन्य प्रसिद्ध रससिद्ध कवियों ने भी अपनी रचनाओं में चंग का उल्लेख किया है।

—— "नूपुर, कंकन, किंकिनि, करतल मंजुल, मुरली ।
ताल मृदंग, उपंग, चंग एक हि सुर जुरली ।।"[6]

—— "बाजत वीणा मृदंग, बांसुरी, उपंग, चंग ।
मदन भेरि, ढ़फ, झांझ, झ ारी मंजीर ।।"[7]

उत्तर भारत में ही नहीं अपितु दक्षिण में भी चंग का काफी प्रचलन रहा है -

"इन वाद्यों का विशेष प्रचलन था - पखावज, चंग, रबाब, तंबूरा, तबला, बांसुरी और जलाजल ।"[8]

राजस्थान में भी रासो परम्परा में लिखित काव्यों में चंग का उल्लेख मिलता है-

"बजे चंग बाजिया अनंग सारंग भण के ।।"[9]

"कबीरदास छन्दशास्त्र के ज्ञाता न थे, यहाँ तक कि दोहों को भी पिंगल की खराद पर न चढ़ा सके। डफली बजाकर गाने में जो शब्द जिस रूप में निकल गया, वही ठीक था ।"[10]

---

1. स्वामी नारायणानन्द सरस्वती, लावनी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 17
2. जायसी, जायसी ग्रन्थावली, पृष्ठ 235
3. सूरदास
4. सूरसागर, नागरी प्रचारिणी सभा, पृष्ठ 2866
5. डॉ॰ टण्डन, सूर की भाषा, सन् 1957 का संस्करण, पृष्ठ 486
6. नन्ददास, राम पञ्चाध्यायी
7. कृष्णदास
8. डॉ॰ दशरथ राज, दक्खिनी हिन्दी का प्रेमगाथा काव्य, पृष्ठ 300
9. डूगँर सिंह, शत्रु साल रासो (अप्रकाशित), प्रति - सूरजमल सागरमत पुस्तकालय में उपलब्ध। संदर्भांकित - हिन्दी रासो काव्यपरम्परा, पृष्ठ 225
10. डॉ॰ श्यामसुन्दर दास, हिन्दी साहित्य, छठा संस्करण, पृष्ठ 156

डफ से छोटे आकार की डफली होती है, डफली और चंग एक ही वस्तु है । महाराष्ट्र में भी पहले डफ प्रचलित था, इसी से प्रेरणा लेकर सन्तों ने सुविधा के लिये 'डफली' का निर्माण किया, जो बाद में चंग के नाम से अभिहित हुई । कबीरदास लावणी लेखक तो थे ही, डा0 श्याम सुन्दर दास के इस कथन से यह भी सिद्ध होता है कि वह चंग बजाकर मस्ती के साथ ख़याल गाया भी करते थे।

राजस्थान में प्रचलित वाद्यों में तार वाद्य - सारंगी आदि, फूँकवाद्य - बांसुरी आदि और तालवाद्य - चंग आदि प्रमुख हैं।"[1]

डफ और खंजरी का उल्लेख 'आइने अकबरी' में वितत के अन्तर्गत मिलता है। परमानन्द दास, चतुर्भुजदास और तानसेन ने भी इसका उल्लेख किया है -

—— "अमृत कुंडली चंग जो अवझ और अनेक ।
चंग लोहरे अनेक हैं, तान सेन उर मान ।।"[2]

इतना ही नहीं, संस्कृत-साहित्य में भी 'डफ' का उल्लेख है -

—— "मृदु-मृदंग-डमरू-डफादि-विविधाऽऽनद्धं मजीराऽऽदि
घनं चेति चतुर्विध वाद्याऽध्याय देवतां च .....
स्वयमागतामनुजगृहुः ।"[3]

इस प्रकार चंग केवल लावणीकारों का ही नहीं अपितु समस्त श्रेष्ठ हिन्दी संस्कृत साहित्य के सुकवियों का भी प्रिय रहा है। तथा सम्प्रति सिने-संगीत के अन्तर्गत विविध वाद्यों के साथ चंग का भी प्रमुख स्थान है।

लावणी-गायक इसका बहुत सम्मान करते थे, अतएव "शागिर्द से सर्व प्रथम चंग का पूजन कराया जाता और निशान तुर्रा या कलग़ी चढ़ाया जाता था ।"[4]

चंग के इस वर्णन से सिद्ध होता है कि यह वाद्य तुकनगिरि और शाहअली का ईज़ाद किया हुआ नहीं है, अपितु उनसे पूर्व ही यह आविष्कृत होकर गायन-कला के साथ प्रतिष्ठित हो चुका था ।

---

1. देखो - कमल कोठारी, 'लोकगीत और साज' (लेख), परम्परा, चैत्र सम्वत् 2013, पृष्ठ 146-156
2. तानसेन - अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, डा. सरजूप्रसाद अग्रवाल, पृष्ठ 372
3. श्री आनन्द वृन्दावन चम्पू, पृष्ठ 779
4. स्वामी नारायणानन्द, लावनी का इतिहास, पृष्ठ 25

लावनी के सम्प्रदाय -

बाजीराव पेशवा द्वितीय से पुरस्कृत होकर तुकनगिरि एवं शाहअली ने तुर्रा और कलग़ी को क्रमशः अपने-अपने चंगों पर चढ़ा लिया, तभी से इस गायन विद्या के 'तुर्रा' और 'कलग़ी' यह दो सम्प्रदाय प्रचलित हुए। 'तुर्रा' के प्रवर्तक तुकनगिरि और 'कलग़ी' के प्रवर्तक सन्त शाहअली माने जाते हैं। लावणी के यही प्रमुख दो सम्प्रदाय हैं। इनके अतिरिक्त कलग़ी, ताज, मुकुट, छतर, सेहरा, अनगढ़, झब्बा, निर्गुण हलमूसल, तोड़ा, कोड़ा, डुण्डा, मौला निशान, ब्रह्म, दन्त आदि कतिपय अन्य भी लावणी या मरैठी-गायन या खयाल-गोई सम्प्रदाय के अन्तर्गत हैं । ये सब 'बाने' कहलाते हैं । इन सबके कुछ न कुछ अर्थ हैं, जो अपनी-अपनी श्रेष्ठता के प्रतिपादक है, जैसे - 'अनगढ़' जिसे किसी ने न गढ़ा हो अर्थात् अज, परमेश्वर । राजस्थान में प्राप्त 'भगत' की भाँति 'माच' नामक गीतों को कुछ विद्वानों ने तुर्रा कलग़ी की संज्ञा दी है-

"तुर्रा कलग़ी भी ख्यालों की एक विशिष्ट शैली है, जिसे माच का खेल भी कहते हैं । ..... शिव के समर्थक तुर्रा वाले और शक्ति के समर्थक कलग़ी वाले । ..... किन्तु बाद में इन्हीं लावणी के अखाड़ों ने 'माच' का रूप ले लिया ।"[1]

हमारी दृष्टि में 'माच' लावणी या ख़याल से पृथक् विधा है। यहां हम तुर्रा और कलग़ी को ही प्रमुख मान कर उनका वर्णन करते हैं।

■ **तुर्रा :**

यह पुल्लिंग अरबी शब्द है जिसका अर्थ है- जुल्फ़, पगड़ी या टोपी आदि में लगा हुआ फुंदना या पर, कलग़ी पक्षियों की शिखा, मुर्गकेश नाम का फूल, जटाधारी, कोड़ा, चाबुक, एक बुलबुल । विशेषण (फ़ारसी) अनोखा ।"[2]

महात्मा तुकनगिरि को पुरस्कार स्वरूप पगड़ी में लगा हुआ 'पर' ही मराठा दरबार से मिला होगा, अतः वहाँ पर इसका अर्थ 'पर' विशेष ही है। इस तुर्रे को इन्होंने अपने चंग पर चढ़ा लिया था, अतः इनका सम्प्रदाय 'तुर्रा' कहलाया । इनका बाना भगवा है। लावणीकार तुर्रा और कलग़ी वालों में परस्पर प्रतिस्पर्द्धा रहती है। तुर्रा पक्ष का लावणीकार तुर्रे का सम्बन्ध वेदान्त की तुरीयावस्था से जोड़ता हुआ कहता है -

— "पियावास में परब्रह्म तुर्रे में तुर्यापद भगवान् ।"[3]

---

1. देवीलाल सामर, राजस्थानी लोकनाट्य, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 31-34
2. कालिकाप्रसाद, बृहत् हिन्दीकोष, पृष्ठ 571
3. मदारीलाल, ख़याल रंगत खड़ी, लावनी का इतिहास, पृष्ठ 101

तथा ख़याल - मेरी जान : निशान का सनद दार : तुर्रा-महिमा इस प्रकार है -

"पचरंग निशान तुर्रे का आज चढ़ावें, मेरी जान ।
बाजते हैं निर्गुण गुण चंग ।
क्या ताक़त कोई जवाब दे, दुश्मन हो रहे दंग ।। टे0 ।।
जग रहे दया के दंगल धर्म ध्वजा है, मेरी जान ।
पताका फहरा रहे इक रंग ।
ध्वज झंडी ये शब्द घोर कविता की भरी तरंग ।
जहां ब्रह्म निरूपण पद तुरीय तुर्रा है, मेरी जान ।
वेद और शास्त्र प्रमाण प्रसंग ।
सदा सनातन संन्यासी का, चढ़ा न दूजा रंग ।
ग़र हो प्रमाण कलग़ी का तो दिखलाओ, मेरी जान ।
प्रमाणिक वेद शास्त्र का अंग ।
मुंहजोरी का नहीं काम कुछ, वचन न बोलो व्यंग ।
ग़र हो प्रमाण से ठीक लिखी दिखलाओ, मेरी जान ।
तो हम भी होंय तुम्हारे संग ।
नहिं तो ये है धर्म सनातन, करे मज़हब सब भंग ।
झड़ी - जो कलग़ी को तुम शक्ति रूप बतलाओ ।
कलग़ी पदार्थ का करो अर्थसमझाओ, मेरी जान ।
नहीं तुम खाली भरो उछंग ।
क्या ताक़त कोई जवाब दे, दुश्मन हो रहे दंग ।। -।
'रिसाल गिरी' के 'सूरज गिरि' थे चेले, मेरी जान ।
हुये 'कविता गिरि' जिनके अंग ।
जहाँ तहाँ तुरीया निशान का, खैंचा बाण निषंग ।
नहिं अड़ा सामने, अड़ा जो पछड़ा आकर, मेरी जान ।
बिगाड़े सब दुश्मन के ढ़ंग ।
वेद - शास्त्र के प्रमाण दे दे, करे अदू सब भंग ।
ऐसे ही 'रिसाल गिरि' के 'मुकन्द' हैं चेले, मेरी जान ।

जिन्हों के 'राधे' कवी मनंग ।
जहाँ तहाँ तुर्रा निशान फहराया भजे लफंग ।
क्या ताक़त कोई ले प्रमाण को बोले, मेरी जान ।।
मिले राह चोरे नंगम नंग ।
पड़ा काम विद्या का, लड़ने लगे लड़ाई जंग ।
झड़ी - नहिं ऐसों से है ज्ञान इलम का गाना ।
इनपै तो खुदा की पड़े मार बतलाना, मेरी जान ।
अड़े नागा से कोई निहंग ।
क्या ताक़त कोई ज़वाब दे, दुश्मन हो रहे दंग ।। -2

तुर्रा उपासना तुरीया, शिव का बाना, मेरी जान ।
दिखाओ कलग़ी का सतरंग ।
किसने उपासना करी कहाँ, खाली मत भरो तरंग ।
और कहाँ से कलग़ी चली सनंद कैं दिन की, मेरी जान ।
हुये कब से इसलाम मनंग ।
करोड़ों अरबों बरस सनातन, पद तुरीय है अभंग ।
तेरह सौं बरस का है कुल दीन इसलामी, मेरी जान ।
सनंद क्या लूला लंगड़ा पंग ।
'शाहअली' की चलाई कलग़ी, क्या प्रमाण भदरंग ।
प्राचीन आदि नहिं अन्त, अजर, अविनाशी, मेरी जान ।
शक्ति शिव वामांगी अर्धंग ।
माथे जिनके सोहे चन्द्रमा, जटा विराजे गंग ।
झड़ी - सेवा करते हैं पद तुरीय संन्यासी ।
जो हैं प्रमाण वेदान्त तेज के राशी, मेरी जान ।
बजे वीना, डमरू, मिरदंग ।
क्या ताक़त कोई जवाब दे, दुश्मन हो रहे दंग ।। -3

दिल के दंगल में देखो कुछ दिखलाओ, मेरी जान ।
नहीं झूठों को खाय भुजंग ।
धरो चंग, गये हार सभा में, करो ना दंगादंग ।

ये चुरा चुरा कर हिन्दु धर्म की बातें, मेरी जान ।
चोर की तरियों फेंक कमंग ।
कोमल देह में धँसे चोर ज्यों, अपनी लगा सुरंग ।
पर पकड़ शाह ने लिया चोर डाकू को, मेरी जान ।
काट पर दीने पड़ा विहंग ।
'मुकुंद राम' महाराज कहें दुश्मन का ढ़ंग कुढ़ंग ।
झड़ी - 'माधो' मुंशी श्री 'राम शरण' गुण गावें ।
'श्री किशन' मगन मन हो निशान फहरावें, मेरी जान ।
'कवी राधे' से शत्रु तंग ।
क्या ताकत कोई ज़वाब दे, दुश्मन हो रहे दंग ।। -4"[1]

तुर्रा, वास्तव में संगीत के रहस्य ज्ञान की तुरीयावस्था का भी द्योतक प्रतीत होता है। संस्कृत कवि कर्णपूर की वृन्दा संगीताचार्या मातंगी का परिचय देती हुई राधा से कहती है -

"इयं मातंगी नाम संगीतनिगमगमकचातुरी तुरीयाऽऽचार्या ।"[2]

'तुर्रा' 'शिव' का प्रतीक है, एवं **'कलग़ी'** 'शक्ति' की ।

'तुर्रे' वाले अपने को शिव का उपासक मानते हैं और **'कलग़ी'** वाले शक्ति के उपासक होने का दम भरते हैं।"[3]

"तुर्रा चेतन स्वरूप ब्रह्म होने के कारण मायारूपी कलग़ी पर अपना आधिपत्य जमाये हुए है ।"[4]

विष्णु, ब्रह्म और शिव एक ही परम सत्ता के बोधक हैं। फिर भी 'तुर्रा' का अधिक सम्बन्ध शिव से जोड़ा जाता है क्योंकि शिव ही नाद के अधिष्ठाता नटराज हैं । लावणी संगीतिका का सम्बन्ध नित्य, सर्वगत, सूक्ष्म, सदानन्द, निरामय, एवं विकार रहित, शिव से ही जोड़ना उचित है, क्योंकि - "शिव निर्गुण और सगुण रूप में दोनों प्रकार से शक्ति से मिला हुआ है, पर बिन्दु अथवा शब्द बृहत् शरीर में कुंडलिनी स्वरूप है, वह माता है ।"[5]

---

1. हस्तलिखित लावणी - श्री बैजनाथ जिल्दसाज, ज्वालापुर (हरिद्वार) के सौजन्य से ।
2. कर्णपूर, श्री आनन्द वृन्दावन चम्पू, पृष्ठ 510
3. स्वामी नारायणानन्द, लावनी का इतिहास, पृष्ठ 18
4. डा. पु.चं.मानव, हिन्दी लावनी साहित्य पर हिन्दी साहित्य का प्रभाव, पृष्ठ 26-27
5. डॉ. रांगेय राघव, गोरखनाथ और उनका युग, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 131

■ **कलग़ी :**

यह स्त्री लिंग फ़ारसी शब्द है, जिसका अर्थ है टोपी, पगड़ी में लगाया जाने वाला तुर्रा या फुंदना, मोर या मुर्गे के सिर की चोटी, सिर का एक गहना, ऊँची इमारत का शिखर, लावनी की एक तर्ज ।"[1]

सन्त शाहअली को भी महात्मा तुकनगिरि की भाँति मराठा दरबार से गायन-कला पर प्रसन्न होकर मराठा-सम्राट् बाजीराव पेशवा द्वितीय ने पगड़ी में लगाया जाने वाला **'फुंदना'** पुरस्कार स्वरूप प्रदान किया होगा, जिसे इन्होंने अपने चंग पर चढ़ा लिया, जिससे इनका सम्प्रदाय **'कलग़ी'** नाम से प्रसिद्ध हुआ। इनका बाना हरा है ।

कलग़ी सम्प्रदाय वाले 'कलग़ी' को शक्ति का प्रतीक मानते हैं। शक्ति माया, प्रकृति सीमित रूपधारिणी है। यह भी तुर्रे वालों पर उन्हीं के समान फबतियाँ कसते हैं -

"कलग़ी' गाना शाहाना है ।
'तुर्रा' फक्कड़ का बाना है।।"

× × ×

"बजे कलग़ी वालों का चंग ।
हुये मज़मूँ सुन दुश्मन दंग।।"

तुर्रे वाले तुर्रे को कलग़ी का पति बतलाते हैं, परन्तु कलग़ी वाले तुर्रे को कलग़ी का बेटा बतलाते हैं, इस पर तुर्रे वालों की दलील है -

"बिन तुर्रे के कौन दूसरा है कलग़ी का ख़सम बता ।
चल तुर्रा बेटा ही सही पर खसम का इसके इसम बता ।।"[2]

वास्तव में पुल्लिंग और स्त्रीलिंग में छोटे-बड़े का सवाल ग़लत है क्योंकि दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं -

"नर नारी में फर्क नहीं कुछ वो है ज़ेर और वह है ज़बर ।"[3]

इसी प्रकार भैरों सिंह ने भी यही कोशिश की है कि तुर्रा और कलग़ी दोनों को ही बराबर समझा जाय -

"हैं शिव शक्ती मात पिता सम बराबरी कर दृष्टी खोल ।
ना कोई छोटा बड़ा है इनमें, बड़ा बोल मूरख मत बोल ।।"[4]

बाबा बनारसी लावणी को इस मत-मतान्तर से मुक्त कर इसे शुद्ध निर्गुण-गुण-गायन ही बतलाते हैं-

---

1. कालिकाप्रसाद, बृहत् हिन्दी कोश, पृष्ठ 260
2. सुखलाल, हस्तलिखित लावणी की टेक
3. कुन्दन, हस्तलिखित लावणी से।
4. उस्ताद भैरों सिंह, लावनी का इतिहास, पृष्ठ 42

"कम अकलों ने कम अकली कर, माया कलग़ी बनाई ।
ब्रह्म को तुर्रा, जौन कहते वह तो हैं सौदाई ।।
माया तो है निराकार नहिं देय किसी को दिखलाई ।
वो ही ब्रह्म है, कि जिसकी थाह किसी ने नही पाई ।।
तुर्रे वाले कहते हैं कलग़ी को तुर्रे की लुगाई ।
कलग़ी वाले, कहें तुर्रे को कलग़ी है माई ।।
ये तो हैं सब झूठे हमने, सच्चे को पहिचाना है ।
फ़क़त देख लो, यहाँ पे निर्गुण - गुण का गाना है ।।"[1]

सच तो यह है कि लावणी अनादि गायन है । यह सम्प्रदाय जिस प्रकार उभर कर सामने आये थे उसी प्रकार दब कर ओझल हो गये हैं । लावणी का लेखन-गायन पहले भी था, और फिर भी रहेगा । यद्यपि इस प्रतिस्पर्द्धा की भावना से जहाँ लावणी में कलापक्ष और भावपक्ष प्रोन्नत हुए वहाँ परस्पर द्वेष और ईर्ष्या के भाव भी उर-भूमि में पल्लवित हुए, जिससे सम्प्रति लावणी-गायन तो प्रायः समाप्त-सा हो गया है, परन्तु लावणी-लेखन निरन्तर प्रचलित है । यदि लावणीकार पारस्परिक द्वेष-भाव भूल कर पुनः कर्मक्षेत्र में सामूहिक रूप से उतरें तो आज भी 'लावणी' अपना खोया हुआ सम्मान पुनः प्राप्त कर सकती है ।

खयालगो या लावणीकार :

लावणी के रचयिता को लावणीकार या खयालगो कहते हैं, ख़याल गाने वाले को ख्यालिया और ख़याल के लिखने गाने वाले या प्रेमी को ख़यालबाज़ कहते हैं। ख़याल गायक सामान्य गायक और अव्यवसायी होते हैं। यह 'ख़याल' या 'लावनी' अधिकतर पुरुषवर्ग का गीत है ।

"गान-विद्या में यदि कोई चतुर होना चाहे तो लावनी से बढ़ कर सुलभ और उत्तम उपाय कोई दूसरा है ही नहीं, लावनी वुद्धि-वर्धक संगीत है । ..... इस लोकोत्तरानन्द देने वाली संगीत कला के गाने का प्रचार अब बहुत कम हो गया है, एक समय था जब यह खूब तरक़्क़ी पर थी, जिसके विषय में गाने वालों ने यहां तक कह डाला है -

"लावनी जिसने गाई है ।
मौज कुछ उसने पाई है ।।"[2]

---

1. बाबा बनारसी, लावनी, पृष्ठ 43, सन्दर्भांकित हिन्दी लावनी साहित्य पर हिन्दी संस्कृत साहित्य का प्रभाव, पृष्ठ 28
2. डॉ. लक्ष्मीप्रसाद 'रमा', 10-12-1973 के हस्तलिखित पत्र का अंश।

"अखाड़े के अन्दर सभी शायर नहीं होते थे, कुछ शायर थे तो कुछ गाने वाले भी होते थे। यह भी ज़रूरी नहीं था कि जो शायर हों वे ही उस्ताद माने जायें। ऐसे भी उस्ताद हुए हैं जो खुद शायर नहीं थे, लेकिन उनके शिष्य शायर थे। हाँ, अखाड़े के अन्दर कुछ शायर ज़रूर रहते थे, और वह छाप में इसी प्रकार नाम लिखते थे, जिसमें अखाड़े के सभी लोगों को प्रोत्साहन मिले और उनका नाम रोशन हो। मिसाल के लिये कानपुर के प्रसिद्ध लावनीबाज़ पं0 गौरीशंकर जी कोई बड़े शायर नहीं थे किन्तु उनके शिष्य 'आनन्दी', 'मणिलाल', 'काशीदीन' आदि अच्छे शायर हो गए हैं।"[1]

अन्य लोक-गायकों की अपेक्षा लावनीकारों के कथन में छन्द आदि शास्त्रीय नियमों का पालन अधिक पाया जाता है।

"ख़याल और झूलना कहने वाले पिंगल के नियमों का पालन कुछ अच्छी रीति से करते हैं, किन्तु जिस समय आशु कविता करने लग जाते हैं उस समय उन्हें तुकबन्दी का ही ध्यान रहता है। इन लोगों में दोहा, चौपाई, लावनी के अतिरिक्त संस्कृत के शिखरिणी जैसे छन्दों का प्रयोग भी चलता है।..... इन कवियों से बढ़ कर प्रचारक कोई नहीं हो सकता। ..... ये समाज में पारस्परिक सौहार्द्र, सांस्कृतिक जीवन में रुचि, समता और वीरता की भावनाएँ भर सकते हैं। इसका प्रमाण स्वाँग, झूलने, ख़याल तथा कव्वालियों के वे दंगल हैं जिनमें अपार जनता एकत्रित होती है। ये कवि चलते फिरते पुस्तकालय ही नहीं, अपितु ये जंगम तीर्थराज हैं।"[2]

उत्तर प्रदेश, राजस्थान और महाराष्ट्र के अतिरिक्त भारतवर्ष के मुख्य-मुख्य सभी प्रान्तों में लावनीबाज़ों का ज़ोर रहा है -

"लावनीबाज़ों का ज़ोर भी लम्बे समय तक मालवा में रहा। सर जान मालकम ने अपने संस्मरणों में इस प्रकार के कुछ मनोरंजनों का उल्लेख किया है। नीमाड और मालवा के आगार नामक स्थान पर लावनीबाज़ों का खूब प्रभाव रहा।"[3]

---

1. स्वामी नारायणानन्द, लावनी का इतिहास, पृष्ठ 34
2. श्रीकृष्णचन्द्र शर्मा 'चन्द्र', कौरवी लोक साहित्य, हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (16वां भाग), पृष्ठ 487
3. डॉ॰ श्याम परवार, मालवी लोक साहित्य, वही, पृष्ठ 464

■ **अखाड़े :**

यह शब्द कुश्ती लड़ने या कसरत करने का स्थान, व्यायामशाला, साम्प्रदायिक साधुओं की मण्डली, साधुओं के रहने का स्थान, मठ, करतब दिखाने या गाने बजाने वालों की जमात, सभा, दरबार, अड्डा, जमघट, आंगन (इन्दर का अखाडा) नृत्यशाला और रंगशाला के अर्थ में प्रयुक्त होता है ।"[1] जिसमें हमारा तात्पर्य गाने बजाने वालों की जमात से है ।

ख़यालबाजों के अखाड़े गाने बजाने वालों की जमात से ही सम्बन्ध रखते हैं । अखाड़े किसी उस्ताद या स्थान विशेष के नाम पर प्रसिद्ध होते हैं । सभी अखाड़ों में एक ख़लीफ़ा या उस्ताद होता था, नव दीक्षित शिष्य अपनी श्रद्धा के अनुसार दीक्षा के समय अखाड़े के उस्ताद को पगड़ी, मिठाई आदि भेंट करता था, इसी मिठाई को फ़ारसी में 'शीरीनी' या 'सीरनी' कहते हैं । दीक्षा के समय कपूर आदि सुलगा कर फल-फूलों से चंग की पूजा की जाती थी । चंग पर सम्प्रदाय के अनुरूप तुर्रा या कलग़ी निशान चढ़ाया जाता था ।

अखाड़े के सदस्य जलसा या दंगल कर **'खलीफा'** का चुनाव किया क़रते थे । इस मौके पर अन्य अखाड़ों के प्रतिष्ठित सदस्य भी निमन्त्रित होते थे । चुने गए व्यक्ति को पगड़ी भेंट कर सम्मानित किया जाता था ।

अखाड़े के सभी सदस्यों को अनुशासन में रहना पड़ता था । अनुशासनहीनता पर ख़लीफ़ा शिष्यों को दण्डित करता था । साधारणतया दण्डस्वरूप शिष्य को मिठाई या पगड़ी देनी पड़ती थी। विशेष अपराध होने पर गाना बंद कर दिया जाता था । जब तक उसे क्षमा न कर दिया गया हो तब तक वह किसी भी अखाड़े या दंगल में गाने का अधिकार नहीं रखता था । मिठाई में उस्ताद के पाँच हिस्से और ख़लीफ़ा के दो हिस्से होते थे ।

'तुर्रा' निशान वालों के अखाड़े के आदि प्रवर्तक **तुकनगिरि** और **'कलग़ी'** अखाड़े के आदिप्रवर्तक **शाहअली** हैं ।

"खयाल बाजी में भवानी सिंह का अखाड़ा दिल्ली में बहुत मशहूर था, इनके शिष्य देवी सुकुल उस्ताद नत्थासिंह, मियां अब्दुल्ला, बब्बू ख़ाँ, फैयाज हुसैन इत्यादि चारों ओर फैले हुए थे - आगरे में रिसालगिरि के शिष्य हरदयाल का अखाड़ा बहुत प्रसिद्ध था इनके शिष्यों में लल्ला, धर्मा, लाला, लाल इत्यादि बड़े कवि और गायक थे, आगरे में दूसरा अखाड़ा पन्नालाल का भी मशहूर था, जिसमें पं0 रूपकिशोर की कविता बहुत प्रसिद्ध है ।

लखनऊ में शंभू शायर का अखाड़ा बड़ा मशहूर था जहाँ पर हाफिज, असद इत्यादि कई मुसलमान कवि और गायक हो चुके हैं ।

---

1. देखो - बृहत् हिन्दी कोश, पृष्ठ 19

कानपुर में प्रसिद्ध अखाड़ा मदारीलाल तुर्रे वाले का था जिसके शागिर्द बदरुद्दीन, प्रेमसुख, भैरों सिंह इत्यादि हुए, भैरों सिंह बड़ा विकट गायक हुआ जिसने पंजाब तक दिग्विजय की। इनके सिवा पं0 प्रभुदयाल, मास्टर प्यारेलाल, मियां मोलाई, पं0 गौरीशंकर, आनंदी, मियां बादल इत्यादि कई गायक कानपुर में हो चुके हैं।

जोधपुर में बाबा सूरजगिरि का अखाड़ा, पीलीभीत के खलीफा अब्दुल करीम, आगरे के मौलवी आशिक, जालौनके बदलेव गुरु, अलीगढ़ के महबूब खाँ इत्यादि बहुत प्रसिद्ध कवि हुए ।

दशनामियों में तुकनगिरि, महाराजगिरि, रिसालगिरि, कैलाश भारती, काशीगिरि, शंभुपुरी, बनारसी, सूफी मियां, वाहिद देहली वाले और मेरठ के भौंदूखाँ का अखाड़ा बड़ा नामी गिरामी था, इसके सिवा पं0 शीतल प्रसाद, गुरु बंसीनन्द, नन्दूलाल, बाबूलाल, गिरधारी, नायक देवीप्रसाद, गौरीशंकर, काशीदीन, मियांबख्श, बालगोविन्द, मातादीन, गणेशप्रसाद, टेकचन्द, भागचन्द इत्यादि प्रसिद्ध कवि और गायक हुए हैं, जिनकी पुस्तकें पुराने टाइपों में छपी नज़र आती हैं ।

इधर **मध्यप्रदेश** के जबलपुर मे पंडित ज्वालाप्रसाद तुर्रे वाले और मंमी खाँ कलग़ी वालों का नामी अखाड़ा था, तथा सागर में हसन, मुनौवर, हाफिज, पीरबख्श, मद्दू खाँ का ज़बर्दस्त अखाड़ा था ।

दमोह में हाजी अली का अखाड़ा बहुत प्रसिद्ध रहा है, जिसमें फरजंद अली, हफीज बेग, लबरी राव, कनछेदी, रोशन शाह इत्यादि प्रसिद्ध गायक हो गये हैं, हाजी अली ने एक 'हाजीहजारा' भी लावनियों में लिखा है जिसमें एक हजार ख़्याल हैं, और दमोह के इटा तहसील में नसरत खाँ का अखाड़ा बहुत प्रसिद्ध रहा है, और 'रनेह' में साहित्याचार्य पं0 हरिराम त्रिवेदी जी का अखाड़ा बड़ा नामी गिरामी था, जिसके शिष्य लक्ष्मीप्रसाद 'रमा', राम सहाय, रामप्रसाद, छिकौंडी लाल, लाला सुंदर लाल, दुर्गाप्रसाद, हरिप्रसाद, चिन्नाई लाल, लोटनशाह इत्यादि बड़े-बड़े गाने वाले थे, इनमें से अब भी कुछ मौजूद हैं ।"[1]

भिवानी पहले से ही ख़यालबाजी का गढ़ रहा है, इस सन्दर्भ में डा0 नानकचन्द शर्मा का सुझाव था कि - "भिवानी में भी कुछ ख़यालबाज़ हैं,. उनसे भी आप सम्पर्क स्थापित करें तो लाभ हो सकता है। वहाँ श्री किशनलाल छाकड़ा, श्री लीलूराम, श्री बनवारीलाल, भरता आदि सुप्रसिद्ध ख़यालबाज़ हैं ।"[2]

भिवानी के अखाड़ों में "उस्ताद नत्थासिंह 'तालिब' " खतौली (मुजफ्फरनगर) का अखाड़ा, आगरे वालों का अखाड़ा, दादरी वालों का अखाड़ा, नारनौल का अखाड़ा और उमरावसिंह का अखाड़ा प्रसिद्ध था ।

यहाँ कानपुर तथा आगरे के प्रमुख अखाड़ों के वंश-वृक्ष प्रस्तुत हैं :-

---

1· डा· लक्ष्मीप्रसाद 'रमा', 'ख़यालबाजी का इतिहास' हस्तलिखित लेख से ।
2· डा· नानकचन्द शर्मा, सर्वेक्षण अधिकारी, भाषा विभाग, हरियाणा, दिनांक 12 नवम्बर 1973 के पत्र से ।

कानपुर के अखाड़े
तुर्रा पक्ष
कलगी पक्ष
मदारी लाल का अखाड़ा
श्याम सिंह का अखाड़ा
बदरूद्दीन
प्रेमसुख
भैरो सिंह
मियां बादल का अखाड़ा
ग्वाल टोली का अखाड़ा
पं० प्रभुदयाल का अखाड़ा
पं० गौरी शंकर का अखाड़ा
चुन्नी गुरु का अखाड़ा
पं.० मणि लाल
मास्टर कालिका प्रसाद 'सुन्दर'
बाबूराम
आनन्दी शायर
महेश प्रसाद (पुत्र)
काशीदीन
रज्जू (बरेली)
भज्जू (बरेली)
टिल्लू महाराज
(लखनवी)

अखाड़ा आगरा, निशानी तुर्रा
तुकनगिरि जी महाराज
रिसालगिरी
बलरामगिरी
हरदयाल सिंह
गुरुदयाल सिंह
ख्याली मिस्सर
बाबू बिहारीलाल
धर्मा सिंह
लाला लाल उर्फ मुंशी जगन प्रसाद
महाराज पन्नालाल
पं० रूप किशोर
ओंकार बाबू अजमेरी
मौलवी मुहम्मद हुसैन "आशिक"
मुंशी नारायण प्रसाद (जबलपुरी)
द्वारिका सिंह (खुर्जा)
शंकरलाल
छोटेलाल
नत्थी पहलवान
राधा वल्लभ
रिजवान (फीरोज़ाबादी)
गुरुदीन (लखीमपुरी)
पं०हरिवंश
रज्जू शेफ्ता (जबलपुर)
अनन्तराम
दुर्गादास
अफ़जल (आगरा)
लल्ला महाराज (शाहजहांपुरी)
चन्दर पहलवान (दिल्ली)
नेकसाराम (फीरोजाबाद)
इतवारी (फर्रूखाबाद)
लालता प्रसाद
मोहन (आगरा)
राम विलास (सीतापुर)
बुल्लो (अतरोली)
श्याम जी गोपाली जी (आगरा)
गोपाल दास मुनीम (आगरा)

इसके अतिरिक्त कचहरी घाट आगरा का भगत अखाड़ा भी प्रसिद्ध था। कलग़ी वालों में उस्ताद बुनियाद अली बुन्दू का अखाड़ा प्रसिद्ध है।

दंगल में मंगलाचरण के समय गायक अपने-अपने अखाड़े की श्रेष्ठता इस प्रकार प्रतिपादित किया करते थे -

'अखाड़ा है अविनाशी का।
'तुर्रा' झलके संन्यासी का।।'[1]

× × ×

'बजे 'कलग़ी' वालों का चंग।
हुये मज़मूँ सुन दुश्मन दंग।।'[2]

■ **दंगल :**

ख़यालबाजी की प्रतिद्वन्द्विता तो प्रसिद्ध है ही, इसी प्रतिद्वन्द्विता को देखने के लिए जनसमूह उमड़ पड़ता था, जिसे **'दंगल'** कहते हैं। गाने वालों को छोटी इलायची बाँट कर निमन्त्रित किया जाता था। निर्धारित समय पर सभी गायक निश्चित स्थान पर जमा हो जाते थे। सन् 1952 में श्री पं0 बनारसीदास जी चतुर्वेदी के स्वागत में लाठी मोहाल कानपुर में स्वामी नारायणानन्द जी व बाबू किशोरचन्द्र जी कपूर के सहयोग से स्व0 चुन्नी गुरु के स्थान लाठीमोहाल स्थित हनुमान जी के मन्दिर में ख़यालबाजी के एक दंगल का आयोजन किया गया था। मैं स्वयं भी उसके दर्शकों में से एक था। उसकी जो प्रतिक्रिया चतुर्वेदी जी के हृदय पर हुई थी, उन्हीं के शब्दों में अवलोकनीय है -

'123 नार्थ एवेन्यु, नई दिल्ली,
10-9-1952

प्रियवर 'अजेय' जी,

"..... जो ख़यालगो लोगों का दंगल हुआ उसका स्मरण आजीवन रहेगा। उस पर जो लेख 'रामराज्य' में छपा था, वह भी मुझे चाहिये। ..... 'सुमित्रा' के अक्टूबर तथा नवम्बर अंकों में ख़यालगो लोगों पर लिखिये। श्रद्धेय स्वामी जी* की सेवामें मेरा प्रणाम।"[3]

(*) 'स्वामी नारायणानन्द जी सरस्वती'
1. लावनी का इतिहास, पृष्ठ 30
2. वही
3. बनारसीदास चतुर्वेदी द्वारा मुझे लाठी मोहाल, लक्ष्मणदास धर्मशाला, कानपुर के पते पर लिखा गया पत्र।

आगरे में वसन्तोत्सव पर वसन्त के दूसरे दिन कचहरी घाट यमुना किनारे प्रतिवर्ष विराट् दंगल का आयोजन हुआ करता था, जिसमें मथुरा, अलीगढ़, हाथरस, फिरोजाबाद, शिकोहाबाद, मेरठ और देहली तक के गाने वाले एकत्र हुआ करते थे। यह जलसा करीब 150 साल से प्रचलित बताते हैं और इसकी विशेषता यह है कि इसमें अब तक भी बिना बुलावे के ही दोनों पक्षों के गायक, लेखक शरीक़ होते हैं । स्वामी नारायणानन्द जी भी इसमें सम्मिलित होते थे । इसकी पुष्टि आगरा से श्री गोपालदास मुनीम द्वारा 11-12-73 को मुझे लिखे गए पत्र से होती है -

"..... आपके गुरुदेव श्री नारायणानन्द जी सरस्वती के दर्शन हमने आगरा में किये हैं, जबकि वे कचहरी घाट में उसी स्थान पर ठहरे थे, जहाँ पर अब भी बसन्त-पंचमी को सालाना जलसा होता है ।"

गोलागोकरणनाथ के मेले में भी इसी प्रकार का विराट् दंगल हुआ करता था। किसी के साथ गाना बदा जाने पर अपने-अपने पक्ष के गायकों को आस-पास से ही नहीं अपितु प्रान्त दर प्रान्त से बुला लिया जाता था । यह सहायता 'कुमक' के ढ़ंग की होती थी ।

ख़लीफ़ा लोग ऐसे दंगलों मे अनुशासन बनाये रखने में सतर्क रहते थे । यह दंगल रात-रात भर चलते थे, सुनने वाले बड़ी तन्मयता से इस कला का रसास्वादन करते थे। स्थानीय रईस लोग भी लावनी-प्रेमी होते थे जो ऐसे मौकों पर उन्हें आर्थिक सहायता प्रदान कर अपनी गुण-ग्राहकता का परिचय देते थे ।

"जहाँ गाना शुरू हुआ, ख्याल पर ख्याल, टेक पर टेक होना प्रारम्भ हुआ कि समा बंधा । जिस समय गर्वोक्तियां सुनाते तथा फ़रीक़ैन फ़ब्तियां कसते थे, उस समय महफ़िल में आनन्द ही आनन्द बरसने लगता था। चारों तरफ़ से वाह-वाह, सल्ले-अल्ला के नारे बुलन्द होने लगते थे, उधर गाने वालों में जोश बढ़ने लगता था । ..... ख़याल गाना नौ बजे रात से शुरू होकर कभी दूसरे दिन सुबह नौ बजे तक होता रहता था और समाप्त नहीं हो पाता था।"[1]

यह दंगल 'सभा' भी कहलाते हैं। इनमें गाने का अधिकार उन्हें ही होता है जो किसी अखाड़े से सम्बन्धित हों, गुरु-विहीन की यहाँ गति नहीं । यह प्रतिबन्ध इसलिये है कि जिससे अखाड़ों का अनुशासन क़ायम रह सके ।

---

1. स्वामी नारायणानन्द, लावनी का इतिहास, पृष्ठ 16

गाने की शैली और नियम -

यह गाना फ़क़ीराना होने से मस्ती से भरपूर है, गायक जब चंग की ताल पर झूम-झूम कर गाता है, तब चंग को बाँये हाथ में लेकर दाँये हाथ से उस पर थाप देता है, बाँये हाथ की तर्जनी और अनामिका में छल्ले पहने रहता है, जिनसे चंग के घेरे के काष्ठ भाग पर साथ-साथ ताल लगाता रहता है । दंगल में सर्वप्रथम अखाड़े का कोई प्रतिष्ठित व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के आग्रह से गाना आरम्भ करता है, आदि में गायक भारतीय संस्कृति के अनुरूप दंगल की निर्विघ्न सम्पन्नता हेतु मंगलाचरण करता है । ख़यालबाज़ी की गायकी में मंगलाचरण '**साखी दौड़**' कहलाता है । स्वामी नारायणानन्द जी ने इसे **'दौड़ साखी'** या **'दौरे साक़ी'** भी माना है, जिसका अर्थ है 'अपनी साक्षी देना'[1]। इसमें इष्टदेव की आराधना के साथ-साथ गर्वोक्ति तथा मुखालिफ़ पर छींटाकसी होती है । यहां इसके कुछ उदाहरण दिये जाते हैं -

सखी - 'सुख करन कलिमल हरण तारण तरण त्रिभुवन नाथ जी ।
कल्याण कर्त्ता दुःख हर्त्ता तुम नमो पद नाथ जी ।।
है विनय जन की यही मन रक्खो चरणों साथ जी ।
भव सिन्धु पार उतारो स्वामी पकड़ जन का हाथ जी ।।'

दौड़ - प्रभू जी तुम हो तरण तारन,
जन को राखो पदों के सरन ।
मो मन बसे तुम्हारे चरण,
जन को मेटो जन्म-मरण ।।
भजें जिन भक्त नाम तेरा ।
नांथु (राम) चरणों का चेरा जी ।।'[2]

सखी - 'सुना है आज वह तो लिये हुये तलवार बैठे हैं,
झुकाये सर को हम भी जान से बेजार बैठे हैं ।
नहीं मालूम बाग़े आरज़ू फूले-फले किसकी,
कि वह गर्दन में अपनी आज पहने हार बैठे हैं।।'[3]

---

1. देखो - लावनी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 28-29
2. जैन कवि नाथूराम, लावनी संग्रह : हस्त लिखित, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, संग्रहालय, 8-66/3980
3. चूड़ामणि, हस्त लिखित लावनी

'मैं तो शैदा हूँ सरासर उस रुख़े ख़ुरशीद का,
जिसके ग़म में चाक सीना हुआ है माहे ईद का।
मैं तो कुश्ता हो चुका अबरू से बचने का नहीं,
जान जाती है फ़कत अरमां है दिल में दीद का।।
ग़र मैं मर जाऊँ तो मेरी लाश को ले जाके तुम,
कूचए जानां में करना, दफ़न मुझ शहीद का।
दोस्तो तुर्बत में मेरी छेद रखवाना ज़रूर,
क्योंकि मुझको शौक़ है मुद्दत से दीदो सनीद का।।'

दौड़ - मारा जानां ने जान कर के,
जान दिल को पहचान कर के।
निगहे अबरू के बान कर के,
गया दिल पै निशान कर के।

अहले गुरु हैंगे सुखलाल,
दम में कर दें मालामाल।
करें 'शिवदन्त' अदू को पामाल,
मेरे गुरु 'नारदगिरि' सुखलाल।।'[1]

सखी - 'सर मिलाया दार से सरदार समझो हो गया,
धर दिया सर दार पर मुरदार समझो हो गया।
कार में बैठा फिरे बेकार समझो हो गया,
मार कर लोगों का ज़र, ज़रदार समझो हो गया।।'[2]

'ताज शाही को कोई सिर से गिराये तो सही,
राम सा बन के हमें कोई दिखाये तो सही।
क़ुर्बान अपने धर्म पर हो कर दिखाये तो कोई,
जाँ हक़ीक़त की तरह कोई गंवाये तो सही।।'[3]

'हसीं चेहरे पै ये जुल्फें गिराना किससे सीखा है।
मेरी जाँ चांद बदली में छुपाना किससे सीखा है।।'[4]

---

1. शिवदन्त, हस्त लिखित लावनी
2. अज्ञात, हस्त लिखित लावनी संग्रह
3. वही
4. वही

'उन्हें छिप-छिप के देखा है, इसे दीदार कहते है ।
दिया पहली नज़र में दिल, इसी को प्यार कहते है ।।
ज़रा आंचल उठा कर देखने दो चांद सा मुखड़ा,
कहो तुम इसको घूंघट हम इसे दीदार कहते हैं ।
इधर भी इक नज़र डालो भिखारी बन के आया हूँ,
तुम्हें ये दुनिया वाले हुस्न की सरकार कहते हैं।
हमारा काम दिल देना, तुम्हारा काम दिल देना,
हमें कहते हैं दिलवाले, तुम्हें दिलदार कहते हैं ।।'[1]

सखी - छानता है खाक क्यों तू घर बनाने के लिये ।
फ़िक्र रहने का न कर, आया है जाने के लिये ।।
चंद दिन दुनिया में रह कर आखिरी चलना ज़रूर,
फेरि क्या सामां करे नित घर सजाने के लिये ।
आये हैं ले कर के क्या दुनिया से क्या ले जायेंगे,
हुस्न दौलत चंद रोज़ा है लुटाने के लिये ।।

दौड़- 'जायगा जहां में जो आया,
न होगी धूप न हो छाया ।
मुझे मुर्शिद ने बतलाया,
जगत् की झूठी है माया ।
बात यह सच है 'ग़ौहर' की ।
रहेगी जात 'बिशम्भर' की ।।'[2]

दौड़- 'ख्याल कहता मुस्टंडों का,
हाल लिखता हूँ पंडों का ।
माल ये खाते रंडों का,
जिकर करते हैं संडों का ।
निशां ये तुर्रा बाना है ।
कलगी जेलखाना है ।।'[3]

---

1. अज्ञात, हस्त लिखित लावनी संग्रह
2. गौहर बदायुँनी, चमनिस्तान ख़याल गौहर, दूसरा हिस्सा, पृष्ठ 185
3. अज्ञात, हस्त लिखित लावनी संग्रह

ज़वाबी गाना :

सखी-दौड़ के पश्चात् गर्वोक्तियाँ आरम्भ हो जाती हैं, यह गर्वोक्तियाँ हृदय में प्रतिस्पर्द्धा का भाव जागृत करती हैं, जब कोई चंग पर थाप दे कर ललकारता है -

'आगे आये बढ़ के तुम में से, गाने वाला कौन सा है ।
बस बारीकी, मेरे सखुन की पाने वाला कौन सा है ।।'[1]

तो दूसरा उसी तर्ज़ में कह उठता है -

'आज करो कुछ इल्म को ज़ाहिर, मेरे छन्द पर छन्द कहो ।
बन्द खुलेगा, जभी तुम्हारा, कोई सठहर्फी बन्द कहो ।।'[2]

गुरुजनों की आज्ञा लेकर मंडली के गायक अपना-अपना गान आरम्भ करते हैं ।

'एक ख़याल क़िसी ने शुरू किया तो जब वह अपना प्रथम चौक पूरा कर लेता है, तो दूसरे गाने वाले उस पर उसी रंगत की या इसी रदीफ़ की टेक कहते हैं। कभी-कभी तो ख़याल गाने वाले को टेकों के मारे परेशानी में पड़ जाना पड़ता है, यानी उसको चौक कहने का मौक़ा नहीं मिलने पाता और टेकें लड़ती रहती हैं। लेकिन टेकों के लड़ने में बड़ा मज़ा आता है। अगर ख़याल गाने वाला शातिर है तो वह सब टेकों का ज़वाब देता है और अपना चौक भी गाता है ।'[3]

अब कुछ ज़वाबी टेकों की भिड़न्त देखिये -

-- 'ऐसा नूर है उस जानां का अयां, कोई हूर औ गिल्माँ बशर ही नहीं।
बड़ा जिसका फ़लक़ पै है शोरों फुगां, ऐसा हुस्न में शमशो-क़मर ही नहीं।।'[4]

-- यों ही दैरो हरम में भटकते रहे, जहाँ जाना है वाँ की ख़बर ही नहीं।
वो तो घट के ही पट में निहां है मियाँ, वले अन्धों को आता नज़र ही नहीं।।[5]

-- सब कुछ मांगे दे दीजै, दे दीजै धन यौवन अपना ।
मगर भूल कर, न दीजै हाथ पराये मन अपना ।।'[6]

-- 'जानबूझ कर कौन किसे देता है धन-यौवन अपना ।
हुस्न वो शै है, जो कर लेता है पराया मन अपना ।।'[7]

---

1. उस्दात नत्थासिंह, लावनी का इतिहास, पृष्ठ 3।
2. तालिब, लावनी का इतिहास, पृष्ठ 3।
3. स्वामी नारायणानन्द, वही, पृष्ठ 38
4. मुंशी ख़ादिम, वही, पृष्ठ 40
5. तालिब, वही, पृष्ठ 40
6. उस्ताद भैरों सिंह, सन्दर्भांकित हिन्दी लावनी साहित्य पर हिन्दी संस्कृत साहित्य का प्रभाव, पृष्ठ 46
7. चुन्नीगुरु, वही

— अल्लाह रे शर्म हया व सितम, उन्हें ईद के दिन भी मिला न गया ।
दिल ने जब चाहा करूँ शिकवा, तब मेरी ज़बां से हिला न गया ।।'[1]

— मेरी हालते ग़ैर बयानी का भी अभी पूरा फ़साना कहा न गया ।
लगा कातिब रोने सुना न गया, यक हर्फ़ तलक तो लिखा न गया ।।'[2]

इसी प्रकार अन्त्यानुप्रास, उपान्त्यानुप्रास (काफ़िया, रदीफ़) मिला कर जो ज़वाबी टेकें कही जाती हैं उनके कुछ अन्य उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं -

— 'मायूस न हो, मायूस न हो, बदलेगा ज़माना बदलेगा ।
साकी की रंगत बदलेगी और ये मयख़ाना बदलेगा ।।'[3]

— हो चुका पतन हो, हो चुका पतन, कर जतन ज़माना बदलेगा ।
लावनी का हो उत्थान तभी, जब अनपढ़ गाना बदलेगा ।।'[4]

— 'ए ग़ाफ़िल घात में मौत तेरे, तू तो होश में आ जा ख़ुदा के लिये।
अन्धेरा ये खान-ए-दिल में हुआ, ये बनाया था हकने जिलां के लिये।।'[5]

— 'ए क़ातिले जान मचल के न चल, दे दरश सिताब गदा के लिये ।
और आलम छोड़ा अदा के लिये, ज़रा मुँह से तो बोलो ख़ुदा के लिये।।'[6]

— मृग नयन पृथक् मम अक्षि कमल कोमल तन इन्दु निगम से छूटे ।
महताब वो लुत्फ़ो करम से छुटे, अज़राहे ख़ुदा दिल ग़म से छूटे ।।'[7]

— 'सदशुक्र ख़ुदा चलो ख़ूब हुआ, हम तुम से छुटे, तुम हमसे छुटे ।
जो तुम लपेट अरकम से छूटे, तो हम भी पंज-ए ग़म से छूटे ।।'[8]

— 'ईश्वर से यही अरज़ी नित है, हमें अन्त समय ये मता देना ।
सदा सोऽहं सोऽहं जपते हैं हम, हम को शिव रूप बना देना ।।'[9]

— मेरे क़त्ल को तेग़ उठाई है जो तो ज़रूर गले पे चला देना ।
मेरी लाश की मिट्टी ख़राब न हो, मदफ़न में इसे दफ़ना देना ।।'[10]

— 'रचा रास ब्रजराज आज सज साज सुहाना फूलों का ।
हरियाने के बीच आज जंगल हरियाना फूलों का ।।'[11]

---

1. काशीदीन, लावनी का इतिहास, पृष्ठ 4।
2. मा. प्यारेलाल, वही, पृष्ठ 4।
3. अज्ञात
4. अजेय, लावनी का इतिहास, पृष्ठ 342
5. किशनलाल, हस्त लिखित
6. शिवदयाल, हस्त लिखित
7. महाराज अतन, हस्त लिखित
8. जगदीश, हस्त लिखित
9. कवितागिरि, हस्त लिखित
10. आनन्दी शायर, लावनी का इतिहास, पृष्ठ 9
11. उस्ताद भैरों सिंह, लावनी का इतिहास, पृष्ठ 12।

इस एक टेक पर अनेक टेकें, जो ख़यालगो तुरन्त जोड़ देते हैं, उनकी आशु कवित्व-शक्ति के परिचय हेतु प्रस्तुत हैं। इनके रचयिता अज्ञात हैं। उपर्युक्त टेक 'खड़ी रंगत' में है और नीचे की सभी टेकें 'रंगत तबील मुखफ्फा' में हैं, रदीफ़ एक ही है -

— 'गुलशन में कभी हम सुनते थे वह क्या था ज़माना फूलों का ।
कलियों से कहानी कलियों की, फूलों से फ़साना फूलों का ।।'

— 'क्या मौसमे गुल पर इतरा कर, हम गायें तराना फूलों का ।
दो रोज़ में आने वाला है, यक और ज़माना फूलों का ।।

— इक रोज़ नाज़नीं करके गई, थी हमसे बहाना फूलों का ।
कर में कंगन था बँधा हुआ, स्वर्णाभ सुहाना फूलों का ।।

— 'ए लूटने वालों अब लूटो, मामूर ख़ज़ाना फूलों का ।
जायेगी बहार आयेगी ख़िज़ाँ, बदलेगा ज़माना फूलों का ।।'

— 'फूलों की क़सम देता हूँ तुझे, छेड़ अब न तराना फूलों का ।
अल्ला रे जवानी फूलों की, उफ़, उफ़ रे ज़माना फूलों का ।।'

— 'कुछ रात गये कुछ रात रहे, लुटता है ख़ज़ाना फूलों का ।
सय्याद से हीले बुलबुल के, गुलचीं से बहाना फूलों का ।।'

— 'छलकेगा शराबे शबनम से, यक यक पैमाना फूलों का ।
परवाने के आगे महफ़िल में, जैसे हो फ़साना फूलों का ।।'

— 'ले जाता अपने दामन में, भर कर वो ख़ज़ाना फूलों का ।
गुलचीं से उन्हें सुनवाता है, सय्याद फ़साना फूलों का ।।'

— 'दाग़ों से हमारा ख़ान-ए दिल, है दौलतखाना फूलों का ।
आता है ज़माना फूलों का, जाता है ज़माना फूलों का ।।'

इन टेकों के पढ़ने से वही आनन्द मिलता है, जो दंगलों में सुनने से, अतः कुछ और टेकें प्रस्तुत हैं । एक बार मलखान सिंह उर्फ 'छित्तर' कलग़ी वाले (आगरा) ने फ़रमाया-

'ये नीला नीला जो दीखता है, न समझो इसको कि आस्माँ है ।
जमा हुआ मिस्ले चर्खे गरदूँ, हमारी आहों का ये धुआँ है ।।

इसका ज़वाब पं0 हरिवंश लाल, तुर्रावाले (खुर्जा) ने इस प्रकार दिया -

'ग़लत है, नादाँ औ बेसमझ है, समझ तुझे बेगुमाँ कहां है ।
जहाँ मैं जितनों के दिल जले हैं, उन्हीं की आहों का ये धुआँ है ।।

टेकों की भाँति ही लावनी से लावनी लड़ाई जाती थी। विस्तारभय से अधिक ज़वाबी लावनियाँ न दे कर केवल एक ज़वाबी लावनी (शीशफूल) प्रस्तुत है। सन् 1928-29 में इसकी बहुत धूम थी। महाराजा रायगढ़ के विशाल लावनी संग्रह में यह दोनों लावनियाँ संगृहीत हैं। प्रथम के लेखक तुर्रा पक्ष के आगरा निवासी पं0 रूपकिशोर जी हैं, और दूसरे के कलग़ी पक्ष के कानपुर निवासी श्री आनन्दी शायर हैं ।

शीश फूल

(प्रथम)

है सीस पर सीस फूल सोभित, सरूप आभा अखंड का है।
मनो भुजंगों की भूमिका पे, निवास श्री मारतन्ड का है।।
सजाये तूने विचित्र भूषन, कि जैसी भूषित तू सुन्दरी है।
खिला है जमना में पीत पंकज कि जिसमें दिनकर की दुति भरी है ।।
ये फूल तेरे ने आज उपमा, गगन में गुरु की हरन करी है ।
कनकसिखर पर कि वासुकी ने, उगल के मस्तक पे मनि धरी है ।।

शेर
घृताची औ सची रति काम चेरी ,
कोई यह कर सकें समता न तेरी ।
रची तू बाल, विधि ने विस्वमोहनि ,
भये हैं स्याम बस मुखचन्द हेरी ।

बनाया किसने ये फूल जिसमें, प्रकाश मनि गन प्रचंड का है ।
मनो भुजंगों की भूमिका पे, निवास श्री मारतंड का है ।।
उदित अंधेरी में आज भृगु हैं कि जिनमें आभा है सोवरन ही ।
मयंक हो निष्कलंक बैठा, बिछा के पर्जंक नील मन की ।।
चढ़े हैं काली के सीस केसव, सपथ उठा के प्रकाशपन की ।
किया है मंगल ने बास चौकी बिछा के मरकत कनों के गन की ।।

शेर- किंधों कर बास गोलाकार घन में ,
चपल थिर हो के बैठी स्याम-घन में ।
तेरे भूषन ने सो दूषन लगा के,
कलंकित कर दिये गहने धरन में ।।

धरन टटोले है आ तरन सब, न बल किसी में घमंड का है ।
मनो भुजंगों की भूमिका पै, निवास श्री मारतंड का है ।।
दिया सुदरसन ने दिव्य दरसन, वो आके कज्जल के कूट ऊपर ।
कि नील परवत के इक सिखर पर, गिरा है नच्छत्र टूट ऊपर ।।
या निसिचरों ने समूह सज के, समर में सुरपति से लूट ऊपर ।
सुधा भरित सोवरन का कलसा धरा धरन कालकूट ऊपर ।।

शेर- सुमन की जोति ऐसी जगमगी है ।
अँधेरी रात में अगिनी लगी है ।
किधौं अलि-माल पै तारा गगन-जुत,
प्रधानक आइ अरुनोदय जगी है।

कहीं है सिर सीस फूल चन्दा, ये राति आधी निखंड का है ।
मनो भुजंगों की भूमिका पै, निवास श्री मारतंड का है ।।[1]

शीश फूल

(द्वितीय)

है शीश पर शीशफूल कैंधौं, पताका ये रति अमन्द का है ।
किधौं नखत संग श्याम घन में, प्रकाश पूनों के चन्द का है ।।
ये मैन के मन्द्र को है फाटक लगाये नामे कुलुफ जकड़ कै ।
किधौं ये गोविन्द आ विराजै, श्री मानिनी जी के पांव पड़ के ।
है बैठा कंचन वरन देवता, पटा पै नीलम के कोई अड़ के ।
किधौं श्याम डोर रेशमी में, बांधा बंधुआ है एक पकड़ के ।।

---

1. पं0 रूपकिशोर, 'पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ' से ।

विशेष : इसका अन्तिम चौक इस ग्रन्थ में नहीं छपा, अतः 3 ही चौक यहां दिये हैं।

शेर- अयस् की नाव में कंचन को लंगर,
मयंक है बैठा राहु को दबा कर ।
कनक चौकी पै कैधौं मैन बैठा,
शनी से या मिला मंगल परस्पर ।

हेम शिखर पे है काल भैरों, निवास गौरी के नन्द का है ।
किधौं नखत संग श्याम घन में, प्रकाश पूनो के चन्द का है।। -।

विदित है मन्मथ की ये मथानी, छिपाय राखी है मारे डर के ।
किधौं शेष मुख में ये सुधा रस का कुम्भ कंचन धरा है भर के।।
रतन जड़ित की चंवर डुलावे, फनीन्द्र पर नागिनी निखर के ।
किधौं प्रभाकर की किरणों से यह, बहा जड़ा हेम शुद्ध कर के।।

शेर- नील धारा में फूला पीत पंकज,
विराजे कूल कालिन्दी के कुम्भज ।
किधौं शिव की जटा में तारापति है,
सूंड में लाल राखे श्याम दिग्गज ।

किधौं सदन, अन्धकार मध में किसी तपस्वी के वृन्द का है ।
किधौं नखत संग श्याम घन में, प्रकाश पूनो के चन्द का है ।। -2

मिलन को सुख पति से रात में धौं तिलोत्तमा कुंड में नहाई ।
किधौं खंड करके श्याम पर्वत, त्रिवेणी की मन्द धार आई ।।
धरा कलश शीश शुभ शकुन हित, खबर पति आवन की तत्र आई ।।
किधौं शत्रु जान कर के राहू ने रवि की ये मुश्क है बंधाई ।।

शेर- कौस्तुभ मणि गले में श्याम के है,
पुष्प सित शीश सालिग राम के है ।
किधौं वन में ये दावानल लगी है,
किसी का मन ये बस में श्याम के है ।।

है शेष के शीश पे प्रभाकर, या पद्म-पद ये मुकुंद का है ।
किधौं नखत संग श्याम घन में, प्रकाश पूनो के चन्द का है ।। -3

किधौं शनि के कंठ मणि की माला, किधौं अगिन लगी तमाल वन में।
किधौं कलिन्दी के कूल दीपत, ये पांति दीपक की वृन्दावन में ।।
किंधौं तमोगुण के मध्य में है, रजो सतो गुण समझ लो मन में ।
किधौं उदित शुक्र हेगा कैंधों, विभास चपला का श्याम घन में ।।

शेर- श्याम सारी में किधौं मणि धरा है ।
लता में पुष्प चम्पा का फरा है ।।
सरोवर श्याम शोभा सों भरा है,
ता पै कंचन को इक दीपक जरा है ।।

सुकाव्य शंकर 'अनन्दी वर्मा', विदित करने वाला छन्द का है ।
किधौं नखत संग श्याम घन में, प्रकाश पूनों के चन्द का है ।। -4''[1]

लड़ीबन्द गाना

लगी हुई किसी चीज़ की माला या पंक्ति को लड़ी और लड़ी से युक्त गाने को लड़ीबन्द गाना कहते हैं। स्वामी नारायणानन्द जी के शब्दों में 'एक ही ज़मीन या रदीफ़ क़ाफ़िये पर अनेक ख़याल गाये जायं उसी को लड़ी लड़ाना कहते हैं ।'[2]

लड़ीबन्द गाने की वज़ह से ही किताबी गाना ख़यालबाजी में आरम्भ हुआ वर्ना उससे पहले ज़बानी गाना हुआ करता था जो अति आनन्ददायक था। ज़बानी गाना भावात्मक तन्त्व से युक्त होता था और किताबी गाने में कलात्मक भावना का प्रदर्शन पाया जाता है। **'ककहरा'**[3] **'तिसहर्फी'**[4] आदि अनेक 'सनअ़त' वाले ख़याल कई-कई की तादाद में एक ही वजन, एक ही रदीफ़ क़ाफ़िये में एक-एक लावणीकार पर 20-20 या 30-30 या उससे भी अधिक मात्रा में लिखित रूप में होते थे। मुक़ाबिल गाने वाले को उसी ढ़ंग की लावणी प्रत्युन्तर में प्रस्तुत करनी पड़ती थी, जिस पर अधिक लावणियाँ एक ही प्रकार की होती थी, अन्ततोगत्वा उसी की विजय होती थी । लड़ी लड़ाना भी इसी गाने को कहते हैं। इससे शिक्षित जनता आश्चर्यान्वित और आनन्दित होती थी। जिनकी स्मृति और धारणाशक्ति अच्छी होती थी वे गायक किताबी गाने को पसंद नहीं करते थे, क्योंकि किताब के पन्ने उलटने-पलटने में कलाकार के हाव-भाव तथा स्वर का उतार-चढ़ाव विनष्ट हो जाता है, जिससे गीत की सम्प्रेषणीयता मन्द हो जाती है। इस किताबी गाने के विरोध में ऐसे गायकों का कहना है -

---

1. आनन्दी शायर, लावनी का इतिहास, पृष्ठ 274
2. लावनी का इतिहास, पृष्ठ 44
3. 'क' से लेकर 'ह' तक की बन्दिश (वर्णमाला क्रम से)।
4. अलिफ़ से ये तक की बन्दिश (उर्दू वर्णमाला क्रम से) ।

'सुखनवरों की है महफ़िल ग़र, याद हो तो कुछ कहो जनाब ।
नहीं मुहर्रम की मजलिस जो, खोल के बैठे आप किताब ।।

अब लड़ीबन्द गाने के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं -

(रंगत बहरखड़ी (अधर) सिंहावलोकन 'रासलीला')

'श्रीकृष्ण आनन्दकन्द ने, करी रास तय्यारी देख ।
देख रास तय्यारी करी हरि, सखियन के हितकारी देख।। टेक'[1]
'यस्य ज्ञान तान मुरली की, सखी ध्यान यहाँ हारी देख।
यहाँ हारी लाचारी नारी, सगरी हरि यश गारी देख ।। -टेक'[2]
'नन्द-नँन्दन आनन्द कन्द ने, रचा रास गति न्यारी देख।
देख न्यारी नंदलाल की गति, रागिनी राग ललकारी देख।। -टेक'[3]

यहाँ दूसरी टेक में 'मुरली' में **'अधर'** नहीं रहा क्योंकि 'पवर्ग' का उच्चारण-स्थान ओष्ठ ही है । 'अधर' में परस्पर ओष्ठ नहीं मिलते हैं। अतः इसमें पवर्ग वर्जित है।

अब 'रंगत लंगड़ी' की कुछ टेकें प्रस्तुत हैं -

'जब कहने लगा अंगद यों दरम्यान सभा में अन्दर के ।
दशकन्धर के, हुये तब लाल नेत्र, सुन बन्दर के ।। -टेक'[4]

१. 'क' का दुअंग ।

'कहे मंदोदरि सुन दशमुख, जा, चरण गहो श्री रघुवर के ।
करुणाकर के, कृपाल दीन बन्धु सुख - सागर के ।। -टेक'[5]
'हुआ हूँ मैं नमनाक यहाँ तक, रोया हूँ नारे भर के ।
जगह जफ़र के, हमारे सोते दो दीदे तर के ।। -टेक'[6]

---

1. किशनलाल, अखाड़ा चन्दौसी, उक्त तीनों टेकों के रचयिता यही हैं, हस्त लिखित 'लावनी संग्रह' से।
2. वही
3. वही
4. भैरों सिंह, अप्रकाशित लावणी
5. भगवानसिंह, अप्रकाशित लावणी
6. बिहारीलाल, अप्रकाशित लावणी

फटकेबाज़ी

'फटका' स्थानिक प्रयोग है, हिन्दी शब्द कोशकारों ने तो इसका अर्थ-'काव्य के गुण से रहित कविता या 'निरी तुकबन्दी' लिखा है ।'[1] परन्तु 'खयालों में फटके का खास स्थान रहा है । फटका उसको कहते हैं, जिसमें विपक्षी या मुख़ालिफ़ीन पर फबती या व्यंग्य कसा जाता है । हिन्दी कवियों ने इसे 'भड़ौवा' नाम दिया है ।'[2] वस्तुतः 'फट' ध्वनि मात्र है, जिसकी पुनरावृत्ति करने से अतिशीघ्रता का बोध होता है । लावणीकार प्रतिपक्षी पर फट-फट जो वाणी का प्रहार करते थे वही 'फटका' कहलाया । अथवा 'फटकार' का रूपान्तर 'फटका' है । फटका 'वक्रोक्ति' अलंकार के अत्यधिक निकट है। 'वक्रोक्ति' को भामह ने काव्य का सौन्दर्यमाना है -

वक्राभिधेय शब्दोक्तिरिष्टा वाचामलंकृतिः ।'[3]

दण्डी भी वक्रोक्तिप्रधान रचना को ही काव्य-गुणों से अलंकृत मानते हैं । आचार्य कुन्तक ने तो 'वक्रोक्ति' को ही काव्य का आत्मा माना है । उनका ग्रन्थ 'वक्रोक्तिजीवितम्' इसका साक्षी है । 'वर्ण-विन्यास-वक्रता से लेकर रस-वक्रता और महाकाव्य-वक्रता तक वक्रोक्ति की सीमा उन्होंने निर्धारित की है ।'[4]

जैसे कोई व्यक्ति किसी संस्था का अधिकारी बन कर खूब माल हड़प रहा हो, तो उसे बुलबुल का प्रतीक बना कर किसी ख़यालगो ने फ़रमाया-

'आख़िर यक दिन पड़े सख़्त सैयाद के तू पाले बुलबुल ।
और चार दिन, हवा गुलज़ार की तू खाले बुलबुल ।।'

कहीं-कहीं इसमें 'अभिधा' के द्वारा ही प्रतिपक्षी को फटकारा भी जाता था, जैसे -

लगा गाने ख़याल तेली, तमोली, बनिया ।
गया भूल बेचना नोंन तेल और धनिया ।।

'कलग़ी' को स्त्रीजाति का प्रतीक मान कर 'तुर्रा' संप्रदाय के एक कवि ने 'ककहरा' में इस प्रकार व्यंग कसा -

क्यों न किया सत-शील-धर्म, घर बैठे वर पीतम पाती ।
खोटा कार बदकार ज़ार औरत की जात मुलकों जाती ।।
करौली, कोटा, कोलपुर, कांगड़े तलक फिर कर आई ।
खन्ना, खतौली, खैरागढ़, खंधार में जा रूह दिखलाई ।।

---

1. देखो – बृहत् हिन्दी कोश, पृष्ठ 901।
2. स्वामी नारायणानन्द, लावनी का इतिहास, पृष्ठ 35
3. काव्यालंकार
4. आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी, भारतीय साहित्यशास्त्र की रूपरेखा, 'निबन्ध संकलन', प्रथम संस्करण, पृष्ठ 104

गोआ, गोंडा, गोरखपुर, गोहाटी जा सुध बिसराई ।
घूड़, घोकड़ा, घूंघा, बद्दर, घड़ियाला देखा जाई ।।
नर सिंहल, नागौर नगर, नासिक में जा खोली छाती ।
खोटा कार बदकार ज़ार औरत की जात मुलकों जाती ।।'[1]

बाबा बनारसी, जो पहले कलग़ी पक्ष के समर्थक थे, बाद में सम्प्रदायों के बन्धन से मुक्त हो कर श्रीमत्परमहंस कहलाये, ने तुर्रे को कलगी का बेटा कहा तो तुर्रे वालों ने दावा किया कि तुर्रा 'बेटा' नहीं कलग़ी का पति है -

बिन तुर्रे के कौन दूसरा है कलग़ी का ख़सम बता ।
चल तुर्रा बेटा ही सही, पर खसम का इसके इसम बता ।।
किसी नार ने जना आज तक , बिना ख़सम के पूत नहीं ।
किसी जमाने जिया जून में बता तेरी मां बूत[2] नही।।
किया किसी जिन भूत की मां ने पैदा भी जिन भूत नहीं ।
पतिव्रता की कहै कौन कंचनी जने वह सूत नहीं ।।

झड़ी- बिनाख़सम के बेटे वाली ।
कहां की कलग़ी नार निकाली ।।
कहे छन्द 'सुखलाल' करारा , बाकी है क्या बहम बता ।
चल तुर्रा बेटा ही सही तू ख़सम का इसके इसम बता ।।'

इस फटकेबाजी की अति होने से लावनी-गायकों के पारस्परिक प्रेम की क्षति हुई । गायक और श्रोता दोनों की ही दृष्टि में लावणी-गायन अपने महत्त्व को दिनानुदिन खोता चला गया। जब वक्रोक्ति और व्यंग्य ने सीधा गाली-गलौच का रूप धारण कर लिया तो प्रतिष्ठित व्यक्ति इसमें भाग लेने से कतराने लगे और इस कला का कृष्णपक्ष के चन्द्रमा की तरह धीरे-धीरे ह्रास होता चला गया ।

---

1. शिवदन्त, अप्रकाशित लावणी ।
2. बूत = शक्ति
3. सुखलाल, अप्रकाशित लावणी से ।

दाख़िला

कुछ लोग इसे 'दाख़ला' बोलते हैं, इस उच्चारण की विभिन्नता से अर्थ में कोई व्यतिक्रम नहीं होता । इसका शब्दार्थ 'प्रवेश' है । दंगल में जब कलग़ी और तुर्रा पक्ष में परस्पर प्रतिस्पर्द्धात्मक गायन चल रहा हो उस समय कुछ ऐसी लावणियां गाई जाती हैं , जिनमें एक दूसरे से प्रश्न किये जाते हैं , प्रश्नों का उत्तर यह आवश्यक नहीं कि किसी अखाड़े विशेष का कोई व्यक्तिविशेष ही दे, अपितु सम्प्रदायविशेष का कोई भी व्यक्ति उसका उत्तर दे सकता है । जब वह सभा में उत्तर देने के लिये प्रविष्ट होता था तो उत्तर के साथ अपने अखाड़े का परिचय भी 'छाप' में देता था , ऐसी ही लावणियों को 'दाख़ला' कहा जाता है ।

'अक्सर आपने ख़यालगो लोगों से सुना होगा कि हमने फलां के ख़याल पर दाख़ला दिया। दाख़ला शब्द उर्दू का है, दाख़ले के मानी जवाब के नहीं हैं, दाख़ले के असल मानी दाख़िल होने के हैं, यह ज़वाबी गाना अवश्य है, परन्तु यदि ख़याल के आख़री चौक में अखाड़े के उस्तादों के नाम न आवें तो ख़याल सुन कर यह नहीं बताया जा सकता कि यह ख़याल किस सम्प्रदाय का है।"[1]

अतः प्रश्नोत्तर की ऐसी लावणियों में अपने आचार्य एवं अखाड़े का उल्लेख आवश्यक है ।

दूसरे की बात को उलटना ओर दूसरे की बात का उत्तर देकर अपना सवाल पेश कर लोगों को अपनी ओर मुख़ातिब करना एक कला है । कलग़ी वालों का दाख़ला कहने में कानपुर के तुर्रा पक्ष के उस्ताद बादल ओर चुन्नी गुरू बेजोड़ थे ।

तुर्रे वाले ने प्रश्न किया -

कर गदा चक्र निर्वाण , क्रोध मन ठान ,
बोध विज्ञान , भान नहीं किया ।
क्यों सके न सुत पहिचान , वो थे भगवान ,
होके अनजान काट सिर लिया ।।'[2]

इसी से मिलता जुलता दूसरा प्रश्न -

जब न था गज-वदन , मैल का मथन ,
बता किस गन का पूजन किया ।
जब हुआ ब्याह सुन यार , संग त्रिपुरार ,
सार कहो किसका विसर्जन किया ।।'[3]

---

1. पं0 देवीप्रसाद गौड़ 'मस्त', लावनी-गायन (अप्रकाशित लेख), पृष्ठ 4
2. पं0 रूपकिशोर, हस्त लिखित (अप्रकाशित) लावणी से ।
3. भैरों सिंह, अप्रकाशित लावणी से ।

इन प्रश्नों का उत्तर इन्हीं छन्दों में अपने परिचय सहित देने का नाम **'दाख़ला'** है ।

" पं. शम्भुदयाल जी दादरी वालों ने अपने एक ख़याल में किसी 'सुमुखी' के मुख एवं उसकी लटाओं का इस प्रकार चित्रण किया -

लगी नागन फन पटकन अपना , लटकत जो लखी लट एक तरफ़ ।
पट घूंघट नेक पलटते ही , रथ चन्द्र गयो डट एक तरफ ।।

इसका दाख़ला 'खुशदिल' साहब ने इस प्रकार लिखा है -

नागन तो फन रखती ही नहीं , हिल सकती नहीं लट एक तरफ़ ।
पट घूंघट नेक पलटते ही , कस चन्द्र गयो डट एक तरफ़ ।।'[1]

यहाँ डा. 'मानव' ने 'लटों-को' लटाओं' लिख कर उलटा ही अर्थ कर दिया है । उन्होंने अपने कथ्य में लटाओं के स्थान पर 'लटों' का प्रयोग करना चाहिए था , क्यों कि 'लट' नीचे लटकने वाले सिर के लम्बे बालों का एक गुच्छा होता है और 'लटा' शब्द लम्पट या बुरे अर्थ का द्योतक है । उपर्युक्त पद्यों में लट शब्द 'अलक' के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है ।

लट की तारीफ़ में इसी रदीफ़ पर महाराज पन्नालाल की एक पूरी लावनी देखिये जिसमें सनअ़त है- यमक, अनुप्रास तथा सिंहावलोकन । अशआर फ़ारसी ज़बान के हैं, रंगत 'बहरे तबील' है -

लटके लटके में लटके हैं , लटके लटपट लट एक तरफ ।
झटके पटके डट के खटके अटके झट नटखट एक तरफ ।।टेक।।
बटमार निकट हैं ये दोनों ओर घूंघट का पट एक तरफ ।
पटके वटमार हजार झपट डट जाय वो झंझट एक तरफ ।।
झंझट की तान कमान विकट झट लाये संकट एक तरफ ।
संकट डट जायें भुजंगन पे जायें नटखट हट एक तरफ ।।
अज़ जुल्फ स्याह ओं मीं गश्त वला पैदा ,
दर ख़लके पेचां इश शुद दाम फ़ना पैदा ।
हर कस सरे सौदा इश या रूहो रवां गीरद,
बाज़ार मुहब्बत रा शुद अन्दाज़ो अदा पैदा ।।
हट से नटखट लाये झंझट आ जाय झपट चट एक तरफ ।। । ।।

---

1. हिन्दी लावणी साहित्य पर हिन्दी सन्त साहित्य का प्रभाव, पृष्ठ 47

चट पट घूंघट में होत प्रगट मुख भान कला भट एक तरफ ।
भट के रवि बाजि अकाज भजे तट की मारग हट एक तरफ ।।
हट जात रवि पा के आहट ओर चन्द्र रहौ डट एक तरफ ।
डट कौन सके या झंझट में यही लाग रही रट एक तरफ ।।

रुख़सार हमी साज़द नूर दिलो जां पैदा ,
गोया महेताबां अज़ अक्स हुआ पैदा ।
महेरावे जिवीं दादह ईं दाग़ गुलामी रा ,
अज़ महरे हमीं गश्तः महरे वरे निशाँ पैदा
रट घट में लागी आठ पहर सब करके छलवट एक तरफ ।। 2 ।।

छलबट इसके घट बीच नही नटखट है अनबट एक तरफ ।
अनबट से गुलाब में आब नही मुख होय जो परगट एक तरफ ।।
घट में अटके पटके उसको देखे संकट खट एक तरफ ।
खट के भट के डट के फट के हट के न लड़े भट एक तरफ ।।

ईं ज़ुल्फ़ो रूखे ख़ूबत या शामो सहर पैदा ,
या मार सिया साज़ह ईं दुर्रो गुहर पैदा ।
अज़ अफ़ई ज़ुल्फ़ हर कस न वासर आयद ,
दीं आरिज़े तावानत आराम जिगर पैदा ।।
भट झटके खा अटके लाखों इस नटखट के तट एक तरफ़ ।। 3 ।।

तट गंगा के तिरवेनी है 'लाला पन्ना' कट एक तरफ ।
कट के भट के अट के इसमें कर-कर के सटपट एक तरफ ।।
सटपट न करे क्यों हट-हट कर है यह नागर नट एक तरफ ।
नटखट के शंकर साफ़ भगे इस मारग से फट एक तरफ ।।

अज़ जुल्फे बलाये जां शुद रंजो अलम पैदा ,
वज़ आरिज़े रोशन ओ गरदर्दन अलम पैदा ।
इं जुल्फे हुमां काफिर को कुफ्र हमीं आरद ,
अज़ राहे आज़ार तो शुद राहे हरम पैदा ।।
फटके 'काशी' डट के चटके जो शत्रु रहे डट एक तरफ ।। 4 ।।'[1]

इस प्रकार की रचनाओं में लावणीकारों के शब्द-शिल्प , बहुभाषा-ज्ञान, प्रत्युत्पन्न-मतित्व, सूझ-बूझ, वाक्-चातुरी और कला-कौशल का परिचय मिलता है ।

छाप

जिस प्रकार आजकल विभिन्न कारखानों में बनी वस्तुओ पर पहचान के लिये छपा हुआ शब्द या चित्र 'छाप' या 'मार्का'कहलाता है, उसी प्रकार लावणी-जगत् में अपने अखाड़े की प्रतिष्ठा एवं प्रसिद्धि तथा पहचान के लिये रचना के अन्तिम छन्द में अपना नाम या उपनाम तथा गुरुजनों के नाम आदर-पूर्वक लिखने की परम्परा रही है, जिसे **'छाप'** कहते हैं । इसमें गर्वोक्ति तथा व्यंग्योक्ति का सम्मिश्रण रहता है ।

'यह परम्परा है कि कोई भी तुर्रे वाला 'रिसालगिरि' का नाम छाप में ला सकता है । इसी प्रकार कलग़ी वाले 'शाहअली' का नाम लाते हैं । अगर कोई शायर सिर्फ़ अपने नाम से ख़याल लिख कर गावे तो लोग उसे निगुरा कहते हैं ।'[2]

यद्यपि शाहअली के समकालीन और समकक्ष तुकनगिरि थे, परन्तु उपर्युक्त पंक्तियों में तुकनगिरि की अपेक्षा उनके शिष्य रिसालगिरि को प्राथमिकता दी है, इसका एक मात्र कारण यह हो सकता है कि गायकी के क्षेत्र में रिसालगिरि की प्रसिद्धि अपने गुरु से भी बढ़ कर रही हो ।

जिन्होंने अत्यधिक संख्या में लावणियां लिखी हैं, उनकी कुछ लावणियां उपर्युक्त नियम का अपवाद भी हैं, उन सब में अधिक नामों की छाप न हो कर केवल रचयिता ने अपने ही नाम को 'छाप' में स्थान दिया है ।

---

1. महाराज पन्नालाल जी, नूरी दरवाजा, आगरा (अप्रकाशित लावणी) ।
2. स्वामी नारायणानन्द, लावणी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 33

नामों के बाहुल्य से यह पता लगाना कठिन हो जाता है कि कि लावणी का वास्तविक रचयिता कौन है ? इस कठिनाई के बावजूद भी इस परम्परा से लाभ यह है कि लावणीकारों, तथा गायकों की कीर्त्ति-रक्षा के क्षेत्र में यह इतिहासकारों के लिये अन्तः-साक्ष्य-परक सामग्री का काम दे सकती है । यहां हम कुछ ऐसे उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं, जिनमें बहुत से रचयिताओं के नाम अंकित हैं।

'न' का दुअंग (अन्तिम चौक): रंगत तबील मुखफ्फा
नित छन्द 'अतन' 'श्री दत्त' 'किशन' हरि-कीर्त्तन चित्त धरत 'चिम्मन'।
निधि बांध के पार कटक के सहित, रघुकुल दशरथ सुत राम लखन।।

वहीः गणेश-वंदन नये छन्द 'विसम्भर' 'दत्त' भगवत गाते हैं सदा लगे दुष्ट भगन ।
नर पार हो भव संसार से जन गिरिजानन्दन अघ-कष्ट-हरन ।।

तबील- मजमून निकालें निराला जो हम निकले न अदू की ज़बां से सुख़न ।
मुरसद है 'करनगिरि' तेज़ क़लम, ना राह मिले अदू को है जलन।।
मौजूं लिख 'सरधा' जो 'परभू' रक़म, न नबिस्ता अदू का चले न कथन।
मानी जो लिखें 'बनवारी' का दम, नुज हफ़्ते से कहे अंगद-नन्दन ।।
मशहूर 'कलन्दर' ख़्याल 'अतन' 'नासागिरि' मंगल साहबे दम ।
मंजूर नज़र करूं पेश रक़म, नरगिश की तरह है राहे चमन ।।

गणेश-वंदनः तिकड़िया करूं दिल से प्रीत, पूजा की रीत, दंगल को जीत मैं लूॅं अक्सर ।
करना कमाल, 'गौहर' तमाम, कहें 'रूपराम' और 'बंशीधर' ।।

तिनकाः शिकस्ता 'रिसाल गिरि' ने सिखाया जैसा, कहो कोई इस वज़न में तिनका ।
खुदा ने चाहा तो बन सकेगा, न उस कैसा बाँकपन में तिनका ।।
अरे अदू बढ़ न 'भैरों सिंह' से, तू गाके ये अपने मन में तिनका ।
जायेगा 'चूडामणी' के आगे, आदाबतन आ के रन में तिनका ।।
'पहाडी' 'सूरज' ने है दबाया, अदू को गा कर वजन में तिनका ।
कि बादे मुर्दन थी शक़ में दुनिया, कि लाश है या कफन में तिनका।।

तबील: लंगर तेरे जो़र के हुस्न का गर्क़ व शर्क़ न फ़र्क शिकन न रहा ।
'मुन्शी' ये जहाॅं न निहां है अयां तेरे 'भेरों' को रंज महन न रहा ।।
'नँद शरण' न नज़्म की रक़्म में कम, कभी 'चूडामणी' को जलन न रहा ।
वो नज़र से करम वो रहम की सनम 'गोविन्द' को और सुखन न रहा ।।
दो. - हिन्दू तुस 'सुख लाल' ने देखा अरब स्थान ।
ला ज़वाब सुन ख़्याल को, है हासिद हैरान ।।
तीसहर्फी सुनी अदू मारा गया, ओर घर में तो उसके कफन न रहा ।
बने बुलबुले जां तेरी क्यों कर फ़िदा, जो कि तू ही वों गुंचे दहन न रहा।।

जोडा: तबील तुकबन्दी 'तुकनगि़रि' की कायम, मगर 'अलिये' का ख़ुद मदफ़न न रहा ।
दहशत से 'भवानी सिंह' की अदू अयां सामने काग वरन न रहा ।।
हुये 'बाबू' 'गोपाल' जो गुन में गुनी, 'तुलाराम' को रंजे महन न रहा ।
दुश्मन को 'हजारी सिंह' ने दबा, दिया 'दाख़ला' अब तो गमन न रहा।।
'खुशीराम' ओ 'बांके' 'कृष्णा' कहें कलग़ी पे भी वो जोबन न रहा ।
अगलाम दग़ा रिश्वत बढ़ गई, सिवा इसके हरी का भजन न रहा ।।

तबील: मुखफ्फा जो आया जहां में वो फ़ानी हुआ, खुदा दोस्त पयम्बर तक न रहा ।
कहें 'मंगलसैन' सुनो 'गुरुदीन' वो 'ख्याली' सखुन वर तक न रहा ।।

ख़याल हरिश्चन्द्र का: रंगत लंगड़ी (चौक का उत्तरार्ध)
'रामकरन गिरि' यश को उनके, जाने सब संसार ।
'शम्भुपुरी' हरिश्चन्द्र से दाता, कोई नहीं उदार ।।
ये 'गोविन्द' 'मगल'
के बिच है दंगल,
डाल अदू पर संगल,
सुन के ख़्याल 'तेलू' का फड़ से, कलग़ी वाला कट जाता है ।
दान किये से, कभी नहिं सुना कि धन घट जाता है ।।

तक़दीर: तबील **शेर**- वो जिस तक़दीर ने इनको मदीने से निकाला है ।
उसी ने काबला में ला क़ज़ा के मुँह में डाला है ।।
किया है 'ख्याली मिस्सर' ने सख़ुन पुरस्वाद का मिसरा,
ये 'लालालाल' 'पन्नालाल' का मजमूं निराला है ।

कहें 'दयाल' कि 'रूप किशोर' ने सौ पुल बांधे हैं इल्म समन्दर के ।
तक़दीर पै चलता ज़ोर नहीं, ये ही लिक्खा था बीच मुक़द्दर के ।।4।।'[1]

उपर्युक्त उदाहरणों से सिद्ध होता है कि आचार्यों के नाम श्रद्धा प्रकट करने के लिये, शिष्यों के नाम प्रोत्साहन के लिये तथा अपने नाम कीर्त्तिरक्षा एवं सामाजिक सम्मान प्राप्ति के लिये लावनी-लेखकों द्वारा अंकित किये जाते थे ।

विभिन्न भाषाओं में लावनी

हिन्दी लावणी साहित्य का उद्‌भव एवं विकास दिखलाते समय हम सिद्ध कर चुके हैं कि संस्कृत से ही इसका विस्तार हुआ । अतः अब से लगभग 120 वर्ष पूर्व सम्बत् 1931 में 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' में प्रकाशित संस्कृत लावणी का अन्तिम चौक उदाहरणार्थ प्रस्तुत है -

कुंजं कुंजं सखि सत्वरम् ।
चल चल दयितः। प्रतीक्षते त्वां तनोति बहु आदरम् ।

परित्यज चंचल मंजीरम्
अवगुण्ठय चन्द्राननमिह सखि, धेहि नीलचीरम् ।
रमय रसिकेश्वरमाभीरम् ।
युवती-शत-संग्राम सुरति-रतमचलमेकवीरम् ।।
भयं त्यज हृदि धारय धीरम्
शोभयस्व मुखकान्तिविराजितरवितनयातीरम् ।।

गति :- मुञ्च मानं मानय वचनम् ।
विलम्बं मा कुरु, कुरु गमनम् ।।
प्रियांके प्रिये, रचय शयनम् ।
सुतनु, तनु सुखमयमालिजनम् ।।

---

1. **श्री बैजनाथ उपाध्याय, ज्वालापुर के पास सुरक्षित 'हस्तलिखित लावणी संग्रह' से प्रस्तुत।**

दासौ 'दामोदर'-'हरिचन्दौ, प्रार्थयतस्ते वरम् ।
वरय राधे त्वं राधावरम् ।।
चल चल दयितः प्रतीक्षते त्वां तनोति बहु आदरम् ।।'[1]

फ़ारसी में

'पेश देवीसिंह शवद दुश्मन मुदाम अंदोहगी ।
ताब आं दारद कुजा आरद अगरचीं बरजवीं ।।
दिल कुनद राग़िब वसूये तुर्रये हर अहले दीं ।
ई परे मुर्दार कलग़ी रा वचश्म ख़ुद मुतीं ।।'[2]
अज़ सर तापां बयां नुमायम, हाले परेशां गोश कुनेद ।
बुते बेवफ़ा, बिदीदम दर हिन्दुस्तां गोश कुनेद ।।'[3]

अंग्रेजी में :

माई वन्डरफुल डियर,
नॉट कम हियर,
यू विल बी गोइंग सो फार ।'[4]

पंजाबी में :

'रह रह साड्डा दिल घबरांदा
मैंनू पिया कहीं नजर न आंदा ।
केडी जुदाई बिच जिय जांदा
आसाड्डे दिल बिच चाह तू होड़ी मेरी कोल आजा यक बार ।'[5]

क्रमशः **संस्कृत, मराठी, कन्नड तथा हिन्दी मिश्रित लावनी**

'पाहि पाहि निज भुवनम्,
प्रतीका बोलशी मुड दारा ।
निन्न मातना केलु दिल्ला,
चल छोड़ पल्ला मेरा ।।'[6]

---

1. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृष्ठ 666-67-68
2. लावनी का इतिहास, पृष्ठ 3।
3. गौहर, चमनिस्तान ख़्यालात गौहर, भाग 1, पृष्ठ 57
4. लावनी का इतिहास, पृष्ठ 64
5. वही, पृष्ठ 64
6. राम जोशी, सन्दर्भांकित, महाराष्ट्र का हिन्दी लोक-काव्य, पृष्ठ 169

'मगही' लोक गीतों में लावनी

मंगलाचरण "परथम गनेश पद बंदि के, कुसल[1] मनावहु हे ।
ललना, विघन हरन गन नायक, सोहर[2] गावहु हे ।।"

विवाह गीत- लाडो[3] जोगे[4] टिकवा[5] कवन[6] दुलहा लावे जी ।
अइसन धूपे कल्ला[7] में कहां से, गभरू[8] आवे जी ।।
अइसन झहर बदरी में कहां से, गभरू आवे जी ।
अपन गरज लागि पइयां, पड़इत आवे जी ।।

उपर्युक्त गीतों में 16 + 10 = 26 मात्राओं का क्रम है, कहीं कुछ मात्राएं कम हैं, कहीं ज्यादा, परन्तु प्रवाह ठीक है, घटा बढ़ा कर पढ़ने से इसमें लावनी की 'रंगत नवेली' है । रचयिता अज्ञात है । अधिकतर लोक-गीतों की रचना प्रायः भावुक भामिनियां लय के आधार पर स्वयं कर लेती हैं ।

एक अन्य उदाहरण देखिये, जो खड़ी रंगत में गढ़ा गया है, दुलहन अपने दूलहे के विषय में स्वयं बता रही है -

हँस हँस के वो बाल संवारे घूंघट खोले लाल बना ।
अरी ए अम्मां ! मेरो टीका, देख लोभाना लाल बना।।
अरी ए अम्मां मेरा मोतिया देख लोभाना लाल बना ।
हँस हँस के वो बाल संवारे घूंघट खोले लाल बना ।। । ।।

इस प्रकार गुजराती तथा राजस्थानी आदि लगभग सभी प्रान्तीय भाषाओं में लावनियां लिखी गईं परन्तु खड़ी बोली के विकास में ब्रजभाषा और उर्दू का ही विशेष योग रहा है । अतः क्रमशः इन दोनों भाषाओं के सम्बन्ध में यहां संक्षिप्त चर्चा अपेक्षित है ।

---

1. कुशल।
2. शोक हर, शोभन ।
3. लाड़ली।
4. योग्य।
5. टीका।
6. कौन।
7. कड़ी धूप।
8. स्वस्थ नवयुवक।

ब्रजभाषा में 'लावनी'

ब्रजभाषा में गो, गोप, गोपाल का विशेष महत्त्व है इसी लिये कुछ लोग इसकी व्युत्पत्ति 'व्रजन्ति गावो यस्मिन् स व्रजः' कहते हैं । कुछ इसका संन्धि-विच्छेद वि+रज = विरज अर्थात् 'धूलि रहित', इस प्रकार करते हैं । सम्वत् 1640 से व्रजभाषा का आरम्भ हुआ, उस समय लावणी-साहित्य भी अपनी स्वर्णिम अवस्था में था ।

व्रज प्रदेश में साधारण जनता की रसानुभूति को जागृत रखने में लावनी ने महत् कार्य किया है । व्रज में सदैव ख़्याल अर्थात् लावनी का दौर चलता ही रहा है -

'विरज में बारो मास, आल्हा, ढ़ोला, ख़्याल, रास,
भगत, चोबोला, फाग रसियन दौर है ।[1]

होली के अवसर पर आज तक भी व्रजभूमि के विभिन्न ग्रामीण अंचलों में लोक कलाकार लावनी को उन्मुक्त नृत्य की थिरकनों के साथ प्रस्तुतकर लोक-मानस को उद्वेलित करते रहते हैं । मथुरा में सन् 1982 में इस अवसर पर - 'श्री नारायणदास गोला तथा श्री घनश्याम दास ने चंग पर होली-लावनी प्रस्तुत की ।'[2]

"आज भारतवर्ष और पाकिस्तान के उन सभी भागों में ख़्याल लावनी के कहने सुनने वाले मिलते हैं जहां हिन्दी-उर्दू बोली-समझी जाती है । यह स्थिति इस शंका को उत्पन्न कर देने के लिये पर्याप्त है कि फिर भी क्या हम ख़्याल-लावनी शैली की जन्मभूमि व्रज को मान सकते हैं?

इस सम्बन्ध में इतना ही कहा जा सकता है कि यद्यपि ख़्याल-लावनी-शैली की उत्पत्ति और विकास का कोई ऐतिहासिक और प्रामाणिक लेखा-जोखा प्रस्तुत नहीं किया जा सकता, किन्तु यह निश्चय है कि आगरा और उसके आस-पास ही इस शैली का जन्म और विकास हुआ है । ख्याल-गोई के एक पुराने आचार्य श्री रिसालगिरि जी आगरे में ही थे, और आज भी ख्याल-बाजों के एक प्रधान सम्प्रदाय तुर्रे वालों के प्रधान गुरु जनाब मौलवी मुहम्मद हुसैन साहब 'आशिक' आगरे की इस

---

1. बरसानेलाल चतुर्वेदी, व्रज वर्णन (लेख), प्रेरक साधक : बनारसीदास चतुर्वेदी, अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ 273
2. नवभारत टाइम्स, नई दिल्ली, 12 मार्च, 1982, पृष्ठ 3, कालम-5

विशेषता और महत्त्व को कायम रखे हुये हैं । इसके अतिरिक्त ख्यालगोई के जितने सम्प्रदाय हैं, जैसे कलग़ी वाले, तुर्रे वाले, सेहरा वाले, छतर वाले, मुकुट वाले, डंडे वाले, दन्त वाले, तोडे वाले आदि उन सबकी यदि गुरुपरम्परा का अन्वेषण किया जाय तो इन सबका निकास व्रज-जनपद से ही सिद्ध होता है । इस प्रकार इसमें कोई सन्देह नहीं है कि ख़्याल, लावनी की जन्मभूमि होने का गौरव व्रजभूमि को ही प्राप्त है।"[1]

व्रजभाषा में प्रसिद्ध कुछ रचनाओं के नमूने वंसल जी के उक्त लेख से यहाँ व्रज-माधुरी की बानगी के रूप में उद्धृत किये जाते हैं -

विरह - तकूं हूँ मारग मैं बन वियोगन, खबर हमारे न कन्त की है ।
तड़प रहे हैं ये प्रान पी बिन, अनीति ता पै वसन्त की है ।।

नखशिख वर्णन- तोहि रूप की रासि विरंचिरची, चितचोर चपल चपला रदनी ।
चम्पक बरनी, मुनि-मन-हरनी, रतिनाथ-विमोहन ससिवदनी ।।

मन की चंचलता- फिरे है चहुँ ओर मन ये चंचल घिरे तो घिरना इसे नहीं है ।
भ्रमे है भौंरे की भांति निसिदिन, कभी कहीं और कभी कहीं है ।।

दुचश्मी (उक्तिवैचित्र्य) - हे प्रान प्रिया, उठ खोलो कनक-किवारे ।
तुम को हो? पिछली रात पुकारन हारे ।।
हे प्यारी हम तो हैं घनश्याम पियारे ।
तो बरसो, बन-बागन में गरज-सहारे ।।
हम भोगी हैं, बस भोग-विलास हमारे ।
तो चाहिये वन में वास, इकंत तुम्हारे ।।
हम हैं बनवारी, वन में करो गुजारे ।
तुम को हो पिछली रात पुंकारन हारे ।।

---

1. श्री रतनलाल बंसल, 'व्रज जनपद की एक विशेष काव्यधारा : ख्याल-लावनी, पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ 887

उर्दू में लावनी

उर्दू दरअस्ल कोई अलग भाषा नहीं बल्कि यह हिन्दी जैसी हिन्दुस्तानी ज़बान है, जो प्रचलित कई भाषाओं के योग से बनी है। सन् 1746 में सैयद इंशा अल्लाह खां ने फरमाया था -

"खुशबयानों ने मुत्तफ़िक होकर मुताहिद ज़बानों से अच्छे-अच्छे लफ़्ज़ निकाले, और बाज़े इबारतों और अल्फ़ाज़ में तसरुर्फ़ करके और ज़बानों से अलग एक नई ज़बान पैदा की जिसका नाम उर्दू रक्खा।"

पं0 गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' उर्दू को पूर्ण रूप से हिन्दी के सांचे में ढली ज़बान मानते हैं-

'नहीं है तत्त्व कोई और इस उर्दू के ढांचे में।
ढली है देखिये यह पूर्णतः हिन्दी के साँचे में।।'[1]

हिन्दी सीखने वालों के लिये एक सरल-सी भाषा ईज़ाद की गई जिसे उर्दू कहा गया, अगर हिन्दुस्तानी भी इसे ही कह दें तो कोई ग़लतबयानी नहीं -

" I very much regret that alongwith Brij Bhasha the Kharee Bolie was omitted since this particular Idiom or style of the Hindoostanee would have proved highly useful to the student of that language."[2]

इस उर्दू में लावणी या ख़्याल तो लाखों की संख्या में लिखे गये हैं, जिनकी बानगी ग्रन्थ में स्थान-स्थान पर मौजूद है, परन्तु उर्दू के जो नामी ग्रामी शायर हुये हैं, उन्होंने भी लावनी अथवा ख़्याल की मशहूर तर्जों को अपनाया है। उनमें नवाब मिर्ज़ा खां 'दाग़' देहलवी, रामप्रसाद खोसला 'नाशाद' जालन्धरी, 'अमीर' लखनवी और 'अकबर' इलाहाबादी आदि प्रमुख हैं। अकबर की बहुत मशहूर तर्ज **'बहरे शिकस्ता'** की दो पंक्तियाँ हैं -

'लगे चहकने जहाँ भी बुलबुल, हुआ वहीं पर जमाल पैदा।
कमी नहीं क़द्रदां की 'अकबर', करे तो कोई कमाल पैदा।।'

हिन्दुस्तान में ही नहीं, पाकिस्तान में भी लावनी की रंगतें अपना रंग जमाये हुए हैं-

---

1. सनेही, आचार्य सनेही अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ 487
2. Dr. Gill Krist, The Oriental Fabulist, 1803, P.5

"उर्दू की नई शायरी का जो सिलसिला हमारे यहाँ चला हुआ है, वहाँ भी ज़ोर शोर से जारी है। आदमी का अस्तित्व, तनहाई, विश्वस्तर पर आबादी का विस्फोट, बेचैनी आदि सारे ही प्रसंगों के अलावा 1971 की जंग तथा जंगी कैदियों का हादसा भी उनका एक मुख्य विषय बना हुआ है।"[1]

जंगी कैदी के बारे में (बहरे शिकस्ता) की लय में लिखी हुई एक रचना प्रस्तुत है-

"वतन की मिट्टी से दूर बेटो,
जो घर सताये तो याद रखना
मफ़ारकत के तबील रस्ते में तुम अकेले नहीं हो -
हम भी, तुम्हारी आहट के हमसफ़र हैं,
तमाम आंखे तुम्हारे क़दमों की मुंतजिर हैं -
तमाम सीने तुम्हारे घर हैं।"[2]

उक्त पंक्तियों में आधुनिकता का प्रभाव एवं अतुकान्त कविता का व्यामोह साफ़ ज़ाहिर है।

हिन्दी भाषा की अन्य साहित्यिक विधाओं में गाम्भीर्य या माधुर्य का प्राचुर्य तो हो सकता है पर लावनी जितना, चुलबुलापन और शेरो शायरी सा लुत्फ़ नहीं, इसमें गीत और संगीत, पंखुडी और पराग से हिल-मिल गये हैं, इसमें व्रज, खड़ी और उर्दू की त्रिवेणी प्रवाहित हुई है, जिससे इसने आबाल वृद्ध के अन्तराल को अपनी ओर आकृष्ट किया है। हिन्दी की इसी लोकप्रियता को देखकर उर्दू-साहित्य के इतिहासकारों ने हिन्दी के गीतों में उर्दू की अपेक्षा अधिक सलोनापन माना है-

"Hindi is infinitely superior to Urdu."[3]

उर्दू में हिन्दी के समान ही भारतीय संस्कृति के कुछ सुमन संजोये हुये हैं। अतः "उर्दू का भविष्य चाहे जैसा हो, किन्तु इस सम्बन्ध में कोई भेद नहीं हो सकता कि उर्दू साहित्य की रक्षा होनी चाहिये, क्योंकि यह हमारी ही राष्ट्रीय सम्पत्ति है।"[4]

इसके अतिरिक्त हिन्दू-मुसलिम-संस्कृति को परस्पर मिलाने में भी उर्दू का योगदान रहा है, जिसका प्रस्फुरण लावणी-साहित्य के क्षेत्र में पूर्णरूप से हुआ है, ज़्यादातर ख़यालबाज़ मुसलमान ही हुये, ख़ासतौर से कलग़ी पक्ष में। इसलिये "अगर हिन्दू और मुसलमानों को एकदिल होना है तो उनको एक ही ज़बान और रस्मुल ख़त रखना होगा। वही वहदत ख़याल पैदा करने और आपस में मुहब्बत व इखलाक कायम करने का बहतरीन जरिया है।"[5]

---

1. रामलाल, धर्मयुग, रविवार, 26 जनवरी, 1975, पृष्ठ 24
2. अमजदुल सलाम 'अमजद', वही, पृष्ठ 24
3. द्रष्टव्य- A History of Urdu Literature, By Ram Babu Saxena, Page 356.
4. गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश', साहित्य-वार्ता, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 37
5. सैयद इब्न हसन शारिक 'ज़माना', जुलाई सन् 1937

खड़ीबोली में - ख़्याल सुदामा का : बहरे शिकस्ता -

"दबे वह दीनों की दीनता से जो धर्ता इस विश्वभार का है ।
कनकमयी जिसकी द्वारका है वह दास दीनों के द्वार का है ।।

न धीर मन अब न चीर तन पर न कन ही मुख एक ज्वार का है ।
पुकारें निज द्वार पर वणिक जन नहीं जतन कुछ उधार का है ।।
सुनें सखा वासुदेव केवल यही वचन बार - बार का है ।
सुनाऊँ ताने न एक माने न जाने मन किस प्रकार का है ।।

शेर - सुन प्रिये, बिन विधि मनोरथ पथ नहीं उद्धार का ।
कर्मवश संपद्-विपद सुख-दुःख है संसार का ।।
भाल में विपदा लिखी तब टाल दे धीरज से काल ।
सो रहे भूखा मही पर मुँह न ताके यार का ।।

दोहा - नाथ हाथ निज जोड़ कर फिर मैं करूँ पुकार ।
हरि सम दीनदयालु से माँगो बार हज़ार ।।

भेला - नन्दलाल निकट तुम जाओ । हो सफल मनोरथ आओ ।।
वे हितकारी हैं निज जन के । मित्र तुम्हारे हैं बचपन के ।।
मन नेक नहीं अलसाओ। हो सफल मनोरथ आओ ।।

उड़ान - सुने विनति दीनबन्धु माधव वह सिन्धु करुणा अपार का है ।
कनकमयी जिसकी द्वारका है वह दास दीनों के द्वार का है ।।"[1]

(रचयिता - नित्यानन्द पालीवाल - कलग़ीपक्ष)

---

1. साहित्याचार्य पं0 कामताप्रसाद जी शर्मा, ज्वालापुर (हरिद्वार) के सौजन्य से प्राप्त ।

निष्कर्ष

लावणी में अद्वैत-आनन्द, प्रेम, भक्ति, स्वदेशानुराग, सौन्दर्योपासना और आत्मसमर्पण के गीतों की अजस्र धारा प्रवाहित कर इसमें जन-मानस को निमग्न करना लावनी का प्रतिपाद्य रहा है।

महाराष्ट्र में **'मरैठी'** अथवा **'मराठी'** तथा उर्दू वालों में **'ख़याल'** के नाम से **'लावणी'** का लेखन तथा गायन होता रहा। राजस्थान में यह धारा नफ़ासत और नाज़ुक बयानी के साथ बह कर नागरिकों को आप्लावित करती रही।

लावणी-गायन में संगीत का सुखद सम्मिश्रण सोने में सुगन्ध है, इस विशेषता का निर्वाह केवल चंग द्वारा ही निष्पन्न होता रहा। साधु-संतो को **'चंग'** अधिक प्रिय रहा क्योंकि इस वाद्य में कोई **'टिप-टॉप'** नहीं, नाद-सौन्दर्य की साधना और आराधना में यह अजब मस्ती भर देता है।

संत **तुकनगिरि** ने **'तुर्रा'** और **शाहअली** ने **'कलग़ी'** को मराठा-दरबार से पुरस्कारस्वरूप प्राप्त कर अपने-अपने चंगों पर चढ़ा लिया था, तभी से इस गायन के दो पक्ष **'तुर्रा'** और **'कलग़ी'** नाम से विख्यात होगए । ये दोनों ही धाराएं अध्यात्ममूलक हैं। तुर्रा **'शिव'** का और कलग़ी **'शक्ति'** की प्रतीक है।

छन्द:शास्त्र के नियमों का पालन कर नित्य नवीन आशु रचना करने वाले इन कवियों को **'लावनीकार'** या **'ख़यालगो'** कहते हैं। ये कवि चलते-फिरते पुस्तकालय होते थे। नए गायकों या लावनीकारों को किसी को उस्ताद बना कर ही अखाड़े में आना पड़ता था, प्रत्येक नगर में अलग-अलग अखाड़े होते थे। **कानपुर** में प्रसिद्ध अखाड़ा **मदारीलाल** तुर्रेवाले का था, जिसके शागिर्द बदरुद्दीन, प्रेमसुख, भैरोंसिंह आदि हुए। कलग़ी वालों में **पं0 गौरीशंकर** का अखाड़ा नामी था। इस गायन के मूल में प्रतिस्पर्द्धा की भावना रही, अतएव इस गायन को कवि-सम्मेलनों की तरह **'दंगलों'** के नाम से जाना जाता था। इन दंगलों का परिष्कृत नाम **'सभा'** था। सभ्य लोग इन्हें **'लावणी-सभा'** के नाम से भी अभिहित करते थे। इन दंगलों में अखाड़ों का अनुशासन बनाए रखने हेतु **'निगुरों'** के प्रवेश पर क़तई प्रतिबन्ध रहता था। गायन **'सखीदौड़'** से आरम्भ होता था। इसके पश्चात् **'गर्वोक्तियां'** और अन्त में **'लावणी'** गाई जाती थी। एक चौक गा लेने पर प्रतिपक्ष के गायक उसी तर्ज में, उसी रदीफ़ में **'टेकें'** कहते थे, और प्रतिद्वन्द्विता शुरू हो जाती थी, एक-दूसरे के विचारों का खण्डन करते थे। कभी-कभी यह संग्राम टेकों तक ही सीमित न रह कर लावणियों तक आ जाता था। एक ही रदीफ़-क़ाफ़िये और एक ही ज़मीन पर कई-कई ख़याल गाये जाते थे जिसे **'लड़ीबन्द'** गाना कहते हैं। इसमें किताबों-रजिस्टरों का प्रयोग भी गायक द्वारा होता था। प्रतिपक्षी पर व्यंग्य कसने की प्रवृत्ति से लावनी-गायन में **'फटकेबाज़ी'** का समावेश होगया, जिसके कारण भले आदमी इस गायन और लेखन से उदासीन होते चले गए।

दूसरे की बात को उलटना और दूसरे की बात का उत्तर देकर अपना सवाल पेश करते हुए ख़याल के अन्तिम चौक मे अपने अखाड़े का परिचय देना **'दाख़िला'** कहलाया। अपने अखाड़े की प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा के लिए लावनी के अन्तिम पद्य में गुरु तथा साथियों एवं शिष्यों के नामों का उल्लेख किया जाता था, जिसे **'छाप'** कहते हैं ।

हिन्दी और उर्दू के अतिरिक्त संस्कृत, फ़ारसी, अंग्रेजी, पंजाबी, मराठी और कन्नड आदि प्राचीन तथा प्रान्तीय भाषाओं में **करम्भक शैली** में भी लावनियां लिखी और गाई गईं, जिससे विभिन्न भाषा-भाषियों एवं मत-मतान्तरों के मानने वालों में परस्पर एकता का प्रसार कर यह लावण्य-लता अनेक रूप-रंगों में विकसित हुई ।

''''''''''''

चतुर्थ अध्याय

कानपुर का लावनी साहित्य

कानपुर का लावनी साहित्य

कानपुर को कुछ लोग 'कर्णपुर' का तद्भव मानते हैं, परन्तु इसका सम्बन्ध महाभारत के कर्ण से किञ्चिन्मात्र भी नहीं है । इस नगर के नामकरण के सम्बन्ध में दो जन-श्रुतियाँ बड़ी प्रसिद्ध हैं। कुछ लोगों का विश्वास है कि कृष्ण भगवान् का कर्ण-बेधन संस्कार यहीं हुआ था और तभी से इसका **'कान्हपुर'** नाम पड़ा किन्तु अन्य इतिहासकार इसे प्रामाणिक नहीं मानते। **'तारीख़े कानपुर'** के लेखक मुंशी दरगाहीलाल ने अपनी पुस्तक में इस नगर के सम्बन्ध में लिखा है कि " 'कानपुर गांव' मौजा जाजमऊ परगने के अन्तर्गत एक गांव था। इस गांव की हकदारी के सम्बन्ध में दुबेवंश ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय में 1917 में एक अपील पेश की थी और उसके वकील थे स्व. पं0 मोतीलाल नेहरू और स्व.डाक्टर काटजू। उक्त काग़ज़ातों[1] मे लिखा है कि - 1917 से 700 वर्ष पूर्व राजा कान्हदेव प्रयाग से कन्नौज जाते समय गंगा स्नान के लिये यहां ठहरे और अपने ठहरने के स्थान को **'कान्हपुर'** की संज्ञा दी जो बाद में एक सुन्दर बस्ती बन गया। "..... सन् 1801 में कानपुर को नगर व ज़िला बनाया गया ।"[2]

---

1. काग़ज़ात = दस्तावेज, काग़ज फ़ारसी का शब्द है, बहुवचन में इसका रूप काग़ज़ात बनता है, अतः 'काग़ज़ातों' प्रयोग व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध है।
2. रामावतार अग्निहोत्री, कानपुर और उसके मुहल्ले, रजत जयन्ती अंक, दैनिक जागरण, कानपुर, पृष्ठ 133

कानपुर जनपद का साहित्यिक परिवेश -

ब्रह्मावर्त **'बिठूर'** इसी जनपद का एक भाग है जहाँ पितामह ब्रह्मा ने सृष्टि का समावर्तन एवं आदि कवि महर्षि बाल्मीकि ने काव्य-रचना का प्रवर्तन किया था । **"जाजमऊ"** नहुष के पुत्र राजा ययाति की राजधानी थी, यह स्थान कानपुर के उत्तर में प्रवहमान गंगा के तट पर टीले के रूप में स्थित है, जहाँ उनके किले के खण्डहर अब भी मौजूद हैं। कानपुर की घाटमपुर तहसील के तिकवांपुर गांव में जन्मे प्रत्युत्पन्नमति, अकबर के नवरत्नो में प्रसिद्ध रत्न बीरबल एवं इसी गांव में उत्पन्न हिन्दी रीति-ग्रन्थों की परम्परा के आदि प्रवर्तक, **'कविकुल कल्पतरु'** के रचयिता **आचार्य चिन्तामणि त्रिपाठी**, इन्हीं के सहोदरगण शृंगार रस के अवतार **मतिराम** और वीररस के अवतार **भूषण**, घाटमपुर तहसील के ही वनपुरा ग्राम के निवासी कालिदास त्रिवेदी के पौत्र और उदयनाथ कवीन्द्र के पुत्र कवि **'दूलह'** हिन्दी साहित्य के इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। **पद्माकर** ने **'गंगालहरी'** की रचना यहीं गंगा के किनारे पर रह कर की थी ।

'हिन्दी का प्रथम पत्र कानपुर के ही पं.जुगुलकिशोर ने कलकत्ते से 16 फर्वरी 1826 को 'उदन्त मार्त्तण्ड' नाम से निकाला था।........कानपुर से 1871 में 'हिन्दू प्रकाश' तथा 1879 में 'शुभ चिन्तक' नाम के दो पत्र निकले। ....15 मार्च सन् 1883 को पंडित प्रताप नारायण मिश्र ने अपने प्रसिद्ध पत्र 'ब्राह्मण' का प्रकाशन प्रारम्भ किया। .... मिश्र जी ने 'नाटक-सभा' की स्थापना की ओर कई नाटकों की रचना कर बहुत से नाटकों को अभिनीत कर आपने वहां के ज़न-मानस में सांस्कृतिक और राजनीतिक चेतना का संचार किया। वास्तविक अर्थो में मिश्र जी कानपुर में नवयुग के अग्रदूग थे।'[1]

" लावनियों से इन्हें विशेष प्रेम था और लावनीवालों को संगति से इन्हें कविता करने का शौक़ लगा ।"[2]

इनकी 40 पुस्तकों में **'लावनी-संगीत-शकुन्तला'** भी एक है।

" पं0 पृथ्वीनाथ चक के बाद कांग्रेस की बागडोर हिन्दी के महाकवि नगर के शीर्षस्थ, वकील, ओजस्वी वक्ता श्रीराय देवीप्रसाद 'पूर्ण' के सुदृढ़ हाथों में आई और उन्होंने कानपुर का चतुर्दिक विकास किया । .....। पूर्ण जी ने कानपुर को जगाया -

---

1. लक्ष्मीकानत त्रिपाठी, कानपुर का नव जागरण, दैनिक जागरण, रजत जयन्ती अंक, पृष्ठ 55

2. शान्तिस्वरूप दीक्षित, भाषा-भास्कर, तृतीय एवं पंचम आलोक, पृष्ठ 29.

'कुमति-नींद अहो अब त्यागिये ।
भरत-खंड प्रजा अब जागिये ।।'

और उसे राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्यों की ओर सचेष्ट किया ।..... सन् 1905 में आधुनिक हिन्दी के भीष्मपितामह, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी कई वर्षों तक जुही में रह कर ही **'सरस्वती'** का सम्पादन करते रहे। जुही हिन्दी प्रेमियों का तीर्थ बन गया था। श्री अरोड़ा जी, श्री गणेश जी, श्री उदयनारायण वाजपेयी, पं0 देवीप्रसाद शुक्ल, श्री शिवनारायण मिश्र, श्री कौशिक जी, पं0 रमाशंकर अवस्थी, पं0 बालकृष्ण शर्मा प्रभृति जुही आकर द्विवेदी जी से प्रेरणा ग्रहण करते थे। ..... कानपुर से मुंशी दयानारायण का **'ज़माना'** निकलता था, जो उर्दू की सर्वाधिक प्रतिष्ठित मासिक पत्रिका थी और जिसमें प्रेमचन्द की कहानियाँ मुंशी नवाबराय उर्फ नौबतराय के नाम से छपती थी। ..... मुंशी प्रेमचन्द सरकारी नौकरी छोड़ कर नवस्थापित श्री मारवाड़ी विद्यालय में प्रधानाध्यापक भी कई वर्ष तक रहे।"[1]

सन् 1913 में कानपुर से साप्ताहिक **'प्रताप'** का प्रकाशन आरम्भ हुआ, जिसे गणेशशंकर विद्यार्थी ने राष्ट्रीय रूप दिया ।

सन् 1922 ई. में पं0 रमाशंकर अवस्थी ने **'दैनिक वर्तमान'** पत्र निकाला ।

"पं0 माखनलाल चतुर्वेदी **'एक भारतीय आत्मा', 'त्रिशूल', 'नवीन'** तथा भगवतीचरण वर्मा कानपुर में अपने काव्यों द्वारा नगर में नवचेतना ला रहे थे, तो दूसरी ओर हिन्दी काव्य की फड़कती भाषा, नया परिधान और विस्तृत राष्ट्रप्रेम का पाठ भी पढ़ा रहे थे। इन्हीं कवियों ने - पं0 माखन लाल चतुर्वेदी, नवीन, भगवतीचरण वर्मा ने नई विधा में लिख कर छायावाद को जन्म कानपुर में दिया था । मूर्त से अमूर्त की ओर जाना ही छायावाद है और राष्ट्रप्रेम भी अमूर्त भावना है, उसको सरल सरस भाषा में व्यक्त करना भी छायावाद है। वास्तविक छायावाद के उन्नायक और जन्मदाता ये कानपुरी हैं न कि प्रसाद, निराला, पन्त आदि ।"[2]

'रसिक मित्र' को अपनी रम्य रचनाओं से रससिक्त कर, 'प्रताप' में राष्ट्रीय ओज भर, **'सरस्वती'** का वरदान लेकर पं0 गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' ने 1928 ई. में कानपुर से **'सुकवि'** मासिक, कविता का पत्र निकाला। यह राष्ट्रीय रचनाएँ **'त्रिशूल'** उपनाम से लिखते थे। इनकी राष्ट्रीय रचनाएँ **'त्रिशूल-तरंग'** नाम से सन् 1900 ई. में प्रकाशित हुई। **'सुकवि'** के माध्यम से इन्होंने सैकड़ों कवियों का पथ प्रशस्त किया। यह व्रजभाषा, खड़ीबोली और उर्दू में सरस काव्य-रचना करते थे। इन्होंने कतिपय ओजपूर्ण लावनियाँ भी लिखी हैं ।

---

1. पं0 लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी, कानपुर का नव जागरण, रजत जयन्ती अंक, दैनिक जागरण, कानपुर, पृष्ठ 56
2. वही, पृष्ठ 153

"सन् 1921 में जो हिन्दी कवि बड़ी सक्रियता से 'त्रिशूल' का साथ दे रहे थे, उनमें कुछ सुदूर ज़िलों के थे, कुछ कानपुर के थे। जो कानपुर में थे या बाद में आकर रहे, उनमें ब्रजभूषण लाल त्रिपाठी 'निश्चल', राधावल्लभ पांडेय 'बन्धु', स्वामी नारायणानन्द 'अख़्तर' और राजाराम शुक्ल 'राष्ट्रीय आत्मा' के नाम स्मरणीय हैं । ..... संजीवनी (जिसे ग़लती से सनेही जी की मौलिक कृतियों में शुमार कर लिया जाता है) में सनेही जी ने इन कवियों की भी चुनी हुई, पुरस्कृत और प्रकाशित रचनाएँ सम्पादित और संकलित की हैं। ..... स्वामी नारायणानन्द, 'अख़्तर' उपनाम से कविता लिखते थे। लाठीमुहाल के जैन धर्मशाला में रहते थे। हकीम बनारसीदास की दुकान पर अकसर बैठे दिखाई पड़ते थे। बगल में 'सुकवि' प्रेस था। कभी-कभी सनेही जी भी उठ कर यहाँ आ जाते थे। मेरे पिताजी[1] भी होते थे। अच्छी गपशप होती थी। 'हितैषी' जी के भी सर्वप्रथम दर्शन मैंने यहाँ किये थे। 'अख़्तर' की कविताओं में उर्दू का लोच खूब मिलता था। स्वदेशी-आन्दोलन पर उनकी कविता की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -

करो प्रण कि आज़ाद हो कर रहेंगे
जहाँ में कि बर्बाद हो कर रहेंगे
सितमगर हो या शाद हो कर रहेंगे
कि हम शाद आबाद हो कर रहेंगे
स्वदेशी हो 'अख़्तर' स्वदेशी कथन हो।
मरें भी अगर तो स्वदेशी कफन हो।।[2]

सन् 1922 में स्वामी जी की लावणियों का संग्रह **'लावण्य लता'** नाम से प्रकाशित हुआ था। सम्वत् 1981 अर्थात् सन् 1924 में उन्होंने कानपुर से कविता का मासिक पत्र **'कवीन्द्र'** निकाला था, जिसके सहायक सम्पादक 'वर्तमान भूषण' अनूप शर्मा थे।

'वर्तमान युग में ग़ज़ल और रुबाई के अतिरिक्त उर्दू के अनेक छन्दों को हिन्दी में विकसित करने का श्रेय कानपुर के कवियों को है।'[3]

खड़ीबोली को परिष्कृत करने में भी कानपुर का विशेष योगदान है।

" पं0 प्रतापनारायण मिश्र आदि खड़ीबोली के भक्त थे परन्तु उनकी धारणा यह थी कि घनाक्षरी, सवैया आदि प्राचीन प्रचलित छन्दों में खड़ीबोली में सरस, सजीव रचना नहीं की जा सकती और यही सोच कर वे हिन्दी छन्दों को छोड़ कर लावनी, ख़याल, ग़ज़ल आदि में ही खड़ीबोली को ढालते रहे। ..... खड़ीबोली की शक्ति के सम्बन्ध में व्याप्त भ्रान्ति का अनावरण करते हुये काव्य-कला-कोविद महामनीषी हितैषी जी मंच पर अवतरित हुये और उन्होंने खड़ीबोली को सवैया-सुधा प्रदान की, जिससे वह जीवित भाषा मानी जाने लगी।"[4]

1. निश्चल जी (डा. उपेन्द्र के पिता)
2. डा. उपेन्द्र, कानपुर के कवि, रजत जयन्ती विशेषांक, दैनिक जागरण, कानपुर, पृष्ठ 186-187
3. डा. लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक', हिन्दी छन्दशास्त्र को कानपुर की देन, वही, पृष्ठ 112
4. सत्यव्रत शर्मा 'अजेय', महामनीषी जगदम्बा प्रसाद 'हितैषी' : व्यक्तित्व एवं कृतित्व', पृष्ठ 42, 43

"श्री जगदम्बा प्रसाद 'हितैषी' खड़ीबोली के कवितत्तों और सवैयों में वही सरसता, वही लचक, वही भाव-भंगिमा लाये हैं जो व्रजभाषा के कवित्तों और सवैयों मे पाई जाती है। इस बात में इनका स्थान निराला है। यदि खड़ीबोली की कविता आरम्भ में ऐसी सजीवता के साथ चली होती जैसी इनकी रचनाओं में पाई जाती है तो उसे रूखी और नीरस कोई न कहता। रचनाओं का रंग-रूप अनूठा और आकर्षक होने पर भी अजनबी नहीं है।"[1]

तदुपरान्त पं0 लक्ष्मीधर वाजपेयी, हृदयेश, प्रणयेश शुक्ल, अभिराम शर्मा, करुणेश, देवेन्द्र शास्त्री, छैलबिहारी दीक्षित 'कंटक', श्यामलाल गुप्त पार्षद, जगमोहन 'विकसित', भगवतीप्रसाद वाजपेयी, रामशंकर गुप्त 'कमलेश', नत्थाप्रसाद दीक्षित 'मिलिन्द', मन्नीलाल मिश्र, दयाशंकर दीक्षित 'देहाती', दुर्गादत्त पाण्डेय 'बेढ़ब', नूतन, बन्धु, सद्‌गुरुशरण अवस्थी, डा. मुंशीराम शर्मा 'सोम', भैरवदत्त 'कवीन्द्र', डा. जगदीश गुप्त 'विश्व', केशव, रामनाथ गुप्त, शील, सिद्धेश्वर अवस्थी, रामेश्वर 'संगीत', विनोद रस्तोगी, शालिग्राम मिश्र, श्रीकृष्ण टंडन, श्यामबिहारी शुक्ल 'तरल', डा. सत्यनारायण पांडेय, नीरज, रमानाथ अवस्थी, शिवसिंह भदौरिया, शेखर, डा. राममनोहर त्रिपाठी, **सत्यव्रत शर्मा 'अजेय'**, सिन्दूर, राही, सुरेन्द्र तिवारी, असीम दीक्षित, प्रताप नागर दुबे, प्रो. सिद्धनाथ मिश्र, ललाम, लाला किशोरी लाल 'किशोर', किशोरचन्द कपूर 'किशोर', नरेशचन्द्र चतुर्वेदी, देवीप्रसाद धवन 'विकल', रामदुलारे त्रिवेदी, डा. व्रजलाल वर्मा, हरनारायण गौड 'हरिजू', श्यामविजय पाण्डेय, गंगाप्रसाद 'विकास' वाजपेयी, गिरिधर शर्मा 'गिरीश', श्यामबिहारी शर्मा 'बिहारी', हरिशंकर अवस्थी 'हरीश', रामशंकर चतुर्वेदी 'अरविन्द', अयोध्याप्रसाद वाजपेयी 'सेवक', श्यामसुन्दर तिवारी 'राजा', कृष्णकुमार त्रिवेदी 'कोमल', प्रभात, हरिनन्दन वाजपेयी, कुमुदेश, कुंजबिहारी वाजपेयी, निर्गुण अवस्थी, वागीश शास्त्री, डा. उपेन्द्र, रामेश्वर द्विवेदी, सर्वेश, मगन अवस्थी, रमाकान्त श्रीवास्तव, जीवन शुक्ल, अमरनाथ 'अमरेश', वीरेश कात्यायन, डा. प्रतीक मिश्र, प्रेमकृष्ण तिवारी, रामाचार्य पांडेय, रामकृष्ण शुक्ल, रामेश्वर दयालु दीक्षित 'रमेश', सुदर्शन चक्र, सूर्यकुमार वाजपेयी, देवीप्रसाद शुक्ल 'राही', सफल शर्मा, शालिगराम बजाज, शंकरलाल कानोडिया, पं0 द्वारिकानाथ मिश्र, ऊधौ प्रसाद शुक्ल 'निर्बल', सूर्यप्रकाश त्रिपाठी, सूर्यदेवी 'ऊषा', मंजु, अन्नपूर्णा, पुष्पा अरोड़ा, विद्या सक्सेना और चन्द्रमुखी ओझा 'सुधा' आदि कविजन ने कानपुर की सतरंगी काव्यपरम्परा को अपनी प्राकृत प्रतिभा से प्रतिभासित किया। इनमें से कुछ तो अब स्वर्गीय हो गये हैं और कुछ अन्यत्र जाकर बस गये हैं। इन्होंने अपने काव्य में राधिका, ताटंक और सवैया छन्दों को बहुतायत से अपनाया है, जिनका समावेश लावनी काव्य में क्रमशः रंगत छोटी, खड़ी रंगत और बहरे तबील में हो जाता है। कुछ ने तो अपने काव्य में लावनी की पूरी 'टेकनीक' को भी अपनाया है जिसका विवेचन कानपुर के **"आधुनिक कवि और लावनी"** शीर्षक से इसी अध्याय में आगे चल कर किया जाएगा।

---

1. **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, अष्टम संस्करण, पृष्ठ 664**

सन् 1911 में लोकनाट्य 'नौटंकी' का उन्नयन और विकास कानपुर में श्री श्रीकृष्ण खत्री पहलवान ने किया, जिसका प्रचार और प्रसार सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश में हुआ।

"नौटंकी में संगीत, नृत्य, गायन और अभिनय इन चार कला-विधाओं का चौखम्भा राज्य होता है। एक प्रकार से यह पश्चिम के 'ओपेरा' का मूल हिन्दी रूप है। नौटंकी मूलरूप में पद्यमय नाटक है, जिसमें सभी अभिनेता, अभिनेत्रियाँ पद्यसम्वाद बोलते हैं। साथ में नृत्य और अभिनय भी चलता रहता है। नौटंकी की रचना में दोहा, कवित्त, सवैया, भजन, कव्वाली, बहरे तबील, लावनी, सोहनी, चौबोला, दौड़ आदि छन्दों का ही प्रयोग किया जाता है। ..... उस ज़माने में कानपुर में ख़यालबाजों की अनेक मण्डलियाँ सक्रिय थीं जिनके बीच ख्याल गाने की प्रतियोगिताएं समय-समय पर होती रहती थीं। कानपुर में उस समय ख़यालबाजी का रिवाज़ था। अगर कहा जाये कि नौटंकी के उद्भव और विकास को ख्यालबाजी ने ही कानपुर में प्रोत्साहन दिया तो ऐतिहासिक रूप से ग़लत नहीं होगा। स्व0 श्री श्रीकृष्ण पहलवान को नौटंकी रचना का प्रोत्साहन कोपरगंज में समलू बाबा की मठिया में उन दिनों प्रति मंगलवार को आयोजित होने वाली ख़्यालबाजी से ही प्राप्त हुआ था, जहाँ कलंगी शायर की ख़्यालबाजी सुनने के लिये एक बार पहलवान भी जा पहुँचे थे। कलंगी शायर एक टेक गा रहे थे, पहलवान को उसका रदीफ काफिया ग़लत लगा, उन्होंने चैलेंज दे दिया, बात बढ़ गई; पहलवान को **'ज़मीं ऊपर आसमां ऊपर'** शीर्षक एक रदीफ-काफिया दे दिया गया। पहलवान में शायरी के अंकुर तो बचपन से ही थे, उन्होंने चैलेंज को स्वीकार किया और सप्ताहभर में इस रदीफ काफिये पर लगभग डेढ़-सौ शेर रच डाले। बस यहीं से श्री श्रीकृष्ण खत्री द्वारा नौटंकी रचना का श्रीगणेश हुआ।"[1]

इसके अतिरिक्त पत्रकारिता एवं गद्य-लेखन के क्षेत्र में भी कानपुर का अपना वैशिष्ट्य रहा है, जिसका वर्णन हमारा अभिप्रेत नहीं है। इस प्रकार कानपुर जनपद का आधुनिक सम्पूर्ण साहित्यिक परिवेश, जिसका निर्माण लावनी के लावण्य रूपी बादलों के मण्डल से हुआ है, वह कानपुर के लावनी-काव्य को ही विद्योतित कर रहा है।

सम्पूर्ण लावनी साहित्य 'तुर्रा' और 'कलग़ी' दो पक्षों में विभक्त है। अतः हम यहाँ कानपुर के लावनीकारों का परिचय इसी क्रम से प्रस्तुत कर रहे हैं -

---

1. **ललितमोहन अवस्थी, कानपुर का लोकमंच, रजत जयन्ती अंक, दैनिक जागरण, पृष्ठ 137, 139**

(क) तुर्रा-पक्ष

मदारीलाल उस्ताद -

इनका जन्म 1770 ई0 के आस-पास मोची जाति में हुआ। काव्य-रचना की शक्ति विधाता ने इनके जन्म-नक्षत्र में दी थी। सन् 1795 में मदारीलाल ने, कानपुर में पधारे महाराज रिसालगिरि से लावनी काव्य की दीक्षा ग्रहण की। लेखन के साथ यह गायन में भी प्रवीण थे । अतः बहुत से लावणीकार इनके शिष्य बन गये। इन्होंने अपना अखाड़ा स्थापित किया जिसकी प्रसिद्धि सम्पूर्ण भारतवर्ष में व्याप्त हो गई और सर्वत्र इनके अखाड़े की शाखाएं फैल गई। आसाराम, प्रेमसुख, बदरूद्दीन, भैरों सिंह, कन्हैया, धूमी, मिरज़ा और गौरीशंकर आदि इनके अखाड़े के प्रमुख ख़यालगो थे। दंगलों में अपने गाने से इन्होंने बिठूर के भारतसिंह को और मियां बादल को पराजित किया था।

इनकी भाषा सधुक्कड़ी होते हुये भी प्रसाद गुण से युक्त है। पदावली कोमल और कान्त है, अनुप्रास की छटा यत्र-तत्र दिखलाई पड़ती है। आज से लगभग 200 वर्ष पूर्व इन्होंने जिस भाषा को अपनाया वह वर्त्तमान खड़ी बोली हिन्दी का आदिम स्वरूप है। उसमें कहीं-कहीं संस्कृत क्रिया पदों को भी अपना लिया गया है, यथा 'प्रणमामी अन्तर्यामी स्वामी सुख धामी सिद्धि सदन ।'[1]

यहां 'प्रणमामि' संस्कृत क्रिया पद है, जिसका अर्थ है- 'मैं प्रणाम करता हूं।' विश्व-वाटिका का प्रत्येक पुष्प ब्रह्म परमेश्वर की पावन प्रतिमा है, सभी में उसी का शुचि सौन्दर्य सन्निविष्ट है, जिसके दर्शन भ्रमर-दृष्टि से ही सम्भव हैं-

'बिन प्रतिमा खाली नहीं देखा, कोई फूल फुलवारी में ।
भंवर दृष्टि हो तमाम देखा, हमने बाग़-बहारी में ।।
कृष्ण केतकी में देखे, रहे गेंदे में गोविन्द विराज ।
गुड़हल में गोपाल विराजें, गुलाब में गिरिधर महाराज ।
चम्पा में चितचोर चतुर्भुज, चमेली में प्रभु पूरन काज ।।
मौलसिरी में मुरलीधर, श्री कान्ह कली कचनारी में ।
भंवर दृष्टि हो तमाम देखा, हमने बाग़बहारी में ।।'

ईश्वर अविनाशी, अज, अछेद्य, अभेद्य, अनादि, अनन्त और सर्वव्यापक है, उसका शिवस्वरूप और कवि की वाणी का नाद-सौन्दर्य दर्शनीय है -

---

1. लावनी का इतिहास, पृष्ठ 105

'अविनाशी कैलाशी काशी सर्व निवासी पंचानन ।
त्रिपुरारी अघहारी न्यारी कला तुम्हारी आनंद-घन ।।
जन-रंजन खल-गर्व-विभंजन, नर्क-निकन्दन उमा-रमन।
वरदायक उपजायक नायक सब लायक दाता त्रिभुवन ।।
जटाजूट रहे छूट लूट ज्यों कालकूट कर ले आसन ।
नयन तीन परवीन लीन कोपीन भुजंगी पन्नग फन ।।
बाघम्बर ओढ़े लट छोड़े बिन मोड़े तोड़े फन्दन ।
त्रिपुरारी अघहारी न्यारी कला तुम्हारी अन्निद-घन ।।'

उर्दू में भी इन्होंने पुरअसर शायरी की है -
'जो आशिक बन्दये इश्क हैं, उन्हें नहीं मुस्तजाब[1] क्या है।
जफ़ा करे या वफ़ा तू जानां, कैस[2] से ज्यादा अताब[3] क्या है ।।'

आसाराम-

यह मदारी लाल के समकालीन थे, उर्दू ज़बान पर इन्हें अच्छा अधिकार था । इनके काव्य में अध्यात्म और संसार की नश्वरता के भाव मुखरित हुये हैं। अपने ज़माने के यह अच्छे लिखने और गाने वाले थे, और इनका स्थान भी उस्तादों में था। इनके सहयोगी गायकों में मथुरी, विरजा और रहमान आदि प्रमुख थे। 'एकोब्रह्म द्वितीयो नास्ति' अतः उसके अतिरिक्त अन्य की उपासना व्यर्थ है -

'ग़ैर की तस्वीर अपने दिल के आईने के बीच,
देख 'आसाराम' रखते हैं नहीं सीने के बीच ।'

परिवर्तन शील संसार में सब बदल गया -
'ना वह प्यार अख़लाक़[4] रहा, ना चाह रही ना सनम रहा ।
ना वह दिल मेरा ही रहा, ना ख़्याल रहा ना वहम[5] रहा ।।'

---

1. मुस्तजाब = स्वीकार
2. कैस = प्रेम-दीवाना, अरबी की प्रसिद्ध प्रेम-कथा, 'लैला-मजनू' का नायक, मजनू।
3. अताब = क्रोध
4. अख़लाक = सदाचार, शील स्वभाव ।
5. वहम = शक, शंका, कल्पना ।

उस्ताद बदरुद्दीन-

यह रिसाल गिरि के शिष्य और मदारी लाल के सहयोगी थे। फ़ौज में कर्नल पद पर रहते हुये भी यह शेरो शायरी के शौक़ीन और उदार प्रकृति के थे। फ़ारसी के आलिम थे। बड़े अच्छे शायर थे। इन्होंने 'मंसूर' 'शम्सतबरेज़' आदि पर इतिवृत्तात्मक ख़याल लिखे हैं । इनकी भाषा में अरबी-फ़ारसी के शब्दों की अधिकता है । वर्णनशैली मनोहारिणी है। उदाहरणार्थ -

'गिला तो लाज़िम नहीं मगर मामूर* शिकायत कार की है ।
मार इश्क़ में, बल्कि दुश्मनी से ज़्यादा प्यार की है ।।',

रूप-सौन्दर्य के चित्रण में इन्होंने 'समासोक्ति' का सहारा ले कर छायावाद का अवतरण किया है -

वो माह[1] सूरत परी की सूरत, बना है मुखड़ा ग़ज़ब खुदा का ।
हूर से दूना बना नमूना नूर का टुकड़ा ग़ज़ब खुदा का ।।
है हुस्न देखा हुआ न लेखा उठाता दुखड़ा ग़ज़ब खुदा का ।
जो फूल डाला ज़िमीं पै लाला पर्हेज़[2] उखड़ा ग़ज़ब खुदा का ।।
हुआ वो मुज़तर[3] गुलाम दिलबर, तेरा ख़रीदा ग़ज़ब खुदा का ।
ये भौं ख़मीदा[4], तेग़ कशीदा[5], ये शोख़[6] दीदा[7] ग़ज़ब खुदा का ।।

प्रेमसुख उस्ताद -

इनका जन्म 1785 ई. के आस-पास माना जाता है। यह उस्ताद बदरुद्दीन के शिष्य थे इन्होंने 'राजा भर्त्तहरि' आदि ऐतिहासिक लावणियों की रचना की है। योग एवं अध्यात्म-परक भी इनकी कुछ रचनाएं हैं, जिनमें षट्चक्र आदि का वर्णन मिलता है। इनकी भाषा शुद्ध हिन्दी खड़ी बोली है, उसमें माधुर्य गुण विद्यमान है।

नर आत्म-ज्ञान से शून्य हो कर निकृष्ट हो गया है, नहीं तो वह उत्कृष्टता में नारायण से कम नहीं -

'क्या इसको सामर्थ्य नहीं मौजूद नहीं क्या इसके पास ।
अष्ट सिद्धि नौ निधी वास्ते इसी के हैं सब भोग-विलास।।
तिरलोकी भी हाथ में इसके, मगर नहीं दिल को विश्वास ।
नहीं तो था पाताल से गहरा, बुलन्द न इतना था आकाश।।

---

1. माह = चन्द्रमा ।
2. पर्हेज = परहेज़, निषिद्ध वस्तुओं से बचना।
3. मुज़तर = बेकल ।
4. भौं ख़मीदा = बंक भृकुटि ।
5. तेग़ कशीदा = खींची हुई कृपाण ।
6. शोख़ = चंचल ।
7. दीदा = नयन ।
*. मामूर = भरा हुआ, भरपूर ।

कल्पवृक्ष था यही मगर गया आपी नीम बकायन हो ।
नर शरीर आया दुनिया में, सर्वकाल नारायण हो ।।'

'सहस्र दल कमल', 'त्रिकुटी' और ब्रह्म रन्ध्र' आदि की साधना से अन्तःकरण में ही अन्तर्यामी के निरन्तर दर्शन हो जाते हैं-

'हृदय-कमल-दल द्वादश दल[1] का जहां वास शिव पार्वती ।
बल्कि पूजन के लायक ये ही, आपी आप अव्याप यती ।।
त्रिकुटी[2] का वासी अभ्यासी, जीव-हंस अद्वैत गती ।
सुधा-बूंद सर्वदा टपकती, ब्रह्म-रन्ध्र से रती रती ।।
मधुर वचन अंगूर खुशामद, फल जाती इन्द्रायन हो ।
नर शरीर आया दुनिया में, सर्व काल नारायण हो ।।'

भैरों सिंह उस्ताद -

इनका जन्म 1790 ई. के आसपास बिठूर में हुआ था। यह भारतसिंह 'तोडे' वाले के शिष्य थे। 'डुंडा' भी गाते थे। एक बार भारतसिंह का गाना उस्ताद मदारीलाल के साथ हुआ। भारतसिंह पराजित होगए, इस पराजय से खिन्न होकर भारतसिंह के शिष्य इन भैरोंसिंह महाशय ने 'डुंडा' गाना छोड़ दिया और पं0 प्रेमसुख की शिष्यता स्वीकार कर यह 'तुर्रा' पक्ष में आगए। यह बड़े सिद्ध और प्रसिद्ध गायक थे। कर्नल बदरुद्दीन ने इन्हें फौज में हवलदार के पद पर नियुक्त करा दिया, इनकी नियुक्ति अम्बाला छावनी में हुई। वहाँ इनकी शायरी की धूम मच गई -

"बज रहा भैरों का डंका बीच में पंजाब के ।"

इनकी प्रसिद्धि सुन कर बाबा बनारसी इनसे गाने का अरमान लेकर अम्बाला गए थे।

"एक बार 'अलिया' नाम का कलग़ी वाला जो एक मशहूर गाने वाला था, ऊंट पर किताबें लाद कर 'भैरोंसिंह' से गाने के लिए आया। उसने तुर्रे पर छींटाकशी की, इन्होंने जवाब में कहा -

सुनेगा जो भगवे का भेद तो बहुत दिनों तक रोवेगा ।
कहा मान कलग़ी वाले क्यों अपनी हुर्मत खोवेगा।।"[3]

---

1. द्वादश दल = अनाहत चक्र, हृदय के पास स्थित है।
2. त्रिकुटी = आज्ञाचक्र, द्विदल का है, इसकी स्थिति भौहों के मध्य कुछ ऊपर के स्थान पर है।
3. स्वामी नारायणान्द, लावनी का इतिहास, पृष्ठ 120

यह नामी-ग्रामी कवि एवं गायक थे, इन्होंने लावनी की प्रत्येक विधा में रचना की है। यह हिन्दी और फ़ारसी के विद्वान् थे। सभी इनकी प्रतिभा का लोहा मानते हैं। इन्होंने लम्बे-लम्बे ख़याल सैकड़ों लिखे हैं, जिनमें पौराणिक कथाएं एवं नरसी की हुंडी, सुलोचना सती, राजा हरिश्चन्द्र, जानकी जन्म, धनुष-यज्ञ आदि ख़याल उनके बहुत प्रसिद्ध हुए। इसी प्रकार मन्सूर, शम्सतबरेज़, माहीगीर आदि के ख़याल भी बहुत मशहूर हैं।"[1]

हरियाणा हरा-भरा समृद्ध प्रदेश है, वहाँ के उपवन में कुसुमित कुसुमों और कलिकाओं ने व्रज-वल्लरियों को तिरस्कृत कर दिया है, उसकी छवि से आकृष्ट होकर-

"रचा रास व्रजराज आज सज साज सुहाना फूलों का ।
हरियाने के बीच आज जंगल हरियाना फूलों का ।।
नख शिख से श्रृंगार किया सबने मनमाना फूलों का ।
जो जिसके मन बसा ज़नाना औ मर्दाना फूलों का ।
वस्त्र फूल के, फूल के गहने, इत्र बसाना फूलों का ।
तले फूल का फर्श बिछा ऊपर शमियाना फूलों का ।।
सेज फूल की, फूल के तकिये, तम्बू ताना फूलों का ।
खिचीं फूल की कनात जिसमें नक्कारखाना फूलों का।।
फिरे सखिन में श्याम, फिरे ज्यों भंवर दिवाना फूलों का।
हरियाने के बीच आज जंगल हरियाना फूलों का ।।"

फूल को सुकुमार नारी का प्रतीक मान कर कवि आगे बड़े अनूठे और नाज़ुक अन्दाज़ से कहता है -

"यक तो फूल सा गात दूसरे पहना बाना फूलों का ।
एक फूल को पड़ा लाख सिर बोझ उठाना फूलों का ।।
खिला भभूका सा जोबन तिस पर खिल जाना फूलों का।
देख न देखा हो तो बाग़ में आग लगाना फूलों का ।।
फूल फूल मिल रहे नाच यों गावें गाना फूलों का ।
फूल फूल, बुलबुल जस गावें यों अफ़साना फूलों का।।
बांध फूल की गिरह फूल से मेल मिलाना फूलों का ।
हरियाने के बीच आज जंगल हरियाना फूलों का।।"

---

1. स्वामी नारायणानन्द, लावनी का इतिहास, पृष्ठ 12।

जगदीश्वर की जो जगमग ज्योति जग-मग में और घट-घट में व्याप्त हो रही है, कवि ने उसी दिव्यज्योति के बीज बोकर ज्योति-वृक्ष उगाए हैं। इस प्रकार वह अन्तर्पट में छिपी आत्मज्योति को पृथ्वी पर प्रत्यक्ष कर सारे लोक को आलोक-मय करना चाहता है -

"शजर[1] नूर[2] का, नूर की शाखें, वर्ग मुनव्वर,[3] नूर के गुल।
माइल ऐसे बाग़ नूर के, नूरानी हम हैं बुलबुल ।।
साथ देह के मन को धोया, नूरानी पानी के बीच ।
तुख़्म[4] नूर को हमने बोया, ज़मीन नूरानी के बीच ।।
नूर के फिर पानी से सींचा, नूर को आसानी के बीच।
नूर में धर के नूर जमाया, हिकमत[5] रब्बानी[6] के बीच।।
नूर फूट जब बाहर निकला, नूर के अन्दर से बिल्कुल ।
माइल ऐसे बाग़ नूर के नूरानी हम हैं बुलबुल ।।"

जुल्फें स्त्री-सौन्दर्य को उसी प्रकार बढ़ा देती हैं जैसे चांद की खूबसूरती को काली घटाएं। कविने विभिन्न उद्भावनाओं और उत्प्रेक्षाओं के साथ अलकों का वर्णन किया है-

"मूँ मार[7] मार ख़म[8] जुल्फ मार पेचाँ[9] का,
मेरी जान - दांत कंघी से तोड़ा जी ।।
दे दे बल बालों में ज़हर कालों का निचोड़ा जी ।
दो शानों[10] पर शाने[11] से लटें निकाली,
मेरी जान दुताकर ऐसे काकुल[12] के
लटक फरिश्ते रहे जिस तरह चाह में उस गुल[13] के।
क्या बने परेशां बुलबुल इस जा[14] आके
मेरी जान बहम में पेचां सम्बुल[15] के ।
लटक भुजंगे रहे शाख सन्दल[16] में खुलखुल के।
बोसा ले ले मन मस्त ग़ाल पर झूमें ,
ले झूम झूम के बलाएं मुंह का चूमें ।।
मेरी जान नाग नागिन का जोड़ा जी, दे दे बल बालों में ज़हर कालों का निचोड़ा जी।।"

---

1. शजर = वृक्ष ।
2. नूर = ज्योति, ईश्वर का एक नाम।
3. मुनव्वर = चमकीला ।
4. तुख़्म = बीज ।
5. हिकमत = बुद्धिमानी ।
6. रब्बानी = ईश्वरीय ।
7. मार = साँप ।
8. ख़म = टेढ़े, घुँघराले ।
9. मार पेचाँ = छल-कपट
10. शान = शक्ल ।
11. शाना = कंघा ।
12. काकुल = कनपटी पर लटके हुये बाल ।
13. गुल = फूल, सुन्दर स्त्री ।
14. जा = जगह ।
15. सम्बुल = एक सुगन्धित घास जो फ़ारसी-उर्दू में सुन्दर घुंघराले केश का उपमान मानी गई है।
16. सन्दल= चन्दन ।

अक्सर हसीन वफ़ा कर फिर बेवफ़ा हो जाते हैं, इसी रंज और पश्चात्ताप में आशिक अपना सबकुछ बर्बाद कर देते हैं -

"यार मेरा बेवफ़ा न होता, क्यों खोता अपनी जां को ।
लाज को, पत को, हया को, शर्म को, शौकत को, शां को।।"

जब आशिक का दिल जुल्फ की जंजीर में जकड़ जाता है तो प्रलयकाल तक भी इस बन्धन से रिहाई नहीं होती -

"दिल गिरफ्तार बेवजह हुआ, मालूम नहीं क्यों कर के छुटे ।
जीते जी छुटे या मर के छुटे, या दिन हिसाब महशर[1] के छुटे।।
यक रोज़ खड़ा था कोठे पर, महलका[2] बाल थे सर के छुटे ।
कुछ रुख़ पै छुटे कुछ गर्दन पर, कुछ पुश्त[3] के पास कमर के छुटे।।
नागहां[4] नज़र जा उस पै पड़ी, जो बाल थे रुख़ अनवर के छुटे।
कुछ आगे छुटे कुछ पीछे छुटे, कुछ नीचे पड़े ऊपर के छुटे ।।
पेंच क्या छूटे, छुटा छक्के दिये इम्त्याज़[5] के,
लट पलट के मारते थे साथ नख़रे नाज़ के ।
बन्द महरम[6] के छुटे लच्छे अजब अन्दाज़ के ,
छुट रहे छाती के ऊपर क्या ही उस दमबाज़ के।।
छुट गये बंधे जंजीरों के, नहि बंधे बाल दिलबर के छुटे ।
जीते जी छुटे या मर के छुटे, या दिन हिसाब महशर के छुटे।।"

रामदयाल उर्फ दयालचन्द -

इनका जन्म सन् 1795 के आसपास हुआ था। यह रिसालगिरि जी के शिष्य थे। यह मदारीलाल के समकालीन कवि एवं गायक थे। इनका अखाड़ा भी भारतवर्ष में प्रसिद्ध था। छाप में इनका नाम कहीं 'रामदयाल' और कहीं 'दयालचन्द' आया है। यह हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं के विद्वान् और दोनों भाषाओं में लावनी लिखने में माहिर थे। इनकी कविता में अध्यात्म, योग-साधना और भक्ति के स्वर मुखरित हुए हैं। 'रूपक' लिखने में इन्हें कमाल हासिल था। शैली कबीर के समान उपदेशात्मक है। मन रूपी पतंग तृष्णा रूपी वायु के झोंको के साथ उड़ रहा है, जिसकी डोर श्वासों से तैयार की गई है, भय है कि कहीं काम-क्रोध-मद-लोभ रूपी चोर इसे लूट न लें -

---

1. महशर = प्रलय ।
2. महलका = चन्द्रमुखी ।
3. पुश्त = पीठ ।
4. नागहाँ = अचानक ।
5. इम्त्याज़ = पहचान ।
6. महरम = कंचुकी, अँगिया ।

"मन-पतंग गया उखड़, पकड़ कर हिर्स[1]-हवा का ज़ोर,
टूट गई सुरत[2] सूत की डोर जी ।
गुन[3] का गोला खुला बन्द में ध्यान ढ़ील से बढ़ा,
पाई शै ज्यों ज्यों त्यों त्यों चढ़ा जी ।
जोग-जुगत के जोड़े छीले काम का काग़ज़ मढ़ा,
ढूंढ़ का ढड्ढा[4] छीला गढ़ा जी ।।
तुरत फुरत की कन्नी सन्तो, बंधी पतंग के बीच ।
ज्ञान-गिरह दी उसमें जतनी, उसे डोर से खींच ।।
मया मोह के झोके खाता, लगी कला की कोर,
टूट गई सुरत-सूत की डोर जी ।।"

यह शरीर पतंग के समान है जो हमेशा बिना हवा के श्वासों की शै से उड़ता रहता है, यह पांच तत्त्वों से बना है, वही मानों इसके पाँच रंग हैं। तीन सौ साठ अस्थियों और सत, रज, तमोगुण की डोर है -

"नेह की चुटकी जिधर को फेरे उसी तरफ को मुड़े ।
हमेशा हवा बिन हवा उड़े जी ।
पाँच रंग हैं तिगुनी तीन सौ साठ जोड़[5] है जुड़े,
कारीगर जो देखे वह कुढ़े जी ।।
स्वासों की शै ज्यों ज्यों पावे, वह पतंग गुनवान ।
आकाश तन्त्व में उड़े हमेशा, बात हमारी मान ।।
एक तरफ नहीं झुके न खाये कन्नी जाय चहुं ओर,
टूट गई सुरत-सूत की डोर जी ।।"

यदि पूरब की हवा चलती है तो यह पश्चिम की तरफ़ जाता है और यदि उत्तर की हवा चलती है तो यह दक्षिण दिशा में जाता है। हे नादान शायर, तू इस तन-पतंग का अभिमान मत कर यहाँ तेरे जैसे लाखों आये और चले गये। अन्त में यमराज के झोंके से इसकी डोर टूट जायगी और घरवाले रोते रह जायेंगे, अतः -

---

1. हिर्स = लोभ, तृष्णा ।
2. सुरत = ध्यान ।
3. गुन = विशेषता, धागा, डोरी, स्नायु ।
4. ढड्ढा = अनावश्यक विस्तारवाला ।
5. तीन सौ साठ जोड़ हैं = श्रीणिसषष्ठीन्यस्थिशतानि वेद वादिनो भाषन्ते ।' अर्थात् वेदवादी चरक, याज्ञवल्क्य आदि अस्थियों की संख्या 360 मानते हैं। - सुश्रुत संहिता, शारीरस्थानम्, अध्याय 5/18

"काम क्रोध मन ममता माया, मद मत्सर को मार,
मार ले इन्हें न हिम्मत हार जी ।
छह सौ और इक्कीस हज़ार स्वासों के गिन कर तार,
जोड़ कर डोर करो तय्यार जी ।
षोडश दल का दस दल दोई, दल ऊपर को चढ़े ।
अजपा जाप जपे इस जा पर योगारम्भ को पढ़े ।।
न खा भरम का गोला छिप कर कतर जायंगे चोर,
टूट गई सुरत-सूत की डोर जी ।।"

इस पद में प्रयुक्त 21600 श्वास-संख्या की सार्थकता पर मैंने घड़ी देखकर श्वास लिये तो एक मिनट में 15 श्वास आये, तदनुसार 60 मिनट अर्थात् एक घंटे में 900 और 24 घंटों अर्थात् एक रात-दिन में 21600 श्वासों का योग गणित के अनुसार सही बैठता है, अर्थात् '15 × 60 = 900×24 = 21600'

शरीरविज्ञान की इस जानकारी के साथ ही कवि को तन्त्रविद्या और योगशास्त्र का भी अच्छा ज्ञान था, उक्त पद में प्रयुक्त शब्द इसके पुष्ट प्रमाण हैं, यथा षोडश दल, दश दल और अजपा जाप आदि। योगशास्त्र के अनुसार 'विशुद्ध चक्र' के 16 वर्ण - अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ॠ, ॠ, लृ, लॄ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः - ही 'षोडश दल' हैं -

"कण्ठस्थानं स्थितपद्मं विशुद्धं नाम पंकजम् ।
धूम्रवर्णस्वरोपेतं षोडशच्छद शोभितम्।।"[1]

इसी प्रकार 'मणिपूर चक्र' के ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ अक्षर ही 'दशदल' हैं
"तृतीयं पंकजं नाभौ, मणिपूरकसंज्ञकम् ।
दशारं डादि फान्तार्णैःशोभितं हेमवर्णकम्।।"[2]

1· शिवसंहिता, पंचम पटल, श्लोक संख्या 124

2· वही, पंचम पटल, श्लोक संख्या 111

'विशुद्ध चक्र' से चारों वेदों का रहस्य ज्ञान भासने लगता है तथा 'मणिपूर चक्र' से भूगर्भ में छिपी हुई वस्तुओं का ज्ञान होता है और साधक काल का अतिक्रम कर लेता है ।

'अजपा' वह मंत्र है जिसका उच्चारण सांस के भीतर-बाहर आने-जाने मात्र से किया जाता है, इसे 'हंसमन्त्र' भी कहते हैं, इसमें 'सोऽहम्' का 'जप' किया जाता है।'[1]

ऊपर को साँस लेते समय 'सो' तथा नीचे श्वास छोड़ते समय 'ऽहम्' की ध्वनि स्वतः प्रकट होती है। साधक का मन जब शरीरस्थ मूलाधार, अधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञाचक्र को पार कर 'इस जा' (जगह) अर्थात् 'ब्रह्मरन्ध्र' के स्थान पर पहुँचता है, तभी ब्रह्म का साक्षात्कार करता है।

अब प्रस्तुत है बरसात का आध्यात्मिक रूपक, जिसमें कवि ने अज्ञेय प्रियतम के प्रति प्रेमाभिव्यक्ति और प्राकृतिक विषयों में छायावादी प्रतीकात्मक शैली में नराकार भावना व्यक्त की है, जिसे 'मानवीकरण' भी कह सकते हैं -

"उठी प्रेम की घटा पिंड[2] में भीज गई चूनर सर से ।
गंगा-जमना, बढ़ीं रिमझिम माया का जल बरसे ।।
मया के नाचें मोर दादुरा बोल रहे सखी थम थम के ।
कोयल ऐसी, कूकती हिरदे में बिन पीतम के ।।
बिरह के बदरा छाये सखी अब, दिस्ट[3] की नित दामिनि दमके।
बुंद[4] पड़ रहे, अरी आसा असाढ़ में नित ग़म के ।।
झांझ के झींगुर बने देते नफ़ीरी की सदा,
पपिहरा 'पी पी' रटे था, पी बिना ये दुख बदा ।
हेत की हिरदे में अपने चल रही ठण्डी हवा,
हमको इस ऋतु में पिया से मिलने का अरमान था ।।
मेरे पंख बलम गये तोड़, महल में छोड़,
उड़ा नहि जाय सखी री बिन पर से ।
गंगा-जमना, बढ़ीं रिमझिम माया का जल बरसे ।।"

---

1. द्रष्टव्य - कालिकाप्रसाद, बृहद् हिन्दी कोश, पृष्ठ 28
2. पिंड = शरीर ।
3. दिस्ट = दिष्ट, भाग्य, काल ।
4. बुन्द = बूंद, इसका प्रयोग स्त्रीलिंग और पुल्लिंग दोनों में होता है, देखो - बृहत् हिन्दी कोश, पृष्ठ 964

कालिय नाग की विषैली फुंकार से देवकीनन्दन का गौर रंग कृष्णवर्ण हो गया, भव-भय-भंजन की लीला देखिये -

"देवकी के घर जन्में कान ।
जगत तारा गोकुल में आन ।।
कालीदह में जब नाथा नाग,
नागिनी कहे - यहां से भाग ।
शेष तब पड़ा नींद से जाग,
भरी फुंकार लगा दी आग ।
तब से हरि का हुआ साँवरा, उज्ज्वल रूप शरीर ।
कला दिखाई नागिन को वह, नागनाथ बेपीर ।।
हुई नागिन उसकी हैरान ।
जगत तारा गोकुल में आन ।।"[1]

इन्होंने उर्दू ज़बान में भी साधिकार लिखा है। तुर्रे की शान में एक छन्द देखिए-

नूर तुर्रे अतहर[2] का रोशन, हर जा घर और जहान में है ।
जिनो बशर इन्सान में है, और परी हूर ग़िलमान में है।।

'तुर्रा' शिव का प्रतीक है, अतः वेद-शास्त्र, ऋषि-मुनि सभी उसका ध्यान धरते हैं-

"नाज़िल[3] कुरआँ हुआ जहां में उसी नूर की शान में है ।
ज़िक्र उसी की शौकत का हर एक जगह क़ुरआन में है ।।
ग़लत नहीं, सच जानो इसको, ये उसके फ़रमान[4] में है ।
शान में उसकी 'हमे ओस्ता'[5], कलमा लब फुक़रान[6] में है ।।
ऋषी-मुनी और साधु सन्त हर, बैठा उसके ध्यान में है ।
जिनो बशर इन्सान में है, और परी हूर ग़िलमान में है ।।"

---

1. लावनी का इतिहास, पृष्ठ 134
2. अतहर = पवित्र ।
3. नाज़िल = प्रकट ।
4. फ़रमान = आज्ञा ।
5. हमे ओस्ता = तू ही तू है ।
6. लब फुक़रान = फ़कीरों के होठों पर ।

उस्ताद बादल -

इनका जन्म सन् 1795 ई. के आस-पास हुआ । यह जाति के मुसलमान थे । गायन एवं लेखन दोंनो प्रकार की प्रतिभा इनमें विद्यमान थी, इनके सुख़न में सोज़ और आवाज में सुरीला साज़ था। 'पहले यह कलग़ी गाते थे। एक बार यह मदारी उस्ताद से गाने में मात खा गये किन्तु इससे हतोत्साह न हो कर बड़े उत्साहित हुये ओर रिसालगिरि के शागिर्द रामदयाल को अपना गुरु बनाकर अपना अलग अखाड़ा क़ायम करने में सफल हुये तथा अपना उस्तादी का दावा हमेशा क़ायम रख सके। यह उर्दू के तो शायर थे ही, हिन्दी भी अच्छी लिखते थे। वह ज़माना हिन्दू-मुसलिम इत्तिहाद का था और मुसलमान शायर हिन्दी का दम भरते थे। कृष्ण की कथाएं इन्होंने खूब लिखी हैं और इस विषय की जानकारी भी रखते थे। अपनी मिलनसारी और सादग़ी से हिन्दू-समाज में इन्होंने अपना अच्छा प्रभाव जमा लिया था ।'[1]

इन समकालीन शायरों में कभी-कभी परस्पर भी वाणी द्वारा व्यंग्य-विनोद की बाण-वर्षा होने लगती थी। एक बार इन्होंने उस्ताद मदारीलाल पर व्यंग्य-बाण चलाया -

'थे कभी मदारी अब तो बने कलन्दर ।
डुगडुगी बजाते फिरो शहर के अन्दर ।।'

प्रत्युत्पन्नमति उस्ताद मदारीलाल ने जवाबी हमला किया-

'मैं बना मदारी फिरूं शहर के अन्दर ।
'ता दिरना-दिरना' नाच अरे बन बन्दर ।।'

इनके लिखे 'दाख़िले' बड़े मशहूर हैं। इनका रचना काल 1820-1875 तक माना जा सकता है। 125 वर्ष पुरानी इनके काव्य - संग्रह की एक पांडुलिपि 40 वर्ष पूर्व 'ख़याल खोजक मंडल' को श्री कालिकाप्रसाद 'सुन्दर' के माध्यम से प्राप्त हुई थी, जिसकी लिपि उर्दू है। इसमें हिन्दी, उर्दू भाषा में लिखी गई शताधिक लावणियां हैं । इनके अखाड़े में अनेक बेहतरीन गाने वाले मुसलिम नौजवान शामिल हो गये थे, जिनमें रज्ज़ब खां, खलीफा मोहम्मद, अहमद अली, फ़ैजुल्ला खां, कल्लन, अब्दुल गफ़ूर, आदिल, मुहम्मद हादी, जमादार, कल्लू, बल्ली, मोला, जुम्मन, इकराम खां, मियां मजीद खां, और क़ादिर बख्श आदि मशहूर थे। बरक़तुल्ला, आज़िज़, सफ़दर अली, वजीर, खुदाबख़्श, तजम्मुल, मन्नी आदि इनके प्रशिष्य थे। मन्नी अर्थात् 'मनीराम' हिन्दू थे। 'काम-कंस का वध कर गो-कुल निर्मित मन-मन्दिर में ही मनमोहन विराज रहा है, दुविधा का दूध और दया की दही बेचने वाली ज्ञान-गोपियों और गर्व-गूजरियों की वह मोह-मटकी फोड़ कर रस-रास रचा रहा है'। इन्हीं भाव-भित्तियों पर आधारित रूपक देखिए -

---

1. स्वामी नारायणानन्द सरस्वती, लावनी का इतिहास, पृष्ठ 137

"काया-कदंब में हेत-हिंडोला पड़ा, झूलते मन मोहन ।
पाँचों आत्मा, आत्मा पैंग दे रही सखियां बन ।।

पाँच तत्त्व की पंचरंग डोरी, हेत-हिंडोले में भारी ।
रूप की राधा, बनाई रूप की ये राधा प्यारी ।।
सुख के वन के सखा पेंग देते हरि को बारी-बारी ।
चित की चौलड़ी, चौलड़ी चित की पहन न्यारी-न्यारी ।।

भव का भूषन किये चली देखने सखी मद का मधुवन ।
पाँचों आत्मा, आत्मा पैंग दे रही सखियां बन ।।"

दीपक की ज्योति विवर्ण होते ही बोध हो जाता है कि अब सबेरा हो गया है । इनका प्रकृति पर्यवेक्षण भी बड़ा सूक्ष्म है, प्रभाती-परी प्रभा के पंख फैलाये धीरे-धीरे पृथ्वी पर उतर रही है और राधिका कृष्ण जी को इस प्रकार मधुर वचनों से जगा रही है -

"निद्रा से अब उठो सांवरे, भोर हो गया, रात ढ़ली ।
ज्योति झिलमिलाई दीपक की, पनिहारी जल भरन चली ।।
घर-घर से सब निकले बटोही, लगी चिरैयां चौंच्याने ।
आंगन बोले काग, पखेरू उड़े, लगे जंगल जाने ।।
बनजारों ने बैल लदाये, ध्यानी लगा बैठे ध्याने ।
गौयें चली मधुवन को चरने, लोग चले जमना न्हाने ।।
मुसाफिरों ने सराय छोड़ी, पति को छोड़ा तिरिया ने ।
पंडित बांचे वेद, लगे सरवर पर हंसा भी आने ।।
जागो नन्द के कुंवर कन्हाई ।
कैसी तुमको निद्रा आई ।।
अब भी तुमने रैन बनाई ।
आते - जाते लोग - लुगाई ।।

जगा रही वृषभानु - लली ।
ज्योति झिलमिलाई दीपक की, पनिहारी जल भरन चली ।।

सूफी कवियों के समान यह भी प्रत्यक्ष से अप्रत्यक्ष की ओर गये हैं, इनके प्रियतम के लोल, गोल कपोल अभिनव सूर्य-मण्डल की आभा से मण्डित हैं, अलकावलि तमिस्रा के तम-तोम के समान काली हैं, और मांग मानो तम से घिरा रास्ता है -

"मांग रहे - जुल्मात[1] है, रंगे जुल्फ़ शबे दहजूर[2] का है ।
आरिज़[3] है यह आफ़ताब[4] ए रुख शोला शोले तूर[5] का है ।।"

ये दुनिया सराय फ़ानी है, इसे अपना घर समझना सरासर नादानी है, सभी को चलाचली लगी है, यहाँ सभी मुसाफिर हैं, कोई आगे, कोई पीछे, सभी कूच कर रहे हैं। इसलिये -

"जो तोशा[6] कल का बचा हो रख ले, सफ़र तेरा जानिबे अदम[7] है ।
नसीम[8] जागो कमर को बांधो, उठाओ बिस्तर कि रात कम है ।।
तुझे खुमारी है कैसी ग़ाफिल, सहर[9] की पिछली पहर ढ़ली है ।
सरा के बाहर हुये विदेशी, मुसाफ़िरों की चलाचली है ।।
निकल चल इस रोशनी के बाहर, अँधेरी पड़ती निपट गली है ।
लगन - मुहूरत हैं दोनों अच्छे, ये नेक साअ़त[10] बहुत भली है ।।
जो शाम आया सुबह सिधारा, किसी का जमता नहीं क़दम है ।
नसीम जागो कमर को बांधो, उठाओ बिस्तर कि रात कम है ।।"

अब्दुल ग़फूर खां 'ग़फूर'

इनका जन्म सन् 1810 ई. के आसपास हुआ। रामदयाल इनके काव्यगुरु थे। 'बादल' के यह सहयोगी थे। लिखने गाने में ही प्रवीण थे। हिन्दी और फ़ारसी दोनों भाषाओं के विद्वान् थे, इनके अनेक शिष्य थे, जो इनके अखाड़े का डंका बजाते रहे। इन्होंने लगभग 75 वर्ष की आयु प्राप्त की। 'सरजू महाराज' भी इनके अखाड़े में शामिल हो गये थे। इनकी रचनाओं में रहस्यवाद, छायावाद की झलक है, प्रकृति-चित्रण और रूप-वर्णन में भी इन्हें पूर्ण सफलता मिली है। प्राकृतिक विशेषताओं के वर्णन से युक्त इनके बारहमासे बहुत प्रसिद्ध हैं। उपमा, उत्प्रेक्षा और सन्देह अलंकारों के प्रयोग में इन्होंने कुछ नवीन उपमान अपनाये हैं।

---

1. रहे जुल्मात = अंधेरा रास्ता ।
2. दहजूर = काली रात
3. आरिज़ = कपोल ।
4. आफ़ताब = सूर्य
5. तूर = प्रकाश ।
6. तोशा = पाथेय ।
7. जानिबे अदम = परलोक की तरफ़ ।
8. नसीम = शीतल मंद समीर ।
9. सहर = सूर्योदय से पहले का काल, भोर ।
10. साअ़त = घन्टा, ढ़ाई घड़ी का काल, घड़ी, पल ।

'मेघदूत के 'आषाढ़स्य प्रथम दिवसे' से ही 'बारह मासों' के आरम्भ करने की परम्परा लावणी-साहित्य में पाई जाती है, इनके 'बारहमासे' का प्रथम छन्द देखिए-

'सखि आई ऋतु बरसात, छोड़ गये साथ,
हमारी बात न पी ने मानी ।
मैं छिन छिन 'पी पी' रटूं फिरूं बौरानी ।।
बदरा छाये चहुं ओर, नाचते मोर,
मचाते शोर घिरी अंधियारी ।
कोयल की कूक से तड़पे जान हमारी
यों पपिहा 'पी पी' रटे, जिगर अति फटे,
रैन नहिं कटे बिना बनवारी ।
चढ़ी लहर विरह की भूली सुध-बुध सारी ।।
सेज नागिन बन रही पी बिन अंधेरी रात में,
कौन लेटे उन बिना आ कर हमारे साथ में।
याद पड़ जाते हैं पी सजनी जों बातों बात में,
ढूंढती फिरती उन्हें चौमुख उठाये हाथ में ।।
लागी असाढ़ की झड़ी, अटा पर चढ़ी,
देखती खड़ी बरसता पानी ।
मैं छिन-छिन 'पी पी' रटूं, फिरूं बौरानी ।।

जायसी के 'हंसत जो देखा हंस भा' अथवा कवीन्द्र रवीन्द्र के 'हेरि हासि तव मधु ऋतु धाओल' के समान ही इन्होंने प्रियतम के अनूप रूप का प्रकृति में अध्यारोप किया है -

'दहन है ख़न्दां[1] उस गुलरू[2] का, या गुंचा गुलज़ार का है ।
लब पै धोखा लाल का है, दांतों पे दुरे[3] शहबार का है ।।
मुंह से गोया फूल हैं झड़ते, लुत्फ़ ऐसा गुफ़्तार[4] का है ।
ज़बां नमूना बर्क़[5] का है या कोंधा अब्र[6] गुबार का है ।।'

---

1. ख़न्दां = हँसने वाला, हँसता हुआ ।
2. गुरुरू = फूल से मुंह वाला, सुन्दर ।
3. दुरे = मोती ।
4. गुफ़्तार = बातचीत ।
5. बर्क़ = बिजली ।
6. अब्र = बादल, घटा ।

अथवा-

'लब[1] की तरह[2] पांखुड़ी में है बू दहन की बूये गुल में है ।
शक्ल हँसी की गुंचे में है, तर्ज़े सखुन[3] बुलबुल में है ।।
ख़मे ज़ुल्फ़ जो ज़ुल्फ़ में है वह पेंच पड़ा सम्बुल में है ।
बारीकी जो नागिन में, बेतुस्सरात के पुल[4] में है ।।
तड़प ज़बां की बर्क़[5] में है, क़हक़हे का ग़ुल[6] कुलकुल में है ।
खुमारी आंखों की नर्गिस में चश्म की शोख़ी मुल में है ।।
चाल का छलबल कब्क[7] दरी[8] में, चमक हुस्न की कुल में है ।
शक्ल हंसी की गुंचे में है, तर्ज़े सखुन बुलबुल में है ।।'

रज्जब खां -

इनका जन्म 1810 ई. के आस-पास हुआ, यह ग़फ़ूर खां के शागिर्द थे। लेखन और गायन दोनों में दक्ष थे, बड़े दबंग गाने वाले थे। इनका रचना-काल 1830 से 1880 तक माना जा सकता है। अध्यात्म और शृंगार दोनों ही पक्ष इनके काव्य में समाविष्ट हैं। हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं में इन्होंने लावनियां लिखी हैं। 'अध्यात्म-चौसर' का रूपक द्रष्टव्य है

'बन्द चाल चौसर की कर, कर दूं मात खिलारी को ।
पांच आत्मा का पंजा ला, बढ़ दूं नर्द[9] अगारी को ।।
छह, चहार, दस के द्वारे में, जाना गोट हमारी को ।
तीनों फेंके तीनों काने, घटा न बाजी सारी को ।।
नाम के रंग को बढ़ा के, बचाऊं नर्द बिचारी को ।
पौवारे का पांसा डाल कर, जीत लो बाजी हारी को ।।
ग्यारह दो तेरह घर चल कर, उठा दूं गोटें सारी को ।
बन्द चाल चौसर की कर दूं, कर दूं मात खिलारी को ।।'

---

1. लब = होठ ।
2. तरह = बनावट ।
3. तर्ज़े सख़ुन = वचन-शैली ।
4. सरात का पुल = दोजख के ऊपर का वह बाल जैसा बारीक और तलवार जैसा तेज पुल, जिस पर से कयामत के बाद सभी गुजरेंगे। इस्लाम के मानने वालों की धारणा है कि नेक तो उसे आसानी से पार कर के बहिश्त में चले जायेंगे और बद लोग कट कर दोजख़ में गिर जायेंगे ।
5. बर्क़ = बिजली ।
6. ग़ुल = शोर ।
7. कब्क = हंस ।
8. दरी = ईरान की एक प्राचीन भाषा ।

'तुर्रे' का एक अर्थ मुर्गकेश नामक फूल भी है, फूल खूबसूरती और नूर का प्रतीक है। कवि के मत से सौन्दर्य और ज्योति का वर्णन तो सर्वत्र है परन्तु 'कलग़ी' जिसका अर्थ पगड़ी में लगाया जाने वाला फुंदना या पर है, उसका उल्लेख धर्म-ग्रन्थों में नहीं मिलता। अतः -

फूल जिस्म है नूर का सदहा, आयत जिसकी शान में है ।
बुरा कहे जो उसको वह इन्सान नहीं हैवान में है ।।
सूरह नूर में ज़िक्र है यह, और सूरह के दरम्यान में है ।
तुर्रे का अल्फ़ाज़ अलहदा, लिक्खा हुआ क़ुरान में है ।।
सुनता है पर नहीं मानता, रूई भरी क्या कान में है ?
मुसलमान गो है पर हमको, शक तेरे ईमान में है ।।
जिसे नूर का यकीं नहीं है, वह बेशक शैतान में है ।
बुरा कहे जो उसको वह, इन्सान नहीं हैवान में है ।।'

इनकी भाषा शिथिल है, जैसे 'उठा दूँ गोटें सारी को' में 'को' का प्रयोग अनावश्यक है एवं 'तुर्रे का अल्फ़ाज़ अलहदा' इस पद में अरबी भाषा के 'अलफ़ाज़' का एक वचन में प्रयोग किया है जब कि यह 'लफ़्ज़' का बहु वचन है।

खलीफ़ा मोहम्मद-

इनका जन्म सन् 1812 ई. के आस-पास हुआ था, यह उस्ताद बादल के शिष्य थे। यह अच्छा लिखते और अच्छा गाते थे। अखाड़े के संगठन में इनका काफी महत्त्व था, इसी लिये इन्हें 'खलीफ़ा' की उपाधि से विभूषित किया गया था। इनकी भाषा परिमार्जित है, लेखन शैली स्पष्ट है। इन्होंने भक्त प्रह्लाद आदि इतिवृत्तात्मक रचनाओं के साथ-साथ उद्दाम शृंगार-परक लावणियां भी लिखी हैं। इनकी दृष्टि इन प्रमुख धाराओं से हट कर शोक-गीत लिखने की ओर भी गई है। भक्तिपरक रचनाओं में तो इन्होंने हिन्दी ख़ड़ी बोली को अपनाया है, जैसे -

'दुखित हुआ पहलाद कष्ट में, कहा राम को करके याद ।
दास को अपने बचा कष्ट से, इस ग़म से कर के आज़ाद ।।

परन्तु अन्य विषय उर्दू में ही लिखे हैं। यह पर्दा-प्रथा के पक्षपाती प्रतीत होते हैं -

'इस तरह जो तुम रुख़ बेनक़ाब रखते हो ।
सच कहो हया से क्या जवाब रखते हो ।।'

---

1. नर्द = चौसर की गोटी ।

किसी देश-भक्त की मृत्यु पर इन्होंने जो शोक-गीत लिखा है, उसमें भावनाओं की बड़ी सुकुमार अभिव्यक्ति हुई है :-

'निकला है जनाज़ा किस गुलरू का घर से ।
बुलबुलें छुपाये हुई लाश को पर से ।।
यह किसका जनाज़ा लिये मलायक जाते ।
जो फरिश्ते अर्शेवरीं[1] से उतरे आते ।।
हूरो गिलमां चलते हैं फूल बिथराते ।
हर तरफ़ शहीदों की इज़्ज़त शान दिखाते ।।
अब्रे रहमत फूलों का मेंह है बरसे ।
बुलबुलें छुपाये हुई लाश को पर से ।।'

अहमद अली -

इनका जन्म सन् 1815 ई. के आस-पास हुआ। यह बादल के शिष्य थे। यह सूफ़ी विचार धारा से अनुप्राणित, अलमस्त, स्वच्छन्द और रिन्द प्रकृति के थे। लेखन और गायन दोनों पर समान अधिकार था। हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं में इन्होंने रचनाएं लिखी हैं। इनकी भाषा साफ-सुथरी है, प्रेम का उपालम्भ मीरा के पद 'जो मैं ऐसा जानती' से कम नहीं -

'दिल देकर दिलदार तुम्हें, ग़म खाये और पछताये हम ।
दीवाने बन कर फिरे दश्त में, जान से बस तंग आये हम ।।
अगर जानते तेरी बेवफ़ाई को हम ऐसा क़ातिल ।
नाम न लेते कभी इश्क़ का, और न देते तुझको दिल ।।
अगर जानते जल जायेंगे, देख के रुख़ माहे कामिल ।
नहीं देखते आंख से, कब तुझ शोला के होते साइल ।।
परवाना बन कर नाहक़ तुझ पर जी देने लाये हम ।
दीवाने बन कर फिरे दश्त में जान से बस तंग आये हम ।।'

---

1. अर्श = आकाश, इसलाम धर्म के अनुसार आठवीं बिहिस्त या सर्वोच्च स्वर्ग ।

मये इश्क़ पर आप रिन्दों के अन्दाज़ में फ़रमाते हैं -

'सदाये हक[1] आती है चली, साक़ी तेरे मयख़ाने से ।
बांग अनलहक़[2] बलन्द हो, क्यों न लबे पैमाने से ।।'

काम क्रोध आदि मनोभावों पर भी आपकी दृष्टि गई है -

'माया दूती ने दी बिगाड़ महबूबी ।
जिह्वा रस में फँस गई फ़क़ीरी डूबी ।।
मन रहा प्रथम तो कामदेव के बस में ।
उससे छूटा, डूबा जिह्वा के रस में ।।
रम कर किरोध ने अब मेरी नस-नस में ।
बलिहार किया है मया-मोह के जस में ।।
मिल कर ग़ैरों से हुई अकारथ ख़ूबी ।
जिह्वा रस में फँस गई फ़क़ीरी डूबी ।।'

मजीद खां -

इनका जन्म सन् 1815 ई. के आस-पास ही हुआ, यह बादल के पटु शिष्य थे। इनका रचना काल 1830-1895 ई. तक का है। यह प्रचलित इतिवृत्तात्मकता, अध्यात्म और लौकिक प्रेम-प्रकाशन की परिधि से पृथक् हट कर ऐतिहासिक विषयों की ओर आकृष्ट हुये हैं। इनकी भाषा हिन्दी-उर्दू-मिश्रित खड़ी बोली है। कानपुर की तारीफ़ में इन्होंने शृंगार रससिक्त सरस शैली में एक सुन्दर लावणी लिखी है, जिसमें कानपुर के सौन्दर्य का, प्राकृतिक, व्यावसायिक एवं कला-कौशल की दृष्टि से वर्णन किया गया है -

'सैर की मुद्दत तक मुल्कों की, कहीं नहीं तबियत बहली ।
कानपूर की, न भूली परियों की सोहबत पहली ।।

---

1. सदाये हक = ईश्वर की आवाज़ ।
2. अनलहक = अहं ब्रह्माऽस्मि, मैं परमेश्वर हूँ ।

उजड़ गई देहली, जब से यह कानपूर आबाद हुआ ।
ग़म का मारा, जो आया देहली से, यां शाद[1] हुआ ।।
बजे शादियाने[2] घर-घर में रंजो अलम[3] बरबाद हुआ ।
जो इस जा पर, हुआ अपने फ़न[4] का उस्ताद हुआ ।।
मुल्कों में इस शहर की कारीगरी की धूम है,
चीन वालों को भी ये सनअ़त[5] नहीं मालूम है ।
इल्म का चर्चा है घर घर ज़ाहिली[6] मादूम[7] है ।।
बेनिशां ज़ालिम, नहीं यक नाम को मज़लूम[8] है ।।
देख बावफ़ा लोग बेवफ़ाई इस बस्ती से टहली ।
कानपूर की, न भूली परियों की सोहबत पहली ।।'

मथुरी मिस्सर -

इनका जन्म सन् 1820 ई. के आस-पास हुआ, यह गंगा-पुत्र ब्राह्मण थे। मिस्सर 'मिश्र' शब्द का ही अपभ्रन्श रूप है। कवि एवं प्रभावशाली गायक थे। हिन्दी उर्दू दोनों भाषाओं पर समान अधिकार था। यह मदारीलाल के शिष्य थे। इनकी भाषा-शैली सरस और सरल है, इनका रचना-काल 1840-1900 ई. तक है। इनका ध्यान प्रचलित परम्पराओं से हट कर 'गो-रक्षा' आदि सामाजिक कर्त्तव्यों की ओर गया। अपने अखाड़े के लावणीकारो कों भी इन्होंने इस दिशा में सृजन की प्रेरणा दी, जिनमें 'मनीराम' 'मौलाई' और 'जगन' मुख्य हैं। प्रसिद्ध लावणीकार पं.रामदयाल और प्रभुदयाल इनके शिष्य थे। इन्होंने गाय के शरीर में सर्व देवताओं और तीर्थराज का निवास बतलाया है -

'गुनी गऊ यक देखी हमने, पवित्र पावन काम धयन ।
रोम-रोम में, जिसके हैं सकल देवता सुन वर्णन ।।
सत्य-सुमति के सींग हैं दोनों, एक में जम का बना भवन ।
दुसरे सींग में, हैं बैठे इन्द्र बिछाये इन्द्रासन ।।

---

1. शाद = प्रसन्न ।
2. शादियाने = खुशी के बाजे ।
3. रंजो अलम = दुःख-शोक ।
4. फ़न = गुण, विद्या, कौशल, हुनर ।
5. सनअ़त = कला अलंकार ।
6. ज़ाहिली = मूर्खता ।
7. मादूम = समाप्त ।
8. मज़लूम = जिस पर जुल्म किया गया हो ।

मस्तक में है प्रागराज कट जाय पाप कर के दर्शन ।
और भृकुटि में, भवानी बास कर रही हो के मगन ।।
आँख दहनी में गुनी सूरज वो ज्योति प्रकाश है ।
और बांई में निशापति चन्द्रमा का बास है ।।
नन्दिनी दहिने करन में बस बसी सुख रास है ।
अश्विनी सुत करन बांयें में प्रगट विश्वास है ।।
महादेव नासिका में नथुनी में गनेश और षट् आनन ।
रोम-रोम में, जिसके हैं सकल देवता सुन वर्णन ।।'

भग्गी गुरु -

यह मथुरी मिस्सर के साथी थे। इन्होंने भी मदारीलाल से दीक्षा प्राप्त की थी। इनका वास्तविक नाम भगवानदास था, प्यार और श्रद्धा से लोग इन्हें **'भग्गी गुरु'** कहते थे। इसकी साक्षी इस पंक्ति से मिलती है -

'कहे **'मथुरी मिस्सर' 'भग्गी'** कथन करारी जी ।'

मथुरी मिस्सर के समान 'गो-रक्षा' सम्बन्धी रचनाएं इनकी भी बहुत प्रसिद्ध हैं -
'मोहन श्री गोपाल लाल अति, विपति कौन विधि करे रक़म[1] ।
मरे हैं गैया, कन्हैया खटक रहे छुरियों के जख़्म ।।'

भाषा में माधुर्य और भाव-प्रवणता है -
'करुणा निधि गोपाल कहें रो-रो सब गऊ तुम्हारी जी ।
तुम्हें ढूंढ़ती, ढूंढ़ती नगर ग्राम गिरिधारी जी ।।'

मुंशी ख़ादिम -

इनका पूरा नाम मथुरा प्रसाद था। इनका जन्म 1820 ई. के आस-पास अग्रवाल वैश्य वंश में हुआ। यह मदारीलाल के शिष्य और 'मथुरी गुरू' के मित्र थे। यह लावणी लिखते तो थे परन्तु दंगलों में नहीं गाते थे।

---

1. रक़म = लेखन ।

इनकी रचना में अब्जद अर्थात् अरबी वर्णमाला की बन्दिश (शब्द-योजना) पाई जाती है -

'आज तेरी मिक़राजे अदा[1] ने काटे मुर्ग़-तक़दीर के पर ।
बिलकुल उनक़ा[2], शौक़ ना उड़े कठिन तदबीर के पर ।।'

इनकी लावनियों की छाप में इनके समकालीन और इनके पक्ष के 'खुशहाल' और 'मौलाई' शायरों के नाम आये हैं। इनकी सभी रचनाएं श्रृंगार-परक हैं।

आजिज़-

इनका जन्म 1840 ई. के आस-पास हुआ। यह 'मथुरी महाराज' के शिष्य थे। इन्होंने अपना अलग अखाड़ा क़ायम किया था, जिसके सदस्यों में 'ज्ञानी', 'दीना' 'जगत नारायण' 'हरकरण' 'धनेसर' 'गेंदन लाल' आदि प्रमुख थे। 'ज्ञानी' से इनकी अभिन्नता थी। इनकी भाषा हिन्दी खड़ी बोली है, जिसमें 'ध्वन्यर्थव्यंजना' की छटा दर्शनीय है -

'आद गन्न नच रहे खड़कता चंग, नये ढ़ंग की लगी धजा ।
अति अनन्द मिरदंग बजे संग, धिकतां धिकतां धिन्नक धां ।।'

यहां 'धिकतां धिकतां' ध्वनि से मृदंग के बजने की व्यंजना हो रही है।

ज्ञानी -

यह 'आजिज़' के अजीज़ दोस्त थे, अखाड़े के संगठन में दोनों का ही श्रेय समान रूप से है। इनका रचना-काल 1860-1910 ई.तक माना जा सकता है। इनकी भाषा हिन्दी-उर्दू मिश्रित खड़ी बोली है। इन्होंने उपदेश-परक लावणियां लिखी हैं।

'तलाश कर देख घर के अन्दर है एक ही सृष्टि त्राणकर्त्ता ।
तेरे है तन के नगीच[3] लख ले, अलख निरंजन ये अघ का हर्त्ता ।।'

---

1. मिक़राजे अदा = अदा की कतरनी, कैंची ।
2. उनका =एक कल्पित पक्षी ।
3. नगीच = समीप ।

पं. रामदयाल त्रिपाठी-

इनका जन्म सन् 1820 ई. के आस-पास हुआ। यह गौड़ ब्राह्मण थे और कानोड़ से आ कर कानपुर, महेश्वरी मुहाल में रहने लगे थे। यह संस्कृत के विद्वान्, ज्योतिष के जानने वाले एवं कर्मकाण्ड-कुशल थे, इसी से इनकी जीविका चलती थी।

इनमें जन्मजात काव्य-प्रतिभा थी, कानपुर में आ कर 'मथुरी गुरु' से इन्होने काव्य-शिक्षा ग्रहण की। इन्होंने बहुत सी लावणियां लिखी हैं, इनके काव्य के विषय ईश्वर-भक्ति, धर्म-उपदेश और ज्योतिष हैं। पं. प्रभुदयाल के प्रेरणा-स्रोत भी यही थे। यह दंगलो में नहीं गाते थे, इनकी लावनियों को इनके शिष्य गाया करते थे। इनकी रचनाओं में 'प्रभु' 'चुन्नी' बाला बख्श, धनेश्वर, अंगना पंडित, गेंदन लाल, भोला और सरजू के नाम आये है, इनमें कुछ तो इनसे प्रेरित तथा कुछ प्रशिक्षित थे। सन् 1900 ई. तक इनका ज़माना रहा ।

सन् 1880 ई. में इनकी रचनाओं का संग्रह 'काव्य-भूषण' नाम से 'लीथो'[1] में छपा था, उसमें ज्योतिष आदि विषयों से सम्बन्धित इनकी अनेक रचनाएं हैं। इनकी भाषा संस्कृतनिष्ठ एवं 'ध्वन्यर्थ व्यंजना' से विभूषित है।

सिद्धि-सदन, गज-वदन, दुष्ट-दलन, बुद्धि-विधायक, गण-नायक श्री गणपति की वन्दना में अनुप्रास, रूपक और उपमा आदि अलंकारों से भाषा की दिव्य छटा छिटकी पड़ती है -

'अष्ट सिद्धि नव निधि ओ ऋद्धि, के दाता श्री गणपति जान ।
चरणाम्बुज-रस, जिन्हों का मन मधुकर बन करता पान ।।
सुन्दर रूप अनूप चकित सुर भूप मुकुट सिर पर सोहै ।
कर्ण में कुण्डल, सिजल मणि विमल जटित सुन्दर सोहै ।।
करुणाकन्द राखे अमन्द मस्तक पे चन्द छन्तर सोहै ।
पुष्प लाल की, माल उर, प्रवाल से बढ़ कर सोहै ।।
शारद, शेष, महेश इस्तुती, श्री गणेश की करते गान ।
चरणाम्बुज-रस, जिन्हों का मन मधुकर बन करता पान ।।'

---

1. लीथो = लीथोग्राम = पत्थर का छापा, इसमें एक विशेष प्रकार के कागज पर हाथ से लिख कर गरम किये हुए विशेष पत्थर पर छाप उतारते हैं। यह उलटा रहता है, बाद में कागज़ पर छापने पर अक्षर सीधे हो जाते हैं ।

साहित्य के साथ साथ इन्हें संगीत का भी ज्ञान था, यह इनकी रचना से प्रकट होता है-

'सुर-समाज लग रही, नाचै गनराज, है सुन्दर साज सजा ।
धृगतां धृगतां धा कडांग धा, धुमकिट धुमकिट मृदंग बजा ।।
गत सितार की दिर दारा, दिर दिर दारा दिर दिर दिर दा ।
ताल तराने की दिरदानी, तदिम तदिम दिम तदिम लगा ।।
अलाप के सुर सा सा रे धा, रे सा धा नी ध प म ग रे सा ।
सा सा रे रे रे रे गा गा, सारे गा मा प ध नी सा ।।
कहे मजीरा किनकुम किनकुम, ठुमुक चरन गन रहे जमा ।
धृगतां धृगतां धा कडांग धा, धुमकिट धुमकिट मृदंग बजा ।।'

ज्योतिष शास्त्र का भारतीय जीवन में बड़ा महत्त्व है, इसके प्रति हिन्दूमात्र की बड़ी निष्ठा है। इन्होंने 12 राशियों के अनुसार जन्म-लग्न फल की लावनी लिखी है, जिसे पूर्णरूप से यहाँ उद्धृत किया जा रहा है -

'जिस पर होवे कृपा गुरू की, वह गुणवान कहाता है ।
बिना गुरू की कृपा नहीं ज्योतिष का अक्षर आता है ।।
लेवे जन्म जो **'मेष'** लग्न में, वह परवत्सल प्राणी हो ।
सुधी, सुजन-हन्ता, अति क्रोधी, चण्ड विक्रमी मानी हो ।।
'वृष' में हो जिसकी उत्पत्ती, धन-लोभी, प्रिय-बानी हो ।
गुणी-भक्त हो, गुणी, शूर, सब जन का प्यारा ध्यानी हो ।
जो जन्म **'मिथुन'** में पावे,
वो वत्सल सुजन कहावे ।
अरि-मर्दक नाम धरावे,
हो दीर्घ-सूत्री जावे ।।
त्यागी, कामी, धनी होय कर, अपना नाम बढ़ाता है ।
बिना गुरू की कृपा नहीं, ज्योतिष का अक्षर आता है ।।
शत्रु-विमर्दक भोगी होवे, **'कर्क'** लग्न जो आन पड़े ।
उत्साही रण-विक्रमी कहिये, अल्प सन्तता जान पड़े ।।
जन-जननी-वल्लभ औ व्यसनी, विनयी सा पहचान पड़े ।
शीघ्र कोपी हो विदित लोक जो, जन्म **'सिंह'** का ध्यान पड़े ।।

'कन्या' में जन्म हो जा के,
बहुशास्त्र पढ़े हों ता के ।
सब गुण-सम्पन्न क्रिया के ,
हो सुरत जगत में आ के ।।
हो सुन्दर सौभाग्य जन्म जो **'कन्या'** लग्न में जाता है ।
बिना गुरू की कृपा नहीं ज्योतिष का अक्षर आता है ।।
'तुला' लग्न में जो कोई जन्मे, श्रेष्ठ बुद्धि वाला नर हो ।
होवे कला सब जाननहारा, द्रव्य में वो नर बढ़ कर हो ।।
सत् कर्मी विद्वान् कहावे, पढ़ने वाला शास्तर हो ।
धन्य भाग्य उस नर के होवें, मिथ्या नहीं इक अक्षर हो ।।
जन्मे जो **'अली'**[1] में बाला[2] ,
हो खोटी बुद्धि वाला ।
विग्रही वो होय निराला ,
अज्ञानी पेट का काला ।।
सत्य सत्य कहता हूं वो ही, ज्योतिष शास्त्र जो गाता है ।
बिना गुरू की कृपा नहीं ज्योतिष का अक्षर आता है ।।
नीतिवान् धर्मी हो जिसका जन्म लग्न **'धन'** बीच में हो ।
प्रधान होवे कुल के मध्ये, प्रज्ञावान् जन-बीच में हो ।।
'मकर' लग्न वाले की खोटी बुद्धि तीनपन[3] बीच में हो ।
सब जन-पोषक प्रज्ञावान् वो ज्ञानी निज मन बीच में हो ।।
जिन जन्म **'कुम्भ'** में धारा ,
मन बसी रहे पर दारा ।
रहे सुखी, सुहृद से प्यारा
मृदु वचन बोलने हारा ।।
बना रहे चलचित्त सदा ही, यो ही शास्त्र सुझाता है ।
बिना गुरू की कृपा नहीं ज्योतिष का अक्षर आता है ।।
'मीन' लग्न का बालक कंचन-रत्नों से भरपूर रहे ।
दीर्घकाल का होय विचिन्तक, दुख-दरिद्र सब दूर रहे ।।

---

1. अली = अलिन् संस्कृत शब्द का प्रथमा विभक्ति में एक वचन रूप, वृश्चिक ।
2. बाला = बालक, कमसिन ।
3. तीनपन = बचपन, युवापन, बिरधापन ।

कितना ही पढ़ जाय कृपा बिन 'रिसाल गिरि' की कूर[1] रहे ।
लग्न व्यय[2]-फल कहें 'मदारी' हर के नशे में चूर रहे ।।
नहिं सुगम है ख़्याल बनाना ,
कहें 'गुरु मथुरी' सुन दाना ।
ये 'रामदयाल'- फ़रमाना[3] ,
'पिरभू' का निराला गाना ।।
'अंगना पंडित' के गाने में, दुश्मन दहशत खाता है ।
बिना गुरू की कृपा नहीं ज्योतिष का अक्षर आता है ।।'

पं. प्रभुदयाल जी महाराज -

'पं. प्रभुदयाल जी का जन्म सन् 1835 ई. के आस-पास हुआ और सन् 1905 के लगभग स्वर्गवासी हुये।'[4] यह दादरी के रहने वाले गौड़ ब्राह्मण थे। कानपुर में कर्मकाण्ड एवं पौरोहित्य से यह अपनी आजीविका चलाते थे। यह तपोनिष्ठ, निर्लोभ एवं सात्विक प्रकृति के थे। इनके काव्य-गुरु 'मथुरी गुरू' थे। इनका अखाड़ा भारत भर में विख्यात है। इन्होंने 'गो-रक्षा' विषयक अनेक लावनियां लिखी हैं। इनके अनेक शिष्य थे, जिनमें 'मियां मौलाई' बडे सुरीले और दबंग गायक थे, उन्होंने इनकी लावनियों को गा - गा कर इनके विचारों को दूर-दूर तक फैलाया। पं.रामदयाल इनके गुरु-भाई थे, दोनों में बड़ा प्रेम था । सुप्रसिद्ध कवि पं.प्रतापनारायण मिश्र ने इनसे प्रभावित होकर आरम्भ में लावणियाँ लिखी हैं।

इन्होंने अपनी युगानुरूप रचनाओं से नव जागरण का शंख फूंका, उस समय आर्य-समाज का बहुत प्रचार था, जिसका प्रभाव साहित्य पर भी पड़ना स्वाभाविक था। इन्होंने वर्ण, आश्रम, ब्रह्मचर्य, बाल-विवाह, अनमेल विवाह, वृद्ध-विवाह, श्राद्ध, वेश्या-वृत्ति, दहेज आदि अनेक विषयों को लेकर सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार करते हुये सुधारवादी लावनियां लिखीं।

इनके सुपुत्र मास्टर प्यारेलाल जी अच्छे शायर थे। इनकी रचनाओं में 'मौलाई' शंकर, बैजू, नारायण, मनीराम, गोपाल आदि लावनीकारों के नाम 'छाप' के रूप में आये है ।

इनकी भाषा सरल, सरस एवं प्रसाद गुण से युक्त है। इन्होंने 'दुर्गा-महिमा' आदि कुछ स्तुति-परक रचनाएं भी लिखी हैं, जिनमें पुराणेतिहास की भी झलक है-

'डरे दुष्ट जो हते निशाचर प्रताप महिमा का है अखंडित ।
डहक से कांपे असुर वो थर थर, वो क्रोध दुर्गा का है प्रचंडित ।

1. कूर = मूर्ख ।
2. व्यय - लग्न से बारहवाँ स्थान ।
3. फ़रमाना = कहना ।
4. लावनी का इतिहास, पृष्ठ 180

'गो-रक्षा' पर लिखी लावणियों में अनुभूति की सरसता है -

'गोबिन्द कृष्ण, कर पर गिरिराज उठालो ।
जिस तरह बने गौओं की विपदा टालो ।।'

वर्षा-वर्णन करते हुये आप कहते हैं -

'चढ़ देखा सखी अटा है, इन्दर दल साज डटा है ,
चपला कर रही पटा है ।
रिमझिम बरसे पानी, घर में न आया दिलजानी ,
घिर आई श्याम घटा है ।।'

पति के आगमन से मन का चमन खिल उठता है -

'हाथी हाथा क़ासिद ने ख़त पहुंचाया ।
दिल शेर हुआ जब पिया मेरा घर आया ।।

प्रणय की अनुनय विनय भी कितनी रसमय होती है -

'कपटना कर तू, हंस लिपट गले लग यार ।
तीर आ मत कर सोच विचार ।
बना रस हर्गिज़ निमछले रहे नहीं जान ,
की रचना मीठी बन हर आन ।
गया दिल लेकर बाला दे त्यौर को तान ,
ताप दिया ग़म में कम रख ध्यान ।
दिल लिया मेरा दिखला कर हुस्न बहार ।'

गौ माता के शरीर से 14 रत्न और समस्त सृष्टि का उद्‌भव हुआ है, अतः उसकी रक्षा अनिवार्य है:-

'है यह गौ संकट हरनी माता समान करती पालन ।
अंग-अंग से, वो जिसके प्रकट हुये हैं चौदह रतन ।।

मद्य -पान से बुद्धि का लोप हो जाता है और इसके पान से सुर भी असुर बन जाता है, इसने देश को बर्बाद कर डाला है, अतः-

'त्यागन करो सकल नर-नारी,दुखदाई, दुखदाई है ।
भारत को गारत कर डाला, यह मदिरा हरजाई है ।।
औगुन इस मदिरा में भारी, पीते ही सीना तड़के ।
और बने जिस विधि से ये सब, जानते हैं बूढ़े-लड़के ।।
कुत्ते, बिल्ली,मक्खी, मच्छर, इस शराब में पड़-पड़ के ।
अर्क इन्हीं सबका खिंचता है, मिल जाते हैं सड़-सड़ के ।।

ऐसी गन्दी चीज़ पीते छोड़कर कुल-कान को ,
शान को, शौक़त को, खोते आबरू,ईमान को ।
ज़र खरच कर के फंसाते हैं बला में जान को ,
पीते, बस्तर और गहना बेच कर के मकान को ।।
इस मदिरा ने मन्द करी मति, सम्पति सकल नसाई है ।
भारत को गारत कर डाला, यह मदिरा हरजाई है ।।'

मास्टर प्यारेलाल-

इनका जन्म सन् 1860 के लगभग कानपुर में हुआ था, काव्य-प्रतिभा इन्हें अपने पिता श्री पं.प्रभुदयाल जी से उत्तराधिकार में प्राप्त हुई थी। यह अंग्रेजी, फ़ारसी, बंगला और हिन्दी के मर्मज्ञ थे। यह कलकत्ता में अध्यापक थे। यह लावनी लिखते थे, परन्तु गाते नहीं थे, इनका अपना अलग अखाड़ा बन गया था, जिसमें चुन्नी गुरु, प्रमुख थे, राम, बालाबख़्श, बैजू, शंकर,बिरजू और सालिग भी इनके अखाड़े में सम्मिलित थे, इनके नाम इनकी रचनाओं की छाप में मिलते हैं। इनकी कतिपय विशेषताएं-

क. पूरी लावनी में एक ही रदीफ़-काफ़िया रहता है।
ख. कलापक्ष के साथ भावपक्ष भी समृद्ध है।
ग. किसी भी रचना में अपने नाम की छाप नहीं लगाई, अपितु अपने पिता का नाम छाप में रखा है, जैसे-

"कवी द्याल परभू कहें कर्मवश हूं"

घ. सात-सात भाषाओं को मिला कर 'हफ़्त ज़बान' ख़याल लिखे हैं। जो इनके बहुभाषाविद् होने के प्रतीक हैं।

सरापा (नख-शिख का वर्णन) लिखने में इन्हें कमाल हासिल था। ऐसी शृंगार-परक रचनाएं इन्होंने उर्दू ज़बान में ही लिखी हैं-

'उलट दिया जब नक़ाब[1] रूख़[2] से, सबा[3] ने उस शोख़ शम्सरू[4] का ।
लगा न थल बेड़ा बहरे कुलज़म[5] में, हुस्ने यूसुफ़[6] की आबरू का ।।

किसी की अदा पर मरने वाले उसकी झलक पाकर जी भी उठते हैं, अतः -

---

1. नकाब = घूँघट ।
2. रुख़ = चेहरा ।
3. सबा = पुरवैया पवन ।
4. शम्सरू = सूर्य के समान मुख वाला ।
5. कुलज़म = एक दरिया ।
6. यूसुफ = याक़ूब का अत्यधिक सुन्दर लड़का, जिसे उसके भाइयों ने ईर्ष्या से मिस्र के सौदागर के हाथ बेच दिया था, वहाँ बाद में वह बहुत प्रतिष्ठित पद पर पहुँचा ।

'न जा तू मरक़द की सैर करने, लचक के झाँझन बजाने वाले ।
क़बर से रूहें पुकार उठेंगी, यही हैं मुर्दे जिलाने वाले ।।'

पाप करने वाला मृत्यु का ग्रास बन जाता है -

'पड़े न रब के ग़ज़ब में क्यों, चाहे कोई अफ़लातून[1] का हो ।
गुनाह कर के, बशर क्यों ना लुक़मा[2] ताऊन[3] का हो ।।'

इस दुनिया में छोटा-बड़ा कोई नहीं, अमीर और ग़रीब एक ही सिक्के के दो पहलू हैं-

'तू शहन्शाह मैं दर का गदा, जुज़ रूह एक तकदीरें दो ।
तू तख़्तनशीं मैं ख़ाकनशीं, है वतन एक जागीरें दो ।।
तू ज़रनसीब मैं ज़र्रेख़ाक तासीर एक अक्सीरें दो ।
यक ज़ाहिर है यक बातिन है, अक्सीर एक तासीरें दो ।।
इक़रार साथ इन्कार के है, है जबां एक तक़रीरें दो ।
वादा भी है हीला भी है, है क़लम एक तहरीरें दो ।।
तू बस्ती में मैं जंगल में, है सिफ़्त एक तौक़ीरें दो ।
तू तख़्तनशीं मैं ख़ाकनशीं, है वतन एक जागीरें दो ।।

कुछ हिन्दी शब्दों को उर्दू शायरी में इन्होंने बड़ी ख़ूबी से फिट किया है -

'कुल शहन्शाह हफ़्ते किशवर[4], जाना के जाहो हशम[5] के तले ।
अक़बाल बलन्द सितारा है, झलके हैं पदम भी क़दम के तले ।।'

यहां पर 'झलके हैं पदम' माधुर्य की वृद्धि कर रहा है ।

'एको ब्रह्म् द्वितीयो नास्ति' के सिद्धान्त के अनुसार जीवात्मा भी ब्रह्म का ही अंश है। सत् में भी यही है और असत् में भी यही है -

'कामधेनु सी काया पाई, चपल चित्त, मन-मतंग हूँ मैं ।
भंवर पुष्प माया पै लुभाया, कल्पवृक्ष का विहंग हूँ मैं ।।
अगर लूं इन्द्री जीत तो जग में, महावीर जीत-जंग हूँ मैं ।
फँसूं विषय-वासना में तो अंधी बांबी का भुजंग हूँ मैं ।।
जो मैं काम वश करूं तो लक्ष्मण जती असुर गर्व-भंग हूँ मैं ।
करूं अगर व्यभिचार तो काया समेत रोगी अपंग हूँ मैं ।।

---

1. अफ़लातून = प्राचीन यूनान का एक प्रमुख विद्वान् तथा दार्शनिक, प्लेटो ।
   अफ़लातून का = अपने बड़प्पन की डींग मारने वाला ।
2. लुक़मा = ग्रास ।
3. ताऊन = प्लेग ।
4. हफ़्ते किशवर = सात द्वीप का मालिक ।
5. जाहो हशम = ऐश्वर्य, विभव ।

रहम हूं कहीं सख़्त सरहंग[1] हूँ मैं,
कहीं मोम हूँ और कहीं संग[2] हूँ मैं ।
करूं कर्म जैसा मिले वैसा ही फल,
निशाचर कहीं वीर बजरंग हूँ मैं ।।
बिना गुरु उपदेश सारथी, बिन लगाम का तुरंग हूँ मैं ।
भंवर पुष्प-माया पे लुभाया, कल्पवृक्ष का विहंग हूँ मैं ।।'

देश की वर्तमान दयनीय दुर्दशा पर भी इन्होंने द्रष्टि-पात किया है-

'चली रब के ग़ज़ब से जो बादे फ़ना[3], आबाद कोई मसकन[4] न रहा ।
कहीं ज़िन्दों के ताईं वतन न रहा, और मुर्दों के ताईं कफन न रहा
इन्साफ़ उठा सब दुनिया से, मुल्कों में चैन-अमन न रहा ।
रास्ती[5] का कोई फ़न न रहा लालों की खान यमन[6] न रहा ।।
बदमस्ती में बदमस्त हुये पाकीज़ा[7] मर्दो ज़न न रहा ।
असली नुत्फ़े[8] का वरन न रहा, बनिया, छत्री, ब्राह्मण न रहा ।।
बेगुसल[9] हुये लाखों ही दफ़न, ख़ाली कोई मदफ़न[10] न रहा ।
कहीं ज़िन्दों के ताईं वतन न रहा, और मुर्दों के ताईं कफन न रहा ।

'हफ़्तज़बान' भी लावनी-साहित्य की एक विशेषता है, कुछ मिश्रित भाषाओं (उर्दू, पंजाबी और बंगला) के इनके उदाहरण प्रस्तुत हैं -

'चश्म जाना के ग़ज़ब खूनी खूँख़्वार,
हैं नंगी तलवार।
माशूका मैंनू तरसांदा,
गैरों दी गलियों बिच जांदा ।
साड्डे कोल कभी नहि आंदा,
तुझ बिन दिल घबरांदा ।।
आंदा जांदा मैनू लाखों बार,
हैं नंगी तलवार ।

---

1. सरहंग = उद्दण्ड ।
2. संग = पत्थर ।
3. बादे फ़ना = मृत्यु की झंझावात ।
4. मसकन = भवन ।
5. रास्ती = नेकी, सदाचार ।
6. यमन = अरब का एक देश, जहाँ का लाल और याकूत सारे संसार से अच्छा होता है ।
7. पाकीज़ा = पवित्र ।
8. नुत्फ़ा = वीर्य ।
9. बे गुसल, बे गुस्ल = बिना स्नान ।
10. मदफ़न = मुर्दा गाड़ने की जगह ।

मोनी तुमा के भालो बासी,
नूतन चक्षु मोनमथ गांसी ।
की कोरबे बस कूलेर कासी,
आवे जावे बासवे बाडी ।
घोड़ा-गाड़ी हो असवार,
हैं नंगी तलवार ।'

मनीराम तिवारी -

इनका जन्म सन् 1845 ई. के आस-पास हुआ। यह कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे, इनका निवास-स्थान कुलीबाज़ार नामक मुहल्ले में था। इन्होंने पं. प्रभुदयाल से काव्य-शिक्षा ग्रहण की थी। 'मन्नी लाल' भी इन्हीं का नाम था, 'छाप' में दोंनो ही नाम प्रयुक्त हुये हैं। इनकी मृत्यु 1905 ई. के आस-पास हुई। यह उर्दू भाषा में रचना करते थे। इनकी लावनियां शृंगार-परक हैं-

'मस्त हूं मैं तो वस्ल में तेरे, क़ज़ा ने दुश्मन को घेरा ।
तू है मेरा, मेरा धन माल जान सब है तेरा ।।
मिला रहे सीने से हमदम, मेरी शीतल छाती है ।
सिवाय उसके, न सूरत और किसी की भाती है ।।
है मानी[1] हैरत में उसकी, तसवीर न खींची जाती है ।
सारी ख़लक़त, उसी का शबो-रोज़ गुन गाती है ।।
जला दिया कोहेतूर[2], उठा कर नक़ाब जब पीछे गेरा ।
तू है मेरा, मेरा धन माल जान सब है तेरा ।।'

मियां मौलाई -

इनका जन्म 1845 ई. और मृत्यु 1910 ई. के आस-पास हुई होगी, यह पं. प्रभुदयाल के शिष्य थे, सदाचारी थे और मुसलमान होते हुये भी वैदिक विचारों के प्रति निष्ठावान् थे। यह ख़याल गाने में अद्वितीय थे। 'मंगल' इनके सहयोगी थे, उनका नाम इनकी लावणियों की छाप में आया है। इन्होंने बड़ी मार्मिक़ अन्योक्तियां लिखी हैं, इनकी भाषा उर्दू है, शैली सरल है, इन्होंने अपनी रचनाओं में चौक के पश्चात् झड़, अशआर, चौपाई आदि रख कर आकर्षण पैदा किया है -

---

1. मानी = एक बहुत प्रसिद्ध चित्रकार, यह 831 ई. में बाबिल (इरान) में पैदा हुआ, मदाइन में पढ़ा, जवान होकर इसने नबी होने का दावा किया, जिससे लोग इसके दुश्मन हो गये और यह चीन और तुर्किस्तान की ओर चला गया। बीस साल के बाद वापस लौटा। 889 ई. में, जब इसकी आयु 58 साल की थी, बहराम ने इसे मार डाला। इसने एक नया धर्म चलाया था और बहुत-सी पुस्तकें लिखीं थीं।
   - मुहम्मद मुस्तफ़ा खां 'मद्दाह', उर्दू-हिन्दी शब्दकोश, पृष्ठ 492
2. कोहेतूर = वह पहाड़ जिस पर हज़रत मूसा ने ईश्वर का प्रकाश देखा था ।

टेक - 'कहती थी क़फ़स[1] में तड़फ-तड़फ के बुलबुल ,
महाराज ख़बर ले कोई बेकस की ।
बेक़सूर, सैयाद[2] किस लिये ढ़ीली नस-नस की ।।

चौक - पावेगा किये को, किया है जैसा तूने,
महाराज लाया बरमला[3] फंसा के तू ।
बार बार कहती थी देख मत न ला फंसा के तू ।।
जल्लाद न कर ज़ाहिर जल्लादी अपनी,
महाराज, किधर को चला फंसा के तू,
छोड़ के ज़ालिम चला क़फ़स में गला फँसा के तू ।

झड़ - जिस रोज़ से तूने लासे से मारा है,
कोंचे[4] से कोंचा बदन, बदन सारा है ।
अफ़सोस न देता पानी न तू चारा है ।
सैयाद बड़ा तू पापी हत्यारा है ।।

शेर - बिन परों से कब तल्क बैठी रहूं परदार[5] थी ,
ये न था मालूम कि मैं तेरी ताबेदार थी ।
ख़ैर ताबेदार हूं मैं क्या कहूं तेरे सिवा ,
कुछ ख़ता मेरी न थी क़िस्मत की अपनी हार थी ।।

चौपाई - भरती हूं आहों के नाले[6],
क़फ़स[7] में पड़ के सहूं कसाले ।
पड़ी ऐसे ज़ालिम के पाले ,
नोच-नोच यक-यक पर डाले ।।

उड़ान - उड़ने की नहीं है जगह जो मैं उड़ जाऊं
महाराज, मैं बहुतेरा कसकी-मसकी ।

मिलान - बे क़सूर सैयाद मेरी क्यों ढीली नस-नस की ।। /-।

---

1. कफ़स = पिंजड़ा ।
2. सैयाद = बहेलिया, चिड़ीमार ।
3. बरमला = खुल्लमखुल्ला ।
4. कोंचा = बालू निकालने का भड़भूजे का कलछा ।
5. परदार = जिसके पर न हों।
6. नाले = आर्त्तनाद । (नालः = आर्त्तनादः) ।
7. कफ़स = पिंजड़ा ।

पं. माधव जी -

इनका जन्म सन् 1870 के आस-पास और मृत्यु सन् 1917 में हुई। यह पं. रामदयाल जी के सुपुत्र थे। काव्य-शक्ति इन्हें भी विरासत में मिली थी। इन्होंने युगानुरूप उपदेशात्मक लावणियां लिखी हैं। इनकी लावनियों की छाप में 'मुकुन्दलाल' का भी नाम आया है। इनकी रचना इतिवृत्तात्मक और साधारण कोटि की है -

'चारों युग झगड़ा करते थे, नारायण ने बुलवाया ।
ऊंचे आसन पर सबसे कलियुग राजा को बैठाया ।।'

बालाबख़्श -

इनका जन्म सन् 1860 ई. के आस-पास और मृत्यु सन् 1920 ई. के आस-पास हुई। यह पं. प्रभुदयाल के शिष्य थे। युवावस्था में ही यह कलकत्ता चले गये थे। इन्होंने उपदेशात्मक लावनियां हिन्दी उर्दू मिश्रित हिन्दुस्तानी भाषा में लिखी हैं। इनकी रचना साधारण कोटि की है।

शंकर स्वामी -

इनका जन्म सन् 1870 और मृत्यु 1925 ई. में हुई। यह प्रभुदयाल के शिष्य, रामानुज सम्प्रदाय को मानने वाले, स्वाभिमानी और दबंग गायक थे। इन्होंने भक्ति-परक रचनाएं लिखी हैं, भाषा सरस और लोचदार है-

आपी हो घट घट के व्यापक आपी हो ।
जापी हो, तुम्हें ना भजे, सोइ पापी हो ।।

स्वामी ब्लाकटानन्द -

मिस्टर ब्लाकट साहब भी इन्हीं का नाम था, इनका जन्म सन् 1850 के लगभग हुआ था। यह हिरण्यगर्भ सम्प्रदाय के आचार्य, नवरत्न कमेटी के प्रेसीडेन्ट, भारत हितेच्छुक, दृढ राज-भक्त, प्रजा-शुभचिन्तक और विमलार्य-वंशज थे।

'बहुत दिनों तक यह वल्लभ सम्प्रदाय के एक मन्दिर में रहते रहे। अधिक समय वृन्दावन में रहने के बाद यह कानपुर में रहने लगे। प्रसिद्ध कवि पं.प्रभुदयाल जी के सत्संग से इनको ख़यालों का शौक़ लगा और ये पं. जी के शिष्य बन गये।'[1]

---

1. स्वामी नारायणानन्द सरस्वती, लावनी का इतिहास, पृष्ठ 215

आर्य समाज के प्रभाव से इन्होंने शराब, जुआ, वेश्याओं का नाच, रासलीला और कलियुगी वैरागी आदि सामाजिक कुरीतियों एवं विषयों पर तीखे प्रहार किये हैं।

बल्लभ सम्प्रदाय पर इनका आरोप है -

'पोल खोल देता हूं इनकी, सभासदो, धर ध्यान सुनो ।
सकल वैष्णव वल्लभ-मत के, ज़रा खोल कर कान सुनो ।।
श्रीनाथ को कहो विष्णु पर, चिह्न विष्णु के नहिं भाई ।
यह काले भैरों की मूरति, है जिसकी काली माई ।।'

'सत्य तो यह है कि स्वामी ब्लाकटानन्द जी बड़े स्पष्ट वक्ता और सच्चे प्रचारक थे, कुरीतियों को नष्ट करना और सन्मार्ग दिखाना आपका लक्ष्य था। जीवन में आपने सुधारक के रूप में यथेष्ट ख्याति प्राप्त की।..............आप बड़े मस्त, साधारण रहन-सहन के, कद मंझला, रंग सांवला, सूप सी दाढ़ी, चेचकरू, मज़ेदार पुरुष थे।'[1]

'हिन्द ब्रिटेनिया' आपकी प्रकाशित पुस्तक है, इसमें 18 पृष्ठ हैं, यह लावनी-संग्रह धार्मिक यन्त्रालय-प्रयाग से सन् 1895 में द्वितीय बार मुद्रित एवं प्रकाशित हुआ था।

इसमें पहली लावनी बहर 'रंगत खड़ी' में 15 चौक है। बीच-बीच में प्रत्येक उड़ान से पूर्व शेर दिये गये हैं। इसमें आदि के 5 चोकों में मलका महारानी के भारत के शासन की प्रशंसा की गई है, बाद के चौकों में प्रजा के दुःखों का भी वर्णन है, टैक्सों का विरोध है-

शासन का पक्ष -

'प्रजा को सुख देने के लिये चौतरफ नहर कर दी जारी ।
दूर देश की झटपट देखो, तार खबर देता सारी ।।
देशाटन करने को बनाई, अजब रेल की असवारी ।
सड़क बना के वृक्ष लगाये, सुख से चलते नर-नारी ।।

शेर -
प्रार्थना ईश्वर से है ये हर घड़ी हर एक पल ।
राज भारतखंड में मलका रहे क़ायम अटल ।।
मित्र सब मलका के खुश हों शत्रु सब होंवे क़तल ।
है दुआ दिल से यही क़ायम रहे युग-युग दख़ल[2] ।।

गवर्नमेन्ट भी सदा सहायक, प्रजा पाल औ न्यायी है ।
धन्य-धन्य मलका महारानी जिसकी फिरे दुहाई है ।।'

---

1. स्वामी नारायणानन्द सरस्वती, लावनी का इतिहास, पृष्ठ 218
2. दख़ल = अधिकार ।

शासन का विपक्ष -

'और बड़ा दुख पुलिस का है, दिन रात नींद नहिं आती है ।
गुनह बिना तक़सीर[1] पुलिस लोगों के तई फंसाती है ।।
लूट मचा रक्खी है पुलिस ने झूठे केस बनाती है ।
चोर चौथ देते हैं पुलिस को मिल के सेंध कराती है ।।

शेर - सेंध होती जिस जगह पहुँचें पुलिस भी जाय के ।
मांगती मुर्गा-मलाई प्रजा को धमकाय के ।।
बेगुनाहों का करे चालान ऐब लगाय के ।
दया बदमाशों पे करती माल उनका खाय के ।।

हाकिम नहीं शिकायत सुनते पुलिस की अब बन आई है ।
धन्य धन्य मलका महारानी, जिसकी फिरे दुहाई है ।।'

विशेष: -

छाप में 'प्रभू' नाम आया है जो इनके काव्य-गुरू 'प्रभूदयाल' जी का बोधक है, जैसे -

'शोक सब त्यागो प्रजा गण कहे 'प्रभू' भज नर हरी ।
बिल 'बिलाकट' पास होगा फिर जिये रैयत मरी ।।'

दूसरी लावनी में 'हिन्दुस्तान का सूक्ष्म इतिहास' शीर्षक से 24 चौक लिखे गये हैं, बहर 'रंगत खड़ी' है। प्रत्येक चौक में उड़ान से पूर्व शेर रखे हैं, जिनका वज़न 'गीतिका' छन्द का है ।

टेक - जुल्म हिन्द में यवन करें थे, प्रजा बहुत थी धबराई ।
इज्ज़त, हुर्मत गवर्नमेन्ट ने बचा लई आ कर भाई ।।

इसमें आर्यो के तिब्बत से यहां आने, त्रेता के राम, द्वापर के महाभारत-युद्ध तथा वर्तमान काल के पृथ्वी राज चौहान, अकबर, शाह जहां, औरंगजेब, नवाब सिराजुद्दौला का संक्षिप्त ऐतिहासिक वर्णन है। मुर्शिदाबाद के सेठ अमीचन्द की बहिन नवाब के साले ने छीन ली, सेठ ने नवाब से फरियाद की परन्तु नवाब ने कहा कि- 'फिर नहीं हिन्दू रखे, जब छूत हो जाता घड़ा।' और यह कह कर उसे टाल दिया, तो वह कलकत्ते में गवर्नर क्लीब साहब से मिला और हिन्दुओं पर मुसलमानों द्वारा किये जाने वाले अत्याचारों का वर्णन किया। साहब ने जंग कर सेठ की आर्थिक सहायता से नवाब को जीत लिया, किन्तु साहब ने भी सेठ से दग़ा की और उसे फिर इनकम में हिस्सा नहीं दिया।

---

1. तक़सीर = दोष ।

फिर लाट लीक आये ओर भरतपुर में वीर जाट रणजीत सिंह से टकराये परन्तु हार कर भाग गये।

लार्ड डलहौजी पंजाब के दिलीपसिंह राजा को धोखा देकर विलायत ले गये, और उससे कोहेनूर हीरा ले लिया, दुखी दिलीपसिंह ने पेरिस में ही प्राण दे दिये। डलहौजी ने प्रजा को परेशान किया, जिससे बग़ावत हुई, फिर लार्ड केनिंग वाइसराय बन कर यहां आया, राजाओं ने उसका साथ दिया, उसके बाद लार्ड एलगिन, लार्ड लारेंस, लार्ड भेव, लार्ड नार्थ ब्रुक बंगाल का अकाल मेटने को आये और बडौदा नरेश मल्हार राव पर रेजीडेन्ट को ज़हर देने की झूठी तोहमन्द लगा कर अकाल के चन्दे की रक़म लिटन के साथ मिल कर लुटवादी। फिर लार्ड लिटन, लार्ड रिपन आये, रिपन ने प्रजा से अच्छा सलूक किया, काले-गोरे सबको समान माना। फिर डफरिन ने यहां आकर अत्याचार किया, और वर्मा का सारा धन हड़प लिया, फिर लैन्सडोन ने आकर कपट व्यवहार किया, उसने सैयद की शीरनी दे कर चेला बनने का धार्मिक नाटक किया और कश्मीर के वीरों में परस्पर फूट करा दी, मणिपुर बर्बाद कर दिया। अन्त में परमेश्वर से प्रजा के कष्ट टालने की विनय की गई है।

यह लावनी ऐतिहासिक मूल्य रखती है। इसके सम्बन्ध में लेखक का कथन है कि-

"देशी राजाओं का और लन्दन के सुयोग्य लाटों का इतिहास, कर्तव्य जो हिन्दुस्तान में कर गये; नीति, अनीति सूक्ष्म रीति से वर्णन की गई है।"[1]

"वृद्ध पिता की स्वर्ग से चिट्ठी" नामक लावनी में इन्होंने बड़े मनोरंजक ढंग से श्राद्ध-प्रथा पर अप्रत्यक्ष कटु प्रहार किया है। वस्तुतः मरणोपरान्त सांसारिक सम्बन्धों का अस्तित्व नहीं रहता*, फिर श्राद्ध आदि के माध्यम से सम्बन्ध बनाने की चेष्टा अज्ञान-मूलक ही है।

इनका शास्त्रीय अध्ययन तो अधिक नहीं था, भाषा भी परिमार्जित नहीं है। कहीं गति भंग है तो कहीं तुक भी अधम हैं, परन्तु इनमें काव्य-शक्ति जन्म-जात थी। इनका काव्य समाज-सुधार की दृष्टि से कबीर की कोटि में आता है। "कृष्णलीला" पर इनके विचार देखिए -

"भारत गारत किया विधर्मी ऐसे बढ़े रहस धारी ।
लड़कों के तई, नचाते बना कृष्ण गिरिवरधारी ।।
योगेश्वर थे कृष्ण उन्हें ये अति कामी बतलाते हैं ।
मिस्ले बन्दर,कलन्दर बन के उन्हें नचाते हैं ।।"

---

1. ब्लाकट, हिन्द ब्रिटेनिया, निवेदन, पृष्ठ 2

* भस्मान्त ㆀ शरीरम् ।

आधुनिक युग में कलिकाल का पूर्ण प्रभाव प्रत्येक प्राणी पर परिलक्षित हो रहा है-

" धन्य-धन्य कलियुग महाराजा, लीला अजब दिखाई है ।
उलटा चलन चला दुनिया में, सबकी मति बौराई है ।।
मित्र शत्रु सब हुये प्रीति की डोरी तोड़ जलाई है ।
लगे पंच परपंच करन वो सच्ची बात लुकाई है ।।
विद्याहीन हुये विप्र गायत्री तलक भुलाई है ।
क्षत्री बैठे पहन के लहंगा, ले तलवार छिपाई है ।।
बन आई कुछ नहिं बनियों से, माया यों ही लुटाई है ।
शूद्र हुये धनवान करें ऊँचे कुल की सेवकाई है ।।
चार वेद बिन पढ़े, नाम को चौबों की चौबाई है ।
उलटा चलन चला दुनिया में सबकी मति बौराई है ।।"

आज के ब्राह्मण ने वेदों के पठन-पाठन को विस्मृत कर दिया है, और स्वयं गर्त्त में गिर कर आर्यावर्त्त को भी गर्त में गिरा दिया है-

'धन्य-धन्य कलियुग के ब्राह्मण, नमस्कार तुमको धन-धन ।
अपार लीला, तुमारी करूं कौन विधि मैं बरनन ।।
अनन्त रूप तुमने धरे तुम ऐसे हो मायाधारी ।
कहीं पे दाता बने तुम कहीं बने हो भीखारी ।।
कहीं कराते अपनी पूजा कहीं बने तुम पूजारी ।
कहीं पे कामी बने औ कहीं बने तुम ब्रह्मचारी ।
बन के वामी तुम कहीं पीने लगे हरदम शराब,
मीन मुद्रा मांस के खाने में बतलाया शबाब[1] ।
भाट बन के तुम कहीं करने लगे झूठी बकाब ,
ग्रन्थ पाखंडी बना भारत की की मिट्टी ख़राब ।
पाग बांध कहीं बन गये ओझा, माथे लगा लाल चन्दन ।
अपार लीला, तुमारी करूं कौन विधि मैं बरनन ।।"

वैरागियों की पोल इन्होंने इस प्रकार खोली है -

---

1. शबाब = उत्तम, तारुण्य ।

'घेर लिया आके आलस ने,देखो तुमें दिखाते हैं।
वैरागी भारत में बढ़ गये, भीख मांग कर खाते हैं ।।

विवाह शादी के मौक़े पर व्यर्थ ख़र्च करने वालों को भी आपने फटकारा है -

"बुरा वक़्त आया कलियुग का, हुये लोग हैं सौदाई[1] ।
विचार नहीं करते हैं समय का, लीक पीटते हैं भाई ।।
बड़ी धूम से बरात साजी, रक़म रक़म की फुलवारी ।
लगे भंगियों को वो लुटाने जमा जो थी जी से प्यारी ।।
भांड औ नाऊ ओढ़ दुशाले, इतराते फिरते बारी ।
दश हज़ार की आतिशबाजी, फूंक वो दी छिन में सारी ।।
जो थे लालची वो खाने की, करते फिरते बड़ी बड़ाई ।
विचार नहीं करते हैं समय का, लीक पीटते हैं भाई ।।"

"करते फिरते बड़ी बड़ाई" इस पद में दो मात्राएँ बढ़ी हुई हैं, खड़ी रंगत की लय का भी यहां विलय हो गया है। खड़ी रंगत (ताटंक छन्द) के पद के अन्त में 'यगण' प्रयुक्त नहीं होता है।

'कचहरी वालों का पोलखाता' प्रस्तुत है -

'ना पावें तो भूकें, काटें, भरे हैं क़ातिल क़हरी[2] के ।
टुकड़ा देने से दुम हिलाते, कूकुर कला कचहरी के ।।
कान फटफटाते हैं हरदम, रह के बीच मसहरी के ।
दांत में इनके ख़ून लग गया, ग़ज़ब बुझाये ज़हरी के ।।
मुंह जो लगावो मुंह को चाटें, गहक हैं जमा गहरी के ।
पंजे में हर एक को फंसाते, फिरें किनारे नहरी के ।।
बिना दिये कुछ सुनें न कानों, मानो पूत हैं बहरी के ।
टुकड़ा देने से दुम हिलाते, कूकुर कला कचहरी के ।।'

सत्य सदैव सत्य रहता है कागज़ के फूलों से खुशबू नहीं आती, कभी ढ़ोंग से वास्तविकता नहीं बदलती-

'कुलाल [3] कब हो सकता बुलबुल, चाहे तेज़ ज़बान करे ।
खर तुरंग नहिं बन सकता है, चाहे जो सामान करे ।।

---

1. सौदाई = पागल ।
2. कहरी = जुल्म करने वाला ।
3. कुलाल = उल्लू, वन मुर्गा ।

धान कभी गन्दुम[1] नहिं होता, बोया चाहे किसान करे ।
पीतल नहिं बन सकता सोना, लाख जतन सुलतान करे ।।
फ़ाज़िल[2] नहिं हो सकता जाहिल[3], बका चहे अज्ञान करे ।
बैल नहीं हो सकता हाथी, नाहक शेखी शान करे ।।
भान न तारा हो सके, तारा हो नहिं भान ।
मरघट मन्दिर ना बने, मन्दिर नहीं मसान ।।
यती नहीं बगुला होता चहे, नदी तीर इस्नान करे ।
खर तुरंग नहिं बन सकता है, चाहे जो सामान करे ।।'

इस समय मन्दिर व्यभिचार के अड्डे बन गये हैं, यह सब पाप और पाखण्ड के प्रतीक हैं -

"क्या ठाकुर को सामवेद का, नहिं भाता है देखो गान ।
जो ठाकुर जी को सुनवाते, आप पुतरियों की ये तान ।।"

इन्होंने नीति-परक काव्य की भी रचना की है, कितने लोगों की क़सम झूठी होती है? इस विषय पर आपका कथन है:-

"सुनो लगा कर कान सज्जनो, करता हूं सच्चे इज़हार[4] ।
बीच जगत के ग्यारह प्राणी, क़सम का इनकी नहिं इतबार[5] ।।
मिले जो बैरी क़सम खाय के, तो उससे रहना हुशियार ।
एतबार उसका करने से, तुरन्त जान से डाले मार ।।
इसी तरह से बुध बाजीगर, क़सम खाय जो बारम्बार ।
कभी करे ना प्रतीति उसकी, जो बैठा हो चौकीदार ।।
क़सम खाय जो बनिया तोले, तो पूरा नहिं तोले यार ।
बीच जगत के ग्यारह प्राणी, क़सम का इनकी नहिं इतबार ।।
ज्वारी की भी क़संम न सच्ची, पीर मर्द[6] यों कहें पुकार ।
कभी खेलना तजे न जूआ, धन दौलत दे जुयें में हार ।।
चोर को सच्चा कभी न समझे क़सम खाय चहे करे इक़रार ।
क़सम को उसकी कभी न माने भली चहे जो साहूकार ।।

---

1. गन्दुम = गूहूँ ।
2. फ़ाज़िल = विद्वान् ।
3. जाहिल = गँवार, अपढ़ ।
4. इज़हार = प्रकट करना ।
5. इतबार, एतबार = विश्वास ।
6. पीरमर्द = बुजुर्ग, वयोवृद्ध ।

कभी करे न प्रतीति उसकी, जिसे लोग सबे कहें लबार ।
बीच जगत् के ग्यारह प्राणी, क़सम का इनकी नहिं इतबार ।।
बटमारों की क़सम न मानो, जो बांधे भाला तलवार ।
धोखा दे सब धन को लूटे, फिर सीने में जड़े कटार ।।
रोगी की भी क़सम न सच्ची, सत्य बुजुर्गो की गुफ़्तार[1] ।
औसर के पाने से रोगी, जो चाहे कर ले आहार ।।
ऋणी की सच्ची क़सम न समझो, जो लेता है द्रव्य उधार ।
बीच जगत के ग्यारह प्राणी, क़सम का इनकी नहिं इतबार ।।
नगर-नार का यार न सच्चा, क़सम खाय चहे लाख हज़ार ।
कभी न छोड़े विषय का करना, चहे पड़े सरपर पैज़ार[2] ।।
अनघैरी[3] जो घर में आवे क़सम खाय समझो मक्कार ।
प्रतीति उसकी कभी न करना, चाहे बतावे हित का प्यार ।।
'प्रभु दयाल' यों कहें 'बिलाकट' यह सारा है सच्चा हाल ।
बीच जगत में ग्यारह प्राणी, क़सम का इनकी नहिं इतबार ।।

चुन्नी गुरु -

इनका जन्म सन् 1870 ई. के आस-पास हुआ, इनके पिता लाठीमोहाल स्थित हनुमान जी के मन्दिर के व्यवस्थापक थे। यह भी धार्मिक प्रवृत्ति के कर्मकाण्डी पण्डित थे, इनका पूरा नाम चुन्नीलाल शुक्ल था, "छाप" में यह अपना नाम "चुन्नी मिस्सर" भी लिखते थे। इन्होंने पं. प्रभुदयाल जी से काव्य-शिक्षा ग्रहण की थी। यह अच्छे लेखक और गायक थे।

'सन् 1924 में कलकत्ता नगर में इनका जगन्नाथ ब्रह्मचारी (जो कि आगरा वालों की परम्परा में थे) से गाना हुआ था, उसमें इन्होंने जगन्नाथ ब्रह्मचारी को शिकस्त दी थी। तब से कलकत्ते के मारवाडियों में इनका सम्मान अधिक हो गया था। ....वहां इन्होंने गोविन्दराम आदि को शागिर्द किया। एक बार मंगलगिरि जी, जो बाबा रामकरणगिरि जी के शागिर्द शम्भू पुरी जी के शिष्य थे, उन से चुन्नी गुरु का गाना हुआ, उसमें चुन्नी गुरू को सफलता मिली। .... इसी प्रकार देहली, भिवानी, हरिद्वार आदि में भी चुन्नी गुरू ने दंगल जीते....... एक दफा लखनऊ वाले हाफ़िज़ से गाना हुआ, यह शायद सन् 1916-17 की बात है। उस समय जो ख़याल हाफ़िज़ से लड़े थे, वे बहुत ही मज़ेदार ख़याल गुरू ने लिखे हैं, जिनमें हाफ़िज़ को रात भर नचाया किये।'[4]

---

1. गुफ्तार = बात, बात-चीत ।
2. पैज़ार = जूता ।
3. अनघैरी = अनाहूत, अनिमन्त्रित ।
4. स्वामी नारायणानन्द, लावनी का इतिहास, पृष्ठ 235-237

बाबू किशोरचन्द्र कपूर इन पर बड़ी श्रद्धा रखते थे, उनके शिष्यों में कालिकाप्रसाद 'सुन्दर',लछमन और बाबूलाल आदि प्रमुख थे। स्वामी नारायणानन्द सरस्वती 'अख़्तर' इनके हमज़बां, हमदम और हमसखुन थे।

यह सन् 1943 ई. में गोलोकवासी हुये। इनकी भाषा हिन्दी खड़ी बोली है। शैली सरस और मधुर है। इन्होंने उपदेश-परक और भक्तिपरक लावनियाँ लिखी हैं। आपकी रचनाओं में नाद-सौन्दर्य दर्शनीय है-

"लहरायं जटन में गंग ।
गौरि संग अरधंग अंग लपटे भुजंग शिव पिये भंग ।
सोहे, सोहे चन्द्रमा भाल, हैं लोचन लाल विशाल ।
डाले, डाले मुण्ड गल माल, इक कर में लिये कपाल ।।
डिमिक-डिमिक डिम डमरू बजावत ।
गावत राग अमित छवि छावत ।।
देखि-देखि सुर-मुनि सुख पावत, बाजत ताल मृदंग ।
लहरायं जटन में गंग ।।'

विष्णु भगवान की माया अपरम्पार है, जिसने सम्पूर्ण विश्व को अपने जाल में फंसा लिया है-

"देखा सब हाल खुलासा है ।
दुनिया ये अजब तमाशा है ।।
आनन्द कन्द सच्चिदानन्द चेटकी ब्रह्म बम भोला है ।
चर-अचर जीव पुतली पुतले, पृथ्वी-आकाश का झोला है ।।
है चन्द चांदनी रातों में, दिन में सूरज का गोला है ।
जड़ वृक्ष फूल-फल देते हैं, जादू का पिटारा खोला है ।।
ना निकल सके कोई इससे, माया ने सबको फांसा है ।
दुनिया ये अजब तमाशा है ।।

"दाता और सूम-सम्वाद" में आपने रोचक ढंग से सूम को दान की प्रेरणा दी है-

'दाता ने सूम से कहा-तू कुछ करनी कर,
मेरी जान, कपट-पट दे हिरदे के खोल ।
मर जावेगा, पड़े रहेंगे सब चौखूंटे गोल ।

माया तेरी यह नहीं संग जाने की,
मेरी जान, जमा जो करी जोड़ कर के ।
किसी रोज़ जायेगा यहां की यहीं छोड़ कर के ।
जिस वक़्त मौत का हलकारा आयेगा ,
मेरी जान, गला तेरा मरोड़ कर के
जान तेरी लेवेगा दम में नस-नस को तोड़ करके ।
इससे तो धन को लुटा दे जीते-जीते ।
पीछे रहने में होंगे बहुत फजीते ।।
जो करना है अब कर ले बड़े सुभीते ।
इक दिन जावेगा दोनों हाथ कर रीते ।।
मेरी जान झुकाये सर क्यों? मुख से बोल ।
मर जावेगा, पड़े रहेंगे सब चौखूटे गोल ।।'

'इनका शब्द-चमत्कार भी लावनी साहित्य के क्षेत्र में प्रशंसनीय माना गया है।'[1] यमक अलंकार का उदाहरण प्रस्तुत है-

'जान की है तकरार नार, नहिं की मैं बात अजान की है ।
जान दूंगा, जानकी मालिक इस जी जान की है ।।'

स्वामी नारायणानन्द सरस्वती -

'अन्तस्तल में हैं गूंज रहे जिनके स्वर ।
श्री स्वामी नारायणानन्द जी 'अख़्तर' ।।
संस्कृत, हिन्दी, उर्दू भाषा के माहिर ।
कवि, सम्पादक, लावणीकार जग ज़ाहिर ।।
जिनने कि 'सन्त सन्देश' 'कवीन्द्र' निकाला ।
रंगत ख़याल में जिनका ठाठ निराला ।।
बोली स्वतन्त्रता जिनके जय-गानों में ।
लघुता दिखलाई देती उपमानों में ।।'[2]

---

1. द्रष्टव्य - डा.मानव, हिन्दी लावनी साहित्य, पृष्ठ 17
2. श्रीनिधि द्विवेदी, साहित्याचार्य, प्रताप, कानपुर, 20 जून, 1955 ई.

इस पद्‌य में स्वामी जी का मूल परिचय समाया हुआ है। इनका जन्म बैशाख सुदि 12 बुधवार, सम्वत् 1940 विक्रमी (सन् 1883)में ब्राह्मण वंश में पीलीभीत में हुआ था, इनके पिता का नाम पं. श्रीकृष्ण तिवारी था। इनका घराना सम्पन्न था, इनके छोटे भाई बाबू मदनगोपाल, मुख़्तार, चाहे शुक्लान, मुरादाबाद में रहते थे। इनके एक भतीजे श्री रघुवीर शरण तिवारी, थाणे (बम्बई के पास) में रहते हैं, वहां इनका अपना प्रेस और अपना मकान है। यह वहां म्युनिस्पिल कमिश्नर भी रह चुके हैं। स्वामी जी के सुपुत्र श्री रामस्वरूप तिवारी अध्यापक थे।

स्वामी जी का पूर्व नाम लक्ष्मीनारायण था, विधाता ने इनके जन्म-नक्षत्र में इन्हें काव्य-शक्ति प्रदान की थी। यह 15 वर्ष की अवस्था में ही कविता करने लगे थे। इनके आदि काव्य-गुरु पं. गोपीनाथ, बरेली वाले थे। इस सम्बन्ध में स्वामी जी ने स्वयं लिखा है -

'मैने पं. गोपीनाथ जी बरेली वालों को अपना गुरु बनाया और उनकी कृपा से मैंने इस विषय का काफी ज्ञान प्राप्त किया ।'[1]

स्वामी जी ने स्वाध्याय के द्वारा हिन्दी, संस्कृत, उर्दू और फ़ारसी का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था, यह इन सभी भाषाओं में रचना करने में सक्षम थे।

लगभग 28 वर्ष की अवस्था में इन्होंने विषयों से विरक्त होकर संन्यास ले लिया और 'लक्ष्मी नारायण' का पूर्व पद त्याग दिया। नारायण ही आनन्द है और आनन्द ही नारायण है, अतः इन्होंने नारायण के प्रतीक आनन्द की प्राप्ति का लक्ष्य स्थिर कर उसकी प्राप्ति का मार्ग काव्य को बनाया, क्योंकि इसमें विद्यमान रस ही 'रसो वै सः' है।

लावनी के शौक़ में भ्रमण करते समय इनकी भेंट खतौली ज़िला मुज़फ्फरनगर निवासी उस्ताद नत्थासिंह 'तालिब' से हुई, यह सिद्ध और प्रसिद्ध पुरुष थे, इनका संन्यास का नाम 'अनन्तगिरि' था। इनके व्यक्तित्व और कृतित्व से प्रभावित होकर स्वामी नारायणानन्द ने इन्हें अपना गुरु बना लिया।

प्रमाणस्वरूप स्वामी जी का यह पद्य प्रस्तुत है -

'मम मोद महत् पद-पंकज वद अवधेशम् ।
मम मानस पूजा स्वीकृत हर मुख्येशम् ।।
मम मर्यादा-पति लम्बोदर विघ्नेशम् ।
मम मग्न चित्त गुरुवर 'अनन्त' मुनिवेषम्।।
मम मुक्त कृतं 'नारायण' सत् उपदेशम् ।
मम मंगल कुरु कुरु त्र्यम्बक त्रिगुण महेशम्।।'[2]

---

1. स्वामी नारायणानन्द, लावनी का इतिहास, पृष्ठ 344
2. वही, पृष्ठ 23

स्वामी जी सन् 1911 में लावनी-गायन का शौक पूरा करने के लिये ही कानपुर आये थे। कानपुर वालों ने आपका बड़ा सम्मान किया। जैन समाज में अग्रगण्य भैया फूलचन्द जैन के अनुरोध से फिर आप वहीं उन्हीं की लाठीमोहाल स्थित लक्ष्मणदास धर्मशाला में रहने लगे ।

उर्दू शायरी में इनका तखल्लुस 'अख़्तर' था, शेरो-शायरी में ये इसे ही प्रयुक्त करते थे। 'कानपुर के लिये आपके दिल में बड़ा प्यार है, तभी आपने कहा है:

"क्यों न 'अख़्तर' शेर कहने के लिये मज़बूर हो,
क़द्र दानी इस कदर जब कानपुर वालों में है ।"[1]

स्वामी जी की वेश-भूषा सीधी-सादी थी, वह सदा खादी ही पहनते थे। वह वैदिक विचारधारा से अनुप्राणित, राष्ट्रप्रेमी, अलमस्त, स्वाभिमानी, उदारचेता, परोपकार-परायण, भावुक और सहृदय थे। यद्यपि वह गौरवर्ण थे पर गोरों के विरूद्ध थे, विरागी थे पर देशानुरागी थे, संन्यासी थे पर मातृभूमि की मुक्ति के लिये कर्म-रत थे। उनके काव्य की ऊर्जस्विता और वर्चस्विता से निर्जीव भी सजीव हो उठते थे।

"उनकी वाणी में वीणा-पाणि की वीणा की झंकृति और भवानी की हुंकृति थी। कल्प-विकल्प रहित संकल्प, अदम्य उत्साह, दृढ़ विश्वास एवं जीवन्तता तथा प्रगति के दर्शन हमें उनके काव्य में सर्वत्र मिलते हैं। उनका काव्य भारतीय अस्मिता और तेजोभावना का अग्रेगामी वैनतेय है, उसमें कहीं भी कुण्ठा या संत्रास का आभास नहीं है,उनकी जागरूक चेतना अभिशप्त पतझड़ के आयामों को बेंध कर वरदायी वसन्त के विपुल वैभव में बिहार करती रही है। सान्ध्य समय की विभीषिका उनके शून्य हृदय में अपना साम्राज्य स्थापित न कर सकी। वह सदैव स्वर्णिम उषा काल के उदय के प्रति आशान्वित रहे और उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से पराधीनता के पाश में जकड़े पड़े भारतीय जन-मानस में नव जागरण, नवोन्मेष, नवोत्साह एवं नवीन नैतिक, राजनीतिक तथा आध्यात्मिक भावोर्मियों का सुखद संचार किया।"[2]

इनकी लावनियों का संग्रह 'लावण्य लता' नाम से सन् 1922 ई. में प्रकाशित हुआ था। यह इनकी प्रतिनिधि कृति है। आचार्य सनेही जी के शब्दों में- 'स्वामी जी उन प्रतिभाशाली व्यक्तियों में से हैं जो देश व समाज का उपकार कर सकते हैं। . . . . . .

---

1. सत्यव्रत शर्मा 'अजेय', स्वामी नारायणानन्द, दैनिक विश्व मित्र, कानपुर, 2 जून, 1952 ई. ।

2. सुधीर कुमार शर्मा, स्वामी नारायणानन्द सरस्वती : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृष्ठ 2

........आपने अपनी प्रतिभा का सदुपयोग करके ऐसे ख़यालों की रचना की जो नीति, धर्म और ज्ञान, वैराग्य, भक्ति सम्बन्धी विविध विषयों से पूर्ण हैं।.........वर्णन-शैली बड़ी ही मनोहारिणी और चित्ताकर्षक है।'[1]

स्वामी जी तुर्रा पक्ष के समर्थक होते हुये भी बिना किसी भेद-भाव के कलग़ी पक्ष को भी समान मानते थे। इनका स्वर सुमधुर और सधा हुआ था, परन्तु सन् 1920 ई. से इन्होंने चंग बजाकर लावनी-गाना छोड़ दिया था। कानपुर के लावणीकारों में मियां मौलाई, पं. गोरी शंकर, आनन्दी शायर, चुन्नी गुरू, पं. मणिलाल, भगाने बाबू, शंकर स्वामी, बैजनाथ बाबू और चिरंजीलाल पटवा आदि से आपका प्रगाढ़ सान्निध्य रहा है। एक बार सन् 1916 में सवाई सिंह के अहाते में हाफ़िज़ लखनवी से आपका गाना लड़ा था, जिसमें आपको सफलता मिली थी। कानपुर के अतिरिक्त पीलीभीत, अयोध्या, देवबन्द, आगरा और हरिद्वार में भी आपके लावनी गायन की धूम थी।

'आचार्य सनेही का सत्संग होने से आपका ध्यान ग़ज़ल, घनाक्षरी आदि की ओर भी गया।'[2]

सन् 1921 में सनेही जी ने कतिपय कवियों की पुरस्कृत राष्ट्रीय रचनाओं का संकलन 'संजीवनी' नाम से स्वयं प्रकाशित कराया था। इसमें स्वामी जी का 'स्वदेशी गान' तथा 'अहिंसा-संग्राम' नामक दो रचनाएं संकलित हैं। 'स्वदेशी गान' बहुत प्रसिद्ध हुआ, इसकी टेक है-

'जियें तो बदन पर स्वदेशी वसन हो ।
मरें भी अगर तो स्वदेशी कफन हो ।।'

जिस प्रकार 'रसलीन' के 'अमिय हलाहल मद भरे' दोहे को भूल से 'बिहारी' का मान लिया जाता है, उसी प्रकार यह पंक्तियां भी भ्रान्ति की शिकार हो गईं। **डा. अरविन्द जोशी** ने अपने शोध-प्रबन्ध में इनका रचयिता कवि भवानीप्रसाद गुप्त, विप्लवगान, क्रान्तिगीत-संग्रह, प्रथम संस्करण, 1940 ई. बताया है।'[3] वास्तव में इन पंक्तियों के रचयिता स्वामी जी ही हैं, क्यों कि उनकी यह रचना सन् 21 में प्रकाशित हो चुकी थी।

'कानपुर में सनेही जी और स्वामी जी ने हिन्दुस्तानी धारा का प्रसार किया।'[4] स्वामी जी हिन्दी-उर्दू मिश्रित खड़ी बोली के पक्षपाती थे। सन् 1923 में इन्होंने अपने प्रयास से कानपुर में हुये हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन के अन्तर्गत अखिल भारतीय कवि-सम्मेलन का लक्ष्मण दास धर्मशाला में आयोजन कराया था। इसकी अध्यक्षता महाकवि जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' ने की थी। बस तभी से भारतवर्ष में कवि-सम्मेलनों की नींव पड़ी।

---

1. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', (भूमिका), लावण्य-लता, पृष्ठ 2
2. 'अजेय', स्वामी नारायणानन्द (लेख), दैनिक विश्वमित्र, कानपुर, 2 जून, 1952 ई. ।
3. द्रष्टव्य - गांधी विचारधारा का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव, पृष्ठ 238
4. अजेय, कविवर स्वामी नारायणानन्द जी प्रताप, कानपुर, 6 अक्टूबर, 1952 ई.।

सम्वत् 1981 विक्रमी में इन्होंने कानपुर से कविता का मासिक पत्र 'कवीन्द्र' निकाला था, जिसके सहायक सम्पादक महाकवि अनूप शर्मा थे। एवं सम्वत् 1992 वि. में गया जी से धर्म एवं साहित्य समन्वित मासिक 'सन्त सन्देश' निकाला, जिस पर गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के कुलपति स्व. नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ ने अपनी सम्मति व्यक्त करते हुये कहा था कि 'सन्त नारायणानन्द सरस्वती द्वारा संचालित 'सन्तसन्देश' के उद्देश्य नितान्त जन-हितकारी हैं।'[1] दोनों ही पत्रों में उच्च कोटि के साहित्यकारों की रचनाएं प्रकाशित होती थीं। अनूप जी की भाँति हितैषी जी भी 'श्रद्धेय स्वामी नारायणानन्द जी सरस्वती 'अख़्तर' को गुरुजनों की भाँति मानते थे।'[2]

श्रद्धेय पं. बनारसीदास जी चतुर्वेदी स्वामी जी पर हार्दिक श्रद्धा रखते हैं, सन् 51 में उन्होंने मुझे एक पत्र इस आशय से लिखा था कि मैं स्वामी जी से 'लावनी का इतिहास' लिखने का अनुरोध करूँ, वे लिखते हैं -

टीकम गढ़, वी.पी.
4.7.51

प्रियवर वन्दे।

स्वामी नारायणानन्द जी को मैं श्रद्धा की दृष्टि से देखता हूँ। उनकी उस कविता की ध्वनि 'अपने को आप गँवा बैठा।' अब भी मेरे कानों में गूंज रही है, जो उन्होंने ना.प्र.सभा, आगरे में पढ़ी थी। 'विशाल भारत' में उनका एक विस्तृत लेख भी छपा था।

संभवतः अगस्त या सितम्बर में मुझे कानपुर पहुँचना होगा, गणेश-स्मृतिग्रन्थ के कार्य के लिये, तभी मैं स्वामी जी की सेवा में अवश्य उपस्थित होऊँगा। आप उनके बारे में जो भी सेवा ले सकें लें। वयोवृद्धों के चरण स्पर्श कर के उनका आशीर्वाद लेने में मेरा दृढ़ विश्वास है।

खयाल गो सम्प्रदाय के इतिहास लिखाने की ज़रूरत है। कृपया स्वामी जी को मेरा प्रणाम कहिये। उनके दर्शन मुझे अवश्य करने हैं।

विनीत-
(बनारसीदास)

मैं उस समय स्वामी जी के पास कानपुर में ही रहता था, इस पत्र के पश्चात् ही स्वामी जी ने 'लावनी का इतिहास' लिखना आरम्भ किया था।

स्वामी जी लावनी-साहित्य के विद्वान् एवं काव्य-शास्त्र के मर्मज्ञ थे। हिन्दी साहित्य को आपने अनेक सुयोग्य एवं सुप्रसिद्ध साहित्यकार दिये हैं।

---

1. सन्त सन्देश, गया, जनवरी, 1936 ई.।
2. सत्यव्रत शर्मा 'अजेय', महामनीषी जगदम्बाप्रसाद 'हितैषी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व', पृष्ठ 14

'आलोकवृन्त', 'चांदनी' तथा 'सौ गुलाब खिले' आदि के रचयिता श्री गुलाब खंडेलवाल काव्य के क्षेत्र में आपके पटु शिष्य हैं,- 'ग्यारह वर्ष की अवस्था में ही उनकी विलक्षण प्रतिभा से प्रभावित होकर स्वामी नारायणानन्द सरस्वती ने उन्हें 'रोला' छन्द सिखाया और 'प्रियप्रवास' पढ़ाया, तब से वे काव्य-रचना करने लगे।'[1] आज कल आप चौक, प्रतापगढ़ में रहते हैं।

गद्य के क्षेत्र में 'बहती रहे नदिया' तथा 'अदृश्य रेखाएं' आदि अनेक उपन्यास तथा कहानी-संकलनों के रचयिता श्री श्रीराम शर्मा 'राम' आपके सुयोग्य शिष्य हैं, आज कल आप मेरठ में रहते हैं। उनका कथन है कि-

'मेरा समूचा जीवन श्रद्धेय स्वामी नारायणानन्द जी का ऋणी है।'[2]

तीसरा शिष्य मैं स्वयं को मानता हूं। 'नारद मद मर्दन', 'मीरा' और 'कुणाल' आदि लगभग 16 पुस्तकें मेरी अब तक प्रकाशित हो चुकी हैं। मैंने- "सन् 1949 से स्वामी श्री नारायणानन्द जी सरस्वती को गुरु मान कर काव्य-रचना प्रारम्भ की।'[3] उस समय स्वामी जी श्री देवीकुंड संस्कृत महाविद्यालय, देवबन्द के मुख्याधिष्ठाता थे और मैं वहाँ मध्यमा कक्षा में पढ़ता था। स्वामी जी के सम्पर्क में आने पर मैंने भी बहुत सी लावनियां लिखी है, 'लावनी का इतिहास' में अपने आशीर्वाद से अभिषिक्त करते हुये मेरे सम्बन्ध में इन्होंने लिखा है- "मेरे निकट आने पर इन्हें भी लावनी साहित्य से स्नेह हो गया है। इधर इन्होंने पचासों लावनियां लिखीं, लावनी साहित्य पर कुछ लेख भी लिखे, जैसे- 'हिन्दी कवियों में लावनी-प्रेम', 'हिन्दी साहित्य और लावनी', 'लावनी का विस्तृत क्षेत्र' आदि । बाल्यकाल में इनकी कविता पर प्रसन्न होकर संस्कृत के एक कवि (पं. वासुदेव शास्त्री) ने इनके प्रति आशीर्वादात्मक यह श्लोक लिखा था -

सत्यमस्य प्रियं यस्मात्, नाम्ना सत्यव्रतस्ततः ।
ध्रुवो भवतु बालोऽयमथ चास्तु प्रियव्रतः ।।"[4]

---

1. डा. व्रजमोहन पांडेय 'नलिन' आदि, नवकल्प, गया, 21 अक्टूबर, 1976 का विशेषांक, पृष्ठ 7
2. श्रीराम शर्मा 'राम', मेरठ के दिनांक 17-1-1983 के हस्तलिखित पत्र का अंश।
3. शान्तिस्वरूप 'कुसुम', रजत-रेणु, नवम्बर 1957 का संस्करण, पृष्ठ 5।
4. स्वामी नारायणानन्द सरस्वती, लावनी का इतिहास, पृष्ठ 340

स्वामी जी के सम्बन्ध में उपलब्ध शोध-सामग्री का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

1. स्वामी नारायणानन्द, ले.सत्यव्रत शर्मा 'अजेय', दैनिक विश्वमित्र, कानपुर, सोमवार, 2 जून 1952 ई.। इसमें स्वामी जी की प्रकाशित 7 पुस्तकों का उल्लेख है।

2. कविवर स्वामी नारायणानन्द, ले.सत्यव्रत शर्मा 'अजेय', साप्ताहिक प्रताप, कानपुर, 6 अक्टूबर, 1952 ई. इस लेख में स्वामी जी की काव्य-शैलियों का विवेचन किया गया है।

3. ब्रह्मलीन स्वामी नारायणानन्द जी, लेखक सत्यव्रत शर्मा 'अजेय' साप्ताहिक प्रताप, कानपुर, 27 जून, 1955 ई.
इस लेख में दिनांक 11 नवम्बर, सन् 1954 ई. को पीलीभीत में 'नारायण' के नारायण में लीन हो जाने पर श्री सनेही जी, श्री श्रीनिधि द्विवेदी और श्री प्रणयेश शुक्ल आदि की काव्य-मय शोक-श्रद्धांजलियां स्वामी जी के जीवन परिचय के साथ प्रस्तुत की हैं।

4. जब मैं उनके सम्पर्क में आया, ले.सत्यव्रत शर्मा 'अजेय' साप्ताहिक प्रताप, कानपुर, 12 नवम्बर 1956 ई.इस लेख में यह प्रदर्शित किया है कि किस प्रकार मैंने स्वामी जी से साहित्यिक दीक्षा प्राप्त की।

5. अलमस्तकवि स्वामी नारायणानंद 'अख़्तर',ले.सत्यव्रत शर्मा 'अजेय', राष्ट्रभाषा सन्देश, प्रयाग 31 जनवरी सन् 1979 ई.इस लेख में स्वामी जी की मस्ती और चिन्तन-पक्ष को उजागर करते हुये उनकी साहित्य, समाज और स्वदेश की सेवा पर प्रकाश डाला है।

इसी प्रकार पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' सन् 51 में डा. सोमप्रकाश 'सुधेश' ने 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' सन् 55 में तथा डा. उपेन्द्र ने दैनिक 'जागरण', कानपुर के रजत जयन्ती विशेषांक सन् 72 में स्वामी जी के साहित्यिक जीवन पर सार-गर्भित लेख लिखे हैं, जिनमें उनकी भाषा-शैली पर सोदाहरण विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

श्री गणेश शंकर शुक्ल 'बन्धु' ने 'पीलीभीत का साहित्यिक इतिहास' में पृष्ठ 18, 19, 20, पर स्वामी जी का सचित्र परिचय छापा है। उनकी दृष्टि में 'स्वामी जी ने लावनियों में हिन्दी भाषा का प्रयोग करके हिन्दी के साथ बड़ा उपकार किया है।'[1]

हिन्दी साहित्य में 'संस्मरण' शैली के अद्‌भुत शिल्पी एवं 'रिपोर्ताज' शैली के जनक सुप्रसिद्ध लेखक एवं पत्रकार डा. कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ने अपने दिनांक 30.12.82 के पत्र द्वारा मुझे सूचित किया है कि ' स्वामी नारायणानन्द जी का अपार स्नेह मुझे मिला है। उनके द्वारा रचित कविताओं की संख्या 4000 से भी अधिक है, उनकी जन्म-शताब्दी पर उनका प्रकाशन ही उनका सच्चा श्राद्ध है।'

विद्याभास्कर श्री सुधीरकुमार शर्मा ने स्वामी जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर शोध-प्रबन्ध लिखा है, जिसमें 6 अध्याय हैं। लेखक ने इस कृति में कवि के काव्य के अन्तरंग पक्ष को उजागर करते हुये कविता की अन्तरात्मा में तिरोहित ध्वनि के व्यंग्यार्थ लावण्य को अभिव्यक्ति प्रदान की है एवं स्वामी जी के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को सफलता पूर्वक उजागर किया है। इसी प्रकार लावनी-साहित्य पर शोधकर्त्ता डा. पुण्यमचन्द 'मानव' तथा कल्याणप्रसाद वर्मा ने अपने शोध-प्रबन्धों में स्वामी जी का उल्लेख कर उनके 'लावनी का इतिहास' को प्रामाणिक सन्दर्भ ग्रन्थ माना है और प्रेरणा ग्रहण की है।

'लावण्य लता' के अतिरिक्त असहयोग का अगड़ बम, तराने हिन्द, सरयू रहस्य, रंगीली होली, गायत्री उपासना प्रकाश, लावनी का इतिहास तथा सन्तोषी सुदामा आपकी प्रकाशित कृतियां हैं, जिनमें से अब 3 ही उपलब्ध हैं। आपकी अप्रकाशित लावनियों का विशाल संग्रह श्री बाबूराम तुर्रा पक्ष के लावनीकार के पास बरेली में सुरक्षित है।

राजस्थान के शिक्षा-विभाग के डायरेक्टर ने ता. 25.11.52 के आदेश संख्या 3 डी.बी.जी.सी. एन.-15(1)-10434 के द्वारा इनसे सम्पादित ' सन्तोषी-सुदामा' को हाई स्कूल के पाठ्यक्रम में तथा 'लावनी का इतिहास' को पब्लिक लायब्रेरियों के लिये स्वीकृत किया है।

परतन्त्रता-काल में उन्होंने कांग्रेस-आन्दोलनों में सक्रिय भाग लिया था, परिणामस्वरूप कई बार वे 'श्री कृष्ण जी के जन्म-गृह' में भी रहे थे। उस समय अंग्रेजों को उन्होंने फटकारते हुये कहा था-

---

1. पीलीभीत का साहित्यिक इतिहास, पृष्ठ 19

'हमारी नस-नस का खून तूने, बड़ी सफाई के साथ चूसा ।
है कौन सी पालिसी तेरी वो, घुला कि जिसमें ज़हर नहीं है ।।'

उनकी दृष्टि में देश-धर्म से बढ़ कर अन्य कोई धर्म नहीं था -

'देश-धर्म पर जिसने निज तन, मन, धन अर्पण किया नहीं।
जीवित नहीं, मृतक है वह नर, जिया भी तो कुछ जिया नहीं।।'[1]

ज्ञान के समान पवित्र कोई अन्य वस्तु इस सृष्टि में नहीं है, एवं सच्चा ज्ञान अकर्म से नहीं, अपितु निष्काम कर्म से ही सम्भव है -

'कर्मों से ज्ञान हो यही वेद कहते हैं ।
जब ज्ञान हुआ फिर कर्म नहीं रहते हैं।।
जैसे वृक्षों पर प्रथम पुष्प आते हैं ।
फल प्रगट होंय तब पुष्प सूख जाते हैं।।
ऐसे ही मनुज कर्मों से ज्ञान पाते हैं।
जब ज्ञान हुआ कर्मों को बिसराते हैं ।।
कर्मों का संग अज्ञानी जन गहते हैं ।
जब ज्ञान हुआ फिर कर्म नहीं रहते हैं।।

स्वामी जी की कुछ लावनियाँ श्री बैजनाथ जिल्दसाज, ज्वालापुर के पास भी एक रजिस्टर में सुरक्षित हैं, उनमें से एक लावनी का प्रथम चौक यहाँ प्रस्तुत है, इस रचना में श्रीकृष्ण जी किसी व्रजांगना से बलपूर्वक 'दान' मांग रहे हैं, वह कृष्ण जी के इस कृत्य का निषेध करती हुई कहती है -

'मग रोके हो खड़े कान्ह काहे, मो से टकराते ।
बरजोरी कर झकझोरी, बहियां मोरी क्यों मरोरी, यौवन मद-माते।।
गैल हमारी छोड़ साँवरे, जाना हमको दूर,
करो मत गागर मोरी चूर ।
शील स्वभाव नन्द का छोना, सो हमको मंजूर ।।
बार-बार बलि ज़ाउँ लला काहे, मो से इतराते ।
बरजोरी कर झकझोरी, बहियां मोरी क्यों मरोरी, यौवन मद-माते।।'

स्वामी जी ने अनेक कला-कलित, ललित लावनियाँ लिखी हैं, जिनका मूल्यांकन पंचम अध्याय के अन्तर्गत किया जायगा, यहां बानगी के रूप में कतिपय टेकें प्रस्तुत हैं।

---

1. लावनी का इतिहास, पृष्ठ 352

गंगा-यमुना के समान ही सरजू नदी भी भारतीय जन-मानस में महनीय है। स्वामी जी जब अयोध्या जी में रहते थे तब इन्होंने **'माया-विलक्षण'** नाम से अयोध्या सम्बन्धी बहुत-सी रचनाएँ लिखीं, यथा -

'जय जयति राम, जय अवध धाम, जय ठाम, वाम दिशि उन्तर जू।
जय ब्रह्म ईश, जय जय मुनीश, जय जय महीश, जय जय सरजू।।'

बरसाने की होली आज भी प्रसिद्ध है, ब्रज-बालाएं ब्रज-बिहारी के साथ और ब्रज-बिहारी ब्रज-बालाओं के साथ मस्ती से होली खेल रहे हैं -

'नीके सभी साज़, सभी अजूबा अन्दाज़, सज रंग की समाज, सब ब्रज-बाला।
बरसाने में धूम, लिये संग में हुजूम, होली खेलें झूम-झूम, सखि नंद लाला।।'

मन्मथ सभी के मन को मथ देता है -

'किसी का भी मन रहा नहीं स्थिर, समस्त ध्यानिन के ध्यान छूटे।
खुली अचानक समाधि शिव की, वो तीक्ष्ण मन्मथ के बान छूटे।।'

श्याम-अलकों में फँस कर मन निकल नहीं पाता -

'ये मन मेरा अय अली री, जब से अलक में मोहन की फँस गया है।
ला हासिल जग के हैं काज सारे, कहूं क्या विषधर सा डस गया है।।'

यदि ईश्वर की कृपा हो तो उसका कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता -

'प्रहार क्या कोई करे उस पै जो, कृपा दृष्टि हरि हर के तले हो।
प्रसन्न मन उस पुरुष का हर क्षण, निशा तथा बासर के तले हो।।'

प्रवृत्ति से निवृत्ति की ओर चलने में ही जीवन की सफलता है -

'थका न अब तक विषयभोग से, तृष्णावश बहु किये अनर्थ ।
थिर मन कर जप ओउम् मन्द अब, दिवसरत्न क्यों खोवे व्यर्थ।।'

नायक नायिका के घर के सामने अपना घर बनाना चाहता है -

'निकट निकेतन के आनि छाये, निकाय नागरि निशंक नीके ।
निखारे निखिलांग नेह साने, निखिल नदीदे[1] से निर्खनी के ।।'

'तमसो मा ज्योतिर्गमय' ही मानव का लक्ष्य होना चाहिये -

'तज कर असत ग्रहण कर सतपथ, मगन रहत मन सर धर रज ।
रज धर चरण गहत मन हरषत, कहत मसल सब तज हर भज।।'

---

1. नदीदे, नदीद: = जिसे देखा न हो, अत्यन्त लोभी ।

संयोग से वियोग के सब दुःख दूर हो जाते हैं -

'मलाल हो दूर दिल का सारा, अगर दमे वस्ल* आइयेगा ।
मुराद[1] का गुल हरा हमारा, अदा दिखा कर खिलाइयेगा।।'

घूँघट-पट की ओट से की गई चोट असह्य होती है -

'परदा करके दिल छीन लिया, ओ माइलका[2] रुख़े अनवर[3] पर ।
परीज़ाद[4] मैं जाँ पर खेल गया, परी जब से नज़र तुझ दिलबर[5] पर।।'

नायिका-भेद पर भी आपने अनेक लावनियाँ लिखी हैं -

'श्रवत भाल पर स्वेद श्वेतमुख, नयनन में अरुणाई है ।
अहो कुटिल पापिनी चेरि तै का घर निशा गंवाई है।।'

'रति के श्रम सों अति थकित त्रिया, या के स्वेद स्रवत गंडस्थल में।
विश्राम लिये सुख पाय रही, लिपटी पति के वक्षस्थल में ।।'
'अरी सहेली धरे हैं सूजे पिरात मम उर के ठाम दो हैं ।
कहा सखी ने विहँस के आली, ये काम-कन्दुक ललाम दो हैं।।'

ऋतुवर्णन भी आपका बड़ा मनोहारी है -

'तपत जेठ में भानु ज्वाल सम, बहत बयार दुपहरी में ।
वृक, वरुथ, वाराह, सिंह दुख सहत अपार दुपहरी में।।'

अहम् ही ब्रह्म है, ब्रह्म ही अहम् है -

'रोम-रोम में रमा मुरारी, रमा मेरे में मैं में राम ।
लाग लगा गल लाल, लगा ली लाली, लीला लग लाल।।'

प्रेम में अजीब मस्ती है -

'कभी इश्क में नींद न आवे, कभी बेख़बर सोते हैं ।
मस्तानों का हाल यही, कभी हँसते हैं, कभी रोते हैं।।'

'अहं ब्रह्माऽस्मि' की अनुभूति मन, बुद्धि, अहंकार चित्त से ऊपर उठ कर ही होती है, इन्द्रियों को जीत लेने पर साधक कह उठता है -

'अनादि, अविगत, अभेद, अद्वय, अचल, सनातन की चाल का हूँ।
अलख, अगोचर, अखण्ड, अच्युत, अजीत, अज, काल काल का हूँ।।'

---

* दमे वस्ल = मिलन का समय ।
1. मुराद = इच्छा ।
2. माहेलका, माहलिका = जो देखने में बिल्कुल चांद जान पड़े, चन्द्रमुखी ।
3. रुख़े अन्वर = उज्ज्वलतम चेहरा ।
4. परीज़ाद = परी का बच्चा ।
5. दिलबर = प्रेमपात्र ।

संस्कृत भाषा में भी आपने लावनियाँ लिखी हैं, शिव-स्तुति देखिए -

'नमामि पंचाननं त्रिनेत्रं, भजामि विश्वेश्वरं महेशम् ।
शिवं सदा साम्ब शान्तचित्तं, धृतांगभस्मं परं परेशम् ।।'

स्वामी जी की रचनाओं में मानव, प्रेम, अध्यात्म, वैराग्य, उपदेश, उद्बोधन, प्रकृति-चित्रण, राष्ट्रीयता, नीति और भक्ति आदि विषय प्रमुख रूप से पाये जाते हैं। उनमें जन-रंजन की प्रवृत्तियों के साथ सामाजिक संवदेना, क्षण का यथार्थ और अचिन्त्य ब्रह्माण्ड का अनुभव एकसाथ समाविष्ट हुआ है।

इन्होंने हिन्दी के अतिरिक्त उर्दू, फ़ारसी और संस्कृत में भी पर्याप्त पद्य-रचना की है। इनकी भाषा में हिन्दी, उर्दू तथा ब्रजभाषा की शब्दावली का समन्वय है। आपके पद्यों में ककहरा, उल्टी तिसहर्फी, उल्टा ककहरा, दुअंग, अठंग, अमात्र, बेनुक़त, पर, रूपक, मालोपमा, विरोधाभास, अनुप्रास, सिंहावलोकन, अधर, और दृष्टान्त आदि सनअ़त तथा अलंकारों का समावेश हुआ है। पद्य के अतिरिक्त गद्य पर भी आपका अच्छा अधिकार था। इनकी शैली में रसात्मकता, पदावली की कोमलता, मधुरता तथा सरसता है। इन्होंने काव्य-रचना में लावनी के अतिरिक्त सवैया, घनाक्षरी, गीत, ग़ज़ल, मुसद्दस आदि विविध छन्दों को भी अपनाया है।

अहंकार पाप का मूल है, नाशवान् विश्व-विभूतियों पर गर्व करना व्यर्थ है, अतः -

'पाके हुस्नो दौलत मत अकड़ो ये रंगत काफ़ूरी है ।
लाख गुनाहों से बढ़ कर दुनिया में यक मग़रूरी है।।

खाक सार बन रहो चन्द दिन, चलना तुम्हें ज़रूरी है ।
क़दम क़दम पर उस ख़ालिक की, कुदरत पर मशकूरी है[1]।।
चूर न हो जोबन के नशे में, क़ायम कब महरूरी[2] है।।
मसरूरी[3] है चन्द रोज़ और आखिर को मख़मूरी[4] है ।।

ग़ाफिल[5] है जब तलक असल में, तभी तलक महजूरी[6] है।
लाख गुनाहों से बढ़ कर, दुनिया में यक मग़रूरी है।।'

इन्होंने अपनी रचनाओं में संस्कृत की सूक्तियों को भी अपना प्रेरणा-स्रोत बनाया है, एक प्रसिद्ध संस्कृत पद्य है -

---

1. मशकूरी = कृतज्ञता ।
2. महरूरी = चन्द्रमुखीपन ।
3. मसरूरी = रुचि की मस्ती ।
4. मख़मूरी = बदमस्तगी, मदोन्मत्तता ।
5. ग़ाफ़िल = बेख़बर ।
6. महजूरी = विरह ।

'रात्रिर्गमिष्यति, भविष्यति सुप्रभातम् ।
भास्वानुदेष्यति, हसिष्यति पंकजश्री ।
इत्थं विचिन्तयति कोशगते द्विरेफे,
हा हन्त, हन्त, नलिनीं गज उज्जहार।।'

अर्थात् रात बीतेगी, प्रभात होगा, सूर्य निकलेगा और कमल खिलेंगे। कमलकोश में निबद्ध भौंरे के इस प्रकार सोचते-सोचते हा हन्त। उसी कमल को हाथी ने तोड़ डाला। - इसी भाव-भित्ति पर आधारित इनकी प्रसिद्ध रचना है -

'सुख-सुगन्ध लोभी मन-मधुकर, काम-कमल पर जा बैठा ।
प्रेम-पाँखुरी में फँस कर, अपने को आप गवां बैठा ।।
यह संसार-सरोवर जिसमें, नारि रूप है नीर अगम ।
पुत्र-पौत्र-परिवार रूप खिल रहे विमल पंकज उत्तम ।।
कोई अरुण कोई नील श्वेत छवि, भांति-भांति छहरात पदम ।
तिन पर मोहित फिरे मधुप-मन, प्रिय-पराग की चाह अधम ।।
यौवन रूपी जलज निरख घूँ-घूं करता तहं आ बैठा ।
प्रेम-पाँखुरी में फँस कर अपने को, आप गवां बैठा ।।
कुटुम्ब रूप इस कमल-कोष में, मन-मिलिन्द पैवस्त[1] हुआ ।
तन की सुधि ना रही रमण-रज, चाखत-चाखत मस्त हुआ ।।
बुद्धि-दिवस गया बीत, ज्ञान-रवि, अस्ताचल में अस्त हुआ ।
विषय-बन्ध में बंधा ब्रह्म विद्या-बल सारा पस्त हुआ ।।
भोग रूप भ्रम में भूला, पुनि आगम-आश लगा बैठा ।
प्रेम-पाँखुरी में फँस कर अपने को, आप गवां बैठा ।।
नेह-निशा के बीच मगन तृष्णा की हिय में उठी तरंग ।
स्वादु रूप सुख लहूँ प्रात ही, उदय होय जब पुण्य-पतंग ।।
जीवन का जल पीने तब तक, मौत रूप आ गया मतंग ।
आयु रूप अरविन्द तोड़ ले गया, जमाया अपना रंग ।।
मुद मधुहित इस केलि-कंज में, घुस कर जान खपा बैठा ।
प्रेम-पाँखुरी में फँस कर, अपने को, आप गवां बैठा ।।

---

1. पैवस्त = किसी वस्तु में पूरी तरह व्याप्त होना, जज्ब ।

काया रूपी, कमल काल रूपी, कुंजर जब लेवे तोड़ ।
मूल मनोरथ नष्ट होंय सब, भाव-भृंग जावें संग छोड़ ।।
अन्त समय कोई साथ न जावे, खिले रहें चहे कंज करोड़ ।
प्रभु-पद प्रीत पराक्रम कर, इस राग रूप रस से मुँह मोड़ ।।
नाता नीरज तज **'नारायण'**, राम नाम-गुण गा बैठा ।
प्रेम-पाँखुरी में फँस कर, अपने को, आप गवां बैठा ।।'

समाज में गिरते हुए मानव-मूल्यों की प्रतिष्ठा वैदिक ज्ञान के बिना असम्भव है, काश, भारतीयों को आत्मगौरव का ज्ञान हुआ होता तो निश्चित ही सम्पूर्ण विश्व में उनका सम्मान होता -

'जो आज भारत निवासियों में, यथार्थ वेदों का ज्ञान होता।
औ अपने गौरव का ध्यान होता, तो सर्वदेशों में मान होता।।
कृपा से ईश्वर की ब्राह्मणों को, वो ब्रह्मविद्या का भान होता।
सदा ही यजु, साम-गान होता, ये देश अपना सुजान होता।।
जगत में सत्योपदेश द्वारा, जो यज्ञ विधि का विधान होता ।
नियम के अनुकूल दान होता, प्रसिद्ध तप बल महान होता ।।
कहीं जो देश ये विद्वान होता,
तो सर्वोपरि बड़ा बलवान होता ।
सदाचारी द्विजाती मात्र होते,
तो भारत आज देवस्थान होता ।।
कहीं पै यज्ञों के धूम उड़ते, कहीं पै वह सोम-पान होता ।
जो अपने गौरव का ध्यान होता, तो सर्वदेशों में मान होता ।।'

आधुनिक काल राष्ट्रीय चेतना का काल है। लावनी-साहित्य में इसकी अवधि सन् 1871 ई. से अब तक मानी जा सकती है, और इसका तृतीय उत्थान 1919 से 1947 तक **'नारायणानन्द-युग'** से पुकारा जा सकता है। इस अवधि में यह लावनी-जगत् पर छाये रहे। वस्तुतः स्वामी जी के देहावसान के साथ-साथ लावनी-युग का भी पर्यवसान हो गया ।

चतुर्थ उत्थान अर्थात् स्वातन्त्र्योत्तर युग में लावनी का लेखन तो शेष रह गया, पर गायन निःशेष हो गया है। अब दूर-दूर तक दृष्टि डालने पर भी ऐसा कोई नज़र नहीं आता जो इस मुरझाई हुई लावण्य-लता को सिञ्चित कर पुनः हरी-भरी कर सके।

कालिकाप्रसाद 'सुन्दर'

इनका जन्म धीमान् ब्राह्मण-वंश में सन् 1901 ई. के आसपास हुआ। यह किराचीखाना में रहते थे। सन् 1950 ई. में इनसे मेरा साक्षात्कार यहीं हुआ था। यह चुन्नीगुरु के प्रमुख शिष्य थे। स्वामी नारायणानन्द जी को भी गुरु मानते थे। उस समय इनके अखाड़े का संगठन इन्हीं के संरक्षण में था। इनके सहायक थे श्री बाबूलाल व श्री लालताप्रसाद। लालताप्रसाद जी तो बाद में जीविकार्थ अन्यत्र चले गए थे और बाबूलाल जी का इन्तकाल हो गया था। उनके स्वर्गवास की सूचना दिनांक 3-4-61 को एक पत्र द्वारा सुन्दर जी ने मुझे मेरे गांव डंघेड़ा, जिला सहारनपुर (उ.प्र.) के पते पर दी थी। मैंने इस पत्र को अपने एक लेख में उद्धृत किया है -

"बाबूलाल के न रहने से हमारे घर की लावनी समाप्त हो गई, अब ऐसा कोई नज़र नहीं आता जो इसे जागृत कर सके।"[1]

श्री 'सुन्दर' जी के एक ख़्याल **'शहीदों की याद'** की अन्तिम पंक्ति है -

'कल फूल की शक्ल जो थे 'बाबू'।
बस आज वही बन धूल गए।।'

अब जब मैं उक्त पंक्ति को दोहराता हूँ तो शब्द-ब्रह्म को यथार्थ में सिद्ध हुआ पाता हूँ। कवि 'सुन्दर' ने कितना पहले 'बाबू' के महाप्रयाण की ओर संकेत कर दिया था।

यह हिन्दी और उर्दू दोनों ही भाषाओं में सरस रचना करते थे। परमपिता परमात्मा की अनन्त भक्ति में 'सुन्दर' जी को दृढ़ विश्वास है, वह निर्गुण भी है, सगुण भी है -

'अजर अमर अखिलेश अगोचर, अगम आदि अविकारी तुम।
वृन्दावन में बजाई वंशी, व्रजपति विपिन-विहारी तुम।।'

वनवास-बेला में श्री रामचन्द्र जी ने एक दिन जब सीता जी के उदास मन में उल्लास भरने के लिए भांति-भांति के फूलों से उनका शृंगार किया तो सीता जी की बांकी-झांकी निरख कर फूल भी शरमा गए, यथा -

'फूलों से कोमल गात देख है मान लजाया फूलों का।
जब जग जननी का रघुवर ने शृंगार सजाया फूलों का।।'

सिर सूर्यमुखी का शीशफूल, बेला का बैना भाल में है।
वृन्दाल पुष्प की लड़ी पड़ी, चोटी के हर हक बाल में है।।
जलतरंग जाही के झब्बे, डाले जुल्फों के जाल में है।
गुंथ रही अदा से मौलसिरी माता की मांग विशाल में है।।

---

1. अजेय, लावनी-गायक कवि 'सुन्दर', टंकार, कानपुर, 19 मई, 1960 ई.।

मोरबन्दनि मोरपंखी की सजा दी राम ने ।
वन-वेलि की बाली बनाकर है पिन्हा दी राम ने ।।
कुण्डल कुमुद के कान में हैं कर्णफूल पड़े हुये ।
मोतिया से मोतियों की दुति लजा दी राम ने ।।

पचरंगे के पात भी, पहनाये उस काल ।
गेंदा गुलकी गुच्छियां, दई कान में डाल ।।

नरगिस की नाक में नथ पहना, लटकन लटकाया फूलों का ।
जब जग जननी का रघुवर ने, श्रृंगार सजाया फूलों का ।।'

सुन्दर जी की दृष्टि 'शिव' पर ही नहीं, 'सत्य' पर भी गई है। सामाजिक परिवेश में लिखी गई उनकी व्यष्टिगत रचनाएं समष्टिगत हो गई हैं। शहीदों की याद को कवि ने इस प्रकार लेखनीबद्ध किया है -

'सुख चैनो अमन ऐशो इशरत इस मातृभूमि हित भूल गये ।
अशफ़ाक, भगतसिंह, बिसमिल से, फांसी का झूला झूल गये ।।'

संसार परिवर्तनशील है, यहाँ सुख क्षणिक है और प्रत्येक सुबह यहां शाम में बदल जाती है -

'ओज पर हम वक़्त दरिया की लहर रहती नहीं,
रोशनी तारों की भी वक़्ते सहर रहती नहीं ।।
होता रहता है ज़माने में हमेशा इनकलाब,
देख ए 'सुन्दर' जवानी उम्रभर रहती नहीं ।।'

इन्होंने 'सखी दौड़' के रूप में गाई जाने वाली ग़ज़ल भी खूब लिखी हैं -

'दयारे हस्ती में संभले मगर संभल न सके ।
हर्फ़ तक़दीर के तदवीर से बदल न सके ।।
रौग़ने अश्क से तर कीं ये बत्तियां, लेकिन -
दिये नसीब के इन आंधियों में जल न सके ।
किसी की जुल्फ़ परीशां[1] के हम शिकार हुये,
कोशिशें की मगर इस दाम से निकल न सके।
पिलाया खूने जिगर हमने इन हसीनों को,
किस लिये हश्र[2] तक इनका शबाब[3] ढ़ल न सके।
दिल है बहशी[4] इसे पाबन्दे ख़िरद[5] रख 'सुन्दर'।
ताकि ये वज़्मे[6] हसीनान में मचल न सके ।।'

---

1. जुल्फ़े परीशां = बिखरे हुये बाल ।
2. हश्र = प्रलय ।
3. शबाब = जवानी ।
4. बहशी = जंगली जानवर, पागल ।
5. ख़िरद = बुद्धि ।
6. वज़्म = सभा, महफ़िल ।

पं0 लछमनप्रसाद शर्मा -

इनका जन्म 1895 ई. के लगभग हुआ था। यह चुन्नी गुरु के शिष्य थे। इनकी लावणियों में अलंकार खूब मिलते हैं, भाषा सरल हिन्दी है। यह लेखन और गायन दोनों कलाओं में प्रवीण थे ।

इस संसार में कुछ और बने या न बने, परन्तु भगवन का भजन बन जाये तो सब कुछ बन जाता है -

'कुछ और बने चाहे न बने, यक भगवत-सुमिरन बन जाये ।
खटका न रहे भव-बन्धन का, आदर्श ये जीवन बन जाये ।।
गल गल कर पाप गिरें तन के सब काया कंचन बन जाये।
घट का मिट जाय तिमिर सारा, मन मिस्ले दर्पण बन जाये।।
निश्चय मन से नित कर्म करे, तब उत्तम साधन बन जाये।
चख दिव्य बने लख अलख-गती, ऐसा परिवर्तन बन जाये ।।'

कल्लन उर्फ़ अद्दा मियां -

इनका जन्म 1890 ई. के लगभग तथा मृत्यु 1947 के लगभग हुई । यह उस्ताद बादल के अखाड़े के शिष्यों की परम्परा में थे। अच्छे गायक थे ।

मजनूँ खां -

इनका जन्मकाल 1858 के आसपास था, यह उस्ताद भैरोंसिंह के शिष्य थे। इनकी ज़बान उर्दू है। ज़बांशीरीं की तारीफ़ देखिए -

'गोयाई[1] क्या फूल हैं झड़ते, या चिराग़ या ज़बां है बुल-बुल ।
दहन[2] है या फ़ानूस-सख़ुन,[3] दर[4], चमन है या आशियां[5] है बुलबुल।।'

गंगा सिंह -

यह मथुरी गुरु के शिष्य थे, अच्छे गायक थे ।

---

1. गोयाई = बोलने की शक्ति।
2. दहन = नदी तट ।
3. फ़ानूस सख़ून = कविता का प्रकाश स्तम्भ ।
4. दर = घाटी, में, भीतर ।
5. आशियां = घोंसला ।

मैकू माली -

यह पटकापुर में रहते थे, 1905 ई. में बंगाल के स्वदेशी आन्दोलन के समय इन्होंने अनेक राष्ट्रीय लावनियाँ लिखी थीं, यथा -

'लाल, बाल, और पाल कहें, यह सुन के ख़्याल मत भौं तानो।
छोड़ो सब अंग्रेजी चीज़ें, चलन स्वदेशी पहचानो ।।'

लालताप्रसाद -

इनका जन्म ब्राह्मण वंश में सन् 1920 ई. के आसपास हुआ था। यह 'नेकसाराम' के शिष्य हैं। यह आगरेवालों के अखाड़े से सम्बन्धित हैं। बहुत दिनों तक कानपुर में रहने से वहां के तुर्रेवालों में आपकी गिनती होती है। यह बड़ी मस्ती के साथ झूम-झूम कर गाते हैं। सन् 1950 में मैंने इनका गायन सुना है। इनकी जोड़ी में बाबूलाल रहते थे। अब यह शायद फिर फिरोजाबाद रहने लगे हैं।

यह दुनिया बड़ी विचित्र है, इस पर इनका अनुभव है -

'दर दर की ख़ाक मैने छानी, और लुत्फ़े दुनिया देख लिया ।
दुनिया का तमाशा क्या देखें, खुद अपना तमाशा देख लिया ।।'

इसके अतिरिक्त पीताम्बरलाल नम्बरदार, खुशीराम, मकरन्द, त्रिलोकीप्रसाद 'तिलक', वंशी, कपूरचन्द जैन उर्फ़ 'छन्नी बाबू', राजाराम मुनीम, मुकुन्दलाल स्वर्णकार, बैजनाथ उर्फ़ 'बैजू बाबू' और चिरंजी पटवा आदि तुर्रापक्ष के लावनी गायक उल्लेखनीय हैं। यह आशुकवियों की तरह दंगल में तुरन्त टेक जोड़ कर ज़वाबी गाना लड़ाते थे। ऐसा मौखिक काव्य अनुपलब्ध है, अतः इनकी रचनाएँ यहां नहीं दी जा रही हैं।

(ख) कलग़ी-पक्ष

श्यामसिंह उस्ताद :

इनका जन्म 1785 ई. के आस-पास हुआ, यह माली थे, यह प्रतिभाशाली कवि एवं गायक थे। यह दिल्ली निवासी उस्ताद मियां 'वाहिद' के शिष्य थे, कानपुर के कलग़ी वालों के यही मूल पुरूष थे। इनका अखाड़ा श्यामा छुन्ना के नाम से प्रसिद्ध था, जिनका प्रभाव सम्पूर्ण उत्तर भारत में था। इनका ज़माना 1840 ई. तक रहा। शिवप्रसाद, जियालाल, मास्टर नन्हेमल और मौलवी अफ़सर आदि आपके प्रमुख शिष्य थे। यह रागिनी के ख़याल गाते थे। ख़यालों की यह विधा इनके साथ ही समाप्त हो गई। इनके उक्ति-वैचित्र्य पर उनके किसी परवर्ती प्रशंसक का यह कथन यथार्थ ही है -

"कथन 'मदारी' की बाँकी, रागिनी श्यामसिंह साथ गई ।"

इनकी लावनियों में श्रृंगार रस की प्रधानता है, भाषा सरल, सरस और मधुर है-

किन सौतिन गृह रात रहे पिय प्रात होत गृह आये हो।
कहा काम है धाम हमारे, जाओ जहं सुख पाये हो ।।'
'अब तुमको परदे में बैठना चाहिये अन्दर मसकन[1] के ।
बालेपन के, गये दिन आये बाले जोबन के ।।'

लाला शिवप्रसाद :-

इनका जन्म अग्रवाल वैश्य वंश में सन् 1810 ई. के आस-पास हुआ। इन्होंने उस्ताद श्याम सिंह से काव्य-शिक्षा ग्रहण की। यह अच्छे शायर थे, लावनी में इनका उपनाम 'लाला' था। इनके बहुत से शिष्य थे। इन्होंने भक्ति, श्रृंगार और उपदेश-परक लावनियां लिखी हैं। हिन्दी और उर्दू दोनों ही भाषाओं पर इन्हें अधिकार था। यह 1985 ई. तक जीवित रहे।

-- 'गिरिजा के लाल, दे कष्ट टाल, कर दे निहाल दे कर दर्शन ।
तेरा रहता ध्यान, गण लिया जान, कर दे कल्याण, काया कंचन ।।'

-- 'गर किसी के हक में कोई कांटे बोयेगा ।
फूलों की सेज पर वह कैसे सोयेगा ।।'

---

1. मसकन = घर ।

मौलवी अफ़सर -

इनका जन्म 1815 ई. के आस-पास हुआ । यह शिवप्रसाद के सहयोगी थे, इन्होंने श्यामसिंह से काव्य की दीक्षा प्राप्त की थी। इनकी ज़बान उर्दू थी, हिन्दी में भी इन्होंने कुछ भक्ति-दर्शन सम्बन्धी रचनाएं लिखी हैं, यथा -

'जिसके लिये फिरता है भटकता चारों तरफ़ वन-वन बाबा ।
मन मारे तो, तुझे हो घट ही में दर्शन बाबा ।।'

प्रेमोन्मत्त साश्रु आँखे घटा को घटा रही हैं -

'बदली से शर्त ये चश्मे तर बद ली है ।
तू बरस इधर, घनघोर उधर बदली है।।'

मांगने से शान घट जाती है, इसलिये चाहे जिस ढ़ंग से भी कटे पर भिक्षावृत्ति से उम्र नहीं काटनी चाहिये -

'सरे आबरू बन के गदा[1] मत सवाल की शमशीर से काट ।
उम्र दो रोज़ा, जो आकिल है तो किसी तदबीर से काट ।।'

पं0 गौरीशंकर -

इनका जन्म 1843 के आस-पास हुआ, यह शिवप्रसाद के शिष्य थे, कवि भी थे और गायक भी। इनका स्वर सधा हुआ, कंठ मधुर और शैली चित्ताकर्षक थी। लावनी-गाने में इनका यश दूर-दूर तक फैल गया था। इनके शिष्यों में आनन्दी शायर, काशीदीन और मणिलाल आदि थे। अन्त में यह कलकत्ता चले गये थे, सन् 1920 के आस-पास इनका स्वर्गवास हुआ।

इन्होंने भक्ति और शृंगार-परक लावनियाँ लिखी हैं -

'जिसके कारण वन-वन में फिरा, वह श्रीहरि वृन्दावन में मिला ।
मथुरा में मिला, गोकुल में मिला, कुंजन में मिला, सखियन में मिला।।'
'मेरे आहो[2] नालो[3] की मेरे, दिलवर को ख़बर हो या कि न हो।
यह क्या मालूम, उधर उसको भी खबर हो या कि न हो ।।'

---

1. गदा = भिखारी ।
2. आह = उच्छ्वास, हृदय से निकलने वाला आर्त्तनाद ।
3. नाला = चीत्कार, आर्त्तनाद ।

तेगासिंह -

इनका जन्म सन् 1845 ई. के आस-पास हुआ। यह सारस्वत ब्राह्मण थे। इनके काव्यगुरु शिवप्रसाद थे। यह अच्छे गायक थे। दूसरों के ख़यालों की पलट लिखने में कुशल थे। इनके शिष्यों में 'सिपाही सिंह' प्रसिद्ध थे। यह उर्दू ज़बान में रचना करते थे। यह 1920 ई. तक जीवित रहे। इनकी लावनियां शृंगारपरक हैं-

'मुफ्त काट सर लिया, न कोई काट कहीं अबरू[1] सी है।
तेग़े निगह ने, हमारी हड्डी - हड्डी चूसी है ।।'

दिल्लू ज्ञानी -

इनका समय 19 वीं सदी का पूर्वार्द्ध है। यह 'श्यामा छुन्ना' की शिष्य-परम्परा में थे। इन्होंने ग्वालटोली में अपना अलग अखाड़ा स्थापित कर लिया था, इस अखाड़े के सदस्यों में माठू शायर, कलूटी शायर आदि प्रमुख थे ।

आनन्दी शायर -

इनका जन्म सन् 1845 के आसपास खत्री-वंश में हुआ, यह चौक में रहा करते थे। यह जन्मजात आशु कवि थे। इन्होंने पं. गौरी शंकर से लावनी की दीक्षा ली। वस्तुतः इनकी प्रतिभा से गुरु गौरीशंकर का नाम भी रोशन हो गया। यह ज़वाबी और लड़ीबन्द ख़यालों की प्रतिलिपि का पारिश्रमिक दस रुपया सैंकड़ा की दर से वसूल करते थे। कलग़ी वालों में उस समय यह अग्रगण्य थे। इनके गाने की सर्वत्र धाक थी।

"पण्डित रूपकिशोर के समकालीन आनन्दी शायर कलग़ी पक्ष में कानुपर के ख्यातिवान् लावनीकार थे, वह ख़यालों के दंगलों में पहुँच कर अपनी रचनाएँ प्रत्युन्तर के लिए प्रतिपक्षी को मोल दिया करते थे। उनकी इस आशु शक्ति से प्रभावित होकर महाराजा रायगढ़ ने उन्हें बहुत सम्मान दिया और लड़ीबन्द लावनियों का विशाल संग्रह करा लिया। उस संग्रह में पण्डित रूपकिशोर के 'शीशफूल' का भी उन्तर था, जिसे महाराज ने विशेष सराहा था। वह इस प्रकार है -

है शीश पर शीशफूल कैंधों, पताका ये रति अमन्द का है ।
किधौं नखत संग श्याम घन में, प्रकाश पूनों के चन्द का है ।।

---

1. अबरू = भृकुटि, भौंह ।

इसकी चर्चा दूर-दूर तक फैल गई। पण्डित रूपकिशोर उस प्रभुत्व से टकराने के लिये रायगढ़ जा पहुँचे, जहाँ उन्होंने इस 'शीशफूल' के कई लड़ीबन्द ख़याल उस आनन्दी शायर से सुने।"[1]

आनन्दी शायर की उक्त लावनी तृतीय अध्याय में लावनी साहित्य की शैलियों के अन्तर्गत सम्पूर्ण रूप में दी जा चुकी है। 'ज़वाबी गाना' प्रदर्शित करते समय इसी लावनी के साथ पण्डित रूपकिशोर जी की लावनी भी दी गई है। वास्तव में 'सन्देह' और 'उत्प्रेक्षा' की इतनी लम्बी माला लावनी साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है।

इनकी भाषा माधुर्य गुण से ओतप्रोत शुद्ध हिन्दी है। उसमें ब्रजभाषा का तो पुट है, परन्तु उर्दू का कहीं नामोनिशान नहीं, ढूँढ़ने से भी शायद कोई शब्द मिले। पर इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि उन्होंने उर्दू में लावनियाँ नहीं लिखी अपितु उर्दू में भी जब उन्होंने लिखा तो खूब लिखा । माशूक़ से उनकी इल्तिजा है -

'मेरे क़त्ल को तेग़ उठाई है जो तो ज़रूर गले पै चला देना ।
मेरी लाश की मिट्टी ख़राब न हो, मदफ़न[2] में इसे दफ़ना देना।।'

कृष्ण की छवि का अंकन इन्होंने निपट कूट भाषा में किया है, जिससे इनके प्रगाढ़ पाण्डित्य का परिचय मिलता है-

'चार पुष्प फल चार पखेरू, चार चतुष्पद भंग भये ।
रूप उजागर गुण-सागर, जब प्रगटे श्याम, रिपु तंग भये ।।
दो खंजन दो मृग दो दाड़िम, चार मीन अनुसंग भये ।
एक कीर एक मोर चारु सरवर के तीर प्रसंग भये।।
द्वै कपोत बहु ब्याल वृक्ष द्वै, उलगे एक अलंग[3] भये ।
गुल्म लता केकी दो सारस, देख प्रगट द्वै भृंग भये ।।
चालिस चन्द्र द्वै भानु भये, बहु नखत ललित अडबंग[4] भये ।
रूप उजागर गुण-सागर, जब प्रगटे श्याम रिपु तंग भये।।
एक काग द्वै केकी भाये, द्वै गज भी यक रंग भये ।
चार धनुष षट् शास्त्र भये, द्वै पर्वत एक अनंग भये।।
बहु मणिगण के मध्य मुनी भये, बिन शृंगार कुरंग भये ।
त्रय बीसी षट् चार महल भये, चार पांच प्रिय नंग[5] भये ।।

1· कृष्णगोपाल दुबे, लोकगायक पं0 रूपकिशोर ख़्यालगो, अमर उजाला, आगरा, 9 सितम्बर, 1973 ई· पृष्ठ 4
2· मदफ़न = गुप्त, ज़मीन में गाड़ा हुआ ।
3· अलंग = तरफ ।
4· अडबंग = टेढ़ा, विलक्षण ।
5· नंग = नग्न, उपपति ।

भये विविध विधि ललित बाण, उमगे जलजात कुढंग भये ।
रूप उजागर गुण-सागर, जब प्रगटे श्याम रिपु तंग भये ।।
द्वय कदली के वृक्ष सीधे, द्वै उलट चार चौरंग भये ।
अरुण भये आकाश भूमि पर, कंस छत्र के भंग भये ।।
चौरस चार तमाल भये उलटे बहु विधि तरु अंग भये ।
तमचर कठिन अनेक भये, सठ दलन पास तैलंग[1] भये ।।
चार चार द्वै तुम्बर[2] में रिपु रास विलोकत दंग भये ।
रूप उजागर गुण-सागर जब प्रगटे श्याम रिपु तंग भये।।
बहु दामिनि इक संग प्रगट भई, लख द्युति दूल निषंग[3] भये।
दन्त कटाक्षन-केन्द्र भये दम्पति दुति ता पै द्वंग भये ।।
चार-चार पर चार चौगुने, ता पर चार मतंग[4] भये ।
दो दाने दारिद्र भये, 'शंकर' कहें सर्व पतंग[5] भये ।।
दोऊ कर जोड़ कहे 'आनन्दी' अरिदल सकल विभंग भये ।
रूप उजागर गुण सागर जब प्रगटे श्याम रिपु तंग भये ।।

उनके समय में उन-सा लावनी लेखक अन्य नहीं था। काव्य-रचना से उन्हें यश और अर्थ दोनों की यथेष्ट प्राप्ति हुई थी। काव्यानन्द में आनन्दित रहने वाला यह आनन्दी कवि सन् 1840 ई. के आस-पास सच्चिदानन्द के आनन्द-सिन्धु में लीन होगया।

काशीदीन -

इनका जन्म सन् 1840 ई. के आस-पास हुआ। यह हिन्दू-मुसलिम एकता के पक्षधर थे। शृंगार और भक्ति के अतिरिक्त इनकी दृष्टि सामाजिक परिस्थितियों और राष्ट्रीयता की ओर भी गई। यह गौरीशंकर के शिष्य थे। इनकी भाषा हिन्दुस्तानी और उर्दू है। यह स्वयं लावनी गाते थे, इनका महत्त्व लेखन के कारण ही है। काव्य में नये-नये उपमानों की तलाश भी इन्होंने की है।

चन्द्रमा से चेहरे पर पड़ी जुल्फ़ों के चित्रण में इनकी कल्पना की उड़ान देखिये -

गोरे-गोरे गालों पर क्या घिरी घटा बालों की है ।
मचा शोर है, चढ़ाई लन्दन पर कालों की है ।।

---

1. तैलंग = आन्ध्र देश ।
2. तुम्बर = तानपूरा, तुम्बुरु नामक गन्धर्व ।
3. निषंग = मुंह से फूंक कर बजाया जाने वाला प्राचीन काल का एक बाजा, विशेष आसक्ति, तरकस ।
4. मतंग = राजर्षि विशेष, बादल, हाथी ।
5. पतंग = सूर्य, विष्णु ।

ईश्वर एक है, वह सर्वव्यापी है, हिन्दू और मुसलमान सभी उसके बन्दे हैं-

है उसी का नूर हर ज़र्रे में, हर इन्सान में ।
है वही काबे में, काशी में, वो देवस्थान में।।

इनकी वाणी में प्रेम की पीर समाई हुई है। उसमें विहसन भी है, पुलकन भी है, संकोच भी है, सिहरन भी है-

अल्लाह रे, शर्म हया व सितम, उन्हें ईद के दिन भी मिला न गया।
दिल ने जब चाहा करूं शिकवा, तब मेरी ज़बां से हिला न गया ।।

गये मुल्के अदम[1] को जहां[2] से गुजर, थे तसव्वुरे[3] ज़ुल्फ़े दुता[4] न गया ।
चश्मों से वो शक्ले जफ़ा न गई, अपना वो ख़याले अदा न गया ।।
ला ताबो तुवाँ[5] तड़फे दो कदम, फिर इसके सिवा तड़फा न गया ।
आख़िर को दिले बिसमिल[6] से मेरे, ग़मे हिज्र[7] से और लड़ा न गया ।।
मैं जिसकी अदा का निशाना बना, वह तेग गले पै चला न गया ।
दिल ने जब चाहा करूँ शिकवा, तब मेरी ज़बाँ से हिला न गया।।'

कलूटी शायर -

इनका जन्म 1845 ई. के आसपास हुआ। यह दिल्लू ज्ञानी के अखाड़े के सदस्य थे। गाते बहुत अच्छा थे, टेकें जोत भी लेते थे, यह प्रेमी-स्वभाव के थे -

उधर है उलफ़त[8] का अब्र[9] छाया, इधर घटा छाई दर्दो ग़म की ।
कुटिल कुयलिया ने कूक मारी, कोई तो ला दे ख़बर सनम की ।।

माठू शायर -

इनका जन्म सन् 1850 ई. के आस-पास हुआ । यह भी दिल्लू ज्ञानी के अखाड़े के सदस्य थे, अच्छे गायक थे। श्रृंगार रस की कुछ टेकें भी इन्होंने लिखी हैं।

बाबूराम ख़लीफ़ा -

इनका जन्म अग्रवाल वैश्य वंश में सन् 1870 ई. के आस-पास हुआ । यह गौरीशंकर के शिष्य थे, जनरल गंज में कपड़े की दुकान करते थे। लावनी-लेखन और गायन दोनों का ही इन्हें व्यसन था। यह साधु स्वभाव और उदात्त प्रकृति के थे। यह अपने अखाड़े के ख़लीफ़ा थे ,

---

1. मुल्के अदम = यमलोक ।
2. जहाँ = जहान का समास में व्यवहृत रूप, संसार ।
3. तसव्वुर = ध्यान ।
4. दुता = वक्र · कनपटी पर पड़े बाल ।
5. ला ताबो तुवाँ = धैर्य और शक्तिहीन ।
6. बिसमिल = घायल ।
7. हिज्र = वियोग ।
8. उलफ़त, उल्फ़त = प्रेम, मुहब्बत ।
9. अब्र = बादल ।

इनके बहुत से शिष्य थे । इनकी लावनियों की छाप में 'गौरीशंकर', 'बाबू', 'पन्ना', 'श्याम मनोहर' और 'बालजीत' आदि के नाम आये हैं। इन्होंने भक्तिपरक रचनाओं के साथ-साथ शृंगार रस में 'नायिकाभेद' पर भी कुछ लावनियाँ लिखी हैं। भाषा साफ़ है -

'लगी है लौ मेरी तुम से शिव जी, कृपा करो मेरा काम निकले।
जियूँ मैं जब तक, न दुःख होवे, निकलते दम मुंह से राम निकले।।'

बद्रीप्रसाद खत्री -

इनका जन्म सन् 1885 में हुआ था। यह गौरीशंकर के शिष्य थे। ख़याल लिखते थे और गाते भी थे। **'इश्क मजाज़ी'**[1] में इन्होंने **'इश्क हकीकी'**[2] का जलवा देखा है -

'अहा किससे कहूँ यह राज़ निहां,
मुझे इश्क हकीकी है पैदा हुआ ।'

मणिलाल मिश्र -

इनका जन्म सम्भवतः सन् 1980 में कान्यकुब्ज ब्राह्मण वंश में हुआ । यह संस्कृत के विद्वान् एवं रस, छन्द तथा रीति-शास्त्र के ज्ञाता और पं0 गौरीशंकर के शिष्य थे। इनका स्वर्गवास सन् 1946 ई. के आस-पास हुआ।

राय देवीप्रसाद **'पूर्ण'** द्वारा संचालित **'कवि-समाज'** के आप भी सक्रिय सदस्य थे, एवं कानपुर के कवियों में भी आपकी कविताओं का सम्मान था।

इनकी एक पुस्तक 'ख़याल वहार कलग़ी' सन् 1941 में कानपुर से प्रकाशित हुई थी, इस पुस्तक में संगृहीत इनकी लावनियों में भगवद्भक्ति, नख-शिख वर्णन और विप्रलम्भ शृंगार का मुखरण हुआ है।

यह हिन्दी, उर्दू, संस्कृत और फ़ारसी भाषा के ज्ञाता थे। इनकी हिन्दी में ब्रजभाषा की शब्दावली का भी समावेश पाया जाता है। आप भारतीय संस्कृति के गिरते हुये मूल्यों को देख कर खिन्न थे। अतः गीता के वचनों का स्मरण करते हुए ईश्वर से विनय करते हैं -

'भगवान जगन्मंगल कर्त्ता, इस अर्ज़ पै ध्यान ज़रा दो तुम ।
मृदु मंजुल मूरत मोद भरी, मन मोहन मोहिं दिखा दो तुम ।।'

---

1. इश्क मजाज़ी = वासनायुक्त लौकिक प्रेम ।
2. इश्क हकीकी = ईश्वर से प्रेम, आत्मा की परमात्मा से मिलने की तड़प ।

चहुं ओर अधर्मी दुष्ट बढ़े, उनका भी गर्व गिरा दो तुम ।
अथवा संहार सबों का कर, जमपुर सत्वर पहुंचा दो तुम ।।
यह धर्म सनातन उन्नति के शिखरों पर शीघ्र चढ़ा दो तुम ।
गीता का ज्ञान[1] न हो मिथ्या, सच्चा करके दरशा दो तुम ।।
रहें क़ायम दायम[2] चारों वरण, होने से भ्रष्ट बचा दो तुम ।
भूसुर क्षत्री विट् शूद्र सकल, पालें निज धर्म सिखा दो तुम ।।

शाहां रा मुफ़लिस कुनी दरवेशां रा शाह,
तू ई नुमाई जाविदां गुमराहां रा राह ।[3]

आपस में मेल रहे सब से, एकत्व नया उपजा दो तुम ।
मृदु मंजुल मूरत मोद भरी, मन मोहन मोहि दिखा दो तुम।।'

मानिनी राधिका को मनाने का प्रयास करती हुई दूतिका क़हती है -

'ललित लवंग लता सी ललना, मान करे क्यों नितै-नितै ।
तव वियोग में मन बहलावें, श्याम चन्द्र को चितै चितै ।।
दाड़िम श्रीफल देख कुचन सम, देह-दशा बिसराय रहे ।
श्याम घटा में दामिनि दमकत, भूषण-बसन लुभाय रहे ।।
देख सिवार रोम-राजी को, समझ-समझ चकराय रहे ।
नाभि समान विलोक भँवर में, डूब-डूब उतराय रहे ।।
लख मुरलीधर मान सरोवर ।
कोमल उदर सरिस अति सुन्दर।।
परत महा भ्रम सर के अन्तर, प्रमुद प्रेम प्रिय बितै-बितै ।
तव वियोग में मन बहलावें, श्यामचन्द्र को चितै-चितै ।।'

भगवाने बाबू -

इनका जन्म सन् ।980-8। के आसपास खत्री-परिवार में हुआ। इनका घराना सर्वसम्पन्न था। यह लखनऊ निवासी **'दिन्ते गुसाईं'** के शिष्य थे। यह तत्कालीन दोनों सम्प्रदायों के लावनीकारों

।. गीता का ज्ञान = 'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ।।' - इस भगवान् श्रीकृष्ण की उक्ति की ओर इंगित है।
- द्रष्टव्य, श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय-4, श्लोक-7

2. दायम = सदा ।

3. 'शाहां रा ····· रा राह । = राजा को रंक, और रंक को शाह बनाना, एवं पथभ्रष्ट को सही पथ पर लाना तुम्हारा सहज कार्य है ।

का सम्मान करते थे, उनकी समय-समय पर सहायता भी करते रहते थे। इनके पास लावनियों की पर्याप्त सामग्री थी। यह ख़याल लिखते थे, गाते भी थे। यह अलमस्त और निराली शान शौकत के आदमी थे। इनके बड़े भाई का नाम **'बुद्धू'** था और लड़के का नाम बाबू विश्वनाथ है।

इनकी रचनाओं की भाषा उर्दू है उसमें नज़ाकत भी है और नफ़ासत भी -

'मिज़ाज मस्ती हो, वलवला[1] हो, ज़माना जोशे शबाब का हो ।
सुरूर हो, ऐश हो, खुशी हो, उमंग हो, लुत्फ़ हो, मज़ा हो।।'

मोहम्मद शाह मीर खाँ 'शोर' -

इनका जन्म 1980-81 के आसपास हुआ । यह नारियल बाज़ार में रहते थे। भगवाने बाबू से इनकी मित्रता थी, यह उर्दू भाषा में ख़याल लिखते थे। सन् 1920 के आसपास इनका स्वर्गवास अल्पायु में ही हो गया था। तबीयत अच्छी पाई थी। अध्यात्म-परक कुछ लावनियां इन्होंने लिखी हैं ।

इस दुनिया में कभी सुख है तो कभी दुःख है -

'कटे है मातम[2] में कोई सायत,[3] तो दिल किसी वक़्त है ये ख़ुर्रम[4]।
जहां में है हर घड़ी ये चर्चा, कभी है ईद और कभी मुहर्रम ।।'

गंगा और यमुना में नहाने से मन का मैल नहीं धुलता, अतः वेदान्त के वारिधि में स्नान करना श्रेयस्कर है।

'तू बहरे वहदत[5] में मार गोता, नहा न याँ गंग औ जमन में।
गुबार दिल का धुलेगा क्यों कर, मलेगा जो पानी तन-बदन में ।।'

बिन्दाप्रसाद -

इनका जन्म सन् 1870 ई. के आसपास और स्वर्गवास सन् 1913 ई. के आसपास हुआ। यह गौरीशंकर के शिष्य थे। संस्कृतज्ञ और धार्मिक प्रकृति के थे। हिन्दी भाषा में इन्होंने भक्तिपरक रचनाएँ लिखी हैं -

'मिल के गोपी ग्वाल हिंडोले झूल रहे वृन्दावन में ।
श्यामा संग में, श्याम के सोहे ज्यों दामिनि घन में।।'

---

1. वलवला = उत्साह, उमंग ।
2. मातम = शोक ।
3. सायत, साअ़त = घड़ी, क्षण ।
4. ख़ुर्रम = खुश ।
5. बहरे वहदत = वेदान्त का वारिधि ।

गज़फ्फर मियाँ -

इनका समय 1880 ई. से 1830 ई. तक है। ये रंगाई का कार्य करते थे। ख़याल गाने में चतुर थे। इन्होंने कतिपय टेकें लिखी हैं। हाफ़िज़ लखनवी भी कुछ समय तक इनके पास आकर कानपुर रहे थे। इनकी रचना साधारण है।

पन्नालाल खत्री -

इनका जन्म संभवतः 1890 ई. में और मृत्यु सन् 1945 ई. में हुई। यह बाबूराम ख़लीफा के शिष्य थे। लाला शालिगराम बजाज, श्रीकृष्ण पहलवान तथा लाला छंगामल से आपका सान्निध्य रहा है। इन्होंने नौटंकी और स्वांग भी लिखे हैं। शृंगार के अतिरिक्त इन्होंने योग सम्बन्धी लावनियां भी लिखी हैं। भाषा सधुक्कड़ी है। मन ब्रह्मरन्ध्र में पहुँच कर परात्पर के दर्शन पाता है -

'सत् संग से बुद्धी जाय पलट, जैसे रस से शक्कर बन जाये ।
कर सके काल फिर उसका क्या, ब्रह्माण्ड में जिसका घर बन जाये ।।
रति के पति का सर सुमन विषय, भेदने से गुन आगर बन जाये ।
ले खींच डोर जब वक्र नाल की, सीधी साफ डगर बन जाये ।।
वायु आकाश अनल पानी, क्षिति से शरीर सुन्दर बन जाये ।
फिर प्राणायाम के करने से, स्थूल बदन भूधर बन जाये।।
यह प्रान अपान उदान ब्यान, स्वांसा के समचर वर बन जाये ।
कर सके काल फिर उसका क्या, ब्रह्माण्ड में जिसका घर बन जाये ।।'
'ईडा पिंगला का ध्यान रहे ये, योगी जुगत अगर बन जाये ।
सुखमना स्वांस-सागर के लिये, बुद्धी-बल्ली यह कर बन जाये।।
बैठे तब आसन पद्म लगा, जब दिव्य दृष्टि गोचर बन जाये।
फिर ओ3म् शब्द रटते-रटते वह स्वयं रूप शंकर बन जाये।।
तिरबेनी से जब पार होय तब, आसन मन-मन्दर बन जाये ।
कर सके काल फिर उसका क्या, ब्रह्माण्ड में जिसका घर बन जाये।।'

महेश नारायण मिश्र 'महेश' -

यह पं0 मन्नीलाल मिश्र के सुपुत्र हैं। इनका जन्म सन् 1922 ई. के आसपास हुआ। इनके काव्यगुरु भी इनके पिता मिश्र जी ही थे। यह लावनी लिखते हैं, परन्तु गाते नहीं। इस

समय यह गोविन्दनगर में रहते हैं। बरेली के कलग़ी पक्ष के ख़यालगो इनमें गुरुवत् श्रद्धा रखते हैं, उनका घनिष्ठ सम्बन्ध इनके पिता जी के अखाड़े से रहा है।

इन्होंने हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं में लिखा है। शृंगार-परक रचनाओं के अतिरिक्त प्रकृति-चित्रण की ओर भी इनकी दृष्टि गई है -

'ज़बां से हर एक मर्दो ज़न की चूं[1] खुश सदा[2]-ए-बसन्त आती ।
जिधर को देखो नज़र उठाकर, नज़र अदा-ए-बसन्त आती ।।'

अजीब मौसम बसन्त में क्या सबा भी इठलाय कर चली है ।
शिगुफ़्ता[3] होने के वास्ते बस दिलों में कलियों के बेकली है ।।
चमन में सब्ज़ी न लहलहाती, ये बात यक और ही भली है ।
ज़मीं पे मालूम होता गोया, बिछा हुआ फ़र्श मखमली है ।।

रँगे रंग बसन्ती में हर मर्दो ज़न है ,
हुये रश्के बाग़े जिनां[4] सब चमन हैं ।
गुलों की गुलिस्तां में ज़ीनत[5] अजब है ,
जिन्हें देख नादिम[6] हुये गुल बदन हैं ।।

जो फूली सरसों समझ में मेरे, है महलका[7]-ए-बसन्त आती ।
जिधर को देखो नज़र उठा कर, नज़र अदा-ए-बसन्त आती ।।'

रुस्तम मास्टर -

इनका जन्म कायस्थ जाति में सन् 1912 ई. के लगभग हुआ। यह अध्यापक रहे हैं। इन्होंने आनन्दी शायर को अपना काव्यगुरु बनाया। यह काव्यकला में दक्ष, प्रतिभा सम्पन्न और परिमार्जित भाषा लिखने वाले रहे हैं। इन्होंने हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं में लिखा है। विषय भक्ति और शृंगार है। अन्त्यानुप्रास और उपान्त्यानुप्रास का निर्वाह निपुणता के साथ इनकी रचनाओं में हुआ है।

कृष्ण जी की मुरली से क्या-क्या निनादित नहीं होता -

'अनहद के बाजे बाज रहे, हर आन तुम्हारी मुरली में ।
वेदों की ऋचाएँ किलोल करें, भगवान तुम्हारी मुरली में ।।

---

1. चूं = किस प्रकार ।
2. सदा = आवाज़ ।
3. शिगुफ्ता = विकसित ।
4. बाग़े जिनां = जन्नत का बाग़ अर्थात् नन्दनवन ।
5. ज़ीनत = शोभा , शृंगार ।
6. नादिम = लज्जित ।
7. महलका = चन्द्रमुखी ।

सप्पू लाला -

इनका जन्म सन् 1890 ई. के आसपास हुआ। इनके यहां सब्जी का कार्य होता था। सन् 1952-53 तक भी इन्होंने अपने अखाड़े के संगठन को बरक़रार रखा। इनकी रचनाएं साधारण कोटि की हैं ।

भगवती -

इनका जन्म सन् 1912 ई. के आसपास हुआ। इनके काव्यगुरु पं0 मन्नीलाल मिश्र थे। यह अच्छे गायक थे जैसाकि इस पंक्ति से प्रकट होता है -

'भगवती' गाने में तेरे रंगत,
है खुश नुमाये-बसन्त आती ।'

गुल -

इनका जन्म सन् 1912 ई. के आसपास हुआ। इन्होंने हाफ़िज़ लखनवी से फ़न-ए-शायरी हासिल किया था, जब यह गाते थे, तो शुद्धोच्चारण पर विशेष ध्यान रखते थे ।

छेदी -

इनका जन्म सन् 1912-13 ई. के आसपास हुआ । यह श्रीकृष्ण पहलवान की नौटंकी-मण्डली के सदस्य रहे हैं, इनकी भाषा ब्रजभाषा का पुट लिये हुए है -

'मृदु मंजुल मूरत मोहन की, मन-मन्दिर बीच समाय गई ।
गोरस बेचन क्या गई सखी, गिरधर के हाथ बिकाय गई ।।'

दुर्गाप्रसाद -

यह मौलवी अफ़सर के शागिर्द और गौरीशंकर के समकालीन थे। यह दिल्लू ज्ञानी के अखाड़े के सक्रिय सहयोगी थे । इन्हें कलग़ी पक्ष के गाने वाले उस्ताद मानते थे। इनकी रचनाएं अप्राप्त हैं ।

डा. सैयद अहमद अली 'अहमद' -

इनका जन्म केलिया, जालौन में सन् 1897 ई. में हुआ था। कानपुर में आकर यह कानपुरी अखाड़े में सम्मिलित हो गये थे। यह गौरीशंकर की परम्परा के शायर श्री पन्नालाल के शिष्य थे। इन्हें लेखन और गायन दोनों में पटुता प्राप्त थी, और इनकी रुचि भारतीय दर्शन में थी, इन्होंने अपनी रचनाओं में गीता-ज्ञान को उतारने की कामयाब कोशिश की है। ज़बान इनकी उर्दू है। साफ़ सुथरी है -

'गो[1] हवादिस[2] की हूँ मैं घटा में फँसा,
वर्ना खुद ही चमकता यक नैयर[3] हूँ मैं ।।
खुद ही तालिब[4] हूँ मैं खुद ही मतलूब[5] हूँ,
खुद चकोर और खुद माहे पैकर[6] हूँ मैं ।।
वह है मुझ में मैं उसमें अयां औ निहां[7],
गाहे[8] अन्दर हूं मैं गाहे बाहर हूँ मैं ।
रहता उससे हमेशा ख़िलत[9] औ मिलत,
वह अलल नूर उससे मुनव्वर[10] हूं मैं ।।
यों तो रीझूँ न गाड़ी भरे माल पर,
समझूँ ज़र को जवाहर को पत्थर हूँ मैं ।।
सर झुका देता मेहमान के पांव पर,
ऐसा दिल का ग़नी[11] ओ तवंगर हूँ मैं ।।
जिस्मे फ़ानी[12] नहीं जां था, मुझे मालूम न था,
ख़ाम[13] मिटने का गुमां था, मुझे मालूम न था ।
काट सकती है मुझे तेग़ न खंजर न कटार,
ख़ाकसारी[14] मैं कहां था मुझे मालूम न था ।।
गो कि क़तरा हूँ बहरे सनावर का मैं,
पर हकीकत में खुद ही समन्दर हूँ मैं ।
खुद ही तालिब हूँ मैं खुद ही मतलब हूँ,
खुद चकोर और खुद माहे पैकर हूँ मैं ।।'

इन्होंने हिन्दी भाषा में भी बड़ी मधुर लावनियाँ लिखी हैं -

'ग्रीषम को अति प्रबल कहत है, चल महलन सितला ले तू ।
बनमाली से, लिपट कर आली लपट मिटाले तू ।।'

---

1. गो = यद्यपि ।
2. हवादिस = दुर्घटना ।
3. नैयर = सूर्य ।
4. तालिब = चाहने वाला ।
5. मतलूब = चाहा हुआ ।
6. माहेपैकर = चन्द्रमा की आकृति ।
7. अयाँ ओ निहाँ = प्रकट और छिपा हुआ ।
8. गाहे = कभी ।
9. ख़िलत, ख़िलअ़त = जोड़ा ।
10. मुनव्वर = प्रकाशमान ।
11. ग़नी = धनी ।
12. फ़ानी = नाशवान् ।
13. ख़ाम = अयुक्त, अनुभवहीन ।
14. ख़ाकसारी = दीनता ।

उर्दू और हिन्दी मिला कर 'भाषा समक' के रूप में इनके द्वारा लिखित रचनाएँ भी बड़ी चित्ताकर्षक हैं -

'लिखूँ सरापा[1] जो उस सनम का तो किस की किसकी सना[2] लिखूं मैं।
मृदुल मनोहर है गात सुन्दर मयंक, मुख चन्द्रमा लिखूँ मैं ।।'

इनके अतिरिक्त तुर्रेवालों की तरह कलग़ी वालों में भी कुछ ऐसे 'ख़यालगो' हुये हैं जो गाने में माहिर थे, लिखने में नहीं। यों तत्काल टेकें जोड़ कर दंगल में भिड़ जाना इनके बायें हाथ का खेल था। इनमें आनन्दी के शागिर्द अयोध्याप्रसाद, पन्नालाल के शागिर्द बालजीत, दीना और सूरजबली आदि प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं ।

---

1. सरापा = नायिका के नख-शिख का पद्यात्मक वर्णन, आपाद-मस्तक ।
2. सना = प्रशंसा ।

कानपुर के आधुनिक कवि और लावनी

कानपुर लावनी कला का केन्द्र रहा है, अतएव यहां के कवियों पर भी काव्य की इस विशिष्ट विधा का प्रभाव पड़ा है। विस्तारभय से यहां पर कतिपय श्रेष्ठ लावनी-लेखक कवियों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है -

पं० प्रतापनारायण मिश्र -

इनका जन्म सम्वत् 1913 वि. में और मृत्यु सं. 1951 वि. में हुई । यह हिन्दी, संस्कृत, उर्दू और फ़ारसी के विद्वान् थे। हँसमुख, मनमौजी और अलमस्त थे।

"इनको पहले ख़यालों का ही शौक था। प्रसिद्ध ख़याल लेखक पं० प्रभुदयाल जी से आप प्रभावित थे। अपनी मस्ती में आप कभी-कभी चंग बजा कर ख़याल गाते भी थे। किन्तु ख़्यालों के किसी सम्प्रदाय विशेष से आपका कुछ सम्बन्ध नहीं था। आपने सैकड़ों लावनियाँ लिखी हैं।"[1]

इन्होंने लगभग 40 पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें **'लावनी संगीत शुकन्तला'** भी एक है। सम्वत् 1940 वि. में इन्होंने कानपुर से **'ब्राह्मण'** नामक पत्र भी निकाला था। 38 वर्ष की अल्पायु में इतनी अधिक साहित्य-सेवा शायद ही किसी अन्य साहित्यकार ने की हो। **'प्रताप लहरी'** में आपकी स्फुट रचनाएँ संकलित हैं।

'दौड़' की तर्ज में आपने संस्कृत भाषा में भी कुछ रचनाएं लिखी हैं, यथा -

किमप्यन्यत्तु न याचेऽहम् ।
देहि मे नाथ, दृढ़ स्नेहम् ।।'[2]

अर्थात् - हे स्वामी! और में कुछ नहीं मांगता, मुझे अपना अटल प्रेम दो। फ़ारसी में आपने फ़रमाया -

'सख़्त बहुस्नो जमाल गर्चे,
रश्के मिह्रो माह तुरा ।।'[3]

अर्थात् - यद्यपि तू रूप-छवि में बड़ी बेमुरौव्वत है, फिर भी ए प्रेयसी! तू सूर्य और चांद की चमक-दमक को फीका कर देने वाले मुख वाली है । उर्दू में इन्होंने कहा -

---

1. स्वामी नारायणानन्द, लावनी का इतिहास, पृष्ठ 322-323
2. प्रतापनारायण मिश्र, सन्दर्भांकित - सहयोगी, 10 सितम्बर 1951, पृष्ठ 9
3. प्रतापनारायण मिश्र, वही

'इस मुरशिद[1] के पैरो[2] इस आक़ा[3] के ख़िदमतगार हैं हम ।
हर सूरत से, हजरते इश्क़ के ताबेदार हैं हम ।।
इश्क़ अगर है खुदा तो उसके बन्दये[4] गुनहगार हैं हम ।
इश्क़ जो बुत[5] है, तो उसके लिये अहले जुन्नार[6] हैं हम ।।
इश्क़ अगर ईमाँ है तो पाबन्दे शराए दीदार[7] हैं हम ।
इश्क़ कुफ्र[8] है, तो कहते क्यों डरिये कुफ्फ़ार[9] हैं हम ।।
नामे इश्क़ से किसी तरह करने के नहीं इन्कार हैं हम ।
हर सूरत से, हजरते इश्क़ के ताबेदार हैं हम ।।'[10]

ईश्वर-प्रार्थना पर 'बहरे तबील मुखफ्फा' में लिखी इनकी यह रचना बहुत प्रसिद्ध है -

पितु मात सहायक स्वामि सखा तुम ही इक नाथ हमारे हो।
जिनके कछु और आधार नहीं तिनके तुम ही रखवारे हो।।'

प्रेम में प्रेम-पात्र ही परमेश्वर है, उसके रूप-रस की मदिरा का पान करके न तो तन की ही सुधि रहती है और न मन की-

'यह भी मैं किस तरह कहूँ - मैं तेरा हूँ तू मेरा है ।
मेरे प्यारे, यहां तो जो कुछ है सब तेरा है ।।'

उसे देखने के बाद फिर किसी के भी देखने को जी नहीं चाहता। उसकी वह अदा, वह लोल कपोल पर लट का लटकना, वह 'हँसने के समय गालों में गड्ढ़े पड़ जाना' और -

'वह मन्द मधुर मुस्कान अधर-पल्लव की।
प्रत्येक बात परिपूर्ण सहज शैशव की ।।
स्वाभाविक चितवन पूरित प्रेमासव की ।
हरने वाली सर्वथा ज्ञान - गौरव की ।।
छीने लेती है बरबस चित्त हमारा ।
संसार तुच्छ जँचता है हमको सारा ।।'

परतन्त्रता, बाल विवाह, ब्राह्मणों का पतन आदि सामाजिक विडम्बनाओं का चित्रण भी इनकी लावणियों में पाया जाता है -

---

1. मुर्शिद = धर्मगुरु ।
2. पैरो = अनुयायी ।
3. आका = स्वामी ।
4. बन्दः = भक्त ।
5. बुत = देव-प्रतिमा ।
6. अहले जुन्नार = जरेऊ वाला, यज्ञोपवीत धारण करने वाला ।
7. पाबन्दे शराए दीदार = दर्शनों के धर्मशास्त्र में बंधे हुये। शराए, शरीअत का बहुवचन है जिसका शब्दार्थ धर्मशास्त्र है।
8. कुफ्र = अस्वीकृति । 9. कुफ्फ़ार = नास्तिक
10. प्रतापनारायण मिश्र ख़याल रंगत लंगड़ी -इश्क मार्फ़त, संदर्भांकित लावनी का इतिहास, पृष्ठ 328

'कलियुग ही कलियुग छाय रह्यो दिशि चारो ।
अब कस न कल्कि अवतार बेगि प्रभु धारो ।।
धन गयो विलायत बाल-ब्याह बल खोयो ।
प्रकटे मत कुमत अनेक प्रेम पथ गोयो ।।
सब विधि निजता तजि जन समाज सुख सोयो।
मूरख न सुनहिं बुध वृन्द बहुत दुख रोयो ।।
हे पतित उधारण भारत पतित उधारो ।
अब कस न कल्कि अवतार वेगि प्रभु धारो।।'[1]

इनकी समस्त लावनियाँ श्रृंगार और भक्ति-परक ही हैं। सभी रचनाओं में इनकी रसिकता, रूपासक्ति और प्रेमोन्मत्तता के दर्शन होते हैं। इन्होंने श्रृंगार और भक्ति के अतिरिक्त हास्य रस में भी लिखा है। इस महान् कवि पर साहित्य-जगत् को गर्व है-

'पंडित प्रवर प्रताप ताप हिन्दी का मेटा ।
तू भारत का लाल विकट वाणी का बेटा ।।
भगा दिया तम-तोम काव्य का मार चपेटा ।
सकल सृष्टि का शुभ्र सुयश है स्वकर समेटा ।।'[2]

वास्तव में '..... प्रतापनारायण मिश्र ..... जैसे लेखकों ने लावनी को सर्वसाधारण में प्रचलित उसके विकृत और घृणित रूप से बहुत कुछ बचाये रक्खा ।'[3]

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी -

यह युग प्रवर्तक महारथी थे। भाषा के क्षेत्र में इन्होंने क्रान्ति पैदा कर दी थी। 19 वीं सदी से पूर्व साहित्यिक सिंहासन पर ब्रजभाषा का अधिकार था। "महावीरप्रसाद द्विवेदी ने ब्रजभाषा के विरुद्ध झंडा उठाया और ब्रजभाषा-कवियों और साहित्यिकों के भीषण विरोध करने पर भी काव्य की भाषा खड़ी बोली होगई।"[4]

1900 ई. से 1925 ई. तक यह हिन्दी वाङ्मय के पुरोधा रहे। भाषा सम्बन्धी सभी आन्दोलनों पर उस समय प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इनका गहरा प्रभाव पड़ा था।

---

1. प्रतापनारायण मिश्र, मन की लहर, 1895 ई. का संस्करण, पृष्ठ 29-30, सन्दर्भांकित - डा.लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृष्ठ 28।
2. सत्यव्रत शर्मा 'अजेय', वर्तमान, 24 सितम्बर, 1951
3. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृष्ठ 336
4. श्री कृष्णलाल, आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृष्ठ 8

"द्विवेदी जी कुछ दिनों तक बम्बई की ओर रहे थे, जहाँ मराठी के साहित्य से उनका परिचय हुआ । उसके साहित्य का प्रभाव उन पर बहुत कुछ पड़ा। ..... इसी 'मराठी' के नमूने पर द्विवेदी जी ने हिन्दी में पद्य-रचना शुरू की ।" [1]

"उन्होंने ही पहले-पहल 'कुमार-सम्भव-सार' में कविता की विशुद्ध और टकसाली भाषा का सुन्दर उदाहरण उपस्थित किया।" [2]

कालिदास के 'कुमारसंभव' के कुछ स्थलों का यह पद्यानुवाद है। यह एक सफल अनुवादक थे। इसे इन्होंने लावनी की तर्ज 'खड़ीरंगत' में लिखा है।

"द्विवेदी ने अंग्रेजी गद्य के आदर्श पर हिन्दी गद्य की व्यवस्था की। ..... वे संस्कृत साहित्य के आदर्शों पर काव्य की व्यवस्था के पक्षपाती थे।" [3]

इन्होंने कल्लू अल्हैत की जीवनी 'सरगो नरक ठिकाना नाहि' शीर्षक से जनवरी 1906 में सरस्वती में आल्हा छंद में लिखी थी। इस छंद का समावेश 'रंगतखड़ी' में होता है।

इनकी फुटकर रचनाओं का संकनल **द्विवेदी काव्यमाला'** नाम से श्री देवीदन्त शुक्ल ने संगृहीत किया है, जो कि 1940 ई. में प्रयाग से प्रकाशित हुआ है। उसमें लावनी की तर्ज पर भी लिखी गई **'बलीवर्द'** आदि कतिपय रचनाएं संकलित हैं।

कानपुर में आप प्रायः जुही में रहते थे, वहीं रह कर कभी-कभी 'सरस्वती' मासिक पत्रिका का सम्पादन भी करते थे। गद्य-साहित्य में आपकी 'रसज्ञ-रंजन' आदि 11 पुस्तकें एवं पद्य-साहित्य में 'विनय विनोद', 'काव्य-मंजूषा' आदि आपके तीन स्फुट 'काव्य-संग्रह' प्रमुख हैं।

इनका सुधारवादी दृष्टिकोण इनकी सभी रचनाओं में स्पष्ट झलकता है। ग्रन्थकारों से विनय करते हुये आप 'लावनी' छंदः रंगत छोटी में कहते हैं -

'इंगलिश का ग्रन्थ समूह बहुत भारी है ।
अति विस्तृत जलधि समान देहधारी है ।।
संस्कृत भी सबके लिये सौख्यकारी है ।
उसका भी ज्ञानागार हृदयहारी है ।।
इन दोनों में से अर्थरत्न ले लीजै ।
हिन्दी के अर्पण उन्हें प्रेमयुत कीजै ।।' [4]

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, 8वां संस्करण, पृष्ठ 583
2. आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृष्ठ: 31
3. वही, पृष्ठ 20
4. महावीरप्रवाद द्विवेदी, सरस्वती, फर्वरी, 1905 ई., सन्दर्भाकित, आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृष्ठ 20

सचमुच इन्होंने खड़ीबोली हिन्दी को परिष्कृत रूप प्रदान किया था -

'मृत हिन्दी को शक्ति से, लाकर दी संजीवनी ।
महावीर आचार्य की, महावीर सी जीवनी ।।'[1]

पं. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'

इनका जन्म ग्राम हड़हा जि. उन्नाव में श्रावण शुक्ल, 13 सं. 1940 वि. अर्थात् सन् 1883 ई. को हुआ था। इन्होंने सन् 1897 में प्रथम श्रेणी में उर्दू मिडिल पास किया, फिर ये 1899 में प्राईमरी शिक्षक नियुक्त हुये। काव्यप्रतिभा इनमें जन्मजात थी। इन्होंने लाला गिरधारीलाल जी से सन् 1897 ई. में काव्यशास्त्र का क्रमबद्ध अध्ययन किया। सन् 1904 में नार्मल स्कूल लखनऊ से 'नार्मल' का प्रशिक्षण प्राप्त किया। तत्पश्चात् मिडिल स्कूल और ट्रेनिंग स्कूल के हेड़ मास्टर हुये । इनकी स्फुट रचनाएं 'रसिक रहस्य', 'साहित्य सरोवर', 'रसिक मित्र' और 'कवीन्द्र' आदि पत्र-पत्रिकाओं में निरन्तर छपने लगीं ।

सन् 1914 में इनके द्वारा लिखे गये **'कृषक क्रन्दन'** से हिन्दी साहित्य में नई काव्यधारा का प्रवर्तन हुआ। इसका प्रथम संस्करण सन् 1916 में 'प्रताप प्रेस' से हुआ था।

इनकी राष्ट्रीय रचनाएँ **'त्रिशूल'** उपनाम से और साहित्यिक रचनाएं **'सनेही'** उपनाम से 'सरस्वती' और 'प्रताप' में प्रायशः छपी हैं। समस्यापूर्ति में भी इन्हें कमाल हासिल था। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' जैसे साहित्य-मनीषियों से आपकी घनिष्ठता थी। द्विवेदी जी के अनुरोध पर पहली बार इनकी **'दहेज-प्रथा'** नामक कविता 'सरस्वती' में छपी थी। 1928 ई. में इन्होंने **'अलमस्त'** उपनाम से भी कुछ छंद लिखे हैं। **'तरंगी'** भी इनका एक उपनाम था। 'त्रिशूल' नाम से इनकी आग्नेय रचनाएं अधिकतर **'वर्तमान'** में छपीं। सन् 1921 में इन्होंने गांधी जी की अपील पर सरकारी नौकरी छोड़ दी और लाला फूलचन्द जैन के अनुरोध पर कानपुर आ गये ।

'उस समय की प्रमुख पत्र-पत्रिकाएं और विशेषकर राष्ट्रीय पत्र उनकी पंक्तियों को अपने मुखपृष्ठ पर (मोटो के रूप में) देकर सनेही जी का सम्मान करते ।'[2]

'वर्तमान', 'स्वदेश' और 'सैनिक' पत्रों के 'मोटो' आपने ही लिखे थे। 'स्वदेश' का 'मोटो' बहुत प्रसिद्ध हुआ ।

**'जो भरा नही है भावों से, जिसमें बहती रस धार नहीं ।
वह हृदय नहीं है, पत्थर है, जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं।।**[3]

---

1. सत्यव्रत शर्मा 'अजेय', प्रताप, 26 अप्रैल, 1952 ई.
2. नन्ददुलारे वाजपेयी, आचार्य सनेही अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ 58
3. सनेही, 'स्वदेश' का मुख पृष्ठ, सन्दर्भांकित, वही, पृष्ठ 58

सन् 1923 में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अवसर पर लक्ष्मणदास धर्मशाला, कानपुर में अखिल भारतीय कवि-सम्मेलन के आयोजन में सनेही जी और स्वामी नारायणानन्द जी की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। उसमें श्रीधर पाठक जी, रत्नाकर जी, हरिऔध जी, सनेही जी, भगवतीचरण वर्मा, स्वामी जी और चुन्नीगुरु आदि कवियों तथा लावनीकारों ने भाग लिया था। इन सबका सामूहिक चित्र **'सनेही अभिनन्दनग्रन्थ'** में 48वें पृष्ठ के उपरान्त आर्ट पेपर पर छपा है।

सनेही जी ने अनेकों कविसम्मेलनों की अध्यक्षता की थी। उनकी शिष्यमण्डली बड़ी विस्तृत है। **'कवि'** के सम्पादन के पश्चात् आपने **'सुकवि'** पत्र कानपुर से 1928 ई. से 1951 ई. तक सम्पादित एवं प्रकाशित किया। सौभाग्य से मुझे सनेही जी का सान्निध्य प्राप्त हुआ है। मेरे लिये वह गुरुतुल्य सम्मान्य थे। मेरी सर्वप्रथम रचना **'सुकवि'** जून, 1951 ई. में ही प्रकाशित हुई थी। 2 अक्टूबर 1952 ई. को मेरी एक रचना **'महात्मा गांधी'** शीर्षक से दैनिक **'हिन्दुस्तान'** दिल्ली में छपी तो सनेही जी उक्त पत्र हाथ में लिये हुये धर्मशाला में आये और स्वामी जी की तरफ मुख़ातिब होकर सहर्ष बोले कि - "**'अजेय'** हमारे अखाड़े का डंका बजा रहा है।"[1] यह रचना छप्पय छन्द में थी; जिस पर सनेही जी की शैली की छाप है।

आपकी प्रकाशित पुस्तकें इस प्रकार हैं - **1**. प्रेमपच्चीसी, 1905 ई.; **2**. कुसुमांजलि, 1915 ई.; **3**. कृषक-क्रन्दन, 1916 ई.; **4**. त्रिशूल-तरंग, 1919 ई.; 6. राष्ट्रीय मन्त्र, 1921 ई. **7**. कलामे त्रिशूल, 1930 ई.; और 8. करुणाकादम्बिनि, 1958 ई.। **'संजीवनी'** और **'राष्ट्रीय वीणा'** क्रमशः सन् 1921 व सन् 1922 में आपके द्वारा सम्पादित पुस्तकें हैं। 'संजीवनी' में स्वामी नारायणानन्द 'अख़्तर' की भी दो पुरस्कृत राष्ट्रीय रचनाएं 'स्वदेशी गान' और 'अहिंसा गान' संकलित हैं। अपने वक्तव्य में सनेही जी ने इन रचनाओं के विषय में लिखा था कि - 'इस तुकबंदी के युग में भी वे दर्शकों के मनोभावों को उत्तेजित करेंगी।'[2]

डा. अच्युतानन्द मिश्र ने **'सनेही जी के काव्य का अनुशीलन'** विषय पर शोध प्रबन्ध प्रस्तुत कर सागर विश्वविद्यालय से पी-एच.डी. की उपाधि सनेही जी के जीवन-काल में ही प्राप्त कर ली थी। कानपुर विश्वविद्यालय ने सनेही जी को डी.लिट्. की मानद उपाधि प्रदान की थी।

अपने राष्ट्रीय काव्य में 'गयाप्रसाद शुक्ल त्रिशूल'' ने उर्दू बहरों का अधिक प्रयोग किया है।'[3]

---

1. डा. रामप्रकाश, कवि-परिचय, कुणाल, पृष्ठ 7
2. सनेही, सन्दर्भांकित, आचार्य सनेही अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ 294
3. डा. श्रीकृष्णलाल, आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृष्ठ 127

स्वामी नारायणानन्द जी सरस्वती से आपकी अभिन्न मित्रता थी। उनका सम्पर्क होने से 'लावनी साहित्य की ओर भी आपने दृष्टिपात किया और काफ़ी ख़्याल लिखे।'[1]

मैंने सन् 1951 ई. में **प्रताप** के माध्यम से एक अपील की थी कि - "भारत के साहित्यकारों का कर्तव्य है कि वह इस वयोवृद्ध आचार्य के प्रति श्रद्धा प्रकट करने के लिये उनकी 70 वीं वर्षगांठ पर उन्हें अभिनन्दनग्रन्थ दें।"[2] परिणामस्वरूप कानपुर की नगर महापालिका ने 18 मार्च, 1964 की बैठक में सनेही जी को अभिनन्दनग्रन्थ भेंट करने का प्रस्ताव पारित कर श्री छैलबिहारी दीक्षित 'कंटक' के सम्पादकत्व में 21 अगस्त, 1964 को 578 पृष्ठों का विशाल अभिनन्दनग्रन्थ प्रकाशित कर उन्हें भेंट किया था।

"सनेही जी हमारी पीढ़ी के काव्यगुरु रहे हैं, उन्होंने अपने सहज सौजन्य, स्नेह तथा काव्यप्रतिभा से अत्यधिक प्रेरणा उदीयमान लेखकों, कवियों, साहित्यप्रेमियों तथा नवयुवकों में भरी।"[3] इतना ही नहीं, 'जो लोग भाषा के क्षेत्र में सनेही जी को अपना गुरु मान कर चले हैं, उन्होंने भी हिन्दी की ठोस सेवा की है।'[4]

संस्कृत **'स्रग्विणी'** छंद का प्रयोग इन्होंने 'बहरे तबील' के रूप में किया है। यद्यपि नारायणप्रसाद 'बेताब' ने इसे बहरे तबील के रूप में स्वीकार नहीं किया, परन्तु हिन्दी लावनी साहित्य में यह 'तबील' के रूप में ग्राह्य हुआ। एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

'याद आई वतन की हमें जब कभी, अब्रे बारां सी यह चश्मतर हो गई।
खून बरसा किया, दिल पै बिजली गिरी, हाय, हालत हमारी बतर हो गई।।'[5]

देश की दयनीय दशा देख कर इनका भावुक हृदय द्रवित हो उठता था। उस समय के श्रेष्ठ कवियों की रचनाओं में प्रायः क्षण का यथार्थ चित्रित हुआ है। "समकालीन साधारण जीवन का वृत्तान्त 'सनेही' ने भी लिखा। 'सनेही' का आग्रह वस्तुपक्ष पर, आर्थिक वैषम्य, निर्धनता, उत्पीड़न, क्लेश पर था।"[6] इनकी आवाज़ देश की आवाज़ थी।

स्वामी नारायणानन्द जी 'अख़्तर' श्री सनेही जी से आयु में लगभग तीन मास बड़े थे। दोनों में काव्यगत भावसाम्य पाया जाता है, उदाहरणार्थ कुछ पद्य प्रस्तुत हैं। इन दोनों महाकवियों की ये रचनाएं व्यष्टिपरक होते हुये भी समष्टिपरक हैं -

---

1. स्वामी नारायणानन्द सरस्वती, लावनी का इतिहास, पृष्ठ 330
2. सत्यव्रत शर्मा 'अजेय', प्रताप, 28 जुलाई, 1951 ई.
3. सुमित्रानन्दन पन्त, आचार्य सनेही अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ 13
4. रामधारी सिंह 'दिनकर', वही, पृष्ठ 19
5. सनेही, सन्दर्भांकित, आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृष्ठ 137
6. सच्चिदानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय', हिन्दी साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य, पृष्ठ 56

'कण्ठों में विराजा रसिकों के फूल माल हो के,
कुटिल कलेजों में 'त्रिशूल' हो के उसका ।'[1]

× × ×

'चढ़ाया सर पै हमको दोस्तों ने मिस्ले गुल 'अख़्तर',
मिसाले ख़ार अक्सर दुश्मनों के दिल में हम खटके ।।'[2]

इसी प्रकार एक और उदाहरण देखिए, ये रचनाएं 'स्वदेशी-आन्दोलन' पर लिखी गई थीं-

'जियें जब तक सदा धारण करें भोजन - वसन देसी ।
मिले मिट्टी में मिट्टी जब, मिले हमको कफन देसी ।।[3]

× × ×

जियें तो बदन पर स्वदेशी वसन हो ।
मरें भी अगर तो स्वदेशी कफन हो ।।'[4]

।। नवम्बर सन् 1954 को स्वामी नारायणादन्द जी के महाप्रयाण पर शोकाकुल सनेही जी ने भावप्रवण श्रद्धांजलि अर्पित की थी -

'नारायण आनन्द ब्रह्म से मिले, पूर्ण आनन्द मिला ।
अक्षर-अक्षर मिले, सरस गति मिली, रसीला छन्द मिला ।।
जिसके लिये जीव जगती में, सदा तड़पता रहता है ।
मिला, हां मिला उसी अंक में वास परम स्वच्छन्द मिला।।[5]

यहां यह भी ध्यातव्य है कि स्वामी नारायणानन्द जी उर्दू में 'अख़्तर' और हिन्दी में **'अक्षर'**, उपनाम से कविता लिखते थे, इस पद्य में सायुज्य मुक्ति का सफल चित्रण हुआ है।

'सनेही जी सच्चे अर्थ में जनकवि थे, वे काव्य की उस रसमयी, आनन्द दायिनी लोक प्राणधारा के जीवन्त प्रतीक थे, जो आज भी हिन्दी भाषी क्षेत्रों में गांव-गांव, कस्बे-कस्बे में बह रही है।'[6]

आधुनिक काल के आदि में कवियों द्वारा जन-भावना की अभिव्यक्ति का माध्यम लोक-साहित्य की विशिष्ट विधा 'लावनी' को ही बनाया गया था। अतः सनेही जी ने इस विधा में भी सशक्त रचनाएं की हैं। उन्होंने महात्मा गांधी के ब्रह्मलीन होने पर आठ चौक की लावनी लिखी थी, उसके कुछ अंश यहां प्रस्तुत हैं -

---

1. सनेही, आचार्य सनेही अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ 4
2. स्वामी नारायणानन्द 'अख़्तर', श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ने 19-1-1983 को सहारनपुर में स्वामी जी का संस्मरण सुनाते हुए यह शेर सुनाया ।
3. सनेही, सन्दर्भांकित, साहित्य, शोध, समीक्षा लेखक विनय मोहन शर्मा, पृष्ठ 12
4. स्वामी नारायणानन्द 'अख़्तर' स्वदेशी गान, ('संजीवनी' में प्रकाशित खन्ना पुरस्कार प्राप्त रचना) संदर्भांकित, दैनिक विश्वमित्र, सोमवार 2 जून, 1952 ई.
5. सनेही, प्रताप, 20 जून 1955
6. रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', सनेही-स्मरण, धर्मयुग, 27 जनवरी, 1980, पृष्ठ 3।

'जय सत्य अहिंसा और प्रेम जिनसे कि लोक का हुआ उदय ।
जय मोहन की, जय गांधी की, जय विश्व वन्द्य बापू की जय ।।
लाया वह चरखा-चक्र देश में चिर नग्नता मिटाने को ।
लाया अद्भुत प्रतिभा-प्रकाश, जगती का तिमिर हटाने को ।।
करुणा से भरा हृदय लाया, दीनों के प्राण बचाने को ।
वह लाया अनुपम सहन-शक्ति प्रिय प्रेम-धर्म फैलाने को ।।
घन-घोष समान घोषणा की, रह सकते नही असत्य, अनय ।
जय मोहन की, जय गांधी की, जय विश्व वन्द्य बापू की जय ।।
अनुयायी उसका लोक हुआ, सच्चा उसका गुरुमन्त्र हुआ ।
उसके ही प्रबल तपोबल से, प्रिय भारतवर्ष स्वतन्त्र हुआ ।।
जब चली न चाल द्वेषियों की, उसके विरुद्ध षड्यन्त्र हुआ।
अपने सीने पर ली गोली, पर वह न कभी परतन्त्र हुआ ।।
हा! राम-राम! कहते-कहते, हो गया राम में ही फिर लय ।
जय मोहन की, जय गांधी की, जय विश्व वन्द्य बापू की जय ।।'[1]

सन् 1936 ई. में पत्नी से वियुक्त, युवक हृदय सम्राट्, पं. जवाहरलाल नेहरू की प्रशंसा में आपने लिखा -

'कारा की दारुण दुःख व्यथाएँ दूनी ।
परवा न तनिक की वहीं रमा दी धूनी।।
जख़्मी दिल था उस पर यह खंजर खूनी ।
कमला सी कमला छुटी, कुटी है सूनी ।।[2]

आत्मज्ञान ही मुक्ति का साधन है -

'दिला सके जो न मुक्ति हमको, वो ज्ञान हम ले के क्या करेंगे ।
गिराये जो आत्मां को, ऐसा, विधान हम ले के क्या करेंगे ।।[3]

वह निराशा में भी आशा की किरण देखते थे, कर्म के प्रति उनकी पूर्ण निष्ठा थी, प्रयत्न में विश्वास था। वस्तुतः उनका ऊर्जस्वी काव्य बड़ा प्रेरक है -

---

1. **सनेही, आचार्य सनेही अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ 362, 264, 366**
2. **सनेही, वही, पृष्ठ 368**
3. **सनेही, वही, पृष्ठ 483**

'इस अन्धकार से मत घबरा, बढ़ चल हे वीर अधीर न हो ।
मुझको भय है, भय-भ्रान्ति कहीं, यह पैरों की जंजीर न हो।।
दृढ़ता का दीप जला ले तू, माना यह रात अंधेरी है ।
हो रहे विपथगामी मानव, मति कुटिल काल ने फेरी है।।
चल निर्भय इसे कुचलता चल, जो बाधाओं की ढ़ेरी है ।
संसार देखने को उत्सुक है, कितनी हिम्मत तेरी है ।।
वह जोशे जवानी क्या जिसमें, जादू की सी तासीर न हो ।
इस अन्धकार से मत घबरा, बढ़ चल हे वीर अधीर न हो ।।'[1]

मुर्दा दिलों में भी जोश भर देने वाला, रीति कालीन परम्परा का अन्तिम और खड़ी बोली का आदिम, हिन्दी, उर्दू दोनों भाषाओं में लाज़वाब लिखने वाला, युगप्रवर्तक, यह सुकवि-सम्राट् सात शतक तक हिन्दी-जगत् पर एकछत्र राज्य कर अन्त में 29 जून 1972 ई. को पंचत्व को प्राप्त हो गया और इस के साथ ही समाप्त हो गई कवि-सर्जक आचार्यों की परम्परा ।

माखनलाल चतुर्वेदी

यह **'एक भारतीय आत्मा'** उपनाम से रचना करते थे। सन् 1888 ई. में इनका जन्म मध्यप्रदेश के होशंगाबाद ज़िले के बाबई स्थान में हुआ था। प्रारम्भ में प्राईमरी स्कूल में सहायक अध्यापक रहे। फिर बी.टी.सी. उत्तीर्ण की एवं स्वाध्याय के बल पर मराठी, गुजराती और अंग्रेजी आदि का ज्ञान प्राप्त किया। यह कोरे कवि ही नहीं अपितु क्रान्तिकारी भी थे, सन् 1921, 22 और 30 में इन्होंने जेलयात्रा की थी। पत्रकारिता के क्षेत्र में भी इनका विशिष्ट स्थान था। इन्होंने **'कर्मवीर'** का सम्पादन काफ़ी समय तक किया था। इन्हें **'पत्रकार जगत् का नेपोलियन'** कहा जाता था। लोग इनकी वक्तृत्व शक्ति का भी लोहा मानते थे। इनका कार्यक्षेत्र खंडवा और कानपुर दोनों ही रहे।

"..... माखनलाल जी कानपुर के जीवन में ऐसे घुलमिल गये थे कि कानपुर को अपना 'मैका' कहते थे। वे यहां के साहित्यिक एवं राजनीतिक जीवन में छाये हुये थे।[2]

'दादा जी मूलतः क्रान्तिकारी थे। वे साहित्य के माध्यम से अपने को छिपाते थे। वे कहा कहते थे - 'लोग अपने को साहित्य में छपाते हैं, मैं साहित्य में अपने को छिपाता हूँ।[3]

---

1. सनेही, लावनी का इतिहास, पृष्ठ 33।
2. डा.श्रीनारायण अग्निहोत्री, जागरण, कानपुर, रजत जयन्ती अंक, पृष्ठ 7।
3. वही

वस्तुतः वे साहित्य में जीवन नहीं अपितु जीवन में साहित्य खोजते थे।

गणेश शंकर विद्यार्थी के साथ आपकी दांतकाटी रोटी थी। दोनों दो शरीर एक प्राण थे। **'प्रताप'** तथा **'प्रभा'** के सम्पादकों में आपका नाम शीर्षस्थ है। गणेश जी के स्वर्गवास के उपरान्त कानपुर-प्रवास में ये प्रिंसिपल हीरालाल खन्ना के यहां मनीराम की बगिया में ठहरा करते थे। सद्गुरुशरण अवस्थी और बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' से भी आपका प्रगाढ़ स्नेह था। कभी-कभी आप अवस्थी जी के यहां भी ठहरते थे।

इन्होंने अपने ओजस्वी काव्य से नगर में नव चेतना का संचार किया, जिसका प्रसार सारे भारतवर्ष में हो गया।

इनकी रहस्यवादी रचनाओं में मानवीय भावनाओं की भी व्यंजना हुई है। आराध्य को सम्बोधित कर आप कहते हैं -

'किन बिगड़ी घड़ियों में झांका, तुझे झांकना पाप हुआ ।
आग लगे वरदान निगोड़ा, मुझ पर आकर शाप हुआ ।।'[1]

सन् 1922 ई. में इन्होंने **'कृष्णार्जुन युद्ध'** नामक नाटक भी लिखा था। **हरिद्वार में सन् 1943 ई. में सम्पन्न हिन्दी साहित्य सम्मेलन के आप सभापति** चुने गये थे। **महन्त शान्तानन्द ने इन्हें चाँदी से तोला था ।** (पश्चिमांचल में इस सम्मेलन का आयोजन परम श्रद्धेय पं.सीताराम जी चतुर्वेदी की सूझ-बूझ का ही परिणाम था।) 3928.00 रुपये की यह धनराशि इन्होंने हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग को प्रदान कर दी थी।

लावनी विशुद्ध अद्वैत, रहस्य, समर्पण एवं राष्ट्रप्रेम की संवाहिका है। उसका स्पष्ट प्रभाव आपकी रचनाओं पर है।

इनकी **प्रकाशित रचनाएँ** - हिम किरीटिनी, हिम तरंगिनी, युग चरण, समर्पण और माता, कृष्णार्जुन युद्ध, (नाटक), साहित्य देवता (निबन्ध) आदि हैं। विद्यार्थी जीवन में इन्होंने अपने अध्यापक श्री रघुभट्ट, जोकि 'हरदा' कस्बे में अपनी रखैल रखते थे, पर 'रंगत तबील' में फबती कसी थी -

'अरदे में रहो, परदे में रहो, हिरदे में रहो, हरदे में रहो।'

यौवन में ही धर्मपत्नी से अनन्त विरह होने पर आपके शोकोच्छ्वास इस प्रकार प्रकट हुये -

'तरुणाई के प्रथम चरण में, जोड़ी टूट गई ।
फूली हुई रात की रानी, प्रातः रूठ गई ।।'[2]

---

1. माखनलाल चतुर्वेदी, संदर्भांकित, आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृष्ठ 89
2. माखनलाल चतुर्वेदी, सं. हरिकृष्ण प्रेमी, प्रकाशक-राजपाल एंड सन्स, दिल्ली, प्रथम सं.,1960 ई., पृष्ठ 36

रंगत सोहनी- 'एक मौत पर, दूजे दिल पर, और तीसरे 'उन' पर आली ।
मेरा बस न चलाये चलता, साधें रीती, आँखें खाली ।।'[1]

रंगत नवेली- 'संपूरन के संग अपूरन झूला झूलै री ।
दिन तो दिन, कलमुंही सांझ भी, अब तो फूलै री ।।'[2]

रंगत लावनी- **'कैदी और कोकिला'** -
'ऊँची काली दीवारों के घेरे में ।
डाकू, चोरों वटमारों के डेरे में ।।
जीने को देते नहीं पेटभर खाना ।
मरने भी देते नहीं तड़प रह जाना।।
जीवन पर अब दिन रात कड़ा पहरा है।
शासन है, या तम का प्रभाव गहरा है।।'[3]

"धीरे-धीरे हिन्दी कविता की राष्ट्रीय भावना में स्वतन्त्रता आन्दोलन को सक्रिय प्रेरणा देने की प्रवृत्ति आई। इस प्रवृत्ति का विकास चतुर्वेदी जी की कविताओं में बहुत सुन्दर है, वे देश के लिये बलिदान होना ही मधु-महोत्सव मानते हैं। ..... स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग लेने के कारण उनको अनेक बार जेल की यात्रा करनी पड़ी थी।"[4]

'क्या, देख न सकती जंजीरों का गहना ।
हथकडियां क्यों? यह ब्रिटिशराज का गहना।।'[5]

यह राष्ट्रीयता और क्रान्ति के पुजारी थे। देशभक्ति और आत्मसमर्पण **'पुष्प की अभिलाषा'** के रूप में इन प्रसिद्ध पंक्तियों में यों प्रकट हुआ है -

'चाह नहीं, मैं सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊं ।
चाह नहीं, प्रेमी-माला में बिंध प्यारी को ललचाऊं ।।
चाह नहीं सम्राटों के शव पर हे हरि, डाला जाऊँ ।
चाह नहीं देवों के शिर पर चढूँ, भाग्य पर इठलाऊं ।।
मुझे तोड़ लेना वनमाली, उस पथ पर देना तुम फेंक ।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जावें वीर अनेक ।।'[6]

---

1. माखनलाल चतुर्वेदी, सं. हरिकृष्ण प्रेमी, प्रकाशक-राजपाल एंड सन्स, दिल्ली, प्रथम सं., 1960 ई., पृष्ठ 42
2. वही, पृष्ठ 46
3. वही, पृष्ठ 66
4. डा. जयकिशनप्रसाद खण्डेलवाल, हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, पृष्ठ 346
5. माखनलाल चतुर्वेदी, सन्दर्भांकित वहीं, पृष्ठ 346
6. माखनलाल चतुर्वेदी, सन्दर्भांकित, वही, पृष्ठ 347

अन्त में शहीद दिवस 30 जनवरी 1968 ई. को यह एक भारतीय आत्मा **'माखनलाल' 'मोहन'** का अनुसरण कर **'मन-मोहन'** से जा मिला, और शहीद दिवस 30 जनवरी का महत्त्व दुगुना हो गया ।

अनूप शर्मा -

'वर्तमान भूषण' महाकवि अनूप शर्मा का जन्म संवत् 1957 विक्रमी को नबीनगर जिला सीतापुर में हुआ था। इनके पिता पंडित बदरीप्रसाद त्रिपाठी थे।

'बी.ए. परीक्षा पास कर लगभग 20 वर्ष की अवस्था में आप कानपुर आ रहे। सम्वत् 1981 में अनूप जी 'कवीन्द्र' के सहकारी सम्पादक हो गये जिसके प्रधान सम्पादक श्री स्वामी नारायणानन्द जी सरस्वती 'अख़्तर' थे। 'कवीन्द्र' में अनूप जी की कविताएं बराबर प्रकाशित होती रहीं।'[1]

बाद में आपने एम.ए., एल.टी. परीक्षाएं उत्तीर्ण कर लीं।

हिन्दी साहित्य परिषद्, कानपुर ने आपको **'वर्तमान भूषण'** की उपाधि से विभूषित किया था।

खड़ीबोली में लिखे गये इनके घनाक्षरी छन्दों में व्रजभाषा के समान ही शब्दसौष्ठव, नादसौष्ठव और लचक है। वाग्धारा चतुर्थचरण में जाकर चमक उठती है। इनकी प्रसिद्ध रचनाएं हैं-

सुनाल, सुमनांजलि, सिद्धार्थ, वर्धमान, और शर्वाणी आदि। ब्रजभाषा की इनकी चम्पू कविताओं का संग्रह - 'फेरि मिलिबो' नाम से छपा था, जिस पर हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा 'देव पुरस्कार' इन्हें मिला था। सन् 1952 में उत्तर प्रदेश शासन द्वारा 'वर्धमान' पर भी 1700 रुपये का पुरस्कार इन्हें प्राप्त हुआ था ।

यह परम स्वाभिमानी जीव थे। 'शर्वाणी' में इन्होंने एक स्थान पर कहा है -

'आपके प्रसाद से 'अनूप' चक्रवर्तियों के,
स्वर्ण-मुकुटों को निज पद पै गिराता है ।।'

"अनूप जी धामपुर कालेज में प्रिंसिपल थे, तो मुझे वहां जाकर उनके दर्शन करने का शुभ अवसर प्राप्त हुआ। मैं श्री देवीकुंड संस्कृत महाविद्यालय देवबन्द से वहां के मुख्याधिष्ठाता श्री स्वामी नारायणानन्द जी के साथ गया था। फिर वहां पर लगभग एक सप्ताह तक हम अनूप जी के निवास पर ठहरे रहे। अनूप जी अच्छे डीलडौल के वीर कवि हैं। आकृति को देखकर मालूम होता है कि यह बहुत प्रचंड होंगे लेकिन नहीं, वह स्वभाव के बहुत ही विनम्र हैं। भारतीय

---

1. सत्यव्रत शर्मा 'अजेय', प्रताप, कानपुर, 8 सितम्बर, 1952 ई.

संस्कृति के स्तम्भ हैं। नित्यप्रति प्रातः काल उठकर वह स्वामी जी के चरण छूते, सायंकाल को मनोरंजन के लिये साहित्यिक चर्चा हुआ करती थी। उस समय अनूप जी 'शर्वाणी' काव्य लिख रहे थे, प्रायः उसी के छन्द सुनाया करते थे। उसी समय मैंने **'नारद-मद-मर्दन'** काव्य लिखा था। वह अनूप जी को आद्योपान्त सुनाया।"[1]

कानपुर में रहते हुए आपने लावनी की तर्ज में भी कुछ रचनाएं लिखी थीं। **'पावस-परिणय'** की दों पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं -

'किशलय-मय शिरमौर बांधने, इन्द्र-वधूटी आई हैं।
व्योम वासनाएँ घन बन कर, नील ध्वज की छाई हैं।।'[2]

निर्वेद' नामक रचना 'रंगत नवेली' में लिखी गई है -

'बीते दिवस पुण्य ढ़लकाते, भरते पाप-घड़े।
लगे रहे यावज्जीवन यह, झंझट औ झगड़े।।
खेल-खेल ज्यों-ज्यों छोटे से, बढ़ कर हुये बड़े।
जगत् गहन में जीवन के पथ, काले कोस पड़े।।
जाया-जात-नात-बन्धन से, जड़-जँजीर जकड़े।
देश-काल के पड़े गले पर, रगड़े पर रगड़े।।
कभी क्रोध से बैर न ठाना, लालच से न लड़े।
लगे रहे यावज्जीवन यह, झंझट औ झगड़े।।'[3]

इन्होंने रगणात्मक 'स्रग्विणी' छंद को मुक्तरूप में लिखा है। **'गांधी चरित'** में इस छंद का इन्होंने बहुत प्रयोग किया है। सनेही जी ने इसे 'बहरे तबील' के रूप में अंगीकार किया है और 'अनूप जी ने इस रगणात्मक आवृत्ति को 'ताण्डव' छंद की संज्ञा दी है।[4]

इसका उदाहरण देखिये -

'दीर्घ लावा बने व्योम के काल से, खंड छूटे बड़ी तीव्रता से तदा।
मृत्यु के मन्त्र की शक्ति से सत्य ही, मुत्यमाना बनाते हुये मेदिनी।।'[5]

अन्तिम समय में यह लखनऊ में आकाशवाणी केन्द्र में कार्यरत थे, वहीं 22 कोंडरी, रकाबगंज में इन्होंने निज का मकान बना लिया था। इनका शब्दशिल्प बेजोड़ है। इन्होंने काव्य में अद्वितीय कीर्तिमान स्थपित किया था, सचमुच यह महाकवि, कवि-सार्वभौम थे।

---

1. सत्यव्रत शर्मा 'अजेय', प्रताप, कानपुर, 8 सितम्बर, 1952 ई.
2. अनूप, कवीन्द्र, श्रावण सम्वत् 1981, पृष्ठ 2
3. अनूप, कवीन्द्र, भाद्रपद सम्वत् 1981, पृष्ठ 9
4. डा. पुत्तूलाल शुक्ल, आधुनिक हिन्दी काव्य में छंद-योजना, पृष्ठ 113
5. अनूप शर्मा, विराट् संग्राम, पृष्ठ 4, सन्दर्भांकित, वही, पृष्ठ 113

जगदम्बाप्रसाद मिश्र 'हितैषी' -

इनका जन्म गंज मुरादाबाद ज़िला उन्नाव में मार्गशीर्ष शुक्ल 11 शनिवार सम्वत् 1958 वि. को कान्यकुब्ज ब्राह्मणवंश में हुआ। इनके पिता का नाम पं0 रामचन्द्र मिश्र था। इनका बचपन का नाम दुलीचन्द था। इन्होंने स्वाध्याय के बल पर ही हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, फ़ारसी, बंगला तथा गुजराती भाषाओं का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था ।

यह प्राकृत कवि थे, पं0 गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'से इन्होंने काव्यशिक्षा पाई थी। 'यह श्रद्धेय स्वामी नारायणानन्द जी सरस्वती 'अख़्तर' को भी गुरुजनों की भाँति मानते थे।'[1]

यह क्रान्तिद्रष्टा थे। सन् 1913 से 1936 ई. तक इन्होंने क्रान्तिकारी आन्दोलनों में सक्रिय भाग लिया, फलस्वरूप कई बार जेलयात्राएं कीं। कानपुर लुहाई में इनका 'कुसुम **त्रयादर्श'** नामक बाल्टी आदि बनाने का कारखाना था ।

'मैंने सन् 1950 ई. में सर्वप्रथम हितैषी जी के दर्शन किये । ..... उनकी वाणी में ओज, मुखमण्डल पर तेज और मस्तक पर चिन्तन को व्यक्त करने वाली तीन रेखाएं स्पष्ट झलकती थीं, ... वह दृढ़ स्वाभिमानी थे, विपत्ति की बेला में भी कभी परमुखापेक्षी नहीं बने। उनका जीवन सतत संघर्षमय रहा। ..... उन्होंने दुःख को भी सुख मान लिया था। ..... वह भारतीय सभ्यता और संस्कृति के उपासक थे।'[2]

यह करुण रस के तो सिद्ध कवि थे ही, हास्यरस में भी प्रसिद्ध थे। इनके लिखे 'भड़ौवे' फटकेबाजी की तरह विकट व्यंग्य लिये हुये हैं। ऐसी रचनाएं यह **'गंवार'** उपनाम से लिखते थे। 'कल्लोलिनी', 'वैकाली', 'मातृ-गीता' और 'दर्शना' इनकी प्रकाशित रचनाएं हैं। अप्रकाशित रचनाओं में 'मधु मन्दिर' उल्लेखनीय है।

'हितैषी जी की अन्तिम सर्वश्रेष्ठ रचना **'दर्शना'** है जिसका संस्कृत भाषा में समश्लोकी अर्थात् सवैयों का सवैयों में तथा घनाक्षरी का घनाक्षरी में अनुवाद इन पंक्तियों के लेखक ने किया है, जिसके कुछ छंद (अनुवाद सहित) 'वर्तमान', 'प्रताप' आदि पत्रों में प्रकाशित भी हुये हैं। यह ग्रन्थ हितैषी जी के अगाध ज्ञान, वैराग्य और उत्कट भक्ति, अद्भुत प्राकृतिक वर्णनों एवं रहस्यवादी रचनाओं का श्रेष्ठ संकलन है।'[3]

उर्दू में भी आपने बहुत अच्छा लिखा है, उर्दू के शायरों में इन्हें प्रतिष्ठित रखने के लिये इनका लिखा यह एक शेर ही काफ़ी है -

---

1. **जगदम्बाप्रसाद हितैषी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृष्ठ 14**
2. **अजेय, वही, पृष्ठ 16, 17**
3. **सत्यव्रत शर्मा 'अजेय', साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 19 मई, 1957, पृष्ठ 7**

'शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले ।
वतन पर मरने वालों का यही बाकी निशां होगा।।'

"सन् 1916 में, 'अमरीका' को स्वतन्त्रता कैसे मिली' नामक पुस्तक कानपुर से प्रकाशित हुई थी, उसके आवरण के अन्तिम पृष्ठ पर एक ग़ज़ल छपी थी, ... जिसकी अन्तिम दो पंक्तियां - "शहीदों की चिताओं पर ..... निशां होगा।" - सारे देश में आग की तरह फैल गई। इन पंक्तियों के लेखक थे कानपुर के प्रसिद्ध कवि स्वर्गीय **श्री जगदम्बाप्रसाद मिश्र 'हितैषी'**.[1]

सवैया लिखने में तो इन्हें कमाल हासिल था, सचमुच इस छंद के तो यह बादशाह थे, इनके सम्बन्ध में कतिपय आचार्यों का मत है -

"हितैषी जी प्रत्येक रस की कविता करते हैं ..... आपकी भाषा अत्यन्त परिमार्जित और मुहावरेदार होती है और आपके भाव अनूठे और उच्च होते हैं।"[2]

श्री जगदम्बाप्रसाद 'हितैषी' खड़ीबोली के कवित्तों और सवैयों में वही सरसता, वही लचक, वही भाव-भंगिमा लाये हैं जो ब्रजभाषा के कवित्तों और सवैयों में पाई जाती है। इस बात में इनका स्थान निराला है।[3]

14 मार्च 1957 को कानपुर में ही इनका तन-धूलि के आवरणों और मन-मोहन के चरणों में मिल गया। और हम कहते ही रह गये कि -

'हिन्द के, हिन्दी के पोषक ए जगदम्बा प्रसाद 'हितैषी' कहां हो ।"[4]

वस्तुतः हितैषी जी खड़ीबोली को परिष्कृत कर राज्य-सिंहासन पर बैठाने वालों में अग्रणी थे। 'उन्होंने लावनी साहित्य को भी बहुत कुछ दिया ..... प्रारम्भ में कुछ लावनियां लिखीं भी।'[5]

लावनी में प्रवहमान अध्यात्मधारा में अवगाहन करते हुये आपने कहा -

निज पद पद्मों में प्रेम लगा, प्रभु तुम मुझको पागल कर दो ।
गागर यह सागर में बोरो, सागर को गागर में भर दो।।'

हितैषी जी के काव्य में जो तन्मयता है वह समकालीन किसी कवि में नहीं, क्योंकि उन्होंने मस्तिष्क से नहीं अपितु हृदय से लिखा है । सांगरूपक लिखने में भी ये सिद्धहस्त थे । ऋतुपति-भूपति का चित्रण आपने इस प्रकार किया है -

---

1. श्री नारायण चतुर्वेदी, जागरण, कानपुर, रजत जयन्ती अंक, पृष्ठ 46
2. डा॰श्यामसुन्दर दास, हिन्दी साहित्य, षष्ठ संस्करण, पृष्ठ 293
3. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, अष्टम संस्करण, पृष्ठ 664
4. 'अजेय', प्रताप, 27 मार्च, 1957
5. स्वामी नारायणानन्द सरस्वती, लावनी का इतिहास, पृष्ठ 333

'अहह! वन-भुवन है धारण कर, रहा सुखद शोभा को आज ।
ऋतुपति का दरबार लगा है, जड़ चेतन का जुड़ा समाज ।।
पीले पुष्प सुभग सरसों के, स्वर्ण सितारे जड़े हुये।
पद-प्रोक्ष हैं हरित मखमली, दूर्वादल के पड़े हुये।।
लाल ध्वजा ले फूले किंशुक, द्वारपाल हैं अड़े हुये।
नव पल्लव-परिधान पहिन तरु-सैनिकगण हैं खड़े हुये।।
पुष्पाभरणों से सज्जित पुष्पासन पर शोभित ऋतुराज ।
ऋतुपति का दरबार लगा है, जड़ चेतन का जुड़ा समाज ।।'[1]

पं0 बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' -

इनका जन्म 8 दिसम्बर, सन् 1897 ई. को ग्वालियर राज्य के अन्तर्गत शाजापुर में हुआ था। यह बचपन में ही पितृ-विहीन हो गये थे। यह नय और प्रणय के क्षेत्र में विप्लवकारी कवि थे। हाईस्कूल के पश्चात् इनका पठन-पाठन कानपुर में हुआ था। कानपुर में इन्हें माखनलाल चतुर्वेदी अपने साथ लिवा लाये थे और प्रताप के सम्पादकीय विभाग में नियुक्त करा जीविका का प्रबन्ध कर दिया था ।

'नवीन जी पहले कानपुर के 'प्रताप' में अपनी स्फुट रचनाएं लिखा करते थे, और बहुत दिन तक श्रीगणेशशंकर विद्यार्थी जी के सहयोगियों में रहे। ..... नवीन जी लावनी साहित्य से भी प्रभावित हुये और लावनी साहित्य का सृजन किया।'[2]

ये पं0 विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक के मित्र थे। और पं0 जवाहरलाल नेहरु के साथी थे। नेहरु जी को यह **'जवाहर भाई'** कह कर पुकारते थे।

इन्होंने 1917 ई. से लेखन प्रारम्भ किया था। और 1921 ई. से राजनीति में सक्रिय भाग लिया। सन् 1952 ई. में संसद्-सदस्य चुने गये थे। सन् 1936 में इनका प्रथम काव्यसंग्रह **'कुंकुम'** नाम से प्रकाशित हुआ था। समय-समय पर आपकी राष्ट्रीय रचनाएं 'प्रताप' में छपती रहती थीं। आपकी प्रकाशित रचनाओं में रश्मि-रेखा, अपलक, क्वासि, विनोबास्तवन, उर्मिला तथा 'हम विषपायी जनम के' मुख्य हैं।

'बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' मुख्यतया राष्ट्रीयता के कवि हैं। ..... छायावाद के आरम्भिक काल की भाषा सम्बन्धी स्वच्छन्दता भी उनमें पाई जाती है। ..... सिद्धान्ततः 'नवीन' संस्कृतनिष्ठ हिन्दी के अरबी-फ़ारसी से व्युत्पन्न शब्दों के बहिष्कार के समर्थक थे अर्थात् शुद्धिवादी थे। व्यवहार में उनका स्वच्छन्द और अराजक स्वभाव ऐसी कोई मर्यादा नहीं निभा पाता था। ..... उसमें एक ओज और प्रवाहमयता है जो अभी तक अनुकरण को ललकारती है।'[3]

---

1. स्वामी नारायणानन्द सरस्वती, लावनी का इतिहास, पृष्ठ 333
2. वही, पृष्ठ 334, 335
3. सच्चिदानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' हिन्दी साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य, पृष्ठ 57

प्रेमपात्र के नुकीले नयनों का वर्णन करते हुये आप कहते हैं -

'अंजन रंजित चंचल खंजन, मद भंजन इन नैनों में ।
राम - निरंजन - रंजन, घन-मन-रण व्यंजन इन सैनों में।।'[1]

आपका छायावादी लहजा देखिये -

'मचल-मचल कर उत्कण्ठा ने छोड़ा नीरवता का साथ ।
विकट प्रतीक्षा ने धीरे से, कहा - 'निठुर हो तुम तो नाथ।।'[2]

'नवीन जहां - 'कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल-पुथल मच जाये ।' - का झंझा उठाते हैं, वहां कबीर की चिन्तन-नीहारिका में आत्मा की बिदाई का लुभावना गीत भी गाते हैं।[3]

'यौवन मदिरा' शीर्षक लावनी में आप अपने प्रियतम-साक़ी से कहते हैं -

'भर-भर प्याले यौवन-मदिरा के देना अब बन्द करो ।
इस मादक गुण से हे स्वामी, मुझे ज़रा निर्बन्ध करो।।
जोह रहा हूँ बाट चाव से, नये जनम के होने की ।
देखूँ यह माटी की प्रतिमा, कब करते हो सोने की ।।
रोने की अन्तिम घड़ियों का, क्षण कब आयेगा देखूँ ।
कब यह मनुआ ढ़ीठ पुण्य-पथ पर बढ़ पायेगा देखूँ ।।
भंवरों में मैं फंसा हुआ हूँ ,
मन्त भाव से कसा हुआ हूँ ।
नदिया उमड़ रही घहराती ,
कल लहरों में गंसा हुआ हूँ।।
अरे किनारा बहुत दूर है, प्रिय मेरे भुज-दण्ड धरो ।
भर-भर प्याले यौवन-मदिरा के देना अब बन्द करो।।'

सन् 1920 में सत्याग्रह आन्दोलन की असफलता पर मन में छाये असन्तोष को इन्होंने इस प्रकार व्यक्त किया था -

'आज खड्ग की धार कुंठिता, है खाली तूणीर हुआ ।
विजय-पताका झुकी हुई है, लक्ष्य भ्रष्ट यह तीर हुआ।।'

सन् 1931 में कांग्रेस-आन्दोलन में गाजीपुर जेल में रहते हुये आपने अध्यात्मपरक भी बहुत-सी लावनियाँ लिखीं, एक **'चौक'** देखिये -

---

1. नवीन, ऊर्म्मिला, पृष्ठ 292
2. नवीन, सरस्वती, दिसम्बर 1918 ई०, सन्दर्भांकित, आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, तृ०सं०, पृष्ठ 144
3. विनय मोहन शर्मा, साहित्य, शोध समीक्षा, पृष्ठ 14

'तुम हो सब कहते हैं तुम हो, निःसंशय तुम हो, तुम हो ।
सुनता हूँ तुम मायापति हो, प्रकृति-भाल के कुंकुम हो ।।
यम-नियमों के संचालक हो, उनके प्रतिपालक तुम हो ।
सुनता आता हूँ निशाचरी माया के घालक तुम हो ।।
कर्म-अकर्म-विकर्म विधाता, फलदाता हो बड़े खरे ।
सब के हो, सब में हो, फिर भी, रहते सब से सदा परे ।।
सब कहते हैं जगत्-सूत्र के, चालक मायावी तुम हो ।
सुनता हूँ तुम प्रकृति-वधू के, चिर सुहाग के कुंकुम हो ।।'

'मुझे ब्रज साहित्य मंडल के अष्टम अधिवेशन हाथरस में नवीन जी के दर्शन करने का सर्वप्रथम अवसर मिला, स्वामी नारायणानन्द जी सरस्वती 'अख़्तर' ने नवीन जी से कहा कि हमको तुम्हारी -

'तुम कैसे 'नवीन' मतवाले, तुम कैसे पीने वाले ।
फेर रहे हो अपना मुंह तुम, देख हलाहल के प्याले ।।'

लावनी बहुत पसंद है, उसे हमारे पास **'ख्याल खोजक मण्डल'** में भेज देना जिससे कानपुर के लावनी साहित्य के इतिहास में हम उसे रख सकें, उसे सुना भी दो। नवीन जी ने तत्क्षण ही कविता सुनानी शुरू की। कविता सुनने वालों में पं0 बनारसीदास जी चतुर्वेदी तथा डा.सत्येन्द्र जी आदि कई महानुभाव थे। एक बार सभी मस्ती से झूम उठे।'[1]

यह कविता नवीन जी ने श्रीगणेश कुटीर, कानपुर में 7 दिसम्बर, 1931 को लिखी थी। बाद में **'हम विषपायी जनम के'** नामक इनके काव्यसंग्रह में भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी द्वारा प्रकाशित हुई। नैराश्य के क्षणों में आपने कहा -

'इस जीवन में क्या प्रात कभी भी आया ।
मेरे अन्तर में निपट अंधेरा छाया ।।'[2]

यह छह चौक की लावनी है ।

नवीन जी प्रेमी कवि थे, वह कल्पना के पंख लगाकर निरन्तर नेहनभ में उड़ते थे। उनकी आकांक्षा थी -

'जहां कुंज की गलियों में हों, मिलते दो दिलदार सखी ।
चलो चलें उस देश, जहाँ हो छिटका मंजुल प्यार सखी ।।'

---

1. सत्यव्रत शर्मा 'अजेय', कविवर नवीन जी, प्रताप, 25 अगस्त, 1952
2. नवीन, डिस्ट्रिक्ट जेल, उन्नाव, 8 अप्रैल,, 1943 ई.

इन्होंने शिकस्ता दिल की पुरदर्द कहानी 'बहरे शिकस्ता' में ही । जनवरी, 1931 ई. को डिस्ट्रिक्ट जेल, गाजीपुर में यों बयान की थी -

'घड़ी - घड़ी आह से निकलती, शिकस्ता दिल की कथा पुरानी ।
हुजूर, रह-रह के कह रहा है, नयन का पानी अकथ कहानी।।'

मये इश्क को वह बिना पिये नहीं मानते थे -

'बिना पिये मानता नहीं वह, बिगड़ गई है कुछ ऐसी आदत ।
कहां के रोज़े, कहां की पूजा, छुटी परस्तिश मिटी इबादत ।।'

सखी से प्रार्थना करते हुये वह कहते हैं -

'मुसकाती, मधु छलकाती-सी, सखि तुम साक़ी बन आओ ।
निज मधुभरी सुराही ले के, मदमाती बन-ठन आओ ।।'

अपना ऐसा रंग जमा दो, कुछ ऐसी रसधार बहे ।
कि बस तुम्हारा ही दीवाना, मुझे सकल संसार कहे।।
उमड़ी नदिया-सी बह आवे, तन्मय तान तरंगमयी ।
उतरावे तादात्म्य भाव की, उन्मत्तता अभंग मयी ।।

एक खुमारी सी छा जावे ,
आंखों में मस्ती आ जावे ।
आत्मविस्मरण के रज - कण में,
हियरा अपनी निधि पा जावे।।

ऐसी ढ़लवा दो सजनी, मत रीता प्याला खनकाओ ।
मुसकाती, मधु छलकाती सी, सखि तुम साक़ी बन आओ ।।'

सजनी की **'मांग'** को देख कर कवि की कल्पना साकार हो उठती है -

'बोलो किसने मांग भरी यह, सजनि, तुम्हारी सुकुमारी ।
इन कालों के ऐन बीच यह, दीप-शिखा-सी मृदुला, री ।।

आज निखिल ब्रह्माण्ड हो गया, है विभक्त दो भागों में ।
अथवा दो रातें उलझी हैं, अरुण उषा के धागों में ।।
यह कौमार्य और यौवन का, किंवा सन्धि काल आया ।
या परिणीता अमल माधुरी की है मदमाती छाया ।।

रजनि, मांग है या आया है, कोई यहां क्रान्तिकारी ।
बोलो किसने मांग भरी यह, आज तुम्हारी सुकुमारी ।।'[1]

अन्त में यह मस्त फ़कीर 29 अप्रैल, 1960 ई. को 'बालकृष्ण' में लय हो गया।

भगवतीचरण वर्मा -

वर्मा जी का जीवन कवि के रूप में कानपुर से प्रारम्भ हुआ और वरिष्ठ उपन्यासकार के रूप में पूर्ण हुआ। यह अच्छे पत्रकार भी थे। इनमें वही मस्ती, वही भाव-प्रवणता पाई जाती है जो 'नवीन' जी में थी। **'चित्रलेखा'** इनका बहुचर्चित उपन्यास है, जिस पर फिल्म भी बनी थी। आकाशवाणी और सिने-जगत् से भी कुछ समय तक आप सम्पृक्त रहे। यह उत्तरप्रदेश हिन्दी समिति के अध्यक्ष थे। इनके अन्य उपन्यासों में **'भूले बिसरे चित्र', 'सामर्थ्य और सीमा', 'सबहिं नचावत राम गुसाईं'** लोकप्रिय हैं।

सन् 1921 ई. के आस-पास इनके राष्ट्रीय काव्य ने कानपुर में नवचेतना का संचार किया, साथ ही इन्होंने प्रकृति सात्म्यपरक काव्य-सृजन से कानपुर में छायावाद का भी प्रवर्तन किया। 'सन् 1923 में प्रो. लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी और भगवतीचरण वर्मा ने मिल कर क्राइस्ट चर्च कालेज की **हिन्दी साहित्य परिषद्**' की स्थापना की।[2]

वर्मा जी सनेही जी को प्राचीन काव्य-परम्परा का आचार्य मानते थे, परन्तु इन्होंने अपने काव्य में नवीन जी की छायावादी शैली का ही प्रतिनिधित्व किया है। इस सम्बन्ध में वे स्वयं कहते हैं -

'मेरी सनेही जी से घनिष्ठता कभी नहीं बढ़ सकी, हम दोनों के क्षेत्र अलग-अलग थे। ..... साहित्यिक मान्यताओं और दृष्टिकोण में मैं उन दिनों 'नवीन' का प्रतिनिधित्व कर रहा था जब कि वे प्राचीन परम्पराओं और मान्यताओं के आचार्य थे।'[3]

सन् 1923 में खींचे गये एक सामूहिक चित्र में वर्मा जी, सनेही जी और स्वामी नारायणानन्द जी आदि के साथ दिखाई पड़ रहे हैं। यह चित्र 'आचार्य सनेही अभिनन्दनग्रन्थ' में पृष्ठ 48 के पश्चात् आर्ट पेपर पर मुद्रित है।

'छायावादी कवियों में आत्माभिव्यंजन भी खुल कर हुआ। ...... और भगवतीचरण वर्मा के तो कहने ही क्या हैं। वे तो अपनी मस्ती पर ही रीझ रहे हैं-

'हम दीवानों की क्या हस्ती, हैं आज यहां कल वहां चले ।
मस्ती का आलम साथ चला, हम धूल उड़ाते जहाँ चले ।।'[4]

---

1. नवीन, डिस्ट्रिक्ट जेल, गाजीपुर, 15 जनवरी, 1931 ई., 'हम विषपायी जनम के' काव्य-संग्रह से उद्धृत।
2. पं0 लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी, कानपुर का नवजागरण, रजत जयन्ती अंक, पृष्ठ 153
3. भगवतीचरण वर्मा, आचार्य सनेही अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ 87
4. डा.जयकिशन खंडेलवाल, हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियां, नवम सं. पृष्ठ 416

'मानव' नामक इनकी काव्यकृति में मन की निराशा और करुणा के भाव साकार हुये हैं।

'रोमांटिक प्रवृत्ति का विस्मयभाव वर्मा जी या बच्चन जी की कविता में बिल्कुल नहीं है, किन्तु प्रकृति की शक्तियों के और अपनी वासना के आकर्षण के सम्मुख असहाय मानव उसका केन्द्रबिन्दु है। ..... जीवन एक प्रकार की मदिरा है, जो उसके मोह को बनाये रखती और उसे पथ पर प्रवृत्त किये चलती है।'[1]

इनके प्रकृति पर्यवेक्षण में देश के दीनों की दयनीय दशा मार्मिक ढंग से परिलक्षित हुई है -

उस ओर क्षितिज के कुछ आगे, कुछ पांच कोस की दूरी पर ।
भू की छाती पर फोड़ों से, हैं उठे हुये कुछ कच्चे घर ।।'

प्रेमोन्माद भी इनके काव्य में 'लावनी' के माध्यम से व्यक्त हुआ है -

'हां प्रेम किया है, प्रेम किया है मैंने ।
वरदान समझ, अभिशाप लिया है मैंने ।।'

लावनी में इन्होंनें दूरान्तर अन्त्यानुप्रास मूलक प्रयोग भी किये हैं, यथा -

'अपनी तरंग में खिलती हुई लजीली ,
कलिकाओं का छवि - जाल लिये तुम रंगिनि ।
उल्लास धवल हिम हास लिये अधरों पर,
तुम नृत्य - रता, तुम उत्सव - व्रता तरंगिनि ।।'[2]

अभी कुछ दिन पूर्व वर्मा जी भी बालकृष्ण का अनुसरण कर पंचत्व को प्राप्त हो गये हैं ।

अभिराम शर्मा -

पं0 प्रभुदयाल वाजपेयी 'अभिराम' का जन्म श्रावण शुदि 2, रविवार सम्वत् 1960 विक्रमी को अप्पा निवादा जिला कानपुर में हुआ था। इनके पिता का नाम पं0 ज्योतिप्रसाद वाजपेयी है।

यह बाल्यकाल में ही काव्य-रचना करने लगे थे।

सम्वत् 1981 में इन्होंने टैगोर की **'गीताञ्जलि'** का पद्यानुवाद लावनी की लय में किया था। उदाहरण देखिये -

---

1. सच्चिदानन्द वात्स्यायन, हिन्दी साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य 1967 का संस्करण, पृष्ठ 70, 71
2. भगवतीचरण वर्मा, कवि भारती, पृष्ठ 426, सन्दर्भांकित – आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना, प्रथम सं०, पृष्ठ 283

'जिन चरणों के प्रभो सन्निकट जाने को ललचाती हूँ ।
उन्हें इन्हीं गीतों के लम्बे पंखों से छू जाती हूँ ।।'[1]

कविवर प्रणवेश शुक्ल की कतिपय राष्ट्रीय रचनाओं के साथ इनकी राष्ट्रीय कविताओं का संकलन सर्वप्रथम **'मुक्त संगीत'** नाम से प्रकाशित हुआ। फिर **'बच्चन'** की **'मधुशाला'** की टक्कर में लिखी गई **'विजया'** से हिन्दी साहित्य में अभिराम जी ने **'विजया-वाद'** का प्रवर्तन किया, इस दिशा में भी **'प्रणयेश'** जी आपके बराबर के सहयोगी रहे।

इनके काव्य में सर्वत्र इनकी मस्ती झलकती है। भाषा साफ-सुथरी और परिमार्जित है। गीतों के अतिरिक्त घनाक्षरी छंद भी इनके समर्थ और प्राणवान् हैं।

'..... अभिराम जी ने इधर कुछ लावनी भी लिखीं हैं।'[2]

इनकी एक लावनी **'पनघट'** शीर्षक से यादव चन्द्र जैन द्वारा सम्पादित 'प्रतिमा' नामक मासिक पत्रिका, कानपुर में सन् 1952 में प्रकाशित हुई थी, जिसका उल्लेख 'लावनी का इतिहास' में भी हुआ है । इसमें अभिराम की रसिकता भाषा-माधुर्य, रस-प्रवणता और शैली की सरसता के दर्शन होते हैं। प्रथम चौक प्रस्तुत है -

'घट से पनघट के निकट खड़ी पनिहारी ।
पतली कटि, कटि पर कलश, कलश पर डोरी ।
भोली चितवन, गौरी सी नवल किशोरी ।।
मुख-चन्द्र-छटा छिटकाती रस में बोरी ।
चंचल दृग चहुं दिशि चितवे चकित चकोरी ।।
कानों में कुंडल हरी मनोहर सारी ।
घट से पनघट के निकट खड़ी पनिहारी ।।'[3]

हृदयनारायण पाण्डेय 'हृदयेश' -

यह हालावादी कवि हैं 'छायावादी युग में गीत के रूप-निर्माण में हृदयेश जी ने बड़ा काम किया था । ..... उनके गीतों में संगीत तत्त्व की सम्पन्नता के अतिरिक्त भावना की रंगीनी, मधु-चर्या, अनन्त के प्रति जिज्ञासा व दार्शनिक बोध आदि प्रवृत्तियाँ मिलती हैं ।'[4]

इनकी कृतियों में करुणा, कसक, मधुरिमा, और प्रेम सन्देश आदि मुख्य हैं। इन्होंने लावनी की लय में भी बहुत-से गीत लिखे हैं, एक पद्य प्रस्तुत है -

---

1. अभिराम शर्मा, गीतांजलि, कवीन्द्र, मार्गशीर्ष सं. 1981, पृष्ठ 9
2. स्वामी नारायणानन्द सरस्वती, लावनी का इतिहास, पृष्ठ 337
3. अभिराम शर्मा, रंगत लावनी – पनघट, वही, पृष्ठ 338
4. डा.उपेन्द्र, जागरण, कानपुर, रजत जयंती अंक, पृष्ठ 188

'अन्न नहीं है, वस्त्र नहीं है, सहें शीत, ओले, पाला ।
निर्धनता की चिन्ताओं ने, सुदृढ़ शरीर सुखा डाला ।।
मिले शिवा सा साक़ी कोई, या प्रताप सा मतवाला ।
और पिला दे दलित देश को, सुख स्वतन्त्रता की हाला ।।'

श्यामबिहारी शुक्ल 'तरल' -

इनके सवैयों में हितैषी जी के समान ही कसक है। **'मेघ-माला'** और **'मानव'** आपके काव्य-संग्रह हैं। यह अपनी पीढ़ी के श्रेष्ठ कवियों में थे। शोक है कि असमय ही परलोकवासी हो गये। इन्होंने कुछ लावनियां भी लिखीं हैं, एक टेक प्रस्तुत है -

'वह एक अधूरी बात मुझे प्यारी है ।
प्रिय सावन की बरसात मुझे प्यारी है ।।'

गोपालदास सक्सेना 'नीरज' -

इनकी साहित्य साधना की भूमि कानपुर ही रही है। यह नेहरु नगर में रहते थे। यहीं से इन्होंने डी.ए.वी.कालेज से एम.ए. किया है। विद्यार्थी जीवन में ही यह श्रेष्ठ कविताएं लिखने लगे थे।

इनका स्वर भी सधा हुआ और सुरीला है। यों तो सभी पढ़ते हैं, पर इनका कविता पढ़ने का ढंग निराला ही है। गीतों में ग़ज़लों की रवानी, लोच, प्रेम की पीर और प्रवाह इन्होंने पैदा किया है। इनके मुक्तक भी बहुत प्रसिद्ध हैं।

इन्होंने 'सिने-संसार' में भी कुछ समय बिताया है और **'कारवां गुजर गया, गुबार देखते रहे'** जैसा प्रसिद्ध गीत भेंट कर गीत-संगीत के क्षेत्र में क्रान्ति उत्पन्न कर दी।

आजकल आप अलीगढ़ में रहते हैं। वहीं निजी भवन बना लिया है।

अब तक इनके अनेक काव्य-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें **'अन्तर्ध्वनि', विभावरी'** आदि प्रसिद्ध हैं।

इन्होंने लावनी की टेकनीक् से गीतों के नवीन स्वरूप की सृष्टि की है। उदाहरणार्थ टेक तो लावनी के समान और चौक के दो खंड कर उड़ान की पंक्ति को दुगुना कर दूरान्तर अन्त्यानुप्रास का प्रयोग किया है, यथा -

टेक - 'मुझे न करना याद तुम्हारा आंगन गीला हो जायेगा ।'

चौक - 'रोज़ रात को नींद चुराने आयेगी तृषितों की टोली ,
रोज़ प्रात को पीर जगाने आयेगी कोयल की बोली ।
रोज़ दुपहरी को तुमसे कुछ कथा कहेंगी सूनी गलियां ,
रोज़ सांझ को आंख भिगो जायेंगी कुछ मुरझाई कलियाँ ।

उड़ान - यह सब होगा पर न दुखी तुम होना मेरी मुक्त केशिनी ,
तुम सिसकोगी वहां, यहां पर पग बोझीला हो जायेगा ।।'[1]

एक अन्य गीत की दो पंक्तियां प्रस्तुत हैं -

'अंगार अधर पर धर मैं मुसकाया हूं ।
मैं मरघट से ज़िन्दगी बुला लाया हूँ ।।'[2]

नीरज जी इस समय तुरीयावस्था में हैं, परन्तु इनकी बानी में वही जवानी है, जो **'आसावरी'** में थी। यह अब भी **'नदी किनारे', 'लिख लिख भेजत पाती'** और अब भी **'नीरज की पाती'** प्रेमियों द्वारा बड़े चाव से पढ़ी जाती हैं। भगवान् ने इनके **'प्राण-गीत'** में **'दर्द दिया है'**।

कवि क्रान्तिद्रष्टा होता है, नीरज जी भी क्रान्तिद्रष्टा हैं, वह विद्रोही स्वर में कहते हैं -

'मैं विद्रोही हूँ जग में विद्रोह कराने आया हूँ ।
क्रान्ति-क्रान्ति का सरल सुनहरा राग सुनाने आया हूँ ।।
रोक सका है कौन उसे जिसने बस चलना ही सीखा ।
बुझा सका है कौन उसे जिसने बस जलना ही सीखा ।।
मिटा सका है कौन उसे जिसने बस जीना ही सीखा ।
विष भी तो मधु बना उसे, जिसने बस पीना ही सीखा ।।
आज विश्व को यही अमर मैं पाठ पढ़ाने आया हूँ ।
मैं विद्रोही हूँ जग में विद्रोह कराने आया हूँ ।।'[3]

---

1. नीरज, जागरण, रजत जयन्ती अंक, पृष्ठ 190
2. नीरज, विभावरी, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 23
3. नीरज, लहर पुकारे, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ 73

कानपुर के धनी और लावनी

लाला चुन्नीलाल जी गर्ग -

इनका जन्म 1885 ई. के आस-पास हुआ था । यह कानपुर नगर के प्रमुख रईस थे। राजनीति में भी इनकी अच्छी पैंठ थी।

"सन् 1926 ई. में प्रान्तीय कौंसिल के लिये श्रीगणेशशंकर विद्यार्थी और लाला चुन्नीलाल गर्ग (गूदड़ मिल वाले) के बीच ऐतिहासिक चुनाव दंगल हुआ। ..... लाला लाजपतराय और पं0 मदन मोहन मालवीय गर्ग के समर्थन और पं0 मोतीलाल गणेश जी के समर्थन में आये थे । .....इस चुनाव में हितैषी जी गर्ग के समर्थक थे और देहाती जी गणेश जी के। दोनों कवियों ने प्रतिद्वन्द्विता में खूब लिखा। ..... इस चुनाव में विजय श्रीगणेश जी को मिली थी ।"[1]

सन् 1951-52 में मैंने गर्ग जी के दर्शन किये थे, उस समय यह संसार के सुखों से विरक्त होकर परात्पर परमेश्वर के चिन्तन में अनुरक्त रहते थे। समस्त कार-बार अपने सुयोग्य पुत्र श्री सुखनन्दी दयाल को सौंप दिया था। उस समय इनके चर्म-चक्षु ज्योतिहीन हो गये थे। शास्त्रों के श्रवण, मनन और निदिध्यासन में ही इनका सारा समय बीतता था। इनकी निष्ठा 'प्राणोपासना' में थी।

"आपको प्रथम अवस्था में लावनी से बहुत प्रेम था । ..... प्रसन्नता की बात है कि आपने आध्यात्मिक अनुभव व्यक्त करने के लिये भी लावनी छंद को चुना और आत्मरहस्य के गूढ़ सिद्धान्तों को लावनी में लिखना प्रारम्भ किया। फलतः इसी लावनी छंद में अब तक आपकी तीन पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं - प्राणोपासना, सोऽहम् रहस्य और पुरुषोत्तम रहस्य । इन गूढ़ विषयों का विवेचन केवल लावनी की खड़ी रंगत में किया है जो सर्वथा श्लाघ्य और प्रशंसनीय है।"[2]

इनकी भाषा परिमार्जित और संस्कृतनिष्ठ है। मन, बुद्धि, अहंकार का विनाश कर ही सत्, चित् आनन्द की प्राप्ति सम्भव है -

'यदि तीव्र मोक्ष की इच्छा है, श्रीकृष्ण वचन पर कर विश्वास ।
चैतन्योऽहम् भाव जगा कर, देहोऽहम् का कर दे नाश ।।[3]

आत्म-तत्त्व का बोध होते ही जीवात्मा-परमात्मा में कोई भेद-विभेद नहीं रहता-

'शुचिप्राण शक्ति निज छाया पर जब बुद्धि पुरुष की टिकती है।
जो तुम सोऽहम् प्राणशक्ति तब, स्वयं बोलने लगती है।।[4]

---

1. पं0 लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी, दैनिक जागरण, रजत जयन्ती अंक, पृष्ठ 155
2. स्वामी नारायणानन्द, लावनी का इतिहास, पृष्ठ 308, 309
3. प्राणोपासना, सन्दर्भांकित - लावनी का इतिहास, पृष्ठ 310
4. सोऽहम् रहस्य, सन्दर्भांकित, वही, पृष्ठ 311

रोम-रोम में रमने वाले राम के सहारे से ही मन ब्रह्मरन्ध्र में पहुँच कर अनहद नाद का आनन्द प्राप्त कर सकता है -

'ज्यों काष्ठ-खड़ाऊं पर बिजली के, करेंट का नहिं होता भान ।
राम सहारे उड़ा 'गर्ग' तब, देखा 'बेहद' का मैदान ।।'[1]

शालिगराम बजाज -

इनका जन्म सम्वत् 1942 वि. में अग्रवाल वैश्य वंश में हुआ था, इनके पिता का नाम लाला रामलाल था।

यह काव्य-व्यसनी थे। स्वामी नारायणानन्द जी के पास प्रायः लक्ष्मणदास धर्मशाला में आया करते थे और अपनी नवीनतम रचना सुनाया करते थे। मैंने वहीं सन् 1951 में प्रथम बार इनके दर्शन किये थे। लावनी के अतिरिक्त स्फुट दोहा लिखने का भी इन्हें शौक़ था। इन्होंने लगभग 1500 दोहे लिखे हैं। सनेही जी, माखनलाल चतुर्वेदी तथा नवीन जी से भी इनका घनिष्ठ परिचय था। साथ ही गणेशशंकर विद्यार्थी और नारायण प्रसाद अरोड़ा जैसी राजनीतिक विभूतियों से भी आपके मधुर स्नेह-सम्बन्ध सदैव बने रहे।

'प्रसिद्ध लावनी लेखक पं0 प्रभुदयाल जी महाराज से आप प्रभावित थे और मास्टर प्यारेलाल आपके पास बैठते-उठते रहे। ..... सन् 1915 में आपने एक बड़ा ज़बर्दस्त दंगल भी कराया था, जिसमें दूर-दूर के गानेवाले आये थे।'[2]

अपनी मौज़ में इन्होंने कुछ टेकें और कुछ ख़याल भी लिखे हैं। इनकी भाषा परिमार्जित और शैली अलंकारमयी है।

कालिन्दी के कूल कृष्ण जी की केलि का वर्णन देखिये -

'हुलस-हुलस हँस-हँस, हँसमुख हरि, हेर-हेर हिय हिरते हैं ।
किलोल कान्हा, किनारे कालिन्दी के करते हैं ।।'

इनकी दृष्टि राधा-कृष्ण के रूप-वर्णन और भक्ति की सीमा से परे राष्ट्रीयता पर भी गई है, महात्मा गांधी की प्रशंसा में आप कहते हैं -

बिना लिये हथियार हाथ, कर भारतवर्ष स्वतन्त्र दिया ।
सत्य अहिंसा, का तुमने फूंक देश में मन्त्र दिया।।'

असहयोग आन्दोलनों के दृश्य आपने देखे थे, अतः उनका अंकन भी आपने अपने काव्य में किया है -

---

1. पुरुषोत्तम रहस्य, सन्दर्भांकित, लावनी का इतिहास, पृष्ठ 311
2. स्वामी नारायणानन्द, लावनी का इतिहास, पृष्ठ 312

'महिमा असहयोग की बापू , तुमने खूब दिखाई है ।
तोप तेग़ तलवार तमंचा, सबने मुंह की खाई है ।।'

इन्होंने उर्दू ज़बान में भी कुछ ख़याल लिखे हैं, अपने प्रेमी-स्वभाव का वर्णन करते हुये आप फरमाते हैं -

'करो सनम सर क़लम, क़दम हम नहीं धरेंगे पीछे को ।
दीद[1] आपका, पेशतर[2] होगा, मरेंगे पीछे को ।।
प्यास लगे तो खुशी-खुशी से खूने जिगर को पीता हूँ ।
ग़म खा-खा कर, नाम ले-ले कर तेरा जीता हूँ ।।
हुआ कलेजा चाक[3] उसे मैं सब्र-सुईं से सींता हूँ ।
मैं वो मस्त हूँ, नहीं पढ़ता .क़ुरान औ गीता हूँ ।।
पहले सिजदा[4] करेंगे उसको सफ़र करेंगे पीछे को ।
दीद आपका पेशतर होगा मरेंगे पीछे को ।।[5]

अनुराग के बाद विराग स्वाभाविक है। मन में प्रथम तो संसृति के प्रति प्रवृत्ति के भाव जगते हैं, और अन्ततोगत्वा निवृत्ति ही हो जाती है। इसी यथार्थ का चित्रण करते हुये आपने लिखा-

'जब मन न लगा, जी ऊब उठा, सब खेल खुलासा देख लिया ।
दुनिया से चले दुनिया वाले, दुनिया का तमाशा देख लिया ।।[6]

अन्त में इनका एक दोहा भी प्रस्तुत है -

'सुख दुख या संसार में, नित आवत नित जात ।
जैसे घूमा करत हैं, 'शालिग' दिन औ रात ।।'[7]

किशोरचन्द्र कपूर 'किशोर' -

इनका जन्म कार्तिक बदि 5, सम्वत् 1956 विक्रमी को हुआ था। इनके पितामह का नाम लाला मातादीन और पिता का नाम बाबू ताराचन्द था। इनका घराना सदा से ही गो-ब्राह्मण का भक्त रहा है। स्वयं भी 'किशोर' जी गो-ब्राह्मण के सेवक थे। उनका कथन था -

---

1. दीद = दर्शन ।
2. पेशतर = पहले।
3. चाक = विदीर्ण, फटा हुआ ।
4. सिजदा = ईश्वर के लिये सिर झुकाना ।
5. शालिगराम, ख़्याल रंगत लंगड़ी, सन्दर्भांकित - लावनी का इतिहास, पृष्ठ 313
6. शालिगराम, वैराग्य, प्रताप, 27 जुलाई, 1952
7. शालिगराम, सन्दर्भांकित - कानपुर के कवि, प्रताप, 18 अक्टूबर, 1952

'सच्चे मन से मान लो, ब्राह्मण है भगवान ।'[1]

इन्होंने स्वाध्याय से ही हिन्दी और उर्दू का ज्ञान प्राप्त किया था । धार्मिकता के संस्कार इन्हें अपने दादा जी, पिता जी और माता जी से मिले थे। सुखसागर, रामचरित मानस, महाभारत और पुराण आदि का अध्ययन-मनन आपने शैशवकाल में ही कर लिया था।

इनके यहाँ पुश्त-दर-पुश्त हींग का व्यवसाय होता चला आ रहा है। यह हींग के प्रसिद्ध व्यापारी थे। इनका परिष्कृत 'हरि ओउम् छाप' हींग अब भी अपना सानी नहीं रखता। इनके सुपुत्र बाबू मोहनचन्द्र कपूर एडवोकेट तथा बाबू मदनचन्द्र कपूर अब इस कार-बार को बड़ी तत्परता से संभाले हुये हैं।

'सनेही' जी को काव्य-गुरु मान कर 'किशोर' जी ने दोहा छन्द में रचना आरम्भ की। दोहे की रचना का इतना अभ्यास इन्हें हो गया था कि यह इस छन्द में बड़ी सरलता से बातचीत कर लेते थे।

सम्वत् 1998 वि. में इन्होंने **'व्रज चन्द्र-विनोद'** प्रबन्ध काव्य की रचना आरम्भ की एवं सम्वत् 2001 वि. में दोनों भाग सम्पूर्ण किये। इनका प्रकाशन सम्वत् 2019 विक्रमी में हुआ।

यह बहुत ही विनम्र, सुशील, सदाचारी और परोपकारी पुण्यात्मा थे। त्रिपुण्डधारी, विशाल-काय किशोर चन्द्र की चन्द्रिका सभी को सुरसरि के सदृश मनोहारी और हितकारी थी ।

भगवान् अनन्त हैं, उसकी कथा अनन्त है, यद्यपि यह विराट् विज्ञों द्वारा ही वर्ण्य है, तो भी यदि अज्ञ जन भी उसका वर्णन करें तो उसकी महिमा नहीं घटती। विनयावनत कवि किशोर' की उक्ति है -

'सरस सुधा-रस हरि-चरित, मेरो बिरस बखान ।
माटी हूँ के घट भरे, घटे न सुरसरि - मान ।।[2]

'अहो भाग्य से इन पंक्तियों के लेखक को आपके भव्य स्वरूप का दर्शन ही नहीं, आपके साहित्य का अध्ययन भी प्राप्त हुआ है। एक बार दोहों के सुधा-सागर में मग्न मन में ये दो पंक्तियां गूँज उठीं -

'भक्ति, युक्ति-युत मुक्ति-मय, दोहे हैं चितचोर ।
भाव किशोर किशोर' के, मचा जगत् में शोर ।।[3]

इनकी साहित्य-साधना पर कतिपय साहित्य-मनीषियों के मत इस प्रकार हैं -

"सारी रचना रस संसिक्त है, रस प्रवाह भी बराबर चलता रहता है और सहृदयता को स्पष्टतया सूचित करता है।"[4]

---

1. किशोर, व्रजचन्द विनोद, उन्तरार्द्ध, पृष्ठ सं. 469
2. वही, पृष्ठ 470
3. सत्यव्रत शर्मा 'अजेय', किशोर की काव्य-कला, रामराज्य, 16 नवम्बर, 1951
4. डा.रामशंकर शुक्ल 'रसाल', व्रजचन्द्र विनोद, उन्तरार्द्ध, सम्मति, पृष्ठ 'ख'

"हिन्दी कवियों के साहचर्य में निरन्तर रहने के कारण श्री कपूर ने काव्यात्मक गुणों का भी इस पुस्तक में नियोजन किया है।"[1]

"आपने दोहों की रचना में अच्छी सफलता और कौशल प्राप्त किया है।"[2]

"व्रजचन्द्र विनोद की भाषा, व्रज एवं खड़ीबोलियों का सम्मिश्रण है।"[3]

"यह महाकाव्य हमारे जीवन को कितना कुछ नहीं बना देगा, इसमें सन्देह नहीं ।"[4]

"यों तो मुक्तक दोहाकार एक से एक बढ़कर हुये और हैं, परन्तु एक ही विषय पर इतना विशाल ग्रन्थ कदाचित् ही हो। ..... कवि ने अपने विचारों को स्पष्ट भाषा में लिखने का प्रयत्न किया है। कहीं खड़ीबोली, कहीं-कहीं पड़ीबोली भी। ..... यह विशाल ग्रन्थ जिसमें महाकाव्य के सभी मुख्य गुण प्रस्तुत हैं, भगवत् प्रेमियों को रुचिकर और जन-साधारण को भी उपयोगी सिद्ध होगा।"[5]

"प्रबन्ध काव्य-रचना के लिए जिस आश्वस्त वातावरण, निश्चिन्त जीवन और शान्त अध्यवसायपूर्ण कवि कर्म के अभ्यास की आवश्यकता होती है वे स्वातन्त्र्य-संग्राम के संघर्षपूर्ण उन दिवसों में दुर्लभ थे। फिर भी, आचार्य जी के कवि-कर्म के इस अंग की पूर्ति उनके सुयोग्य शिष्य श्री किशोरचन्द्र कपूर 'किशोर' ने 'व्रजचन्द्र-विनोद' नामक विशाल महाकाव्य दोहों में लिख कर की है।"[6]

"आप बड़े ब्राह्मण-भक्त हैं तथा सन्त-महात्माओं पर अटूट श्रद्धा रखते हैं। इधर कुछ ख़याल भी लिखे हैं।"[7]

किशोरचन्द्र जी के यहां सदा कवि-दरबार जुड़ा रहता था। स्वामी नारायणानन्द जी भी सनेही जी की भांति इस दरबार की शोभा थे। एक बार सन् 1952 में पं0 बनारसीदास जी चतुर्वेदी 'गणेश स्मृतिग्रन्थ' के सिलसिले में कानपुर पधारे तो किशोरचन्द्र जी ने स्वामी जी की प्रेरणा से अपनी गली में ख़यालों के दंगल का आयोजन किया था, जिसे देखकर चतुर्वेदी जी बहुत प्रसन्न हुए थे। स्वामी जी के सम्पर्क से 'किशोर' जी ने कतिपय मधुर लावनियों का सृजन किया था, जिनका संग्रह अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है। एक लावनी में अपने स्वभाव का चित्रण आपने इस प्रकार किया है -

---

1. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, व्रजचन्द्र विनोद, उत्तरार्द्ध, सम्मति, पृष्ठ 'क'
2. महर्षि जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल वैद्य, वही, पृष्ठ 'ग'
3. डा॰मुंशीराम शर्मा, वही, पृष्ठ 'घ'
4. डा॰सतीशचन्द्र चित्रे, वही, पृष्ठ 'ङ'
5. गयाप्रसाद शुक्ल सनेही, दो शब्द, व्रजचन्द्र-विनोदपूर्वार्द्ध, पृष्ठ 1,2,3
6. डा॰विश्वनाथ गौड़, आचार्य सनेही अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ 504
7. स्वामी नारायणानन्द, लावनी का इतिहास, पृष्ठ 315

मैं कब किसकी परवाह किया करता हूँ ।
बस ज़िक्र संवलिया शाह का किया करता हूँ।।
वह ख़ालिक मालिक त्रिभुवन पति विश्वम्भर।
सच्चिदानन्द आनन्द कन्द शंकर हर ।।
वह रक्षक पालक गुणातीत परमेश्वर ।
वह घट-घट व्यापक हर शै में जलवागर।।
मैं हर दम उसकी चाह किया करता हूँ ।
बस ज़िक्र संवलिया शाह का किया करता हूँ ।।'

महादेव शंकर और योगिराज कृष्ण में इनकी दृष्टि में कोई भेद नहीं था, दोनों की उपासना आप समान रूप से करते थे -

'महादेव हैं देव कृष्ण बन व्रज में आये अवतारी ।
दोनों में कुछ भेद नहीं है, दोनों की महिमा न्यारी।।
निर्गुण जिसको कहा वेद ने, वही रूप हर शंकर का ।
वही रूप घनश्याम रूप अवतार हुआ परमेश्वर का ।।
डिमिक डिमिक डमरू बाजा स्वर ताल लिये अनहद स्वर का।
सुन्दर वंशी बजा कृष्ण ने, मन वश किया चराचर का ।।
महादेव कैलाश निवासी, वृन्दावन में बनवारी ।
दोनों में कुछ भेद नहीं है, दोनों की महिमा न्यारी ।।'

इनके स्वर्ग सिधार जाने से कानपुर के कवि-समाज के सम्मिलन-केन्द्र के रूप में प्रसिद्ध इनका निवासस्थल तो सूना हो ही गया है, इस नगर की साहित्यिक एकसूत्रता भी विच्छिन्न होगई है। कवियों के ऐसे क़द्रदां अब कहाँ ?

शंकरलाल कानोड़िया -

इनका जन्म सम्वत् 1961 वि. में हुआ था। इनके पूर्वज रामगढ़ मारवाड़ के निवासी थे। कानोड़िया जी कपड़े के प्रतिष्ठित व्यापारी थे। विरहाना रोड़ पर इनका निवास स्थान 'श्रीनिकेतन' है। अब इनके सुपुत्र श्री नन्दकिशोर कानोड़िया कार-बार संभाले हुए हैं, इन्हें भी काव्य-रचना का शौक़ है, और यह **'अनजान'** उपनाम से यदा-कदा कुछ लिख लेते हैं।

सन् 1951 में श्री कालिकाप्रसाद 'सुन्दर' के अनुरोध से मैंने हनुमान जी की आरती लिखी थी, कानोडिया जी ने उस आरती को बोर्ड पर लिखवा कर हनुमान-वाटिका जाजमऊ में स्थित हनुमान जी के मन्दिर में स्थापित कराया था। वहीं हनुमान मेले के अवसर पर श्री शंकरलाल जी से मेरा परिचय हुआ था।

"शिव जी पर लिखी हुई आपने अपनी कतिपय रचनाएँ मुझे सुनाई जो मुझे बहुत पसंद आई। ..... जहाँ वह एक अच्छे व्यवसायी हैं, वहीं एक साहित्यप्रेमी कवि भी।"[1]

"सुकवि", अक्टूबर 1949 ई. में आपकी लावनी **'बापू की याद में'** छपी थी। आपका सचित्र परिचय देते हुए सम्पादक श्री मोहन प्यारे शुक्ल ने लिखा था -

"उस समय कानपुर में लावनी (खयालबाजी) का प्रचार अवशिष्ट था। आप जब कुछ लिखते हैं तो उसी रंग में।"

इन्हें लावनी से काफ़ी प्रेम था। यह प्रायः लावनी के दंगल आयोजित कराते रहते थे और बाहर से आने वाले लावनीकारों का यथायोग्य सम्मान करते थे।

"आप लावनी लिखते भी हैं और अच्छी लिखते हैं।"[2]

आपने शृंगार और भक्ति, दोनों ही धाराओं में लिखा है। अलकावलि के सौन्दर्य का वर्णन करते हुये आप कहते हैं -

'क्या गोल कपोलन के ऊपर, लटकाली लट हुशियारी से।
मानों मुखचन्द्र छिपाय लियो, घनघोर घटा घनकारी से।।'

वाणी और अर्थ के समान सम्पृक्त पार्वती-परमेश्वर के स्वरूप का वर्णन इन्होंने **'गौरी-शंकर शृंगार'** नामक लावनी में इस प्रकार किया है -

'राज रहे कैलाश पै कर शृंगार आज कैलाशपती।
जटाजूट में गंग विराजे, वाम अंग श्री पारवती।।
शिव जी के उन्नत मस्तक पर, चारु चन्द्रमा चमक रहा।
गौरी की बिंदिया में गुरु-सा, दिव्य तेज है दमक रहा।।
भंग पिये हर, आँखों में है रंग अनोखा झलक रहा।
गिरिजा के रतनारे नयनों में प्रेमामृत छलक रहा।।
शिव जी लखते थे गौरी को, गौरी शिव जी को लखती।
जटाजूट में गंग विराजे, बाम अंग श्री पारवती।।'[3]

---

1. सत्यव्रत शर्मा 'अजेय', दो शब्द, शंकर स्तवन, कवर पृष्ठ सं. 2
2. स्वामी नारायणानन्द, लावनी का इतिहास, पृष्ठ सं. 319
3. शंकरलाल कानौड़िया, शंकर-स्तवन, पृष्ठ सं. 12

पं0 किशोरीलाल जी एडवोकेट -

आपका जन्म सन् 1892 ई. के लगभग हुआ था। यह राष्ट्रीय स्वंय सेवक संघ के समर्थक, हिन्दू संस्कृति के पोषक एवं सनातन धर्मावलम्बी थे। स्वामी नारायणानन्द के सम्पर्क से यह लावनी लिखने लगे थे।

'आपको लावनी से सदैव प्रेम रहा है, ... किसी भी विषय को लावनी छंद में ही लिखना पसंद करते हैं।'[1]

आज देश का ब्राह्मण सोया हुआ है, उसे उद्‌बोधन करते हुए आपने लिखा था -

"उठो ब्राह्मणों आलस छोड़ो, वैदिक धर्म प्रचार करो ।
ज्ञान-भानु का प्रकाश देकर, भारत का उद्धार करो।।"

---

1. स्वामी नारायणानन्द, लावनी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 319

निष्कर्ष

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन से सिद्ध होता है कि हिन्दी के आधुनिक युग के वैतालिक पं0 प्रतापनारायण मिश्र जैसे महाकवि 'लावनी' की ही देन हैं। उनकी काव्य-प्रतिभा के अंकुर लावनीकारों की संगति से ही प्रस्फुटित हुए थे।

स्वामी नारायणानन्द, सनेही जी, पं0 माखनलाल चतुर्वेदी, नवीन जी और भगवतीचरण वर्मा ने लावनी में राष्ट्रीयता और प्रकृति-सात्म्य का सन्निवेश कर उसे नये आयाम दिए एवं खड़ीबोली को परिष्कृत कर राष्ट्रभाषा का रूप प्रदान किया। श्रीकृष्ण खत्री पहलवान ने लावनी-गायन से ही प्रेरित होकर कानपुर में 'नौटंकी' विधा का उन्नयन किया, जिसमें बहरे तबील, सोहनी आदि अनेक लावनी की रंगतों का समावेश किया गया है।

लावनी के 'तुर्रा तथा कलग़ी' दोनों ही पक्ष आज से लगभग 200 वर्ष पूर्व से कानपुर में लावनी-गायन की अजस्र धारा प्रवाहित करते रहे। **तुर्रापक्ष** में मदारीलाल उस्ताद, आशाराम, उस्ताद बदरुद्दीन, प्रेमसुख उस्ताद, भैरोंसिहं उस्ताद, रामदयाल, उस्ताद बादल, ग़फ़ूर, मुंशी ख़ादिम, पं0 रामदयाल त्रिपाठी, पं0 प्रभुदयाल जी महाराज, मास्टर प्यारेलाल, मनीराम तिवारी, स्वामी ब्लाकटानन्द, चुन्नी गुरु, स्वामी नारायणानन्द आदि ने शृंगार, भक्ति और देशप्रेम-परक समर्थ रचनाएँ कीं और अखाड़े की परम्परा को जीवित रक्खा। उधर **कलग़ीपक्ष** में श्यामसिंह उस्ताद, मौलवी अफ़सर, तेगसिंह, काशीदीन मणिलाल मिश्र, शोर, पन्नालाल खत्री, महेश, गुल, रुस्तम मास्टर और डा.अहमद आदि अपनी रचनाओं से अध्यात्म, शृंगार और राष्ट्रीयता की धारा बहाते रहे। कानपुर के यह अखाड़े लखनऊ, बरेली आदि दूर-दूर तक फैल गए थे।

कानपुर के आधुनिक कवियों पर भी लावनी का प्रभाव पड़ा। प्रतापनारायण मिश्र तो ख़यालबाजों की मण्डली में सम्मिलित होकर कभी-कभी चंग भी खड़का लेते थे, जब आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जुही में निवास करने लगे तो वह भी लावनी के लावण्य पर मुग्ध हुए बिना न रह सके। स्वामी नारायणानन्द की मित्रता के कारण सनेही जी ने अपने राष्ट्रीय विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम लावनी को ही बनाया। **'एक भारतीय आत्मा'** और **'नवीन'** जी की मस्ती लावनी में समा गई, उनकी श्रेष्ठतम राष्ट्रीय रचनाएँ लावनी छंदों में ही लिखी गई। घनाक्षरी के बादशाह अनूप जी और सवैया-सम्राट् 'हितैषी' जी भी लावनी-छंद के संस्पर्श के मोह का संवरण नहीं कर सके। इन कवियों का भाषा-सौन्दर्य लावनी के दर्पण में ही सजा-सँवरा है।

भगवती चरण वर्मा ने लावनी छंद को ही आत्माभिव्यञ्जन के उपयुक्त समझा और इन्होंने लावनी में दूरान्तर अन्त्यानुप्रास मूलक प्रयोग भी किये। अभिराम शर्मा ने शृंगारपरक लावनियाँ लिखीं तो 'हृदयेश' ने 'हालावाद' के प्रसार के लिये लावनी छंद को ही चुना, 'तरल' और 'नीरज' ने भी लावनी को आत्माभिव्यक्ति के उपयुक्त समझ कर इसे अपने काव्य में प्रयुक्त किया।

कानपुर के धनी मानी व्यक्तियों में चुन्नीलाल गर्ग, शालिगराम बजाज, किशोरचन्द्र कपूर, शंकरलाल कानोंडिया आदि ने अध्यात्म, शृंगार, भक्ति और राष्ट्रप्रेमपरक लावनियाँ लिखीं।

कानपुर के सम्पूर्ण साहित्य-सागर में अवगाहन करने पर यह सार निकलता है कि लावनी में आज से 200 वर्ष पूर्व खड़ीबोली का सफल प्रयोग होने लगा था। रीतिकाल और आधुनिककाल के सन्धिकाल में लावनी की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। इन सभी लावनीकारों में हिन्दू-मुसलिम ऐक्य की दृढ़भावना थी। सभी ने अध्यात्म और शृंगार के अतिरिक्त युगानुरूप राष्ट्रीय विचारों को भी अपने काव्य में अपना कर जन-मानस तक पहुँचाया है ।

....

पंचम अध्याय

काव्यशास्त्रीय मूल्यांकन

###

विवेच्य लावनी-साहित्य का काव्यशास्त्रीय मूल्यांकन

किसी भी साहित्य का काव्यशास्त्रीय मूल्यांकन कलापक्ष एवं भावपक्ष के आधार पर ही किया जाता है। अतएव यहाँ लावनी साहित्य के दोनों पक्षों का अनुशीलन क्रमशः प्रस्तुत है।

(क) लावनी का कलापक्ष

कलापक्ष के अन्तर्गत लावनी की भाषा, शैली, छंद एवं अलंकार योजना का समावेश किया गया है ।

भाषा:

मनोगत भावों की अभिव्यक्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन भाषा है। समस्त सत्तावान् पदार्थ साहित्य, पुराणेतिहास, धर्म एवं तत्त्वों का मुखरण इसी भाषा के माध्यम से सम्पन्न होता है। काव्य की भाषा बोल-चाल एवं ज्ञान-विज्ञान की भाषा से कुछ भिन्न होती है। वह अपने विशिष्ट गुणों से सशक्त रूप में मानवीय चेतना की अभिव्यक्ति कर जीवन के विभिन्न क्षेत्रों को उजागर करती है।

लावनीकारों की भाषा **'बहता निर्मल नीर'** है, उसमें न तो संस्कृत के प्रति पूर्वाग्रह है और न अरबी-फ़ारसी के प्रति मोह। वह अधिकतर मिलीजुली साफ़-सुथरी, सहज और स्वाभाविक है। उसके शब्द-समूह से अर्थ इस प्रकार सम्पृक्त है जैसे जल से तरंग।

लावनी का शब्द-संगठन :

लावनीकारों ने भावों के अनुरूप कहीं कोमल, कहीं कठोर, कहीं ह्रस्व और कहीं अमात्रिक वर्णों का विन्यास किया है। इनके मधुरतम शब्दों के सुव्यस्थित रूप इनके काव्य की निजी विशेषता है।

कोमल अक्षर-योजना :

माधुर्य गुण को व्यक्त करने के लिये प्रायः टवर्ग अनुपयुक्त होता है, अतः ऐसे स्थलों पर लावनीकारों ने इसका परित्याग कर कोमल-कान्त अक्षरों का ही संयोजन किया है, यथा -

'रचा रास व्रजराज आज सज साज सुहाना फूलों का ।
हरियाने के बीच आज जंगल हरियाना फूलों का ।।'[1]

कठोर अक्षर-योजना :

वीर रस एवं रौद्र रस का जैसा परिपाक **'टवर्ग'** के द्वारा निष्पन्न होता है, वैसा अन्य किसी वर्ग के द्वारा नहीं। इन्होंने ओजस्वी विषयों के वर्णन में इस वर्ग को अपनाया है -

'डरे दुष्ट जो हते निशाचर, प्रताप महिमा का है अखंडित ।
डहक से कांपे असुर वो थर-थर, प्रताप महिमा का है प्रचंडित।।'[2]

द्विमात्रिक या दीर्घ वर्णसमूह से भावों की भयानकता अभिव्यंजित होती है, अतः भय और विस्मय आदि को व्यक्त करने के लिये दीर्घ वर्णों का प्रयोग किया गया है-

'ऊंची काली दीवारों के घेरे में ।
डाकू चोरों बटमारों के डेरे में ।।'[3]

एक मात्रिक या लघु अक्षरों का गुम्फन भी मधुरता का ही प्रतीक है, लावनीकारों ने इन एक मात्रिक अक्षरों को अमात्रिक अर्थात् - इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, अनुस्वार तथा विसर्गों से रहित रूप में चित्रित किया है -

'तज कर असत, ग्रहन कर सत-पथ,
मगन रहत मन, सर धर रज ।
रज धर चरन गहत मन हरषत,
कहत मसल - सब तज, हर भज ।।'[4]

शब्दों के संगठन में संगीतात्मकता का भी उच्च स्थान है। इन कवियों की वाणी में नाद-सौंदर्य प्रायशः पाया जाता है -

'लहराय जटन में गंग ।
गौरि संग, अरधंग अंग, लपटे भुजंग, शिव पिये भंग।।'[5]

इनका शब्द-चयन निराला ही है, उसमें कलात्मक ढंग से कल्पना, भावना और विचारों को यथातथ्य रूप में प्रकट करने की क्षमता है।

---

1. उस्ताद भौरों सिंह
2. पं0 प्रभुदयाल जी महाराज
3. माखनलाल चतुर्वेदी
4. स्वामी नारायणानन्द
5. चुन्नी गुरु

शब्द-शक्ति :

जिससे शब्द के अर्थ का सही-सही बोध होता है, उसे शब्द-शक्ति कहते हैं; अथवा बोधक शब्दों और बोध्य पदार्थ के सम्बन्ध को शब्द-शक्ति कहते हैं। अर्थ और शब्द तीन प्रकार के हैं - **वाचक, लाक्षणिक** और **व्यञ्जक**। इनका बोध कराने वाली शक्तियाँ - **अभिधा, लक्षणा** और **व्यञ्जना** कहलाती हैं। लावनीकारों की रचनाओं में ये तीनों शक्तियाँ प्रकट हुई हैं ।

अभिधा -

इससे रूढ़, यौगिक एवं योगरूढ़ शब्दों के अर्थ का ज्ञान होता है। एक ही अर्थ का बोध कराने वाले व्युत्पत्तिरहित **'काशी'** आदि रूढ़, प्रकृति और प्रत्यय के योग से बनने वाले **'अघहारी'** आदि शब्द यौगिक, और यौगिक होते हुए भी रूढ़ शब्दों के समान एक ही विशिष्ट अर्थ के वाचक **'त्रिपुरारि'** आदि शब्द योगरूढ़ होते हैं।

अभिधामूलक इन तीनों प्रकार के शब्दों से युक्त एक पद्य देखिए -

'अविनाशी कैलाशी काशी सर्व निवासी पंचानन ।
त्रिपुरारी अघहारी न्यारी कला तुम्हारी आनँद घन ।।'[1]

इसमें **'काशी'** रूढ़ शब्द है, **'अघहारी'** यौगिक और **'त्रिपुरारि'** योग रूढ़ हैं।

लक्षणा -

मुख्यार्थ सिद्धि में बाधा होने पर रूढ़ि या प्रयोजन के आधार पर अभिधार्थ से सम्बन्धित अन्य अर्थ को व्यक्त करने वाली शक्ति **'लक्षणा'** होती है। इसी आधार पर यह **'रूढ़ि'** और **'प्रयोजनवती'** दो प्रकार की है, फिर प्रयोजनवती के मुख्य दो भेद हैं - **'गौणी'** और **'शुद्धा'**। इनके भी अनेक भेदोपभेद मम्मटाचार्य के **काव्यप्रकाश** में वर्णित हैं। विस्तारभय से एक ही उदाहरण यहाँ दिया जा रहा है -

'इक तो फूल-सा गात, दूसरे पहना बाना फूलों का ।
एक फूल को पड़ा लाख सिर बोझ उठाना फूलों का।।'[2]

यहाँ **'एक फूल'** का प्रयोग सुकुमारी सुन्दरी के लिये हुआ है, अतः **'शुद्धा साध्यवसाना लक्षणा'** है ।

1· मदारीलाल उस्ताद
2· उस्ताद भैरों सिंह

व्यञ्जना -

अभिधार्थ और लक्षणार्थ से परे जिस शक्ति द्वारा एक तृतीय व्यंग्यार्थ का बोध होता है, उसे **'व्यञ्जना'** कहते हैं। यह **'शाब्दी'** और **'आर्थी'** भेद से दो प्रकार की है। शाब्दी व्यंजना में शब्द-सौन्दर्य की और आर्थी-व्यंजना में अर्थ-सौन्दर्य की प्रधानता रहती है। आर्थी व्यंजना 10 प्रकार की है फिर **'वाच्य', 'लक्ष्य'** और **'व्यंग्य'** के आधार पर प्रत्येक के तीन-तीन भेद होते हैं। इस प्रकार इसके 30 भेद होते हैं। शाब्दी व्यंजना **'अभिधामूला'** और **'लक्षणामूला'** दो प्रकार की है। अभिधामूला के 14 भेद होते हैं। लक्षणामूला प्रयोजनवती लक्षणा के काव्यप्रकाश के आधार पर 12 भेद और साहित्यदर्पण के अनुसार 60 भेद होते हैं।

उस्ताद बादल ने उस्ताद मदारी पर फब्ती कसी -

थे कभी 'मदारी' अब तो बने क़लन्दर ।
डुगडुगी बजाते फिरो शहर के अन्दर ।।'

तुरन्त **उस्ताद मदारी** ने ज़वाब दिया -

'मैं बना मदारी फिरूँ शहर के अन्दर ।
ता दिरना दिरना नाच अरे बन 'बन्दर'।।'

यहाँ **'मदारी'** और **'बन्दर'** शब्द व्यंजनात्मक हैं। 'मदारी' कवि का नाम है, परन्तु यहाँ उसका प्रयोग बन्दर-भालू नचाने वाले के अर्थ में किया गया है। एवं **'बन्दर'** शब्द द्वारा 'बादल' को एक स्तनपायी पशु, जिसकी कुछ बातें मनुष्य से मिलती हैं, और जिसमें बुद्धि कुछ-कुछ विकसित होती है, के रूप में व्यंजित किया है। यहाँ 'मदारी' के योग में 'क़लन्दर' का प्रयोग भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। यद्यपि यह शब्द ईश्वर के ध्यान-भजन में मस्त रहने वाले फक्कड़ के लिए भी प्रयुक्त होता है, परन्तु यहाँ **'बन्दर-भालू नचाने वाले'** के अर्थ में ही इसका प्रयोग किया गया है।

इस प्रकार सुष्ठु शब्द-संगठन से सुसज्जित वाक्यों के सुचारु संयोजन से लावनीकाव्य का सौन्दर्य सर्वत्र समुल्लसित है। भले ही उन वाक्यों का समीकरण व्याकरण के नियमों से निबद्ध न हो, परन्तु उनमें योग्यता,[1] आकांक्षा,[2] और सान्निध्य[3] का कसकसाव भलीभांति हुआ है।

---

1. योग्यता - एक शब्द का दूसरे शब्द के साथ सम्बन्ध ।
2. आकांक्षा - किसी बात को स्पष्ट करने के लिये दूसरे शब्द या वाक्यांश की आवश्यकता ।
3. सान्निध्य - जिसमें पूरा वाक्य एक साथ ही कहा जाय। इसमें शब्दों के मध्य 'देश' या 'काल का विचार नहीं होता है।

शैली :

एक ही बात को विद्वान् अपने-अपने ढंग से अनेक प्रकार से कहते हैं। इस कहने के ढ़ंग का नाम ही शैली है। अपने मनोगत भावों को व्यक्त करने का ढ़ंग सभी कवियों का अपना-अपना है। इसीलिए काव्य में हमारे द्वारा पूर्वश्रुत अथवा पूर्वपठित अर्थ भी कथन-शैली की इस विभिन्नता के कारण नव रसयुक्त होकर हमें उसी प्रकार नए से लगते हैं जैसेकि मधुमास में द्रुम-दल अभिनव पल्लवों से आच्छादित होकर नए-नए से प्रतीत होते हैं।

शैली, लेखक के - बुद्धि, भाव और कल्पनापरक तत्त्वों को प्रदर्शित करती है। उच्चकोटि की शैली में **यथार्थता, स्पष्टता** और **उपयुक्तता** इन तीनों गुणों का होना आवश्यक है। इस प्रकार शैली व्यक्तिगत अनुभूति की स्पष्ट अभिव्यञ्जना है, जोकि लेखक के व्यक्तित्व की भी परिचायिका है।

"शैली की सर्वप्रथम विशेषता चमत्कार है। यह चमत्कार शब्दगत और अर्थगत दोनों होता है। भारतीय आचार्यों ने चमत्कार को रस का सार तक मान लिया है। **आनन्दवर्धनाचार्य** ने चमत्कार को काव्यरसास्वादन के अर्थ में प्रयुक्त किया है। **महाकवि क्षेमेन्द्र** ने भी इसे काव्य का प्राण माना है। अपने 'कवि कंठाभरण' में एक स्थल पर लिखा है कि चमत्कार-विहीन काव्य उसी प्रकार असुन्दर प्रतीत होता है जिस प्रकार लावण्यहीन ललना-यौवन।"[1]

गुणगत, शब्दगत, अर्थगत, शब्दार्थगत, अलंकारगत, रसगत, वक्रोक्तिगत एवं औचित्यगत रमणीयता काव्य की बाह्यशैली को चमत्कृत करने वाले प्रमुख तत्त्व हैं। गुण, रीति, रस, वृत्ति, पाक, शय्या और अलंकृति यह चमत्कार के सात कारण[*] विद्वानों ने माने हैं।

यहाँ गुण एवं रीति की रमणीयता पर प्रकाश डाला जा रहा है, क्योंकि शैली-सौष्ठव में इन्हीं का अधिक महत्त्व है।

गुणगत रमणीयता -

'श्लेषः प्रसादः समता समाधिर्माधुर्यमोजः पदसौकुमार्यम् ।
अर्थस्य च व्यक्तिरुदारता च, कान्तिश्च काव्यार्थगुणादशैते।।'[2]

अर्थात् - श्लेष, प्रसाद, समता, समाधि, माधुर्य, ओज, पदसौकुमार्य, अर्थव्यक्ति, उदारता और कान्ति काव्य के यह दश गुण हैं। इनमें साहित्यशास्त्र में प्रसाद, माधुर्य एवं ओज ये तीन गुण ही मुख्य हैं। लावनी साहित्य में भी इन्हीं की प्रमुखता है।

---

1. डा0 गोविन्द त्रिगुणायत, शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त, प्रथम भाग, पृष्ठ 106
*. 'गुणं रीतिं रसं वृत्तिं पाकं शैयामलंकृतिम् ।
सप्तैतानि चमत्कारकारणं ब्रुवते बुधाः ।। -पण्डित विश्वेश्वर, चमत्कार-चन्द्रिका
2. भरतमुनि, नाट्यशास्त्र ।

प्रसाद गुण -

जहाँ किसी रचना को पढ़ते ही अर्थ समझ में आ जाए और हृदय प्रसन्न हो जाए, वहां प्रसादगुण होता है, जैसे -

'ललित लवंग लता-सी ललना, मान करे क्यों नितै-नितै ।
तव वियोग में मन बहलावे, श्याम चन्द्र को चितै-चितै ।।'[1]

माधुर्य गुण -

इसमें **टवर्ग** के आदि के चार अक्षर वर्जित हैं, इसमें अन्तःकरण को आनन्द से द्रवित करने की क्षमता होती है -

'किन सोतिन गृह रात रहे, पिय प्रात होत गृह आये हो ।
कहा काम है धाम हमारे, जाओ, जहँ सुख पाये हो ।।'[2]

ओज गुण -

जहाँ द्वित्व एवं संयुक्त वर्ण हों, टवर्ग तथा समास-युक्त कठोर वर्णों का विन्यास हो, वहां चित्त को स्फूर्ति से उत्तेजित करने वाला ओज गुण होता है -

'चहुं ओर अधर्मी दुष्ट बढ़े, उनका भी गर्व गिरा दो तुम ।
अथवा संहार सबों का कर, जमपुर सत्वर पहुँचा दो तुम ।।'[3]

लावनीकारों ने भाषा के क्षेत्र में क्रान्ति लाकर उसमें व्रजभाषा के स्थान पर खड़ीबोली को धीरे-धीरे प्रतिष्ठित किया। रीतिकालीन सवैया और घनाक्षरी आदि छंदों के स्थान पर 'बहरे तबील', 'राधिका' और 'ताटंक' आदि छंदों को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। काव्य में नए-नए उपमानों की खोज कर गोरे-गोरे गालों को अंग्रेजों की और काले-काले बालों को हिन्दुस्तानियों की उपमा दी -

'गोरे-गोरे गालों पर क्या घिरी घटा बालों की है ।
मचा शोर है, चढ़ाई लन्दन पर कालों की है।।'[4]

बिम्बयोजना और प्रतीक-विधान -

इसी प्रकार नए-नए अलंकारों के प्रयोग, बिम्बयोजना एवं प्रतीक-विधान आदि इनकी शैलीगत नवीनता को सूचित करने वाली प्रवृत्तियाँ हैं। ये कवि अपनी कल्पना को चित्रात्मक भाषा में प्रकाशित करने की कला में भी प्रवीण थे, जिसे हम 'बिम्बयोजना' कह सकते हैं -

'दो शानों पर शाने से लटें निकाली
मेरी जान दुता कर ऐसे काकुल के ।
लटक फरिश्ते रहे जिस तरह चाह में उस गुल के ।।'[5]

1. मणिलाल मिश्र
2. उस्ताद श्य.मसिंह
3. मणिलाल मिश्र
4. काशीदीन
5. भैरोंसिंह उस्ताद

विस्तृत अर्थ को संकेतों में समेटने के कौशल अर्थात् 'प्रतीक विधान' में तो इन्हें पूर्ण सफलता मिली है -

'मेरे पंख बलम गये तोड़, महल में छोड़
उड़ा नहीं जाय सखी री बिन पर से ।
गंगा-जमना बढ़ीं रिमझिम माया का जल बरसे।'[1]

यहाँ पक्षी 'आत्मा' का प्रतीक और गंगा-यमुना 'इड़ा' और 'पिंगला' की प्रतीक हैं।

इनकी शैली की यथार्थता बुद्धिगत न होकर भावगत है। उसके मूर्तविधान की योजना कहीं अलंकार रूप में तो कहीं प्रतीक रूप में हुई है। सबेरा होने की सूचना कवि ने इन शब्दों में प्रस्तुत की -

'मुसाफिरों ने सराय छोड़ी, पति को छोड़ा तिरिया ने।
पंडित बाँचें वेद, लगे सरवर पर हंसा भी आने ।।
जगा रही वृष भानु-लली ।
ज्योति झिलमिलाई दीपक की, पनिहारिन जल भरन चली ।।'[2]

भाव विशेष की तीव्रता को अभिव्यक्त करने के लिए एक ही शब्द के समानार्थी अनेक शब्दों का एक साथ प्रयोग इनकी रचनाओं में-

'बांध्यो बननिधि, नीरनिधि, जलधि, सिन्धु, वारीश।
सत्य, तोयनिधि, कंपति, उदधि, पयोधि, नदीश।।'[3]

तुलसीदास की शैली के समान ही पाया जाता है-

'यार मेरा बेवफ़ा न होता, क्यों खोता अपनी जां को ।
लाज को, पत को, हया को, शर्म को, शौकत को, शाँ को।।'[4]

अधिकतर इन्होंने उत्तम पुरुष में अपने हृदयगत भाव प्रकट किये हैं, जोकि इनकी शैली की प्रमुख विशेषता है ।

रीति सौष्ठव :

'रीङ् गताविति धातोः सा व्युत्पत्त्या रीतिरुच्यते ।'[5]

अर्थात् रीङ धातु से क्तिन् प्रत्यय के योग से रीति शब्द की सिद्धि होती है। माधुर्य आदि गुणों से युक्त रचना ही रीति है -

'विशिष्टा पद-रचना रीतिः । विशेषो गुणात्मा ।।'[6]

---

1. रामदयाल उर्फ दयालचन्द
2. उस्ताद बादल
3. रामचरितमानस, लंका काण्ड, दोहा संख्या-5
4. भैरोंसिंह उस्ताद
5. महाराज भोज, सरस्वती कण्ठाभरण, 2/27
6. वामन, काव्यालंकार सूत्र, 1/2/7

संस्कृत साहित्य में रीति 'शैली' का पर्याय है। वचन-विन्यास से उत्पन्न यह रीति तीन प्रकार की होती है -

1. वैदर्भी, 2. पांचाली, 3. गौड़ी ।

वैदर्भी से कर्णप्रिय माधुर्य गुण का प्रस्रवण होता है। राजशेखर ने इसे सर्वश्रेष्ठ माना है, इसमें समास नहीं होते, अर्थगुण की तथा प्रेयान् की प्रधानता रहती है। यह शृंगार, करुण, भयानक, तथा अद्‌भुत् रस-रचना में अभीष्ट शैली है।

पांचाली माधुर्य और सौकुमार्य गुणों की संवाहिका है, यह ईषदसमास होती है, इसमें शब्द और अर्थ का समान गुम्फन होता है।

गौड़ी समासयुक्त होती है, इसमें ओज और कान्ति की प्रधानता होती है।

रुचि-वैशिष्ट्य के अनुसार ही कविजनों ने रीतियों का निर्वाचन किया है। लावनी अध्यात्म और शृंगार की ही प्रमुखरूप से संवाहिका है, अतः उसमें वैदर्भी रीति का ही बाहुल्य है, वैसे पांचाली और गौड़ी भी स्वल्प मात्रा में इन कवियों द्वारा ग्राह्य हुई हैं। तीनों का एक-एक उदाहरण प्रस्तुत है -

वैदर्भी -

'जिसके कारण वन-वन में फिरा, वह श्रीहरि वृन्दावन में मिला ।
मथुरा में मिला, गोकुल में मिला, कुंजन में मिला, सखियन में मिला।।'[1]

इसमें टवर्ग के आदि के चारों वर्णों में से कोई नहीं है, और समास भी नहीं है।

पांचाली -

'प्रहार क्या कोई करे उस पै जो, कृपादृष्टि हरिहर के तले हो।
प्रसन्न मन उस पुरुष का हरक्षण, निशा तथा बासर के तले हो।।'[2]

यहाँ 'कृपा-दृष्टि' और 'हरिहर' में क्रमशः षष्ठी तत्पुरुष एवं द्वन्द्वसमास है। शब्द और अर्थ दोनों ही समान रूप से गुम्फित हुये हैं।

गौड़ी -

'जन-जननी-वल्लभ औ व्यसनी, विनयी सा पहचान पड़े ।
शीघ्र कोपी हो विदित-लोक जो, जन्म 'सिंह' में जान पड़े ।।'[3]

इसमें 'जन-जननी-वल्लभ' में षष्ठी तत्पुरुष समास है तथा 'विदित-लोक' भी समस्यन्त पद है। ओज गुण की प्रधानता है ।

---

1. पं0 गौरीशंकर
2. स्वामी नारायणानन्द
3. पं0 रामदयाल त्रिपाठी

छंद-योजना

"'छंदि' आच्छादने धातु में 'असुन्' प्रत्यय लगाकर छन्दस् शब्द बनता है, जिसका अर्थ है- प्रसन्न करना, आच्छादन करना, या बांधना आदि ।"

"छादयन्ति ह वा एनं छन्दांसि पापात्कर्मणा यस्यां कस्यांचि दि्दशि कामयते ।"[1]

छंद मनुष्य को पाप सम्बन्धों से हटाते हैं।

"काव्य का छन्दोबद्धता से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है, तथा समस्त पुराना काव्य ही नहीं, विश्व के काव्य-साहित्य का अधिकतम भाग छन्दोबद्ध ही है। यह इसलिये कि छंद स्वतः काव्य के प्रेषणीय भाव को तदनुरूप 'लय' में अभिव्यक्त करता है। ..... छंद की 'लय' जहां स्वर के दीर्घ या ह्रस्वोच्चारण की दृष्टि से संगीत से सम्बद्ध है, वहां उसका उतार-चढ़ाव, याति, तुक : (अनुप्रास तथा यमक) आदि का सम्बन्ध नृत्य के अंग-संचालन से है।"[2]

यह छंद उसी अनादि पुरुष से प्रकाशित हुए-

'छन्दा ꣳ सि जज्ञिरे तस्मात् ..... ।"[3]

छंदों की रागान्विति पाठक और परमात्मा के बीच की द्वैत-भावना को हृदय से दूर कर तादात्म्य स्थिति की स्थापिका है -

"तरल तरंग सु छंद वर, हरत द्वैत-तरु-मूल।"[4]

कुछ विद्वान् लावनी में छंद न मान कर केवल 'लय' को ही मानते हैं, परन्तु मेरी दृष्टि में तो लय और छंद में कोई भेद नहीं है। क्योंकि -

"लय छंद की ही नहीं स्वयं काव्य की आत्मा है। यही कारण है कि लय रहित काव्य की कल्पना करना ही असंभव है। कुछ नये हिन्दी कवियों ने छंदोबन्धन से मुक्ति पाने का जिहाद छेड़ते वक़्त इस बात का ख़याल नहीं रखा कि काव्य सब कुछ बर्दाश्त कर सकता है, लयात्मक अराजकता नहीं ।"[5]

इसी प्रकार छन्दोभंगता भी असह्य है -

जेमण सहई कणअ तुला कि तुलिअं अद्ध अद्धेण ।
तेमण सहई सवण तुला अव छन्दं छन्द भंगेण ।।[6]

'लावनी' स्वयं एक छंद का नाम है, जैसा कि 'लावनी बनाम राधिका' प्रकरण में सिद्ध किया जा चुका है। इसी प्रकार ताटंक को भी लावनी छंद कहा जाता है, परन्तु इसका विकास एक प्रतियोगी गायन कला के रूप में ही हुआ, जिसमें विभिन्न छंदों का समावेश होता गया।

---

1. ऐतरेय आरण्यक 2·6·6
2. डा·भोलाशंकर व्यास, प्राकृत पैंगलम् द्वितीय भाग, पृष्ठ 29।
3. यजुर्वेद अ·31 मंत्र 7
4. गोस्वामी तुलसीदास, तुलसी-सतसई : 4/100
5. डा·भोलाशंकर व्यास,प्राकृत पैंगलम्,द्वितीय भाग,पृ· 297-98
6. प्रा·पै·प्रथम भाग, पृ· 13

अब से लगभग 100 वर्ष पूर्व लावनी में अनेकों छंद प्रचलित थे, उन्हीं छंदों को अपनाकर आधुनिक हिन्दी के कवि आगे बढ़े।

"खड़ीबोली के लिये छंदों का चुनाव एक गंभीर समस्या थी। कवियों ने नये-नये प्रयोग किये और विभिन्न छंदों में खड़ी बोली को ढ़ाल कर उसके सौन्दर्य की अभिवृद्धि की। श्रीधर पाठक ने अपने भावों को भिन्नभिन्न छंदों में अभिव्यक्त किया । इन्होंने लावनी-छंदों का प्रयोग किया, परन्तु इसका प्रयोग भारतेन्दु-युग में भी हो चुका था। "लावनी शैली जनता को अधिक प्रिय थी।"[1]

"भारतेन्दु काल के मुक्तक काव्य में कविन्त, सवैया, लावनी, कजली आदि विविध छंदों का प्रयोग हुआ है।"[2]

कोशकारों ने भी लावनी को एक छंद विशेष की संज्ञा दी है -

"लावनी - स्त्री0 एक गीत छंद।"[3]

संस्कृत के छंदःशास्त्र के नियमानुसार प्रत्येक छंद के नाम की अपनी विशेषता कुछ छंदोंविशेष के नाम से ही प्रकट होती है, जैसे "मन्त मयूर" से केकी की केका का मन्द्र तार भाव स्पष्ट है, 'शिखरिणी' से वृक्षों के शिखर, पर्वतों के शिखर, मनुष्यों के केशयुक्त शिखर, सेभी चिक्कणता और मादेव का भाव व्यंजित होता है, अर्थात् इसमें रस-माधुर्य, वर्ण-माधुर्य सभी कुछ है। इसी प्रकार 'लावनी' का भी शाब्दिक महत्त्व है। छंदों के लावण्य को लेकर 'लावणी' छंद बना, जो सौन्दर्य का वाचक है। कुछ विद्वानों का यह कथन कि - 'लावनी एक छंद नहीं ।'[4] छंदशास्त्र की अज्ञता का सूचक है ।

लावनी के अधिकतर छंदों का आगमन प्राकृत से हुआ है, प्राकृत से अपभ्रंश और अपभ्रंश से ये छन्द महाराष्ट्र में गये और 'मरैठी' कहलाये, मरैठी से इनकी रंगतें विकसित होकर खड़ीबोली हिन्दी में प्रचलित हुई। अतः यह समझना ग़लत है कि फ़ारसी से लावनी के छंदों या बहरों का सम्बन्ध है। सम्भवतः हिन्दी जगत् में यह भ्रान्ति उर्दू में लिखी गई लावनियों और ख़यालों को देख कर हुई हो, क्योंकि हिन्दी के कुछ विद्वानों का मत है कि -

"लावनी, रेख़ता और उर्दू की बहरों की भाषा अरबी, फ़ारसी शब्दों से मिश्रित और उन्हीं के अनुरूप ढ़ली हुई है।"[5]

वास्तव में लावनी में उर्दू छंदों का प्रयोग नहीं हुआ अपितु उर्दू वालों ने ही इसमें प्रयुक्त छंदों को 'बहर' नाम देकर अपने में मिला लिया है। लावनी उर्दू-छंदों के प्रयोग से ही साहित्यिक विधा बन गई है, ऐसी भी कुछ लोगों को भ्रान्ति है -

---

1. गुलावराय, हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास, पृष्ठ 280
2. डा.गोविन्दराम शर्मा, हिन्दी साहित्य और उसकी प्रमुख प्रवृत्तियाँ, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ 64।
3. सं0 कालिकाप्रसाद आदि, बृहत् हिन्दी कोश, पृष्ठ 1169
4. डा.पु.च.मानव, हि.ला.सा.पर हि.सं.का प्रभाव, पृष्ठ 65
5. डा.लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृष्ठ 306

"लावनी की लय यद्यपि लोकसाहित्य के अधिक निकट है, परन्तु बाद में उर्दू छंदों के प्रयोग और 'ख़याल' की गायकी के प्रवेश से उस पर साहित्यिक मुलम्मा चढ़ गया ।"[1]

उपर्युक्त कथन में विषय ज्ञान के अधूरेपन के साथ-साथ यह संकीर्णता भी झलकती है कि लावनी लोकसाहित्य ही है, शिष्ट साहित्य नहीं। जबकि इन्हीं महोदया ने इसी स्थल पर सन् 1900 ई. पूर्व हिन्दी साहित्य में उपलब्ध काव्यरूपों की जो तालिका प्रस्तुत की है, उसमें लावनी को गेय काव्य में स्थान दिया है।"[2]

दरअसल 'उर्दू कोई जुदी भाषा नहीं, वह हिन्दी भाषा की ही एक शाखा है, उर्दू के प्रसिद्ध विद्वान् मौलाना आज़ाद का तो यहां तक कथन है कि उर्दू ज़बान व्रज भाषा से निकली है। ..... पिंगलशास्त्र के प्रस्तार भेदानुसार तो फ़ारसी वा उर्दू के कोई छंद ऐसे नहीं जो हिन्दी के भेदों से बाहर हों।'[3]

फ़ारसी और उर्दू के आलिम फ़ाज़िल भी इल्मे-अरूज़ (छंदःशास्त्रीय ज्ञान) के बारे में संस्कृत के असर को तहे दिल से तसलीम करते हैं -

"यहाँ तक कहा जा सकता है कि फ़ारसी के कुछ नये अरक़ान (गण) भी संस्कृत छंदशास्त्र से प्रेरणा प्राप्त करके रचे गये हैं।"[4]

अतः यह तो सही है कि 'रेख़ता लावनी आदि में अनेक अरबी फ़ारसी बहरें मिलती हैं।"[5] परन्तु मैं असद अली के इस मत से सहमत नहीं कि "..... लावनी ..... आदि में हिन्दी कवियों ने अरबी फ़ारसी बहरों का प्रयोग किया है।"[6]

वस्तुतः लावनी का निजी छंदोविधान है जो संस्कृत से अनुप्राणित एवं भारतीय संस्कृति के अनुरूप निर्मित है।

"लावनी में शतशः छंदों का समावेश पाया जाता है। ..... यदि हम विचारपूर्वक देखें तो मालूम होगा कि कुछ पुरानी रंगत या बहर ऐसी इसमें हैं, जिनको हम महाराष्ट्र से आई हुई कह सकते हैं। कुछ रंगत, वज़न ऐसे हैं जो हिन्दी से आये हैं, लेकिन कुछ वज़न ऐसे भी हैं जो केवल संगीत से सम्बन्ध रखते हैं। आख़िरश हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि 'लावनी' के अन्दर सभी बज़न और छंद एवं रागों का समावेश है। उनमें कुछ रंगतें तो ऐसी हैं जिनके नाम हैं, और कुछ ऐसी हैं जो बची हुई या नई रंगत नाम से पुकारी जाती हैं। ..... माननीय महात्मा अनन्तगिरि जी ने 360 रंगतों के ख़याल लिखे हैं, तथा अन्य उस्तादों ने भी बहुतेरी रंगतें लिखी हैं।"[7]

---

1. डा. निर्मला जैन, आधुनिक हिन्दी काव्य में रूप विधाएं, प्रथम सं0, पृष्ठ 55
2. द्रष्टव्य, वही, पृष्ठ 55
3. जगन्नाथ प्रसाद 'भानु', छन्दःप्रभाकर, पृष्ठ 269
4. अल्लामा अख़लाक देहलवी, फ़न्ने शायरी, पृष्ठ 10
5. पराशियन इन्फ्लुएन्स ऑन हिन्दी, पृष्ठ 76
6. भक्तिकालीन हिन्दी साहित्य पर मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव, पृष्ठ 233,34
7. स्वामी नारायणानन्द, लावनी का इतिहास, पृष्ठ 20-21

लावनीकारों में स्वच्छन्द छंद प्रयोग की प्रवृत्ति के कारण लावनी काव्य में सम, विषम, अर्ध सम एवं अनेक मिश्रित छंदों का प्रयोग हुआ है।

"श्रीमान् घोड जी[1] ने मराठी लावनियों के छंद विधान के सम्बन्ध में परिश्रमपूर्वक कार्य किया है। मराठी लावनियों में पुंडरीक, केशव करणी, शुभवदना, हरि भगिनी, मदन शर आदि छंदों को खोज लिया है। ..... इन हिन्दी लावनियों में छंद विधान खोजना कठिन-सा हो जाता है। डा.त्रिलोकीनारायण दीक्षित जी[2] का कथन है कि महाराष्ट्र देश से मिलने वाले लावनी के छंद 22 मात्रा के होते हैं। इसे राधा, वशीकरण भी कहा जाता है। प्राप्त हिन्दी लावनियों में 22 मात्रा वाली राधा, वशीकरण छंद की लावनियां मिलती हैं।"[3]

"मराठी लावनी में अपनी विशेषता है। ..... इनकी अधिकांश रचना आठ मात्राओं के पद्मावर्तनी वृत्त में पाई जाती हैं। कहीं-कहीं छह मात्राओं के मृगवर्तनी वृत्त में भी पाई जाती हैं। ये लावनियाँ ताल गेय जाति वृत्तों में रहती थीं।"[4]

राजस्थान में लावणी ख़्याल के नाम से ही प्रसिद्ध है। - "ये ख्याल मुख्यता टोड़ी, लावणी, कालंगड़ा, माढ़, चन्द्रायणी, कव्वाली, झड़, तिलड़ी, रेखता, घुमणी, थियेटर, वराड़ी, तिपदी, दुलाणी, तिलाणी, चौंझड़ी, मारवाड़ी, मैवाली, अली बख़्शी, शेखावटी, पहाड़, झेला, लंगड़ी, रासड़ी, आरसी, हिंडोली, रतवो, जानकी, (कव्वाली), बोझड़ी, खड़ी, पारकी, भैरवी, ग़ज़ल, कैरवी, चलन, हरियाना, रसिया, झाड़शाही, कड़ी, खेंच, घूमर, सोरठ, वियोग, डेड कड़ी, आसावरी, सोहनी, ठुमरी, दादरा, शकीस्ता, तबील, शकील, द्रोण, विरूदन, विकट विरूदन, दिलबहार, जिगरी, एजन, जुल्मार, दिलपसंद, वशीकरण, पद्मावत, सिंगाविलोचन, (बहर तबील), झिंझोटी, जै जै वन्ती, भर विलावणी, काफी, देश, घनाश्री, कानड़ो, करनी और मारु आदि रागों तथा रंगतों में लिखे मिलते हैं।"[5]

लावनी में लघु गुरु :

लावनी के सभी छंद मात्रिक होते हैं, संयुक्त शब्द का आदि अक्षर और पादान्त में प्रयुक्त अक्षर दीर्घ अर्थात् द्विमात्रिक माना जाता है। ह्रस्व को दीर्घ और दीर्घ को लय के अनुसार ह्रस्व पढ़ लेने की भी परम्परा लावनी-जगत् में है। यह परम्परा संस्कृत साहित्य से प्राप्त हुई है, ह्रस्व को दीर्घ मानना संयुक्ताद्य या पादान्त होने पर ही श्रेष्ठ समझा जाता है, अन्यत्र नहीं। परन्तु संस्कृत में दीर्घ को ह्रस्व करने की प्रथा प्रायः नहीं है, यद्यपि ऐसा करने की छूट इस नियम से मिल जाती है-

---

1. द्रष्टव्य, मराठी लावनी, मधुकर वासुदेव घोंड
2. द्रष्टव्य, सप्तसिन्धु, जून 1963, पृष्ठ 17
3. कृष्णा जी गंगाधर दिवाकर, महाराष्ट्र का हिन्दी लोक काव्य, पृष्ठ 107-108
4. म.वा.घोंड, मराठी लावणी, पृष्ठ 14, सन्दर्भांकित, वही, पृष्ठ 29
5. डा.महेन्द्र भानावत, राजस्थान की ख्याल सम्पदा, लोक कला निबन्धावली, भाग 4, पृष्ठ 83,84

'अपि माषं मषं कुर्याच्छन्दोभंगं न कारयेत् ।।'

इसका उदाहरण निम्नलिखित पंक्ति में देखने को मिलता है -

'आनिन्यिरे श्रेणीकृतास्तथान्यैः परस्परं बालधि सन्निबद्धाः।'[1]

यहाँ छंद की दृष्टि से 'श्रेणिकृताः' पढ़ा जायगा ।

लावनी के कुशल गायक भी अपनी सुविधा के लिये वर्णों के ह्रस्व-दीर्घ में परिवर्तन कर लेते हैं, जो वैध है। हिन्दी में सवैया छंद इसी नियम के अनुसार पढ़ा जाता है। गुजराती कविता में यह छूट पूर्ण वैधानिक हो गई है, वहाँ संस्कृत वृत्तों में भी यही पद्धति अपनाई जाती है। उर्दू में भी इस छूट की पूरी छूट है। शेरो-शायरी में दीर्घ को ह्रस्व कर पढ़ना स्वाभाविक हो गया है।

लावनी में यति नियम -

लावनी साहित्य के अन्तर्गत प्रयुक्त छंदों में यति के नियम को लावनीकारों ने विकल्प से ग्रहण किया है। "भरत ने नाट्यशास्त्र के छंद:शास्त्र प्रकरण में अधिकांश लक्षणों में यति का निर्देश नहीं किया है।"[2] प्राकृत में भी मात्रिक छंदों में यति को विशेष महत्त्व नहीं दिया गया। कुछ छंद लावनी में ऐसे हैं जो अपभ्रंश की तरह ताल पर ही आधारित हैं, जैसे तिकाड़िया' या चौताला, उनमें निश्चित स्थान पर यति-नियम का निर्वाह हुआ है। लावनी में अतुकान्त कविता का प्रचलन नहीं, रदीफ, काफिया, (अन्त्यानुप्रास और उपान्त्यानुप्रास) सहित कविता लिखने की ही परम्परा है हिन्दीसाहित्य में छंद के चारों चरणों में अन्त्यानुप्रास का निर्वाह लावनी के अन्त्य क्रम की देन है।

गणागण विचार -

जिन भक्त नाथूराम लावनीकार की कुछ हस्तलिखित रचनाएँ हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग के संग्रहालय में विद्यमान हैं, जिनकी सूचना हम द्वितीय अध्याय में दे चुके हैं, उन्हीं में 'पिंगल की लावनी' भी है, जिसमें आठों गणों के ह्रस्व-दीर्घ वर्णों पर विचार करने के साथ-साथ गणों के देव, फल सहित शुभ-अशुभ स्वरूप पर भी शास्त्रीय चिन्तन किया गया है, यहाँ उसे अविकल उद्धृत किया जा रहा है -

---

1. महाकवि भट्टि, रावणवध, ।।.42
2. डा. भोलाशंकर व्यास, प्राकृत पैंगलम्, भाग 2, पृष्ठ 307

गन अगन जान कर छन्द बनाना चाहिये ।
पिंगल बिन जाने कभी न गाना चाहिये ।। टेक/

अब कवि जन के हित हेतु भेद कुछ गाता ।
संक्षेपासप जो सदा काम में आता ।।
हे बसु[1] प्रकार गन भेद प्रसिद्ध बताता ।
शुभ चउ प्रकार अरु असुभ चार समझाता ।।
कविजनों ! ध्यान में इसको लाना चाहिये ।
पिंगल बिन जाने कभी न गाना चाहिये ।। /1

मगन में त्रिगुरु भू देव लक्ष्य उपजाता ।
नगन में त्रिलघु सुरदेव आयु बढ़ाता ।।
यगन में आद लघु उदक देव सुत दाता ।
भगण में आदि गुरु ससि यश देत विख्याता ।।
ये हैं चारों शुभ इन्हें लगाना चाहिये ।
पिंगल बिन जाने कभी न गाना चाहिये ।। /2

जगन में मध्य गुरु रवि गद[2] दाता जानो ।
रगन के मध्य लघु अग्नि मृत्यु दे मानो ।।
सगन के अन्त गुरु पवन फिरावे थानो ।
तगन के अन्त लघु व्योम अफल पहिचानो ।।
ये हैं चारों गन असुभ बचाना चाहिये ।
पिंगल बिन जाने कभी न गाना चाहिये ।। /3

लघु इक मात्रिक को कहें सुनो कवि भाई ।
दीरघ दो मात्रा आदि सुनो मन लाई ।।
द्वित्व के आदि में वर्ण पड़े जो आई ।
दीरघ जानो, शिक्षा गुरु ने बतलाई ।।
कहें 'नाथूराम' जिन भक्त सो माना चाहिये ।
पिंगल बिन जाने कभी न गाना चाहिये ।। /4"[3]

---

1. बसु = 8 अर्थात् गण 8 होते हैं : SSS (मगण), ||| (नगण), |SS (यगण), S|| (भगण), |S| (जगण), S|S (रगण), ||S (सगण), SS| (तगण)
2. गद = रोग
3. नाथूराम, लावणी संग्रह : हस्त लिखित, पुस्तक संख्या 2069, वेष्टन 1337, हिन्दी साहित्य सं0 प्रयाग

"जहाँ तक तत्तत् गणों के एकसाथ नियोजित करने पर उसके सुख दुःखादि फलों का प्रश्न है, छन्दःशास्त्र का यह अंश वैज्ञानिक नहीं जान पड़ता, उसका वही नगण्य महत्त्व है, जो फलित ज्योतिष का, किन्तु गण के बाद अमुक गण ही अच्छा रहेगा, अमुक गण नहीं, इसका वस्तुतः सूक्ष्मातिसूक्ष्म संगीतात्मक तत्त्व से सम्बन्ध जान पड़ता है। इन मैत्र्यादि सम्बन्धों का छन्दःशास्त्र में ठीक वही महत्त्व जान पड़ता है, जो संगीतशास्त्र में वादी, संवादी, अनुवादी तथा विवादी स्वरों का परस्पर माना जाता है।"[1]

उपर्युक्त आठ गण एवं गुरु, लघु मिल कर पिंगल के दशाक्षर कहलाते हैं -

"मय रस तज भन गल सहित, दश अक्षर इन सोहिं ।
सर्वशास्त्र व्यापित लखों, विश्व विष्णु सों जोहिं ।।"[2]

छन्दःशास्त्रीयइन प्रमुख संकेतों के नियमों से बंधा हुआ लावनी-काव्य का अपना स्वतन्त्र छन्दोविधान है, जिसके पद्य-सृजन में मात्रा, वर्ण, गति, यति-नियम तथा चरणान्त में समता पाई जाती है, अतः -

'मत्त वरण गति यति नियम, अन्तहिं समता बन्द ।
जा पद रचना में मिले, 'भानु' भनत स्वइ छन्द ।।'[3]

अब हम हिन्दी लावनी साहित्य में प्रयुक्त प्रसिद्ध-प्रसिद्ध छंदों के लक्षण उदाहरण सहित यहाँ प्रस्तुत करते हैं, जिन्हें लावनी में **'रंगत'** या **'बहर'** भी कहते हैं -

लावनी में प्रयुक्त प्रसिद्ध छंद

1. लावनी -

इसे **'राधिका'**, **'वशीकरण'** और **'छोटी रंगत'** भी कहते हैं, गाने वाले **'मरहठी खयाल'** भी कहते हैं। इसमें 22 मात्राएं होती हैं, 13, 9 पर क्रमशः यति और विराम होता है, इसी छंद में भानुकवि ने **"छन्दःसारावली"** में इसका लक्षण यों लिखा है -

'तेरा पै सज नव कला, 'राधिका' रानी ।'

प्रवाह के कारण यति का नियम सर्वत्र अनिवार्य नहीं, यथा -

'माया दूती ने दी बिगाड़ महबूबी ।'[4]

इस पंक्ति में यति का निर्वाह नहीं है, अब ऐसा पद्य प्रस्तुत है, जिसमें यति नियम का निवाहा है, -

'मैं कब किसकी परवाह, किया करता हूँ ।
बस ज़िक्र सवंलिया शाह, किया करता हूँ ।।'[5]

---

1. ललितकिशोर सिंह, ध्वनि और संगीत, पृष्ठ 87
2. भानु कवि, छन्दःप्रभाकर, छठा सं0, भूमिका पृष्ठ 4
3. वही, पृष्ठ ।
4. अहमद अली
5. किशोरचन्द्र कपूर

पुत्तनलाल विद्यार्थी और **लक्ष्मीधर शुक्ल** ने **'सरल पिंगल'** में इसके प्रत्येक चरण में 12 व 10 के विश्राम से 22 मात्राएँ मानी हैं। परन्तु "22 से 25 मात्राएँ तक इस रंगत में खप जाती हैं।"[1] यह कहना ग़लत है, क्योंकि मात्राएँ तो 22 ही रहेंगी, परन्तु दीर्घ वर्ण को लघु कर पढ़ लिया जाता है, जैसे -

'गर किसी के हक़ में कोई काँटे बोयेगा ।
फूलों की सेज पर वह कैसे सोयेगा ।।'[2]

इस पंक्ति में **'के'** और **'कोई'** को गिरा कर पढ़ा जायेगा, अर्थात् **'के'** की एक मात्रा और **'कोई'** की दो मात्राएं मानी जायेंगी । सम्भवतः इसका विकास प्राकृत **'मालती'** छन्द से हुआ हो, इसके ।। वर्ण दीर्घ होते हैं, प्रवाह समान है, जैसे -

'णीला मेहा मज्झे बिज्जू णच्चन्ता ।'[3]

2. खड़ी रंगत -

यह **'ताटंक'** छंद है, **'वीर'** अथवा **'आल्हा'** छंद का भी समावेश इसी छंद में हो जाता है। इसमें 30 मात्राएँ होती हैं। 16 और 14 मात्राओं पर क्रमशः यति और विराम होता है। वीर छंद के योग में 16 और 15 मात्राओं पर क्रमशः यति और विराम होगा, दोनों का प्रवाह समान है। कुछ विद्वानों ने इसे भी **'लावनी'** छंद कहा है- 'इसके अंत में गुरु लघु का कोई विशेष नियम नहीं है।'[4]

'तीस कला हो यति सोलह पर, तभी 'लावनी' छंद बने ।'[5]

राजाराम शास्त्री तथा **रामस्वरूप शास्त्री** ने **'छन्दःरत्नावली'** में लावनी छंदों को ताटंक का ही भेद माना है। कुछ विद्वान् इसका विकास प्राकृत छंद **'सारोगेका'** से मानते हैं, जिसमें 15 गुरु वर्ण होते हैं। वस्तुतः इसका विकास **'चौबोला'** छंद से हुआ है।

'तीस मत्त चौबोल है, सोरह चौदह तत्तु ।'[6]

भिखारीदास **जी** ने इसका उदाहरण यह दिया है -

'सुमति होत उपकार लखहि तो, झूठा कहत न संक गहे ।
पर अपकार होत जानहि तो, कबहुँ न साँची बोल कहे ।।'[7]

---

1. डा.पु.चं. 'मानव', हिन्दी लावनी साहित्य पर हिन्दी सन्त साहित्य का प्रभाव, पृष्ठ 67
2. लाला शिवप्रसाद
3. प्राकृत पैंगलम्, भाग 2, पृष्ठ 238
4. भानु कवि, छन्दःसारावली, पृष्ठ 28
5. पं.तिलकधर शर्मा, छन्दःपराग, प्रथम सं0 पृष्ठ 36
6. भिखारीदास, छन्दार्णव, 5-225
7. वही, 5-228

'लावनी' का उदाहरण -

'रचा रास ब्रज राज आज सज साज सुहाना फूलों का ।
हरियाने के बीच आज जंगल हरियाना फूलों का ।।'[1]

× × ×

'काया रूपी कमल काल रूपी कुंजर जब लेवे तोड़ ।
मूल मनोरथ नष्ट होंय सब, भाव-भृंग जावें संग छोड़ ।।'[2]

डा. **पुण्यमचन्द 'मानव'** ने **'रंगत रिन्दानी'** से इस रंगत की तुलना की है, जो भ्रामक है, उनका यह कथन कि 'इसमें प्रायः 30-32 मात्राएँ एक पंक्ति में होती हैं।'[3] - भी अनुचित है; क्योंकि 'ताटंक' और 'वीर' छंदों के अनुरूप इसमें 30-31 मात्राओं का ही प्रतिपंक्ति में विधान है, 30-32 का नहीं। मैंने लावनी में व्यवहृत दोनों प्रकार के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं, पहला उदाहरण 30 मात्राओं का है, जो 'ताटंक' के अनुरूप है और दूसरा उदाहरण 31 मात्राओं का है जो 'वीर' के अनुरूप है, इन्हीं डा. पुण्यमचन्द जी ने खड़ीरंगत की पट्टा

'फाइल फाइल फाइल फाइल, फाइल फाइल फाइल फाइल ।'[4]

दी है, जो बिल्कुल ग़लत है। इसके अनुसार तो निश्चित रूप से ही खड़ी रंगत में 32 मात्राओं का विधान बन जायेगा। लावनी साहित्य के प्रसिद्ध आचार्य **नारायणानन्द जी** ने भी खड़ी रंगत को 30 मात्राओं के 'ताटंक' या 31 मात्रा के 'वीर' छंद के सदृश ही माना है।'[5]

हिन्दी के महाकवि **प्रसाद** ने 'कामायनी' में और **मैथिलीशरण गुप्त** ने 'पंचवटी' आदि काव्यों में इस छंद का सफलतापूर्वक प्रयोग किया है, जिसका सोदाहरण उल्लेख षष्ठ अध्याय में किया जायेगा ।

विशेष -

श्री पिंगलाचार्य विरचित 'छन्दःशास्त्रम्' के वैतालीयाधिकार में वर्णित छंद **'आपातालिका'** ताटंक (लावनी) के सदृश है -

'आपातालिका भ्यौ ग् । 4 । 34 //

रेफ लकार गकाराणामपवादः। 'द्विस्वरा अयुक् पादे युग्वसवोऽन्ते' (पि.सू. 4/32)
इत्यनुवर्तते। पूर्वे लक्षणयोरन्ते भकारो गकारौ - च भवतः, तद्वैतालीयम् -
'आपातालिका' नाम लभते। तत्रोदाहरणम् -

पिंगल केशी कपिलाक्षी वा चाटा विकटोन्नतदन्ती ।'[6]

---

1. उस्ताद भैरोसिंह
2. स्वामी नारायणानन्द
3. हि.ला.सा. पर सं.सा.का प्रभाव, पृष्ठ 69
4. हि.ला.सा.पर सं.सा.का प्रभाव, पृष्ठ 70
5. द्रष्टव्य लावनी का इतिहास, पृष्ठ 46
6. श्री पिंगलनाग, छन्दःशास्त्रम्, तृतीय संस्करण, पृष्ठ 60

अतः यह भी संभव है कि 'रंगत खड़ी' का विकास इसी 'आपातालिका' वृत्त से हुआ हो।

उर्दू वाले इसे **'बड़ी'** या **'बदीअ सरीअ'** कहते हैं -

'अर्थ महिमन का करता हूँ, सुनो ख़्याल मुझे बख्शो ज्ञान ।'[1]

'सुलासी सुमब्बा' भी इसी का नाम है -

'राधा जी का देख के गहना, सूरज चांद लगे गहने ।'[2]

कुछ इसे **'शमीम मुसब्बा मुतसाबे हत कारिब'** भी कहते हैं -

'कहूं चार घोड़ों का ख्याल अब सुने फ़कीर और दुनियादार ।'[3]

बाबा बनारसी ने **'दोबे', 'सार'** ललित या **'नरेन्द्र'** छंद के ढंग पर इस 'बहर खड़ी' को कुछ गिरा कर प्रयुक्त किया है, इसमें 28 मात्राएँ हैं, **जयदेव के गीत गोविन्द** और **मैथिल-कोकिल-विद्यापति-पदावली** का इस पर स्पष्ट प्रभाव झलकता है, यथा -

'बहर खड़ी - तीन-तीन मिसरे का चौक '- द्वितीय मुख की स्तुति -

दश कन्धर अभिमान हनन लंका दाहन बजरंगी ।

पूरण ब्रह्म अखंड सच्चिदानन्द साधु सत्संगी ।।'[4]

अन्य लावनीकारों में इसका प्रचार कम है, कृष्णभक्ति शाखा के कवियों और संतों ने इस शैली में हिन्दी साहित्य में पर्याप्त रचना की है। इसे हम 'छोटी बहर खड़ी' कह सकते हैं।

3. रंगत लंगड़ी -

इस रंगत के दो पंक्तियों के पद में 57 मात्राएँ होती हैं। पहली पंक्ति में 30 मात्राएँ होती हैं, **16, 14** पर क्रमशः यति और विराम, प्रवाह 'ताटंक' जैसा, परन्तु द्वितीय पंक्ति में **27** मात्राएं ही होती हैं, **8, 19** पर क्रमशः यति और विराम होता है। इसीलिये सम्भवतः इसका नाम **'लंगड़ी'** पड़ा हो। इसका विकास मेरी दृष्टि में प्राकृत **'गाहा'** से हुआ है, यथा -

'सव्वाए गाहा ए सत्तावण्णाइ होंति मत्ताइं ।

पुव्वद्धंमि अ तीसा सत्ताईसा परद्धंमि ।। /57

अर्थात् - सभी गाथाओं में 57 मात्रा होती हैं, पूर्वार्द्ध में 30 मात्रा होती हैं, उत्तरार्द्ध में 27 मात्राएं।'[5]

उदाहरण - 'हुलस हुलस हँस हँस, हँसमुख हरि, हेर हेर हिय करते हैं ।

किलोल कान्हा, किनारे कालिन्दी के करते हैं ।।'[6]

---

1. गौहर, चमनिस्तान ख़यालात गौहर, दूसरा हिस्सा, पृष्ठ 194
2. वही, पृष्ठ 296
3. वही, पृष्ठ 331
4. ला.ब्र.ज्ञान, पृष्ठ 89
5. प्राकृत पैंगलम्, भाग 1, पृष्ठ 54
6. शालिगराम बजाज

तथा - 'तेग लगे तलवार लगे और तीर लगे तो चैन पड़े ।
नैन के मारे, तड़पते हैं कितने बेचैन पड़े ।।'[1]

यह मानना भ्रामक है कि "इसको **'शिकस्ता'** के नाम से भी पुकारा जाता है।"[2] और यह कहना भी ग़लत हैं कि - 'इसमें प्रायः प्रथम पंक्ति में 31-32 मात्राएं और दूसरी पंक्ति में पहले आठ मात्राओं का एक टुकड़ा और टुकड़े के पश्चात् पुनः 19-20 मात्राएं होती हैं।"[3] डा. **पूनमचन्द 'मानव'** ने इस छंद की जो पट्टी प्रस्तुत की है, वह भी दोषपूर्ण है, इसमें पहली पंक्ति में 32 मात्राएं दिखाइ हैं।"[4] उर्दू में इसे **'बदीअ मुसद्दस मुसब्बाशल'** कहा है -

'धर्म पुण्य बन पड़ा न कुछ भी पोट पाप की है सर पर ।
श्रीगंगा जी, तेरी मैं शरन हूँ मुझ पर किरपा कर ।।'[5]

4. रंगत महाराज की -

तीन छंदों के सम्मिश्रण से यह रंगत बनती है, पहली पंक्ति रंगत छोटी (**राधिका**) 22 मात्रा की, दूसरी पंक्ति रंगत **'बे नजीर'** 15 मात्रा की, और तीसरी पंक्ति **'रंगत रवेली'** 26 मात्रा की होती है। पहली पंक्ति के बाद लय सौन्दर्य हेतु **'महाराज'** पद अतिरिक्त जोड़ दिया जाता है। पहली और दूसरी पंक्ति को मिला कर टेक की प्रथम पंक्ति मानी जाती है। इस प्रकार प्रथम पंक्ति में 27 मात्राएं तथा दूसरी पंक्ति में 26 मात्राएं होती हैं।

यह कहना ग़लत है कि - "प्रथम पंक्ति मे 27 मात्राएं होती हैं, इनके पश्चात् 16 मात्राओं का एक छोटा टुकड़ा और होता है, इसके पश्चात् दूसरी पंक्ति में 36-28 मात्राएं होती हैं।"[6]

उदाहरण -

'नहिं बिना हुक्म के पत्ता भी हिलता है, महाराज, सखुन ये सुनाहैमतवारा ।
मरा न मरने से पहले कोई, बेशक मन मारा ।। -टेक-
गर जग को पिंजरा माने अपने दिल में, महाराज, शंका फिर चित ने उपजाई।
पिंजरा एक अनेक हैं तोते, लखे नहीं भाइ ।।
गर निकल गया पिंजरे से कपट वो कर के, महाराज, मिली अपने कुल में जाई।
फंसा मोह-बन्धन में सरासर, रिहा कहां पाइ ।। -चौक-

---

1. आशिके हक्कानी बाबा बनारसी, लावनी ब्रह्मज्ञान, श्याम काशी प्रेस, मथुरा, पृष्ठ 120
2. कल्याणप्रसाद वर्मा, करौली क्षेत्र का ख्याल साहित्य, पृष्ठ 52
3. हि.ला.सा. पर सं.सा. का प्रभाव, पृष्ठ 71
4. द्रष्टव्य, वही, पृष्ठ 72
5. चमनिस्तान ख़यालात गौहर, दूसरा हिस्सा, पृष्ठ 264
6. हि.ला.सा. पर हि.सं.सा. का प्रभाव, पृष्ठ 72

झड़ी - माया के संग से जीव परम पद पाय। ।
हो गया रहित माया से ब्रह्म कहाय। ।।
जब तलक हृदय से कपट न जाय दुराय। ।
हो छुटकारा किस तौर फिरे भरमाय। ।।
महाराज, काल तीनों न गुजारा जी
मरा न मरने से पहले **कोई**, बेशक मन मारा ।।"[1]

अतिरंजित वर्णों को ह्रस्व कर पढ़ना पड़ेगा । इस रंगत में **'जी'** का प्रयोग पादान्त में होने से इसे रंगत **'जी'** से प्रभावित कहा जाता है।

5. रंगत मेरी जान -

इसका विधान भी रंगत **'महाराज'** के समान ही है, अन्तर इतना है कि इसमें 'महाराज' पद के स्थान पर **'मेरी जान'** जोड़ दिया जाता है। किसी रस विशेष से इसका कोई सम्बन्ध नहीं।

उदाहरण- 'आशिक शादिक होकर उस माह ज़बीं पर, मेरी जान, कि जिसने दिल को लगाया जी ।
ख़राब खस्ता हो आखिर उस सनम **को** पाया जी ।।
थी पांच बरस की उमर धुरू गये बन में, मेरी जान, राम से लगन लगाई जी ।
वन-वन घूमें आप नहीं कुछ दहशत खाइ जी ।।
इक जगह बैठ गये नाम का कर आधारा, मेरी जान, लिया ब्रह्माण्ड चढ़ाई जी ।
रोक पवन दी ध्रुव ने मुख से, कर चतुराई जी ।।
तब तीन लोक में मच गया हाहाकारा, मेरी जान, पवन बिन हुई दुख दाई जी ।
विरंचि आकर कहें प्रभू से, वचन सुनाई जी ।।

झड़ी- कोइ भगत आपका हुआ जगत के अन्दर ।
उन रोक लई है पवन, सुनो करुणाकर ।।
बिन पवन दुखी हैं मेरे जीव चराचर ।
तुम करो सहाई त्रिभुवन के परमेश्वर ।
मेरी जान, ये सुनकर दरस दिखाया जी ।
ख़राब खस्ता हो आखिर उस सनम को पाया जी ।।'[2]

इस लावनी के चौक में चार पंक्तियों के बजाय 6 पंक्तियां रखी गई हैं । किसी भी लावनी छंद में इस प्रकार की स्वतन्त्रता चौक-निर्माण में है।

---

1. शम्भुगिरि, ख्याल : तन-पिंजरा, हस्तलिखित लावनी संग्रह, प्राप्ति स्थान, श्री बैजनाथ, ज्वालापुर।
2. रचयिता - अज्ञात, हस्तलिखित लावनी संग्रह, प्राप्तिस्थान वही।

6. रंगत डिढ़खमी

इसकी प्रथम पंक्ति में **'सरसी'** छंद के समान 27 मात्राएं होती हैं, 16, 11 पर क्रमशः यति और विराम, दूसरी पंक्ति में 16 मात्राएं होती हैं, दूसरी पंक्ति के अंत में **'जी'** प्रयुक्त होता है, उसे मिलाकर 16 + 2 = 18 मात्राएं होती हैं, दूसरी पंक्ति का प्रवाह **'शृंगार'** के समान होता है।

उदाहरण- याद ख़ुदाय पाक **रोजो** शब, साज़द दानिश मन्द ।
कदाचित नाहिं व्यापै दुख द्वन्द जी ।।"[1]

श्रीमत्परमहंस **बाबा बनारसी** ने इसे **'बहर जी'** ही कहा है : उन्होंने इस बहर में बहुत-सी लावनियाँ लिखी हैं, एक नमूना देखिए -

जो चाहे सो करे प्रभु उसकी गति लखी न जाय ।
कर्म के लिखे को देय मिटाय जी ।।
कितने ही मर गये तो उनको, पल में दिया जिलाय ।
काल को देखे काले खाय जी ।।
लूला चढै पहाड़ के ऊपर, बिन पौरुष के धाय ।
एक तृण में त्रय लोक समाय जी ।।
सेतु बांध के हरि समुद्र में, पत्थर दिये तराय ।
कर्म के लिखे को देय मिटाय, जी ।।'[2]

अतः यह कहना ग़लत है कि - 'इसकी प्रथम पंक्ति में प्रायः 29 से 31 तक और द्वितीय पंक्ति में प्रायः 16 से 18 तक मात्राएं होती हैं।'[3] अतिरंजित को गिरा कर पढ़ना चाहिए। रंगत **'मुस्त'** या **'मस्त'** भी इसी के अन्तर्गत है।

7. रंगत तिकाड़िया -

"इसे **'खड़ी'** या **'खड़ीतिकाड़िया'** भी कहते हैं, इसका असरा -

'मुख़ाफिफ़ फ़ाल फ़ऊलन फ़ाल फ़ऊलन फ़ालन फ़ालन फ़ालन ।'

लावनी वाले कहते हैं, और **बयतबार अरूज़ लज़ीज़ मुसब्बअ़ सरीअ** या **शमीम मुसब्बअ़ मुतशाबेह तकारुब** या **बवजेह इललव जिहाफ़ात** और भी कह सकते हैं।"[4]

---

1. ला. का इ., पृष्ठ 49
2. परमहंस बनारसी, लावनी ब्रह्मज्ञान, देहाती पुस्तक भण्डार, दिल्ली, सं0, पृष्ठ 80
3. हि.ला.सा. पर हि.सं.सा. का प्रभाव, पृष्ठ 77
4. गौहर, चमनिस्तान ख़यालात गौहर, पृष्ठ 188

इसकी एक पंक्ति में तीन कड़ियां या तीन भंग होते हैं, क्रमशः 8, 8, 8, 8 मात्राओं पर यति होती है, प्रत्येक पंक्ति में 32 मात्राएँ होती हैं। इसका विकास प्राकृत के **तिअभंगी'** या संस्कृत के **त्रिभंगी'** छंद से हुआ है। परन्तु प्राकृत में मात्राओं का क्रम 10, 8, 8, 6 है, यथा -

'सूर सेविअ चरणं मुणि गण सरणं भव भअ हरणं सूल धरं ।
साणिंदिअ बअणं सुन्दर णअणं गिरिवर सअणं णमहं हरं ।।'[1]

लावनी साहित्य में इसका पर्याप्त प्रचलन है, उदाहरण-

'शिवजी के लाल, करो प्रतीपाल, मूरति विशाल, गजराज वदन ।
जय जय गनेश, काटो कलेश, सुख दो हमेश, गिरजा नन्दन ।।'[2]

8. रंगत संगीत -

इसका सामगम संगीत से हुआ है, इसकी प्रथम पंक्ति में 28 मात्राएँ होती हैं, क्रमशः 11, 8, 9 पर यति और विराम, दूसरी पंक्ति में 22 मात्राएं होती हैं, जिसका प्रवाह **'रंगत छोटी'** के सदृश होता है। उदाहरण -

'आई सखी बरसात, नहीं वर साथ, जतन क्या कीजै ।
बिन पीया मेरा बाला जोवना छीजै ।।'[3]

9. रंगत संगीत लंगड़ी -

यह रंगत भी संगीत से आई है, इसकी प्रथम पंक्ति में 49 मात्राएँ होती हैं, क्रमशः 11, 15, 15, 8 पर यति और विराम होता है। दूसरी पंक्ति में 28 मात्राएं होती हैं, क्रमशः 12, 16 पर यति और विराम होता है। प्रथम पंक्ति में क्रमशः अहीर, चौपाई, चौपई, तिलका (दो सगण) मात्रिक तथा वार्णिक वृत्तों का समन्वय है। दूसरी पंक्ति में क्रमशः **'तोमर'**, **'पज्झटिका'** का समन्वय है।

उदाहरण - कर दर्शन की आस, छोड़ा शिव जी ने कैलास,
पहुँचे जसुदा जी के पास, धर रूप जती ।
हँस-हँस पुकारें द्वार, शिव खड़े भीख दो पुत्रवती ।।'[4]

---

1. प्राकृत पेंगलम्, भाग 1, पृष्ठ 167
2. गौहर बदायूनी, चमनिस्तान ख़यालात गौहर, दूसरा हिस्सा, पृष्ठ 189
3. बख़्तावर सिंह, ला. का इ., पृष्ठ 50
4. पं0 गोपीनाथ, वही, पृष्ठ 50

10. रंगत लंगड़ी संगीत दुकड़िया -

इसकी प्रथम पंक्ति का वजन छंद **'मनहरण'** और **'राग ललित'** से मिलता-जुलता है, और इसमें प्रायः 39 मात्राएँ होती हैं, क्रमशः 10, 10, 13, 6 पर यति और विराम, द्वितीय पंक्ति पहली पंक्ति की अपेक्षा कुछ छोटी होती है, इसीलिये इसका नाम **'लंगड़ी'** है, इसमें क्रमशः 10, 7, 14, 7 पर यति और विराम होता है, इसमें कुल 38 मात्राएँ होती हैं; संभव है घनाक्षरी के समान यह मात्रिक न होकर विषम वर्णिक वृत्त हो, और इस दृष्टिकोण से प्रथम पंक्ति में 8, 8, 8, 6 वर्णों पर क्रमशः यति और विराम होगा और दूसरी पंक्ति में 7, 5, 8, 6 वर्णों पर यति और विराम रहेगा।

उदाहरण-

निरख निहाल नयी, अधर संगीत चाल,
नन्द जी के लाल लगे, निरत करन ।
नाचत अहीर री, अधीर सखी, कालिन्दी के-
तीर लगे, आनंद झरन ।।[1]

11. रंगत खड़ी संगीत-चौताला :

इसका वज़न रंगत संगीत दुकड़िया की प्रथम पंक्ति के समान है, अन्तर यही है कि उसकी दूसरी पंक्ति में मात्रा या वर्ण कम हैं, परन्तु इसकी दोनों पंक्तियां सुदृढ़ और समान हैं, इसीलिए इसे रंगत खड़ी संगीत कहते हैं। प्रत्येक पंक्ति में 3 ताल समान चौथी ताल विषम होती है एवं मात्राएं 41 से 43 तक होती हैं। यह ताल पर आधारित है।

उदाहरण -

नीके सभी साज़, सभी अजूबा अन्दाज़, सज-
रंग की समाज, सब व्रज - बाला ।
बरसाने में धूम, लिये संग में हुजूम, होली-
खेलें झूम-झूम, सखि नंद लाला ।।[2]

12. रंगत अजीब सांगीत -

इसकी लय और मात्राएं रंगत खड़ी संगीत चौताला से भिन्न होती हैं, इसकी प्रत्येक पंक्ति में क्रमशः 12, 16, 16, 10 = 54 मात्राएँ होती हैं। इसका सम्बन्ध भी ताल से है।

उदाहरण -

सुन्दर-सुन्दर नारी, जिनकी सूरत लागे प्यारी,
मोतिन से तो मांग सँवारी, गावें हम जोली ।
भर-भर रंग की झारी, मारें सारी व्रज की नारी,
खेलें मनमाहेन गिरधारी, मच रही होली ।।[3]

---

1. बाबा रंगनाथ जी, ला॰ का इ॰ पृष्ठ 50
2. स्वामी नारायणानन्द
3. मुंशी सुखलाल, गुलज़ार सखुन तुर्रा, भाग 3, द्वि॰सं॰, पृ॰10

13. रंगत राग देश -

इसकी प्रत्येक पंक्ति में 14 मात्राएं होती हैं, प्रवाह लावनी (रंगत छोटी) के सदृश होता है।

उदाहरण -

कोई जाय कहो बादर से ।
घर आवे कन्त तब बरसे ।।'[1]

गौहर ने इसे **'सलीम'** लिखा है - 'भज शिव-शिव बारम्बारा ।'[2]

14. रंगत बेनजीर -

इसकी प्रत्येक पंक्ति में 15 मात्राएँ होती हैं, कभी-कभी सोलह मात्राएँ भी हो जाती हैं। इसका प्रवाह **'मौक्तिक दाम'** संस्कृत छंद के समान है, वृन्त रत्नाकर के अनुसार, जिसमें 4 जगण होते हैं -

'चतुर्जगणं वद मौक्तिक दाम ।'

उदाहरण -

बजा कर प्रेम भरी बंसरी ।
श्याम मोहिं कर गया बेबस री ।।[3]

प्राकृत उदाहरण -

कुहू रव तार दुरन्त वसंत ।
कि णिद्दअ काम कि णिद्दअ कंत ।।[4]

इसे **'गौहर'** ने **'ख़फीफ़'** माना है -

वही चेतन है सबका मूल ।
अरे मन शिव का नाम न भूल ।।[5]

15. रंगत शीतल -

यह रंगत राग रागिनियों से निकली है, प्रथम पंक्ति में 13 मात्राएं, दूसरी पंक्ति में 16, 11, पर यति = 27 मात्राएँ होती हैं। जिसकी गति 'सरसी' छंद के समान है। 13, 13 मात्रा वाली 4 पंक्तियों का चौक होता है, उसके बाद चौपाई झड़ी या शेर और फिर उड़ान की 27 मात्राओं की पंक्ति होती हे, पुनरावृन्ति प्रथम पंक्ति (13 मात्रा वाली) की ही की जाती है।

---

1. उस्ताद नत्यासिंह **'तालिब'**, ला. का इ., पृष्ठ 5।
2. **चमनिस्तान ख़्यालात गौहर**, पृष्ठ 214
3. रामसिंह, वही, पृष्ठ 5।
4. प्राकृत पैंगलम्, वर्णवृन्त सं0 134, पृष्ठ 249
5. च.ख.गौ., भाग 2, पृष्ठ 202

उदाहरण -

लहरायं जटन में गंग,
देखि देखि सुर मुनि सुख पावत, बाजत ताल मृदंग ।

दे देते ऋधि सिधि माल ।
जो जरा बजावे गाल ।।
निज जन पर रहत दयाल ।
होते प्रसन्न तत्काल ।।
कोटि जन्म के अघ हर लेते ।
जो मांगे ताको वर देते ।।
पाप ताप मेटें अघ जैते, हर दम रहत निहंग ।
लहरायं जटन में गंग ।।[1]

16. रंगत विरहनी -

इसकी प्रथम पंक्ति में 14+12 = 26 मात्राएँ होती हैं, दूसरी पंक्ति में 10+12 = 22 मात्राएं होती हैं।

उदाहरण -

मत गुलाल कुमकुम रोली, गेरो मुझ पर बोली ।
हमें नहीं भावे, बिन पी बसन्त होली ।।[2]

17. रंगत छैकडिया -

इसकी प्रत्येक पंक्ति में 42 मात्राएं होती हैं। 14,14,14 पर यति और विराम होता है, विराम स्थलों पर तुकान्त ताल का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसे 'सखी' छंद भी कहते हैं, लावनी में इसका संगीतात्मक संस्कार कर प्रत्येक पंक्ति ड्योढ़ी कर ली गई है।

उदाहरण -

चढ़ देखा सखी अटा है, इन्दर दल साज डटा है, चपला कर रही पटा है ।
रिमझिम बरसे (है) पानी, घर में न आया दिल जानी, घिर आई श्याम घटा है।। [3]

18. रंगत नैरंग -

इसकी पहली पंक्ति में 22 मात्राएं होती हैं, क्रमशः 9, 13 पर यति और विराम। दूसरी पंक्ति में 16 मात्राएँ होती हैं, जिसकी लय 'शृंगार छंद' के समान होती है।

---

1. चुन्नी गुरु, ला॰का इ॰, पृष्ठ 240; 2. उस्ताद प्रेमसुख, ला॰का इ॰, पृष्ठ 5। 3. पं॰प्रभुदयाल, ला॰का इ॰, पृष्ठ 52

उदाहरण -

अरे ओ गरदूं[1] बह का है बरसरे बाम ।
गिरा दूं तुझे तो मेरा नाम ।।[2]

अतिरंजित को गिरा कर ह्रस्व कर पढ़ें ।

19. रंगत हक्क़ानी -

इस पर संतों की पदशैली का प्रभाव पूर्णतः स्पष्ट है, पहली पंक्ति में 15 मात्राएँ होती हैं, दूसरी पंक्ति में 26 मात्राएं होती हैं, 16,10 पर क्रमशः यति और विराम, लय 'नवेली रंगत' के समान होती है। प्रथम पंक्ति की टेक ही चौक के पश्चात् दोहराई जाती है।

उदाहरण -

दुई में जुदा नज़र आवे ।
दुई को कर दो दूर तो ख़ुद में ख़ुदा नज़र आवे ।।[3]

रंगत 'रिन्दानी' भी इसी को कहते हैं -

इश्क यों करे हैं नादाने ।
करते हैं पूरा इश्क वही जो, आशिक मस्ताने ।।[4]

20. रंगत शिकस्ता -

स्वामी नारायणानन्द जी ने इस 'बहर' को 'उर्दू-बहर' माना है।[5] इसी प्रकार अन्य विद्वान् भी इसे उर्दू से आई हुई ही मानते हैं, वे इसका नाम **'तक़ारुब मक़बूज मुहब्बक़'** बतलाते हैं। किसी-किसी अरूज़ी के नज़दीक यह **'तक़ारुब मक़बूज असलम'** है। 'गौहर' बदायूंनी ने इसको **'मुतकारिब मुसम्मन असलम मक़सूर', 'बसर अगर अपनी मुक्ति चाहे, तो लब पै हर दम ये लफ़्ज़ लाये।** लिखा है।[6] इसके **अरकान** हैं -

फ़ऊल फ़ेलुन फ़ऊल फ़ेलुन (दोबार)

उदाहरण -

किसी का भी मन रहा नहीं स्थिर, समस्त ध्यानिन के ध्यान छूटे ।
खुली अचानक समाधि शिव की, वो तीक्ष्ण मन्मथ के बाण छूटे ।।[7]

अल्लामा अख़लाक साहब देहल्वी ने इसे **'बहर मुतकारिब मसम्मन मक़बूजे असलम'** माना है और उदाहरण प्रस्तुत किया है -

---

1. गर्दूं = आकाश
2. पन्नालाल, वही, पृष्ठ 52
3. ला.का इ., पृष्ठ 52
4. प्रेमसुख, सन्दर्भांकित - हि.ला.सा. पर हि.सं.सा. का प्रभाव, पृष्ठ 69
5. द्रष्टव्य, ला.का इ., पृष्ठ 53
6. द्रष्टव्य, चमनिस्तान ख़्यालात गौहर, दूसरा हिस्सा, पृष्ठ 194
7. स्वामीनारायणानन्द

जो कोई हम से सितम-कशों को अबस सता कर ख़फ़ा करेगा ।
यही कहेंगे कि जाओ साहब, खुदा तुम्हारा भला करेगा ।।'[1]

इसका दूसरा नाम **'बहरे मकबूजे असलम'** (16 रकनी) माना है। और यह उदाहरण पेश किया है -

'करो तकीकुल कि आशकी में, न यूं करोगे तो क्या करोगे।
अलम यही है तो दर्दमन्दो कहाँ तलक तुम दवा करोगे ।।[2]

दर अस्ल यह दोनों ही बहरें हमरक़्न हैं।

संस्कृत साहित्य में -

यह सुप्रतिष्ठा (पंचाक्षरा वृत्ति - 32) अन्तर्गत वर्णवृत्त है, भानु कवि ने इसका परिचय इस प्रकार दिया है -

'यशोदा (ज ग ग)
जगौ गुपाला । कहै यशोदा । (2 पद)

यह वृत्त **उर्दू** की इस बहर से मिलता है -

फ़ऊल फ़ालन, फ़ऊल फ़ालन फ़ऊल फ़ालन फ़ऊल फ़ालन ।

यथा -

'रहा सिकन्दर यहां न दारा, न है फरीदूं यहाँ न जम है।'[3]

'यशोदा' वृत्त में एक जगण और दो गुरु होते हैं। इसकी 4 बार आवृत्ति होकर **'शिकस्ता'** की एक पंक्ति बनती है।

'हिन्दी में यह लय 'मत्त समक' (ISI SS × 2 का विस्तार) छंद की है।'[4]

'जलोद्‌धत गति (जगण, सगण, जगण, सगण : **'जु साज सहिता जलोद्‌धत गती ।'**[5] एवं इसके मात्रिक रूप **'विहंग'** से **'शिकस्ता'** की लय मिलती है। लावनीकारों ने 'शिकस्ता' लिखने की प्रेरणा अरबी-फ़ारसी से नहीं, अपितु संस्कृत से ही ली होगी, यही कारण है कि उन्होंने इस छंद में संस्कृत भाषा में भी लावनियां लिखी हैं, यथा -

'नमामि पंचाननं त्रिनेत्रं, भजामि विश्वेश्वरं महेशम् ।
शिवं सदा साम्ब शान्त चित्तं धृतांग भस्मं परं परेशम् ।।'[6]

पं0 हृषीकेश चतुर्वेदी (आगरा) ने इसी वृत्त में **'श्री गणपतिस्तवनम्'** 4 चौक की लावनी लिखी है, और इसे 'यशोदावृत्त' ही माना है -

'गजाननं शैलजा-सुतं तं शिवात्मजं सुन्दरं भजेऽहम् ।
यशस्विनं शोभनं गुणज्ञं, समस्त विद्याधरं भजेऽहम् ।।'[7]

1· द्रष्टव्य, फन-ए-शायरी, चतुर्थ सं·, 1972, लिपि उर्दू, पृ· 100-101; 2· द्र·, वही, पृ· 101, 3· द्र·, छन्दःप्रभाकर, छठा सं· पृ· 122
4· डा· पुत्तूलाल शुक्ल, आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्दयोजना, पृ· 114; 5· भानुकवि, छन्दःसारावली, अर्थात् सरल भाषा पिंगल, पृ· 59,
6· स्वामी नारायणानन्द सरस्वती
7· हृषीकेश रचनावली, खण्ड 1, प्रथम सं·, पृष्ठ 1

इस छंद का विकास निश्चित रूप से उपर्युक्त वार्णिक वृत्तों से ही हुआ है, अतः इसके संदर्भ में यह कहना ग़लत है कि - 'इस रंगत की प्रत्येक पंक्ति में प्रायः 26 मात्राएं होती हैं।'[1] यहाँ यदि मात्रिक विधान करें भी तो इसमें 32 मात्राएँ ही होती हैं। इस छंद में मात्राओं की यही संख्या सर्वमान्य है।

21. **बहर तबील** -

यह बहर या रंगत अन्य बहरों की अपेक्षा लम्बी है, हिन्दी के सवैया छंद के निकट है, निश्चित् रूप से इसका विकास संस्कृत **'दुर्मिल'** छंद से हुआ है -

'दुमिलाइ पआसउ वण्ण विसेसहु दीस फणिंदह चारु गणा ।
भणु मत्त बतीसह जाणह सेसह अट्ठह ठाम ठई सगणा ।।'[2]

इसमें 32 मात्राएँ होती हैं एवं आठ सगण होते हैं।

उदाहरण -

चली रब के ग़ज़ब से वो वादे फ़ना आबाद कोई मसकन न रहा ।
कहीं ज़िंदों के ताई वतन न रहा अरु मुर्दों के ताई कफन न रहा ।।'[3]

बहरे तबील का एक भेद और देखने को मिलता है, जिसका विकास **'लक्ष्मीधर'** छंद से हुआ है, इसमें आठ रगण होते हैं **'प्राकृत पैंगलम्'** भाग । वर्णवृत्त संख्या 127 में इसका उल्लेख है। **'स्रग्विणी'** से भी इसका साम्य है। लावनी की बहर **'तबील'** में इन छंदों की लय का आधार लिया गया है -

दिन गये जब कि सम्मान सुर पुर में था,
आज दुनिया में अपना ठिकाना नहीं ।
था ज़माना हमारा कभी किन्तु हा !
आज वह दिन नहीं वह ज़माना नहीं।।'[4]

इसी प्रकार **'तोटक'** को दुगना करने से भी 'तबील' बन जाता है।

अतः यह कथन विश्वसनीय नहीं कि - 'रंगत तबील - भी उर्दू से आई है।'[5]

डा.पुण्यमचन्द 'मानव' ने इसकी जो पट्टी प्रस्तुत की है, वह इस प्रकार है -

'फउलन फाइल, फउलन फाइल, फउलन फाइल, फउलन फाइल ।'[6]

यह त्रुटिपूर्ण है, इसके बजाय इसकी पट्टी जो स्वामी नारायणानन्द जी ने प्रस्तुत की वह इस प्रकार है -

---

1. हि.ला.सा. पर हि.सं.सा.. का प्रभाव, पृष्ठ 70
2. प्रा.पैं. भाग 1, पृष्ठ 303
3. मास्टर प्यारेलाल, ख़याल बहरे तबील, ला.का इ., पृष्ठ 202
4. गयाप्रसाद शुक्ल सनेही, त्रिशूल तरंग, पृष्ठ 3
5. स्वामी नारायणानन्द, ला.का इ., पृष्ठ 53
6. हि.ला.सा. पर हि.सं.सा. का प्रभाव, पृष्ठ 71

'मफ़ऊल फ़ऊलन फ़ायलातुन (दो बार)'[1]

सवैये के आधार पर यही सही है। **'रंगत शकील'** भी कुछ लोग इसी को कहते हैं। परन्तु 'शकील' इससे बिल्कुल भिन्न है जिसका वर्णन स्वतन्त्र रूप से आगे किया जायेगा।

22. **रंगत तबील मुखफ्फ़ा** -

इसकी प्रत्येक पंक्ति में 32 मात्राएं होती हैं, प्रवाह भी कुछ तबील जैसा होता है, इसीलिए इसका नाम रंगत तबील मुखफ्फ़ा है। कुछ लोग इसे 'रंगत मुखफ्फ़ा टेढ़ी' या सिर्फ़ 'मुखफ्फ़ा' भी कहते हैं। इसका विकास 'लीलावती' छंद से हुआ है, जिसका उदाहरण यह है -

'घर लग्गत अग्गि जलइ धह धह कइ दिग मग णह पह अणलभरे।
सब दीस पसरि पाइक्क लुलइ धणि थण हर जहण दिआव करे।।'[2]

उर्दू हिन्दी के कवियों ने भी इस रंगत में काफ़ी लिखा है। **'पद पादाकुलक'** के दो चरणों को एक मान कर निर्मित **'समान सवैया'** या 'सवाई' के एक उपभेद **'मत्त सवैया'** छंद - **'सब ठाठ पड़ा रह जायेगा, जब लाद चलेगा बंजारा ।'** से इसकी एकरूपता है -

उदारहरण -

'पल भर में तूने नभ पृथ्वी, दिये अनिल, अनल औ नीर बदल ।
हे दया सिन्धु, कर दया दृष्टि, अब दीनों की तक़दीर बदल ।।'[3]

23. **रंगत नवेली** -

इसमें 26 मात्राएँ होती हैं, क्रमशः 16,10 पर यति और विराम होता है। हिन्दी के कवियों ने भी इस रंगत को अपनाया है। इसका विकास **'विष्णुपद'** छंद से हुआ है।

उदाहरण -

दिये दाग़ पर दाग़ हमेशा, उस रश्के मह ने ।
यक दिन भी चमका न सितारा, वाह मेरे लहने ।।'[4]

यति का नियम विकल्प से कवियों ने ग्रहण किया है, यथा -

'तुम्हें सुरभि का दान मुझे शूलों की चुभन मिली ।
तुमको मिला प्रकाश मुझे दीपक की जलन मिली ।।'[5]

---

1. ला·का इ·, पृष्ठ 53
2. प्राकृत पैंगलम्, भाग 1, पृष्ठ 163
3. अजेय, रंगत तबील मुखफ़्फ़ा, ला· का इ·, पृष्ठ 340
4. उस्ताद नत्थासिंह, ला·का इ·, पृष्ठ 54
5. डा· विष्णुदत्त 'राकेश', ह·लि· रचना

डा. पुण्यमचन्द 'मानव' ने अपने शोध प्रबन्ध पृष्ठ 84-85 पर जो इस रंगत का लक्षण व उदाहरण दिया है वह अमान्य है, क्योंकि वे इसकी पहली पंक्ति में 19 से 20, और द्वितीय पंक्ति में 11 से 13 तक मात्राएँ मानते हैं। दरअस्ल उन्हें भ्रम हो गया है 'रंगत ड्योढ़ी' (पृष्ठ 85) पर उन्होंने जो उदाहरण पेश किया है वही 'रंगत नवेली' है, यथा -

'चलो री देखें विन्द्रावन में, झांकी मनहारी ।
कोटि कोटि लखि लज्जित रति पति, शोभा अति प्यारी ।।'[1]

यह दोनों पंक्ति समान हैं, इनमें कोई भी 'ड्योढ़ी' नहीं है।

उर्दू वालों ने इसे **'बदीअ़ मकसूर'** कहा है। **सिद्ध काज पूरण हो इच्छा, जो कुछ मन में है ।**[2]

24. **रंगत सोहनी** -

इसकी प्रत्येक पंक्ति में 32 मात्राएं होती हैं, क्रमशः 16, 16 पर यति और विराम होता है।

पिंगलाचार्य के छन्दःशास्त्र में वर्णित **'मात्रा समकाधिकार'** में 5 छंदों का उल्लेख है, मात्रा समक, वान वासिका, विश्लोक, चित्रा और उपचित्रा । इन पांचों का प्रवाह एक समान है। इन्हीं के पादों से **'पादाकुलक'** बनता है -

एभिः पादाकुलकम् । 4/47

प्रत्येक में 32 मात्राएँ होती हैं। इसमें और तबील मुखफ्फ़ा में साम्य है। रंगत सोहनी का विकास इसी 'पादाकुलक' से हुआ है।

उदाहरण -

'इस अन्धकार से मत घबरा, बढ़ चल हे वीर अधीर न हो ।
मुझको भय है भय-भ्रान्ति कहीं यह पैरों की जंजीर न हो ।।'[3]

25. **रंगत बची** -

इसकी प्रत्येक पंक्ति में 16 मात्राएँ होती हैं। कभी-कभी 15 मात्राएँ भी देखने में आती हैं। इसका विकास 'शृंगार' छंद से हुआ है। 'बची' का अर्थ 'शेष' भी हो सकता है और 'बच्ची' अर्थात् 'छोटी' भी हो सकता है। असल में यह लावनी से छोटी है, इसीलिये इसका नाम 'बची' रखा होगा। डा. पुण्यमचन्द 'मानव' ने अपने शोधप्रबन्ध पृष्ठ 80-81 पर इस छंद की प्रथम पंक्ति में 29 एवं द्वितीय पंक्ति में 11 मात्राएँ मानी हैं, यह मन्तव्य निराधार है।

उदाहरण -

---

1. श्री प्रभुदयाल यादव, ह.लि. लावनी की टेक, सन्दर्भांकित हि.ला.सा. का प्रभाव, पृष्ठ 84-85
2. चमनिस्तान गौ. भाग 2, गौहर, पृष्ठ 264
3. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'

'रंगत बची नं0 3'

देवकी के घर जन्मे कान ।
जगत तारा गोकुल में आन ।।
हुये वसुदेव **के** ऐसे लाल ।
मोही सखियाँ **और** गोपी ग्वाल ।।
करी आ देवों की प्रतिपाल ।
मारा कंसा **को** बजा कर ताल ।।[1]

इसके शीर्षक से ऐसा प्रतीत होता है कि कम से कम रंगत बची नं0 1 व नं0 2 और भी होंगी, जिनका स्वरूप **'बच्ची'** (बालिका) के समान लघु ही होगा। उर्दू वालों ने इसे **'लतीफ़ मुसल्लस मुखफ्फ़फ़'** कहा है -

'अरे मन तू क्यों भूला है ।
बोल श्री गंगा जी की जै ।।
करें गंगा जी पूरन आस ।
हुये सब अपराधों का नास ।
कभी यम काल न आवे पास ।
कहे यों 'गौहर' गंगा दास ।।
न इसका डर हो न उसका भै ।
बोल श्री गंगा जी की जै ।।[2]

26. **बहर 'जी' की** -

इसकी प्रथम पंक्ति में 27 मात्राएं होती हैं, क्रमशः 16, 11 पर यति और विराम होता है। इसमें सरसी छंद है। दूसरी पंक्ति में 18 मात्राएँ होती हैं तथा इस दूसरी पंक्ति में 'जी' पद अवश्य प्रयुक्त होता है। प्रवाह 'शृंगार' के समान है। 'मिलान' से पूर्व दोहा आदि की रचना का भी प्रचलन है।

उदाहरण -

---

1. दयालचन्द, ला.का इ., पृष्ठ 134
2. च.ख.गौ. भाग 2, पृष्ठ 264 तथा 20।

भक्ति योग (अन्तिम पद)

'उसकी याद में मीरा नाची, दे दे दोऊ ताल,
गावती फिरी प्रभू के ख्याल जी ।
उसकी याद में वह ताकत है, कोटि व्याधि दे टाल,
कभी नहिं आवे उसे बबाल जी ।।
'देवी सिंह', कहे 'बनारसी' को उसका हुआ विसाल,
देखता दिल में वही जमाल जी ।'[1]

उर्दू में इसे बहर **'जदीद'** कहते हैं -

'शिव जी का कर ध्यान अरे मन, छोड़ ओर सब ढ़ंग,
शीश पर जटा, जटा में गंग जी ।।'[2]

27. **बहर बराबर की** (राग सोरठा) -

इसमें 16 मात्राएं होती हैं, यह संगीत से विकसित हुई, इसकी तुलना **'उपचित्रा'** छंद से की जा सकती है - (वसु पर गोरस ज्यों उपचित्रा),

उदाहरण -

'ये कंचन काया काशी ।
या में बोलत शिव अविनाशी ।।'[3]

यदि प्रथम पंक्ति में 'ये' के पश्चात् 'है' लगा दिया जाय तो दोनों पंक्तियों में मात्राएं बराबर की हो जायेंगी। प्रवाह भी दुरुस्त रहेगा। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि मुद्रण में 'है' लुप्त हो गया है। ऐसी पुस्तकों में एक बार जो छप गया, अगले संस्करणों में भी उसी का अनुकरण होता रहता है। यही कारण है कुछ प्राचीन श्रेष्ठ कवियों की कृतियां भी आज हमारे सामने विकृत रूप में हैं ।

28. **संगीत रंगत छोटी** -

बहर संगीत के समान इसकी प्रथम पंक्ति में 38 मात्राएं होती हैं, क्रमशः 13, 8, 8, 9 पर यति और विराम । दूसरी पंक्ति 'रंगत छोटी' 22 मात्रा की होती है। दोनों रंगतों का समन्वय, नाम से ही प्रकट है।

उदाहरण -

'सखि आई ऋतु बरसात, छोड़ गये साथ, हमारी बात, न पी ने मानी ।
मैं छिन छिन पी पी रटूँ फिरुँ बोरानी ।।'[4]

---

1. बाबा बनारसी, ला.ब्र.ज्ञा., श्याम काशी प्रेस, मथुरा, सं., पृष्ठ 92
2. गौहर, चं. ख. गौ., पृष्ठ 194
3. ला.ब्र.ज्ञा., पृष्ठ 228
4. अब्दुल ग़फ़ूर खाँ 'ग़फ़ूर'

उर्दू में इसे **'मुस्ततील नुगानःह मुरज्जज़ मुखम्मस खफ़ीफ'** कहते हैं यथा -

'कहते हैं सूत जी सुनो, ऋषों और मुनों, पढ़ो और गुनो, ध्यान दो इस पर।
है रुद्राक्ष का सबसे महातम बढ़ कर ।।'[1]

29. **बहर नफ़ीस** -

इसकी प्रथम पंक्ति में 21 मात्राएँ होती हैं, क्रमशः 9, 12 पर यति, विराम । क्रमशः गंग छंद और 'दिगपाल' का मिश्रण है। दूसरी पंक्ति में 15 मात्राएँ होती हैं इसमें **'गोपी'** छंद है। इस प्रकार छंदों के मिश्रण से यह बहर बनती है। हिन्दी में इसे 'रंगत मृदुल' कह सकते हैं।

उदाहरण -

'सदा शिव स्वामी, है मुझ पै भीड़ भारी ।
वेग सुधि ले वो त्रिपुरारी ।।'[2]

30. **बहर शकील** -

इसकी पहली पंक्ति में 22 मात्रा होती हैं, प्रवाह 'रंगत छोटी' के समान, दूसरी पंक्ति में 20 मात्राएँ होती हैं, क्रमशः 6, 14 पर यति और विराम। प्रवाह 'योग' (12-8 अंत में 'य') से मिलता-जुलता है। हिन्दी में इसे 'रंगत रूपवती' कह सकते हैं ।

उदाहरण -

'शिव चौदस से होरी का हुआ अगम रे ।
हमदम रे, दम बदम कहो बम बम रे ।।'[3]

31. **असरा मुख़फ़्फ़फ़** -

इसकी टेक में 'ताटंक' के समान 30 मात्राएँ होती हैं, परन्तु चौक में 28 मात्राएं होती हैं, क्रमशः 16, 14 पर यति और विराम । 'उडान' में 16 मात्राएँ होती हैं। बाबा बनारसी ने इसकी गणना 'बहर-खड़ी' के अन्तर्गत की है। हम हिन्दी में इसे 'रंगत ललिता' या 'छोटी बहर खड़ी' कह सकते हैं।

उदाहरण- 'महादेव महिपतिं हरीहर, बम बम गौरा अर्धगम् ।
जिनके वश में काल है हर दम, विश्वनाथ रछपाला ।
बाजे डिम डिम डिम डिम डमरू, भोले दीन दयाला ।।
दुर्बुधि नाशं मरघट वासम् ।
महादेव महिपतिं हरीहर, बम बम गौरा अर्धगम् ।।'[4]

इसकी संस्कृत मिश्रित भाषा 'जयदेव' कवि के 'गीत गोविन्दम्' के प्रभाव को व्यक्त करती है।

---

1. च॰ख॰गौहर, दूसरा हिस्सा, पृष्ठ 195
2. गौहर, च॰ख॰गौ॰, पृष्ठ 193
3. गौहर, च॰ख॰गौ॰, पृष्ठ 193
4. वही, पृष्ठ 215

32. **खफ़ीफ़ मख़बून मकलूअ** -

इसकी प्रत्येक पंक्ति में 18 मात्राएं होती हैं, क्रमशः 8, 10 पर यति और विराम। अंत में दीर्घ 'ऽ' होता है। इसका विकास 'पुरारि' छंद (7-11 अन्त ऽ) से हुआ है।

उदाहरण -

'मेरी हाजत, रवा करो शिव जी ।
जेर दुःशमन, मेरा करो शिव जी ।।
मेरे ऊपर, दया करो शिव जी ।
मेरे हक़ में, भला करो शिव जी ।।'[1]

33. **मुजारे अ़मुसम्मन अख़रब** -

इसकी प्रत्येक पंक्ति में 25 मात्राएँ होती हैं, क्रमशः 17, 8 पर यति और विराम। इसका विकास 'मदनाग छंद' (17-8) से हुआ है ।

उदाहरण -

'बम भोले नाथ स्वामी कृपाल, गौरी शंकर ।
आनन्द कंद दाता शशि भाल, गौरी शंकर ।।
त्रिलोकी नाथ उमापति रछ पाल, गौरी शंकर ।
संकट निबारो मेरे तत्काल, गौरी शंकर ।।'[2]

34. **जान मन मुखफ़्फ़फ़** -

यह विषम मात्रिक दंडकछंद है,इसकी प्रथम पंक्ति में 35 मात्राएँ होती हैं, क्रमशः 16, 9, 10 पर यति तथा विराम। दूसरी पंक्ति में 23 मात्राएँ होती हैं। क्रमशः 11, 12 पर यति एवं विराम होता है। प्रथम पंक्ति का पूर्व पद 'शृंगार', द्वितीय पद 'गंग', तृतीय पद 'विष्णु पद' के उत्तरार्द्ध के समान है। दूसरी पंक्ति का विकास 'सारस' छंद से हुआ है।

उदाहरण -

'पारथी पूजन जी महाराज, पारथी पूजन, काम करे पूरन ।
स्वर्ग में वास लिया, जिसने शिव जाप किया ।।'[3]

35. **रंगत ग़ज़ल** -

उर्दू में **'ग़ज़ल'** का शब्दार्थ - 'प्रेमिका से वार्तालाप' करना है, जो छंद विशेष के अर्थ में प्रयुक्त होता है, इसकी प्रत्येक पंक्ति में 24 मात्राएँ होती हैं, 12, 12 पर क्रमशः यति और विराम। इसका विकास 'दिगपाल' छंद से है - 'सविता विराज दोई दिगपाल छंद सोई।[4] इसे 'मृदु गति' छंद भी कहते हैं, उर्दू वाले इसे 'रेखता' कहते हैं, इसकी तख़्तीअ है -

---

1. च.ख.गौहर, पृष्ठ 240
2. वही, पृष्ठ 241
3. च.ख.गौहर, पृष्ठ 251
4. भानु, छन्दःप्रभाकर, पृष्ठ 62

'मफ़ऊल फ़ायलातुन, मफ़ऊल फ़ायलातुन ।'

'क्या क्या मची हैं यारों, बरसात की बहारें ।' लावनी वाले इसे 'रंगत रेख़ता' कहते हैं ।

उदाहरण -

'क्यों ज़िन्दगी गँवावें, करते फिरें झमेला ।
चलो देखें और नहावें, श्री गंग जी का मेला ।।
गंगा के घाट ऊपर, है दान कोई करता ।
परलोक के लिये है, सामान कोई करता ।।
है धर्म अर्थ कारन, इस्नान कोई करता ।
है काम मोक्ष कारन, जप ध्यान कोई करता ।।
यह लावनी निराली, 'गौहर' का गावै चेला ।
चलो देखें और नहावें, श्री गंग जी का मेला ।।'[1]

ग़ज़ल की कोई भी ऐसी बहर, जो हिन्दी-छंदों के साँचे में ढ़ली हो, उसे लावनी में लिखा जा सकता है, कुछ लोग इसे 'रंगत ग़ज़ली' भी कहते हैं, एक अन्य छंद में 'रंगत ग़ज़ली' देखिये -

'जो सवाल वस्ल कभी किया तो कहा कि साफ ज़वाब है ।
कहा जब करम को तो है सितम, कहा लुत्फ़ को तो अताब है ।।'[2]

इसकी प्रत्येक पंक्ति में 28 मात्राएँ होती हैं, इसका विकास 'हरि गीतिका' छंद से हुआ है। डा.पुण्यमचन्द 'मानव' का यह कथन बिल्कुल ग़लत है कि - 'इसकी प्रत्येक पंक्ति में 31 से 34 तक मात्राएं होती हैं ।'[3]

36. **रंगत तबील 'मुजद्दद'** -

इसे 'मुजद्दिद' भी बोलते हैं, जिसका शब्दार्थ 'सुधारक' है, अर्थात् यह रंगत 'बहरे तबील' की लय में परिवर्तन लाने की प्रवृत्ति का प्रतिफल है। इसकी प्रथम तथा द्वितीय प्रत्येक पंक्ति में 27 मात्राएँ होती हैं, 8, 8, 11 पर क्रमशः यति और विराम । चौक दो पंक्तियों का होता है, जिनमें 55, 55 मात्राएँ होती हैं, 8, 8, 12; 8, 8, 11 पर क्रमशः यति और विराम । फिर दोहा या अन्य छंद उसके बाद मिलान । 'उड़ान' की पंक्ति का वज़न टेक की पंक्ति के समान होता है। आश्चर्य आदि का भाव प्रकट करने के लिये प्रायः प्रत्येक पद के अंत की आवृत्ति की गई है, जिसमें कथ्य में कलात्मक चमत्कार आ गया है।

---

1. च.ख.गौहर, दूसरा हिस्सा, पृष्ठ 266-267
2. मौलवी आशिक आगरा संदर्भांकित, हि.ला.सा. पर सन्त सा. का प्रभाव, पृष्ठ 89
3. वही, पृष्ठ 88-89

उदाहरण -

'ए मन अब जाग ए मन अब जाग, मचा विश्व में फाग ।
रास होता है, क्यों सोता है, ज़रा नींद को त्याग ।। टेक

इसमें 8, 8 मात्रा पर 'छवि' छंद है, और ।। मात्रा पर 'अहीर' छंद है। चौक की पंक्तियों में ।2 मात्रा पर 'सार' छंद की पंक्ति का उत्तर चरण है। इस प्रकार यह मिश्रित छंद है।

चौक - कहती गौरी, कहती गौरी, श्याम ने खेली होरी, रंग में बोरी, चूनर मोरी,
बहुत किया बेहाल ।
कैसी चोरी, कैसी चोरी, करी वह सीना जोरी, सखि देखो री, कर झकझोरी,
गल में बहियाँ डाल ।।

दोहरा - चोया चन्दन अरगजा, केसर और कस्तूर ।
पान मिठाई पुंगी फल, लाओ और कपूर ।।

मिलान - छोडो विराग, छोडो विराग, मचा विरज में फाग ।
रास होता है, क्यों सोता है, ज़रा नींद को त्याग ।।'[1]

37. **लतीफ़ मुसल्लस मुखफ़्फ़फ़** -

इसकी प्रथम पंक्ति में ।5 कभी-कभी ।6 मात्राएं होती हैं, दूसरी पंक्ति में 27 मात्राएं होती हैं, क्रमशः ।।, 8, 8 पर यति, विराम । दूसरी पंक्ति का प्रथमार्द्ध, दोहे के उत्तरार्द्ध के समान लय युक्त 'अहीर' छंद है। तथा द्वितीयार्द्ध व तृतीयार्द्ध 'छवि' छंद के समान है। चौक के बाद दोहा आदि रखा जाता है, 'उड़ान' की पंक्ति में ।6 मात्राएं होती हैं, और प्रवाह 'शृंगार' छंद के समान होता है ।

उदाहरण -

झूला झूलें नन्दकिशोर ।
घटा उठीं घनघोर, बिजुली का शोर, बोलते मोर ।
झलकता झूला चारों ओर ।
रतन जड़े अनमोल, खम्भ में गोल, रेशमी डोर ।।
देखते दया दिरग दे कौर ।
झूलें कृष्ण महाराज, शीश पर ताज, हो रहा शोर ।।
खिलाड़ी मनमोहन चितचोर ।
सखियां तोड़ें तान, हो रहा गान, खूब झकझोर ।।

।. च.ख.गौहर, पृष्ठ 286-287

दोहरा -

पड़ा हिंडोला बाग में यमुना जी के पार ।
सखी झकोलें दे रही, झूलें कृष्ण मुरार।।
श्याम की लीला सहस करोर ।
घटा उठीं घनघोर, बिजुली का शोर, बोलते मोर ।।'[1]

38. **मुतक्षानेह सरीअ़ अजीब मुरब्बा दो लख़्त -**

इसका लक्षण 'लतीफ़ मुसल्लस मुखफ्फ़फ़' की भांति है ।

उदाहरण -

बसन्ती चीरा बांधे श्याम ।
है बसन्त की धूम, सखि रहीं झूम, मिला आराम ।।'[2]

39. **लज़ीज़ मुसब्बस सरीअ़ -**

इसकी प्रथम पंक्ति में 30 मात्राएँ होती हैं, 15, 15 पर क्रमशः यति और विराम। प्रवाह 'चौपई' जैसा, 'चौपई का द्विगुणित पद ही इसकी प्रथम पंक्ति है। दूसरी पंक्ति में 31 मात्राएँ होती हैं, क्रमशः 11, 8, 12 यति और विराम । फिर 'वशीकरण' आदि छंद का प्रयोग 'झड़ी' या 'जड़ी' के रूप में किया जाता है। मिलान का वज़न टेक की प्रथम पंक्ति के समान होता है।

उदाहरण -

लिया कृष्ण ने आज अवतार, दिया भूमि का भार उतार ।
हरे कृष्ण कह हरे, दुख से रह परे, अरे मन रह हुशियार ।
ऋतु वर्षा की भादों मास, बार बुद्ध मुद मंगल रास ।
तिथि आठों जगमगी, रोहिनी लगी, समय अति शुभ परकास ।।
सिंह के सूरज कर विश्वास, अर्द्धरैने पर चन्द्र निकास ।
हुई देवकी मगन, लगाई लगन, हुई सम्पूरन आस ।।

जड़ी - वसुदेव के घर लिया जन्म कृष्ण यदुराई ।
करो हंसी खुशी से चैन घड़ी शुभ आई ।।
यह घड़ी समय अरु लग्न धन्य है भाई ।
श्रीकृष्ण चन्द्र अवतार हुआ सुखदाई ।।

मथुरा जी में जग करतार, जन्म लिया दिये काज संवार ।
हरे कृष्ण कह हरे, दुख से रह परे अरे मन रह हुशियार ।।'[3]

---

1. च.ख.गौहर, पृष्ठ 279
2. वही, पृष्ठ 279
3. वही, पृष्ठ 298

इस छंद का दूसरा भेद भी है, जिसकी केवल प्रथम पंक्ति 'मुखफ्फ़ा' या 'समान सवैया' के सदृश 32 मात्रा की होती है। शेष प्रथमवत्, यथा -

'मुझे अपने धाम में वास देव, निज चरन-पुष्प की वास देव।।'[1]

इसका एक तीसरा भेद भी है, जिसकी केवल प्रथम पंक्ति 'रंगत खड़ी' ताटंक के समान 30 मात्रा की होती है शेष प्रथमवत्, यथा -

'कहे यशोदा मात से, ग्वालिन इसे क्यों नहीं हटकत रे ।'[2]

यह मिश्रित छंद है, इस पर संगीत का प्रभाव है।

40. **रंगत डेढ़ खम्भी -**

इसकी प्रथम पंक्ति में 22 मात्राएँ होती हैं, ।।, ।। पर क्रमशः यति, विराम। प्रवाह 'रोला' छंद के समान है, यदि अंत में 2 मात्रा (ऽ) और रख दें तो पूर्ण 'रोला' बन जाता है। दूसरी पंक्ति में 32 मात्राएँ होती हैं, क्रमशः 8, 8, 8, 8, पर यति और विराम होता है। प्रवाह 'पादाकुलक' 'डिल्ला' छंद के समान है।

उदाहरण -

कर सोलह शृंगार, नार प्रिअ मिलन चली ।
पहने अभरन, खोले जोवन, गज गमनी, बांकी बनठन ।।'[3]

41. **रंगत डेढ़ी -**

इसकी प्रथम पंक्ति में ।6 मात्राएँ होती हैं, प्रवाह 'चौपाई' तथा शृंगार के समान, दूसरी पंक्ति में 26 मात्राएँ होती हैं, क्रमशः ।6 और ।0 पर यति, विराम। प्रवाह रंगत नवेली (विष्णु पद छंद) के समान है।

उदाहरण -

मन में कर सुमरण श्री वर को।
महावीर गये लांघ पल में सत, योजन सागर को ।। टेक0
रूप मत्सर का कपि धर के ।
चले लंक के बीच लंकिनी, को पछार कर के ।।
कोट सब देखा दृष्टि भर के ।
देखत देखत पहुँच गये वह, भवन में निशिचर के ।। चौ0'[4]

।. च.ख.गौहर, पृष्ठ 279
2. वही, पृष्ठ 279
3. प्रभुदयाल यादव, संदर्भांकित हि.ला.सा.पर हि.सं.सा. का प्रभाव, पृष्ठ 87
4. बजरंग लाल बगडिया, संदर्भांकित वही, पृष्ठ 83

42. **रंगत डेवढ़ी** (राग सोरठा) -

राजस्थान में 'राग सोरठ' गाने का प्रचलन है। कुछ के मत से इसकी उत्पत्ति सौराष्ट्र (सोरठ देश) से है। 'सोरठा' छंद से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है, इसकी टेक की पंक्तियों में 15, 15 मात्राएँ होती हैं, प्रवाह 'गोपी' छंद के समान होता है।

उदाहरण -

फ़कीरी ,ख़ुदा को प्यारी है ।
अमीरी कौन बिचारी है ।।

(5वां चौक)

मकाँ लामकाँ फ़कीरों का ।
निशां है कहाँ फ़कीरों का ।।
फ़क्र है निहाँ फ़कीरों का ।
ख़ुदा का इमाँ फ़कीरों का ।।

ताक़ते-सब्र वो भारी है ।
मौत तक जिन से हारी है ।। फ़कीरी0'[1]

43. **रंगत लंगड़ी जकड़ी** -

इसकी प्रथम पंक्ति में 56 मात्राएं होती हैं, 15, 15, 15, 11 पर क्रमशः यति और विराम। द्वितीय पंक्ति में 27 मात्राएँ होती हैं, 16, 11 पर क्रमशः यति और विराम। प्रथम पंक्ति में 'चौपई' के चरण की 3 बार आवृत्ति, अन्त में 'अहीर' छंद है। द्वितीय में 'सरसी छंद' है। द्वितीय पंक्ति छोटी होने के कारण 'लंगड़ी' विशेषण से अभिहित है।

उदाहरण -

'निरखी सेना अती विशाल, निशिचर राजा ने तत्काल, रिसिया प्रकटा माया जाल,
हीये होय अधीर ।
चरचर करते, रचे बहु कपीश, लक्ष्मण अंगद वीर ।।'[2]

22. **रंगत जकड़ी** -

इसकी प्रथम तथा द्वितीय पंक्तियों में 51, 51 मात्राएँ होती हैं। क्रमशः 9, 14, 14, 14 पर यति और विराम। पंक्ति का प्रथम भाग 'निधि' (अन्त में ह्रस्व) छंद के समान प्रवाहयुक्त है, द्वितीय तथा तृतीय पद भाग 'कज्जला' छंद (14 मात्रा अंत में '।') के समान लय वाला है। चौथे पद की लय भिन्न है।

'ए बुत ए यार, तूने खैंच कर तलवार, खा के तेरा कई बार, मेरी तरफ गुजर किया।
तन पै नमूदार, कई जख़्में भी बिशयार, अरमां दिल पै यही यार, जुदा धड़ से ना सर किया।।'[3]

---

1. बाबा बनारसी, ला.ब्र.ज्ञान, श्याम काशी प्रेस, मथुरा, सं., पृष्ठ 162-163
2. श्री बजरंगलाल बगडिया, संदर्भांकित हि.ला.सा.पर सं.सा.का प्रभाव, पृष्ठ 82
3. श्री नत्थासिंह,संदर्भांकित वही, पृष्ठ 83

45. **बहर डेवढ़ी** (राग सारंग) -

इसकी प्रथम पंक्ति में 21 मात्राएं होती हैं, क्रमशः 9 और 12 पर यति, विराम। पूर्वार्द्ध-प्रवाह 'गंग' छंद (अन्त में ऽऽ') के समान तथा उत्तरार्द्ध का 'सार' के उत्तरार्द्ध के समान है। यह संगीत से प्रभावित रंगत है। दूसरी पंक्ति 'गोपी' छंद के समान है।

उदाहरण -

'इश्क आओ जी, मैं सर पर बिठलाऊं ।
कहो सो खातिर को लाऊँ ।। टेक0
सुनो गर गाना, तो ऐसी हिचकियाँ लूँ ।
मैं इसमें सभी राग कह दूँ ।।
जान तक मांगो, तो कभी करूँ नहिं चूँ।।
तसद्दुक़[1] तनो-बदन से हूँ ।।
मैं तुम पर वारी, हर तौर से हो जाऊँ।
कहो सो खातिर को लाऊँ ।।'[2]

46. **रंगत चौताली** -

यह 'रंगत खड़ी संगीत चौताला' से भिन्न है। यद्यपि ताल क्रम समान है तो भी मात्राएँ और वज़न भिन्न-भिन्न हैं। इसकी प्रथम तथा द्वितीय पंक्तियों में 36, 36 मात्राएँ होती हैं, क्रमशः 13, 8, 8, 7 पर यति, विराम।

उदाहरण -

'नट खट नट घर से चला, दिखाई कला, दिया तन गला, कठिन अटकी ।'[3]

47. **रंगत श्याम कल्याण** -

इसकी प्रथम पंक्ति में 32 मात्राएँ होती हैं, क्रमशः 16, 16 पर यति, विराम। प्रवाह पादाकुलक छंदों के समान। चौक की प्रत्येक पंक्ति में 16, 16 मात्राएं होती हैं, प्रवाह चौपाई के समान। उड़ान की पंक्ति में 22 मात्राएँ होती हैं, प्रवाह 'रास' छंद (8, 8, 6 अंत में सगण '।।ऽ') के समान ।

उदाहरण - 'साधू निकल सिधारा जब कि, रह गई मढ़ैया सूनी रे ।। टेक0

(तृतीय चौक) - 'हवा हवा में जाय समानी ।
अगनी में अगनी सुख मानी ।।
आन मिला पानी में पानी ।

---

1. तसद्दुक़ = कुर्बानी
2. बनारसी काशी गिरि, ला·ब्र·ज्ञा·, पृष्ठ 198-99
3. लाला लाल, संदर्भांकित, हि·ला·सा·का हि·सं·सा· पर प्रभाव, पृष्ठ 84

मिट्टी में मिट्टी सुन ज्ञानी ।।
जल गई कंचन, काया जैसे, धूनी रे ।।'[1]

48. **रंगत पच कड़िया -**

इसकी प्रत्येक पंक्ति में 28 मात्राएं होती हैं। क्रमशः 16, 12 पर यति, विराम। इसका विकास 'सार' छंद से हुआ है।

उदाहरण-

'नख शिख वर्णन राज-प्रशंसा का अब तो युग बीता ।
लिख तू कवि की क़लम कर्म योगी किसान की गीता ।।'[2]

49. **रंगत नई -**

इसकी प्रथम पंक्ति में 29 मात्राएँ होती हैं, क्रमशः 13, 8, 8 पर यति, विराम। दूसरी पंक्ति में 42 मात्राएँ होती हैं, क्रमशः 22, 11, 9 पर यति और विराम होता है। चौक की पंक्तियों का वज़न प्रथम पंक्ति के समान होता है। 'तोड़' में इच्छानुसार, सार आदि छंदों का प्रयोग होता है। 'उड़ान' की पंक्ति का वज़न टेक की प्रथम पंक्ति के समान ही होता है।

उदाहरण -

मैं सत्य सत्य कहूँ हाल, सुनो अहवाल, तन का बयान ।
है ब्रह्माण्ड में बादशाह ब्रह्म सोई, आदि ज्योति भगवान, सोयम भगवान ।। टेक0

चौक- है पांच तत्त्व का तख़्त, बना शुभ वक़्त, तीन गुण भरा ।
सब है माता का खेल, उसी में मेल, निरंजन करा ।।
ले तज ताज को ईश, आप जगदीश, शीश पर धरा ।।
जो धरता उसका ध्यान, ज्ञान से वोह, भो सागर तरा ।।

तोड़ा - सुन प्यारे रही कला की कलंगी झलक पलक से दूनी ।
सुन प्यारे उस परब्रह्म की, अगम ज्योति है धूनी ।।
तन तख़्त के ऊपर बैठे बादशाह करे अदल इन्साफ ।
चाहे जिसको दे सज़ा करे वह, चाहे जिसको माफ़ ।।

मि0 - हर निराकार निराधार, वह अपरम्पार, उसे पहचान ! है ब्रह्माण्ड ।।[3]

---

1. सन्त तुकनगिरि, संदर्भांकित हि·ला·सा·का हि·सं·सा· पर प्रभाव, पृष्ठ 200
2. 'अजेय', ग्राम्या, वर्ष 8, अंक 3, सन् 1961, पृष्ठ 14
3. बाबा बनारसीदास, ला·ब्र·ज्ञान, पृष्ठ 64,66

50. बहर (बहुत छोटी अद्‌भुत) -

इसकी प्रथम पंक्ति में 18 मात्राएँ होती हैं, क्रमशः 9, 9 पर यति, विराम। दूसरी पंक्ति में 11 मात्राएं होती हैं। प्रथम पंक्ति का पूर्व पद 'गंग' छंद (अंत में 'SS') तथा उत्तर पद में 'निधि' छंद (अंत में '।') के समान है। दूसरी पंक्ति में 'अहीर' छंद है। यह बहर इन्हीं छंदों के मिश्रण से बनी है। चौक की पंक्तियों का वज़न भी 'टेक' के समान है। मिलन से पूर्व शेर आदि छंदों का स्वच्छंद प्रयोग होता है। मिलान की पंक्ति का वज़न टेक की प्रथम पंक्ति के समान होता है।

उदाहरण- 'खेलते होली, व्रज में नंदलाल ।
मचो वह खूब धमाल[1] ।। टेक0

चौक - कोई के मुखड़े, पर बिखरे बाल ।
पड़ा हो जैसे जाल ।।
कोई के माथे, पर केसर, भाल-
कोई के बिन्दी लाल ।।

शेर - कोई गाते और बजाते वह ढ़ोल चले ।
हर के साथ में अपना वह लिये गोल चले ।।
किसी के हाथ में केशर की भरी पिचकारी,
कोई तो रंग भी टेसू का बहुत घोल चले ।।

मि0 - सुनो तुम व्रज का, सारा अब हाल ।
मचो वह खूब धमाल ।।'[2]

51. रंगत डिट कड़िया या डेढ़ कड़िया -

इसकी प्रथम पंक्ति एंव द्वितीय पंक्ति में 15, 15 मात्राएं होती हैं। प्रवाह 'गोपी' छंद के समान है।

उदाहरण -

लिखा विधना ने कलम से है ।
होगा वही अपने सनम से है ।।'[3]

चौक की पंक्तियां रंगत नवेली के समान 26, 26 मात्रा की होती हैं।

---

1. धमाल, फाग का एक भेद (संगीत)
2. बनारसी, ला.ब्र.ज्ञान, पृष्ठ 37-38
3. सुखलाल, मनोहर बाग, पृष्ठ 67, संदर्भांकित हि.ला.सा. पर हि.सं.सा. का प्रभाव, पृष्ठ 75

52. **रंगत ख़म्सा** -

इसकी प्रत्येक पंक्ति में 22, 22 मात्राएं होती हैं। यह अरबी शब्द है जिसका अर्थ है - 'पांच से सम्बन्ध रखने वाला, पाँच का समाहार, पंचक । वह पद्य जिसके हर बन्द में पाँच-पाँच मिसरे हों ...... संगीत में एक ताल।'[1] इसकी तख़्ती है -

'मफ़ऊल मफ़ाईल मफ़ाईल फ़ऊलन ।'

लावनी में इसका विकास 'बिहारी' (14-8) छंद से माना जा सकता है।

डा0 'मानव' द्वारा - 'इसे 'खमचा' कहना या लिखना भाषा की दृष्टि से ग़लत है।'[2] ख़मसा ही इसका शुद्ध प्रयोग है। कुछ लोग इस छंद को भी 'लावनी' के नाम से ही पुकारते हैं।

उदाहरण -

'पीने से अगर **प्रेम** है, सबको पिला **के** पी ।
विष की बुझी उसी को तू, अमरित बना **के** पी ।
घर में नहीं पी जाय तो उपवन **में** जा **के** पी ।
भौंरे **की** भांति गूंजता फूलों **पै** आ **के** पी ।।
मन में पुनीत प्रेम **की** गंगा बहा **के** पी ।
पितु-मात-तात-भ्रात **की** चिंता हटा **के** पी ।।
दुनिया में राम-नाम पर - सर्वस लुटा **के** पी ।
पीने से अगर प्रेम है, सब को पिला के पी ।।'[3]

53. **रंगत खेंच** -

इसकी टेक की दोनों पंक्तियों में 16, 16 मात्राएँ होती हैं, 2 पंक्तियों का चौक होता है जिसमें 28, 28 मात्राएँ होती हैं; 16, 12 पर क्रमशः यति, विराम। टेक की पंक्तियों का प्रवाह 'शृंगार' तथा 'चौक' का प्रवाह 'सार' छंद के समान होता है।

उदाहरण -

'मूर्ख तने झूठी करी झमेल ।
ब्याह **का कैसे** मिलाया मेल ।। टेक0
मां बेटा का रचा ब्याह मूर्खों ने उधम उठाया ।
झूठी **करी** तुकतान ज्ञान गुण मिट्टी बीच मिलाया ।।
ये **तो** है **माया**, ब्रह्म का खेल ।। मूर्ख0।।

---

1. वृहत् हिन्दी कोश, पृष्ठ 332
2. द्रष्टव्य, हि·ला·सा· पर हि·सं·सा· का प्रभाव, पृष्ठ 66-67
3. गोपालदास मुनीम, आगरा, हस्तलिखित लावनी

जो तुम कहते हो कलग़ी तो मुसलमान घर जाई ।
जो तुर्रा बेटा है हिन्दू का, कैसे करी सगाई ।।
भूल कर लगे नरक की गेल ।
मूर्ख तने झूठी करी झमेल ।।'[1]

54. **सखी** -

यों तो 'सखी' एक छंद विशेष है, जिसमें 14 मात्राएँ होती हैं और जिसका प्रवाह 'राधिका' की पंक्ति के पूर्वभाग जैसा होता है, यथा - **'कल भुवन सखी रचि माया ।**[2] परन्तु लावनी साहित्य में इसका स्वरूप भिन्न ही पाया जाता है। दंगलों में गायक गाने से पूर्व सर्वप्रथम 'सखी' गीतिका प्रस्तुत करते हैं जिसमें एक प्रकार से इष्ट देव की आराधना या मंगलाचरण होता है, अतः हो सकता है वैष्णवों के 'सखी-सम्प्रदाय' से इसका आरम्भ लावनी-गायन में हुआ हो। अथवा इष्ट की स्तुति गायक की सहचरी है, इसलिये भी इसे 'सखी' कहा जाता हो। यदि उर्दू ढंग पर इसको 'सख़ी' मानें तो भी इसका सम्बन्ध 'दाता' (ईश्वर) से है। इसमें 26 मात्रा के गीतिका 28 मात्रा के हरिगीतिका, 14 मात्रा के 'विजात' का दुगना, आदि अनेक छंद प्रयुक्त होते हैं, प्रायः 4-8 तक पंक्तियां इस पद्य में पाई जाती हैं।

उदाहरण -

गीतिका -

'दक्ष का दर्शन प्रती दिन, गंग तट विश्राम हो ।
ब्रह्म का वासा जहाँ, कनखल सा उत्तम धाम हो ।।

हरिगीतिका -

एकाग्र शिव का ध्यान धर, मन में न व्यापक काम हो ।
'शम्भू पुरी' सा मुल्क में फिर तू भी तो सरनाम हो ।।'[3]

सखी के समान उपदेश -

(विजात छंद) -

'संभल कर रख क़दम कांटे बिछे हैं प्रेम के वन में ।
न कोई पार पहुँचा है, समझ ले सोचले मन में ।।
अरे ओ प्रेम के प्यासे, तुझे धोखा है मृग जल का ।
समझता जिसको तू अमरित, वो प्याला है हलाहल का ।

---

1. रचयिता अज्ञात, संदर्भांकित राजस्थान के तुर्रा कलग़ी, पृष्ठ 6
2. भानु कवि, छन्दःप्रभाकर, पृष्ठ 45
3. शम्भु-पुरी, (अप्रकाशित रचना)

न जिसकी है दवा ऐसी जलन होगी तेरे तन में ।
बहेगा नीर नैनों से विकल होगा तू छन-छन में ।।
न बैठेगा कभी सुख से न तुझको नींद आयेगी ।
ये ज्वाला है भयंकर जो तुझे निशिदिन जलायेगी ।।[1]

इसके अतिरिक्त और भी विभिन्न छंदों में 'सखी' लिखने का प्रचलन है। उर्दू की ग़ज़ल शैली से इसका साम्य है ।

55. दौड़ -

'सखी' के पश्चात् 'दौड़' का प्रयोग द्रुत गमन का प्रतीक है, इसके द्वारा गायक 'सखी' में कही गई बात के निष्कर्ष पर 'उड़ान' के साथ पहुंचता है। विषय की दृष्टि से सखी-दौड़ में साम्य रहता है, छंद-दृष्टि से वैषम्य। कभी-कभी गायक प्रतिद्वन्द्वी पर अपनी बुद्धि के अनुसार अपने पक्ष का समर्थन करता हुआ वेग से ज़ोरदार हमला करता है, अथवा लक्ष्यप्राप्ति के लिए दौड़ कर प्रतिद्वन्द्वी से आगे निकलता है, इसी प्रतियोगिता के आधार पर सम्भवतः इसका नाम 'दौड़' पड़ा हो। यादे इसका सम्बन्ध अरबी के 'दौर' शब्द से भी जोड़ें तो भी इसका अर्थ 'आक्रमण' सिद्ध होता है।[2] इसमें क्रमशः 15 मात्रा के 'गोपी' छंद तथा 16 मात्रा के 'शृंगार' छंद का प्रयोग हुआ है। इसमे प्रायः 4-6 तक पंक्तियां होती हैं।

उदाहरण

गोपी- सदा भगवन्त नाम जपना ।
यही जानो कारज अपना ।।
और भ्रम जाल सर्व सपना ।
दूर से तिन्हें देख कंपना ।।[3]

शृंगार- ये गुलशन हो मेरा गुलज़ार
चमन में हो रही खूब बहार ।
कहे 'चूडामणि' गुरु हर-बार
तुर्रा कलग़ी पर है असवार ।।
तुर्रा कलग़ी से न थोड़ा है ।
ख़सम जोरू का जोड़ा है ।।[4]

---

1. अज्ञात, ख़याल -संग्रह- अप्रकाशित, श्री बैजनाथ उपाध्याय, ज्वालापुर के सौजन्य से ।
2. द्रष्टव्य, बृहत हिन्दी कोश, पृष्ठ 640
3. जैन कवि नाथूराम, लावनी संग्रह (अप्रकाशित) पु.सं. 2069 वै.सं. 1337, हि.सा.सं. प्रयाग
4. चूड़ामणि, अप्रकाशित ख़याल संग्रह

56. **बहर निराली -**

इसकी प्रथम पंक्ति में 29 मात्राएँ होती हैं, क्रमशः 13, 16 पर यति, विराम। पूर्व पद का प्रवाह दोहे के उत्तर पद के समान तथा उत्तर पद का प्रवाह 'मुखपफा' (समान-सवैया) अर्द्धभाग के समान है। चौक की प्रत्येक पंक्ति में 12, 12 मात्राएँ होती हैं, प्रवाह 'दिग्पाल' के अर्द्ध चरण सम होता है।

उदाहरण -

मिलो दिल के महरमकार[1], हम दर्श तुम्हारा चाहते हैं।। टेक0
की तूने बेवफ़ाई ।
हमसे करी जुदाई ।।
करता न आशनाई ।
कहती मुझे खुदाई ।।
यों होता न ख़ार ख़ार, सब लोग हमें समझाते हैं ।
मिलो दिल के महरमकार, हम दर्श तुम्हारा चाहते हैं ।।[2]

'बहर निराली' का एक अन्य वज़न भी मिलता है, जिसकी टेक की प्रथम पंक्ति में 22+9 = 31 मात्राएँ तथा दूसरी पंक्ति में 11 मात्राएँ होती हैं । चौक में भी मात्राओं का यही विधान है।

सो रहा है क्या तू ग़फ़लत की निंदिया में, ए दिल नादान ।
जाग कहा ले मान ।।[3]

यद्यपि इसके अतिरिक्त भी लावनीकारों ने सैंकड़ों छंदों का प्रयोग किया है, फिर भी यहां पर कतिपय प्रमुख-प्रमुख छंदों का जो स्वरूप प्रस्तुत किया गया है, वह यह आवरण हटाने में समर्थ है कि - **'लावनी छंद-बंध रहित केवल लोक-गीतिका ही है।'** वस्तुतः यह स्वदेशी राग है, इसमें विदेशी प्रभाव नहीं है। यह शिष्ट साहित्य में समाविष्ट होना चाहिये, क्योंकि इसके सभी छंद स्वच्छंद होते हुए भी पूर्णतया भारतीय छंदशास्त्र के साँचे में ढ़ले हैं, भले ही अन्य भाषाओं में इनके नाम बदले हुए हों, परन्तु नाम बदलने से रूप नहीं बदलता है।

---

1. महरमकार= भेद जानने वाला।
2. शम्भु पुरी, हरिद्वार (हस्तलिखित लावनी)
3. बादलगिरि (हस्तलिखित लावनी)

अलंकार-योजना

काव्य में शब्द और अर्थ के सौन्दर्य को बढ़ाने के लिये आचार्यों द्वारा अनेक अलंकारों की परिकल्पना की गई है। इन अलंकारों के सम्यक् प्रयोग से सुकवि-जन अपने काव्य में अचेतन को चेतन एवं चेतन को अचेतन की तरह चित्रित किया करते हैं ।

मम्मट की **'अनलंकृती पुनः क्वापि।'** इस उक्ति को निरस्त करते हुए **जयदेव** ने कहा-

'अंगीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृती ।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलंकृती ।।'[1]

अर्थात् जो अलंकार रहित शब्दार्थ-समूह को काव्य मानता है, वह आग को शीतल क्यों नहीं मानता ?

इस प्रकार कतिपय आचार्यों के मत से अलंकार-रहित काव्य की कल्पना ही असम्भव है।

लावनी काव्य में शब्दगत एवं अर्थगत चमत्कार उत्पन्न करने के लिए इन कवियों ने कुछ तो पूर्व प्रचलित अलंकार अपनाए हैं और कुछ नवीन अलंकारों की भी सृष्टि की है।

यहां प्रमुख-प्रमुख अलंकारों के लक्षण और उदाहरण प्रस्तुत हैं -

अनुप्रास -

जहां एक वर्ण की दो या दो से अधिक वार आवृत्ति हुई हो, यथा -

'गुड़हल में गोपाल विराजैं, गुलाब में गिरिधर महाराज ।
चम्पा में चितचोर चतुर्भुज, चमेली में प्रभु पूरन काज ।।'[2]

यह छेकानुप्रास, वृत्त्यनुप्रास, श्रुत्यनुप्रास, लाटानुप्रास और अन्त्यानुप्रास भेद से पांच प्रकार का होता है।

छेकानुप्रास- उपर्युक्त पद्य की प्रथम पंक्ति में **'गकार'** एवं द्वितीय पंक्ति में **'चकार'** की बार-बार आवृत्ति हुई है अतः यहां **'छेकानुप्रास'** है।

अन्त्यानुप्रास (काफिया) -

यह तो सभी लावनियों में पाया जाता है, क्योंकि इसमें अतुकान्त काव्य-रचना का प्रचलन है ही नहीं। अनुप्रास के अन्य भेद भी लावनी में पाये जाते हैं।

वृत्त्यनुप्रास -

जहां उपनागरिका, परुषा एवं कोमला वृत्तियों के अनुकूल वर्णों की आवृत्ति होती है, जैसे-

---

1. चन्द्रालोक 1/8
2. मदारीलाल उस्ताद

'जन-रंजन खल-गर्व-विभंजन, नर्क निकन्दन उमा-रमन ।
वरदायक उपजायक नायक सब लायक दाता त्रिभुवन ।।
जटा जूट रहे छूट लूट ज्यों कालकूट कर ले आसन ।
नयन तीन परवीन लीन कोपीन भुजंगी पन्नग फन ।।'[1]

इसकी प्रथम तथा द्वितीय पंक्ति में **'उपनागरिका'**, तृतीय में **'परुषा'** और चतुर्थ में **'कोमला'** वृत्ति है।

श्रुत्यनुप्रास -

जहाँ एक ही वर्ग के वर्णों की योजना हो, जैसे -

'देश धर्म पर जिसने निज तन,
मन धन अर्पण किया नहीं ।।'[2]

इस पद्य में **'तवर्ग'** के वर्णों का प्राचुर्य है।

लाटानुप्रास -

यह शब्द का अनुप्रास है, इसमें पद का अन्वय करने से अर्थ बदल जाता है, यथा -

'जो पथ्य रखे उपचार से क्या, नहिं पथ्य रखे उपचार से क्या ।
हों पूत कपूत हज़ार से क्या, हो पूत सपूत हज़ार से क्या ।।'[3]

यमक -

जहाँ एक शब्द की भिन्न-भिन्न अर्थों में आवृत्ति हुई हो, यथा -

'मोतिया से मोतियों की दुति लजा दी राम ने ।'[4]

वक्रोक्ति -

किसी बात को सीधे-सीधे न कह कर टेढ़े ढंग से कहना ही **'वक्रोक्ति'** है। इसमें श्रोता वक्ता के अभीप्सित अर्थ से भिन्न-भिन्न अर्थ ग्रहण करता है। इस प्रकार का भिन्न अर्थ श्लेष या काकु से अर्थात् कथन-शैली के सहारे व्यक्त होता है, अत एव यह अलंकार श्लेष वक्रोक्ति एवं काकु वक्रोक्ति भेद से दो प्रकार का है। श्लेष वक्रोक्ति भंग पद एवं अभंग पद भेद से दो प्रकार की है। यहाँ केवल अभंग पद श्लेष वक्रोक्ति का उदाहरण प्रस्तुत है -

'हे प्रान प्रिया, उठ खोलो कनक किवारे ।
तुमको हो ? पिछली रात जगावन हारे ।।
हे प्यारी हम तो हैं **'घनश्याम'** पियारे ।
तो बरसो बन-बागन में गरज सहारे ।।'[5]

---

1. मदारीलाल उस्ताद
2. स्वामी नारायणानन्द
3. सत्यव्रत शर्मा 'अजेय', अप्रकाशित लावनी-संग्रह 'लावण्य मंजरी'
4. कालिकाप्रसाद 'सुन्दर'
5. अज्ञात

यहाँ **'घनश्याम'** और **'मरज'** शब्दों में श्लेष है, इसे लावनी वाले **'दुचश्मी'** और **'उक्तिवैचित्र्य'** भी कहते हैं।

दृष्टान्त -

जहाँ उपमेय, उपमान और साधारण का बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव प्रदर्शित किया जाय और वाचक शब्द प्रकट न हो, यथा -

'कुलाल कब हो सकता बुलबुल, चाहे तेज़ जबान करे ।
धान कभी गन्दुम नहीं होता, बोया चहे किसान करे ।।'[1]

वीप्सा -

जहां किसी आकस्मिक भाव को प्रकट करने के लिए एक शब्द की कई बार आवृत्ति हो, यथा -

'हो चुका पतन, हो चुका पतन, कर जतन ज़माना बदलेगा ।
लावनी का हो उत्थान तभी जब अनपढ़ गाना बदलेगा ।।[2]

उदाहरण -

जहाँ साधारण बात की समता किसी असाधारण बात से, **'जैसे'** आदि वाचक शब्दों के द्वारा प्रदर्शित की जाय, यथा -

'कर्मों से ज्ञान हो यही वेद कहते हैं ।
जब ज्ञान हुआ फिर कर्म नहीं रहते हैं ।।
जैसे वृक्षों पर प्रथम पुष्प आते हैं ।
फल प्रगट होंय तब पुष्प सूख जाते हैं ।।[3]

रूपक -

जहां उपमेय का उपमान में अभेद रूप से आरोप किया जाता है, यथा -

'सुख-सुगन्ध लोभी मन-मधुकर काम-कमल पर जा बैठा ।
प्रेम-पाँखुरी में फंस कर अपने को आप गंवा बैठा ।।'[4]

सन्देह -

जहाँ प्रस्तुत के वर्णन से तथ्य और अतथ्य का निश्चय न हो सके, यथा-

'है शीश पर शीश फूल कैंधों, पताका ये रति अमन्द का है ।
किधौं नखत संग श्याम घन में, प्रकाश पूनों के चन्द का है ।।'[5]

---

1. ब्लाकटानन्द
2. सत्यव्रत शर्मा 'अजेय', लावनी का इतिहास, पृष्ठ 342
3. स्वामी नारायणानन्द सरस्वती
4. वही
5. आनन्दी शायर

उपमा -

जहाँ प्रत्यक्ष पृथक् लगने वाली दो वस्तुओं में रूप, रंग, गुण और आकृति की दृष्टि से समता प्रकट की जाय, यथा -

'फूलों सा कोमल गात देख,
है मान लजाया फूलों का।
जब जग-जननी का रघुबर ने,
शृंगार सजाया फूलों का ।।'[1]

यहाँ **'गात'** उपमेय है, **'फूल'** उपमान है, **'कोमल'** धर्म है और **'सा'** वाचक है। इसका दूसरा भेद **'लुप्तोपमा'** भी है, जिसमें उपमा का कोई अंग लुप्त रहता है।

उत्प्रेक्षा -

जहां मनु, मानो आदि वाचक शब्दों के माध्यम से प्रस्तुत की अप्रस्तुत रूप में सम्भावना की जाय, यथा -

'है शीश पर शीश फूल शोभित, स्वरूप आभा अखंड का है ।
मनो भुजंगों की भूमिका पै, निवास श्री मारतंड का है ।।'[2]

भ्रान्तिमान् -

जहाँ किसी वस्तु को भ्रान्तिवश कोई दूसरी वस्तु समझ लिया जाय, यथा-

'दाड़िम श्रीफल देख कुचन सम, देह-दशा बिसराय रहे ।
श्याम घटा में दामिनि दमकत, भूषण वसन लुभाय रहे ।।'[3]

भाषा समक -

जहां पृथक्-पृथक् पद पृथक्-पृथक् भाषाओं में समान रूप से लिखे गए हों, यथा-

'लिखूँ सरापा जो उस सनम का, तो किसकी किसकी सना लिखूँ मैं ।
मृदुल मनोहर है गात सुन्दर मयंक, मुख चन्द्रमा लिखूँ मैं ।।'[4]

यहाँ प्रथम पंक्ति उर्दू में तथा दूसरी हिन्दी में लिखी गई है। लावनीकारों ने सात-सात भाषाओं को मिला कर भी रचना की है, ऐसे काव्य को **'करम्भक'**[5] भी कह सकते हैं।

---

1. कालिकाप्रसाद 'सुन्दर'
2. पं0 रूपकिशोर
3. मणिलाल मिश्र
4. डा0 सैयद अहमद अली
5. 'करम्भकं तु भाषाभिर्विविधाभिर्विनिर्मितम् ।' साहित्य दर्पण, 7/337

रूपकातिशयोक्ति -

जहाँ केवल उपमानों के माध्यम से उपमेयों का कथन किया जाय, यथा-

'तरुणाई के प्रथम प्रहर में जोड़ी टूट गई ।
फूली हुई रात की रानी, प्रातः रूठ गई ।।'[1]

यहाँ पर 'फूली हुई रात की रानी' से नव यौवना जीवन संगिनी का कथन किया गया है।

परिवृत्त -

जहाँ पहली वस्तु की विशेषता दूसरी वस्तु में और दूसरी वस्तु की विशेषता पहली वस्तु में कर दी जाय, यथा -

'निज पद-पद्मों में प्रेम लगा, प्रभु तुम मुझको पागल कर दो ।
गागर यह सागर में बोरो, सागर को गागर में भर दो ।।'[2]

एकावली -

जहाँ पहले कहे गए पदार्थ के साथ बाद में आने वाले पदार्थ का कई बार स्थापन या निषेध किया जाय, यथा -

'पतली कटि, कटि पर कलश, कलश पर डोरी ।'[3]

लावनी-काव्य में इसे **'जंजीर-बन्द'** कहते हैं।

विभावना -

जहाँ कारण के बिना भी कार्य हो, यथा -

'बिना लिये हथियार हाथ -
कर भारत वर्ष स्वतन्त्र दिया ।'[4]

ध्वन्यर्थ व्यंजना -

यह नवीन अलंकार माना जाता है, परन्तु लावनी-काव्य में इसका प्रयोग अनेक स्थलों पर हुआ है। इसका लक्षण है कि जहाँ नाद-सौन्दर्य के सहारे अर्थ की व्यंजना की जाए, वहां **'ध्वन्यर्थ व्यंजना'** अलंकार होता है, यथा -

'अति अनंद मिरदंग बजे संग,
धिकतां धिकतां धिन्नकधा ।'[5]

---

1. माखनलाल चतुर्वेदी
2. जगदम्बा प्रसाद 'हितैषी'
3. अभिराम शर्मा
4. शालिगराम बजाज
5. आजिज़

कलात्मक अभिव्यक्ति : नवीन प्रयोग

लावनी काव्य के अन्तर्गत कुछ अपने ढंग के अलंकार भी पाए जाते हैं, जिन्हें ख़यालगो **'सनअ़त'** कहते हैं। उनमें से कुछ मुख्य-मुख्य इस प्रकार हैं -

पशुओं का ज़िला -

ज़िला 'अरबी' का शब्द है जिसका अर्थ है - द्वयर्थक बात ।[1] अतः जहां पशुवाचक शब्दों को द्वयर्थक रूप से प्रयुक्त किया जाय, वहाँ 'पशुओं का ज़िला' अलंकार होता है। इसका साम्य **'मुद्रा'** अलंकार से है, यथा -

''हाथी' हाथा क़ासिद ने ख़त पहुंचाया ।
दिल 'शेर' हुआ जब पिया मेरा घर आया ।।'[2]

इसी प्रकार इन्होंने कुछ ऐसी रचनाएँ की हैं, जिनमें एकसाथ नगर, खाद्यपदार्थ, आभूषण और शस्त्र आदि का प्रयोग दो अर्थों में हुआ है, यथा -

'**कपट ना** कर तू, हंस लिपट गले से यार,
तीर आ मत कर सोच विचार ।
बनारस हर्गिज़ निमछले रहे नहीं जान,
की **रचना मीठा** बन हर आन
गया दिल ले कर **बाला** दे त्यौर को तान
तोप दिया ग़म में **कम रख** ध्यान
दिल लीया मेरा दिखला कर हुस्न बहार ।।'[3]

तिसहर्फ़ी -

जहाँ उर्दू वर्णमाला के 'अलिफ' से 'ये' तक की बन्दिश हो, यथा -

'ओ बहरे हुस्न तकसीर मेरी क्या देखी,
मेरी जान, जो तू ने किया किनारा जी ।
बग़लगीर गैरों का हुआ मुझे पार उतारा जी ।।'[4]

इसी प्रकार 'उल्टी', 'तिसहर्फी', 'ये' से 'अलिफ' तक की बन्दिश से होती है ।

---

1. द्रष्टव्य, बृहत् हिन्दी कोश, पृष्ठ 495
2. पं0 प्रभुदयाल
3. वही
4. लावनी का इतिहास, पृष्ठ 56

ककहरा -

जहाँ हिन्दी 'बारहकड़ी' के 'क' से लेकर 'ह' वर्ण तक की बन्दिश हो, यथा -

'कुछ और बने चाहे न बने यक भगवत सुमिरण बन जाये ।
खटका न रहे भव-बन्धन का, आदर्श ये जीवन बन जाये ।।'[1]

इसी प्रकार 'उल्टा ककहरा' 'ह' से लेकर 'क' तक की बन्दिश से होता है ।

दुअंग -

जहां प्रत्येक पंक्ति के आदि और अन्त में एक ही वर्ण प्रयुक्त हो, यथा -

'थका न अब तक विषय भोग से, तृष्णा वश बहु किये अनर्थ ।
थिर मन कर जप ओउम् मन्द अब दिवस रत्न क्यों खोवे व्यर्थ ।।'[2]

अठंग -

जहां प्रत्येक पंक्ति में कोई एक वर्ण आठ बार आवृन्त हुआ हो, यथा -

'निकट निकेतन के आनि छाये, निकाय नागरि निशंक नीके ।
निखरे निखिलांग नेह साने, निखिल नदीदे से निर्खनी के ।।'[3]

यहां प्रत्येक पंक्ति में 'न' वर्ण आठ बार आवृन्त हुआ है।

अधर -

जहाँ उ, ऊ, प, फ, ब, भ वर्ण वर्जित हों, अर्थात् उच्चारण में परस्पर ओष्ठ न मिलें, यथा-

'चढ़ देखा सखी अटा है ।
इन्दर दल साज डटा है ।।'[4]

अमात्र -

जिसमें किसी मात्रा एवं विसर्ग या अनुस्वार का प्रयोग न हो, यथा -

'तज कर असत ग्रहण कर सत पथ,
मगन रहत मन सर धर रज ।
रज धर चरण गहत मन हरषत,
कहत मसल सब तज कर भज ।।'[5]

इसी प्रकार जिसमें प्रत्येक वर्ण मात्रा वाला हो उसे 'मात्रिक' या 'मात्रादार' अलंकार कहते हैं।

---

1. लछमनप्रसाद शर्मा
2. स्वामी नारायणानन्द
3. वही
4. पं0 प्रभुदयाल
5. स्वामी नारायणानन्द

बेनुक़त -

जिसमें कोई नुक़ता न लगता हो, यथा -

'मलाल हो दिल से दूर सारा, अगर दमे वस्ल आइयेगा ।

मुराद का गुल हरा हमारा, अदा दिखा कर खिलाइयेगा ।।'[1]

इसी प्रकार जिसमें सब हर्फ़ नुक़्ते वाले हों, उसे **'नुक़्तेचीन'** अलंकार कहते हैं।

इसी प्रकार लावनी में चित्र-काव्य भी पाया जाता है, जिसका समावेश शब्दालंकार के अन्तर्गत ही माना जाना चाहिए।

'पद्माद्याकार हेतुत्वे वर्णानां चित्रमुच्यते ।'[2]

अर्थात् जिस काव्य के वर्ण कमल आदि के स्वरूप में परिणत हो जायं, उसे चित्रकाव्य कहा जाता है।

'इस चित्रकाव्य के लक्षण में **'पाठ्याक्षरापेक्षया लेख्याक्षराणां न्यूनत्वे'** इतना और निवेश करना चाहिए। पढ़ने के अक्षरों की अपेक्षा लिखने के अक्षर कम होने चाहिएं, अर्थात् सब या कुछ अक्षर एक बार लिख कर अनेक बार पढ़े जाने चाहिएं, तभी चित्र माना जाता है, अन्यथा सभी पद्य किसी न किसी आकार में अवश्य लिखे जा सकते हैं, अतः सभी चित्र हो जाएंगे। **आदि शब्देति पद्म** आदि पद में 'आदि' शब्द से खड्ग, मुरज, चक्र, गो मूत्रिका आदि चित्रों का ग्रहण जानना ।'[3]

गतागत -

जहाँ उलट कर पढ़ने पर भी वही मिसरा बन जाए, यथा -

'नव नव साहस लखते, खल सहसा वन वन ।

नत शीश रहे रन में, नर हेर 'शशी'-तन ।।'[4]

वर्ण विन्यास से इसका चित्र इस प्रकार होगा -

---

1. स्वामी नारायणानन्द
2. विश्वनाथ कविराज साहित्य दर्पण, दशम परिच्छेद, तेरहवें श्लोक का पूर्वार्द्ध
3. शालग्राम शास्त्री, विमला हिन्दी टीका, साहित्य दर्पण, अष्टम संस्करण, पृष्ठ 290
4. अजेय, अप्रकाशित लावनी-संग्रह : 'लावण्य मंजरी' ।

पद्य का भावार्थ : दुष्ट सहसा वन-वनान्तर में श्री रामचन्द्र जी के नव-नव साहस को देखते हैं एवं मानव युद्ध में उनके चन्द्रमा के समान शरीर को देख कर नतमस्तक होगए, क्योंकि युद्ध में तो क्रोध के कारण उनका शरीर सूर्य के समान प्रचण्ड हो जाना चाहिए था। 'शशी' से 'चन्द्र' अर्थात् रामचन्द्र की अभिव्यञ्जना हुई है।

टिप्पणी : प्रस्तुत पद्य 'नव नव साहस ..... तन' में चित्र में नवम अक्षर से प्रवेश होकर विदिशा (कोण) में स्थित वर्ण पर आकर निर्गम होगा, फिर कोण स्थित वर्ण को छोड़ कर वहीं से वापसी होगी। बांये कोण में स्थित वर्ण तक पहुँच कर कोण स्थित वर्ण छोड़ते हुए फिर अष्टम अक्षर तक लौटिए, प्रवेश-वर्ण की दोनों दिशाओं में समान वर्ण हैं। इस प्रकार यहाँ 19 वर्ण लिख कर 36 वर्ण पढ़े जाते हैं। ऊपर नीचे यही क्रम है।

चित्रकाव्य

श्री	न	र	हे	र	श	शी	त	न	न	व	न	व	सा	ह	स	ल	ख	
	न	र	हे	र	श	शी	त	न	न	व	न	व	सा	ह	स	ल	ख	ते

'लोम-विलोम' चित्रकाव्य भी इससे मिलता जुलता है। इसी प्रकार 'सिंहावलोकन' अलंकार की शैली में लावनीकारों ने 'पर' 'वर' 'लल' आदि शब्दों की, पंक्ति के दोनों तरफ योजना कर चित्रकाव्य की रचना की है।

संगीत के आधार पर लावनियों की स्वरलिपि भी तैयार की जा सकती है।

स्वरलिपि के संकेत-चिह्न

ऽ - दीघ करिए, जैसे 'भा ऽ त'

• - जिन स्वरों के नीचे बिन्दु हो, जैसे 'ध़' यह **मन्द्र सप्तक** है।

— - जिस स्वर के आगे पड़ी पाई हो (-) उसे उतनी मात्रा तक दीर्घ करिए, जितनी पाइयाँ हों, जैसे - रे - सा

‿ - जिस स्वर के ऊपर से किसी दूसरे स्वर तक चन्द्राकार लकीर जाय वहाँ से वहाँ तक मींड समझिए, जैसे प़ ध़

नोट - जिनमें कोई बिन्दु न हो वह मध्य सप्तक के हैं, जैसे - **पितु'** के (, सा रे)

उदाहरणार्थ पं0 प्रतापनारायण मिश्र की लावनी की एक पंक्ति की स्वरलिपि[1] प्रस्तुत है -

---

1. उर्मिला उपाध्याय, ज्वालापुर के सौजन्य से ।

पितु मात सहायक स्वामि सखा तुम ही इक नाथ हमारे हो ।'

कहरवा-त्रिताल (ख़याल रंगत मुखफ़्फ़ा)

			पितु सा रे
मा ऽ त स	हा ऽ य क	स्वा ऽ मि स	खा ऽ तु म
ध़ - ऩी -	सा - रे रे	ग ग ग ग	ग - ग ग
ही ऽ इ क	ना ऽ थ ह	मा ऽ रे ऽ	हो ऽ पि तु
रे - सा सा	स ग रे रे	सा ऩी ध़ -	पध़ प़ सा रे

इस प्रकार हम देखते हैं कि लावनी का कलापक्ष भावों के बाह्य आवरण को सुन्दरतम बनाने में पूर्णतया सक्षम है। उसके छंद मधुरतम लय पर आधारित हैं, उसमें कोमलकान्त पदावली से युक्त भाषा में गुण-गरिमा एवं अलंकार-सौष्ठव के साथ-साथ शैलीगत चमत्कार भी है । वस्तुतः लावनीकारों की आत्मा का सौन्दर्य ही इस काव्य-कला के रूप में अभिव्यक्त हुआ है।

(ख) लावनी का भाव-पक्ष

जीवन और जगत् के सम्पर्क से मन में उत्पन्न विचार, ज्ञान, संवेदन और संकल्प आदि ही भाव कहलाते हैं। ये मनोवेग काव्य के भाव पक्ष में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। कल्पना, बुद्धि और शैली तत्त्वों के मूलभूत आधार भी यही हैं।

"नाना विषयों के बोध का विधान होने पर ही उनसे सम्बन्ध रखने वाली इच्छा की अनेक रूपता के अनुसार अनुभूति के जो भिन्न-भिन्न योग संगठित होते हैं वे भाव या मनोविकार कहलाते हैं।"[1]

भावों का मन से प्रगाढ़ सम्बन्ध है, क्योंकि मन ही सुख दुःखादि की उपलब्धि का साधन है । संसार में प्रमुख भाव सुख और दुःख ही हैं । बाह्य पदार्थों की अनुभूतियों से उत्पन्न, भूत, भविष्यत् और वर्तमान के चिन्तन से उत्पन्न एवं सौन्दर्य-बोध से उत्पन्न भाव ही संचारी भाव कहलाते हैं, काव्य में यही कभी-कभी स्थायी भाव भी बन जाते हैं।

रस की निष्पत्ति के मूल कारण भी यही भाव हैं, इनकी रसों के साथ घनिष्ठ आत्मीयता है। वास्तव में भावहीन रस नहीं और रसहीन भाव नहीं। दोनों ही एक-दूसरे के प्रेरक और पूरक हैं, दोनों में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। लावनी काव्य में दोनों की सत्ता और महत्ता है। यहाँ क्रमशः दोनों का विवेचन प्रस्तुत है -

भाव-योजना

काव्य में जीवात्मा-परमात्मा, कला-साहित्य और सुख-दुःख आदि विपरीत भावों का समीकरण कर परमानन्द की प्राप्ति ही लावनीकारों का लक्ष्य रहा है। इनकी रसभावना को हम शुद्ध बौद्धिक कह सकते हैं। बुद्धिवाद से पृथक् होकर काल्पनिक क्षेत्र में इन कवियों ने प्रकृति के व्यक्त नाना रूपों में अव्यक्त विराट् विभु की सत्ता का साक्षात्कार किया है। इन्होंने प्रकृति के मनोहर दृश्यों की सहायता से अपनी रहस्यवादी उक्तियों को अत्यधिक सरस तथा मार्मिक बना दिया है।

लावनी के आदिकाल (1250-1600 ई0) में भक्ति-चेतना और मध्यकाल (1601-1870 ई0) में शृंगार चेतना का विकास हुआ।

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि, भाग-1, पृष्ठ 1

ये लावनीकार सहृदय, कोमल स्वभाव, सात्त्विक, संयमी, विचारशील, चमत्कारप्रिय एवं सुन्दर भावों की उद्‌भावना करने की क्षमता रखने वाले होते थे। इन्हीं उदात्त वृत्तियों के कारण इनकी प्रवृत्तियाँ काव्य में श्रेय और प्रेय की स्थापना की ओर उन्मुख रही हैं। इन्होंने अपने काव्य के लिए प्रधान विषयों और उपादानों के रूप में वेदान्त, भक्ति, वैराग्य, प्रेम और प्रकृति को चुना। इसके अतिरिक्त अपनी कल्पना-शक्ति से इन्होंने अनेक देवी-देवताओं का यशोगान कर उनमें प्राण प्रतिष्ठा भी की। आधुनिक काल (सन् 1871 से अब तक) में इन्होंने स्वदेश-प्रेम, मानव और राष्ट्रीय-भावना को भी अपने काव्य का आलम्बन बनाया। इसी प्रवृत्ति के कारण इसे "राष्ट्रीय चेतना काल" की संज्ञा दी गई है। लावनी काव्य में गृहीत मुख्य-मुख्य भाव इस प्रकार हैं -

वेदान्त -

वेदान्त वह विद्या है जिसे 'ब्रह्मविद्या' कहते हैं, अथवा वह दर्शन है जिसमें ब्रह्मविद्या को ही पारमार्थिक सत्ता कहा है और जीव तथा जगत् अतिरिक्त पदार्थ नहीं माने गए हैं एवं अद्वैतवाद का मूलभूत सिद्धान्त भी यही है -

'सत्यं ब्रहम जगन्मिथ्या, ब्रह्मो जीवैव नापरः ।'

अर्थात् ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है, जीव ही ब्रह्म है, दूसरा कोई नहीं। रहस्यवादी सिद्धों, योगियों और नाथपंथियों की भांति इन लावनीकारों ने नाद, बिन्दु, सुरति, निरति, सहज शून्य, हठयोग, रहस्यभावना, निर्गुण उपासना और अन्तःसाधना को अपनाया है। अध्यात्म पक्ष में इनकी कल्पना निःसीम तक गई है। इनका उपास्य संसार के प्रत्येक कण-कण में व्याप्त, ज्योतिस्वरूप, अलख और निरंजन है। वह न तो काबे में है, न काशी में, न मन्दिर में, न मसज़िद में। इन्होंने उस दिव्य सत्ता को अपनी गंभीर आध्यात्मिक सूक्ष्मदृष्टि और परिपक्व आत्मानुभूति के द्वारा अपने ही अन्दर देखने का प्रयत्न किया है-

'यों ही दैरो हरम में भटकते रहे,
जहाँ जाना है वां की खबर ही नहीं ।
वो तो घट के ही पट में निहां है मियां,
वले अन्धों को आता नज़र ही नहीं ।।'[1]

अविद्या के कारण जीव स्वयं को ब्रह्म से भिन्न मानता है। परन्तु आत्मज्ञान होने पर जीवात्मा और परमात्मा में कोई भेद नहीं रहता -

---

1. अनन्तगिरि, लावनी का इतिहास, पृष्ठ 76

'अनादि अविगत अभेद अद्वय, अचल सनातन की चाल का हूँ ।
अलख अगोचर अखण्ड अच्युत, अजीत अज काल काल का हूँ ।।'[1]

रूप, रस, गन्ध, शब्द और स्पर्श आदि के मिथ्या लोभ के कारण ही यह मन इन्द्रिय सुख में फंस जाता है। इसी प्रकार के अपने अनुभूत गम्भीर, विचारों को इन सन्त कवियों ने 'रूपक' द्वारा प्रकट किया है -

'मनपतंग गया उखड़, पकड़ कर हिर्स-हवा का ज़ोर,
टूट गई सुरति - सूत की डोर जी ।।'[2]

बाह्याडम्बरों का विरोध कर अन्तःसाधना पर ज़ोर देते हुए सिद्धों की भांति योग के षोडश दल, दश दल और अजपा जाप का प्रयोग भी अपनी रचनाओं में इन कवियों ने किया है। प्राणायाम-साधना से हठ-पूर्वक मन का निग्रह कर समाधिस्थ होकर ही ब्रह्म को अनुभूति में लाया जा सकता है-

'षोडश दल का 'दश दल' दोई दल ऊपर को चढ़े ।
'अजपा जाप' जपे इस जा पर योगारम्भ को पढ़े ।।'[3]

यद्यपि सत्पुरुष अर्थात् परात्पर परब्रह्म से उत्पन्न माया ही सृष्टि की सृजनशक्ति है, परन्तु इनकी दृष्टि में यह माया अधिकतर अनिर्वचनीय और मिथ्या ही है, यह भक्ति के मार्ग में रुकावट पैदा करने वाली है -

'माया दूती ने दी बिगाड़ महबूबी ।
जिह्वा रस में फंस गई फ़कीरी डूबी ।।'[4]

आत्मा परमात्मा से निकला है, यह 'ईश्वर अंश जीव अविनाशी है', अतः अपने मूल स्रोत से मिलने के लिए छटपटाता रहता है -

'तू शहन्शाह मैं दर का गदा, जुज़ रूह एक तकदीरें दो ।
तू तख़्त नशीं मैं ख़ाक नशीं, है वतन एक जागीरें दो ।।'[5]

सूफी (प्रेममार्गी) कवियों की तरह इन्होंने अगर कभी इश्क मजाज़ी में इश्क हक़ीक़ी का जलवा देखा है-

'अहा किस से कहूँ यह राज़ निहां,
मुझे इश्क हक़ीक़ी है पैदा हुआ ।।'[6]

---

1. स्वामी नारायणानन्द
2. रामदयाल उर्फ दयालचन्द
3. वही
4. अहमद अली
5. मास्टर प्यारेलाल
6. बद्रीप्रसाद खत्री

तो कभी कबीर के ज्ञान-योग में मग्न होकर यह भी अनुभव किया है कि गंगा और यमुना में नहाने से कोइ लाभ नहीं, यदि मन को पवित्र बनाना चाहते हो तो वेदान्त के वारिधि में गोता लगाओ -

'तुम बहरे बहदत में मार गोता,
नहा न यों गंग औ जमन में ।
गुबार दिल का धुलेगा क्यों कर,
मलेगा जो पानी तन-बदन में ।।'[1]

और कभी सिद्धों के समान साधक का मन जब इड़ा पिंगला के मध्य सुषुम्णा के मार्ग से शून्य अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र में पहुँच जाता है तो पूर्ण एकाकार होकर परम सुख प्राप्त करता है -

'तिरवेनी से जब पार होय तब,
आसन मन-मन्दर बन जाये ।
कर सके काल फिर उसका क्या,
ब्रह्माण्ड में जिसका घर बन जाये।।'[2]

इनका अध्यात्म अद्वैतवादी है, एवं आत्मा स्वयं ज्योति स्वरूप शाश्वत और अमर है, वह परमात्मा से अभिन्न है -

'वो है मुझ में मैं उसमें अयां औ निहां,
गाहे अन्दर हूँ मैं गाहे बाहर हूँ में ।
रहता उससे हमेशा ख़िलत औ मिलत,
वह अलल नूर उससे मुनव्वर हूँ में ।।'[3]

मन, बुद्धि, अहंकार से परे ये साधक स्वयं में स्वयंभू की अनुभूति कर कह उठते हैं-

'ज्ञानी जन पहचानें हमको, हम जो कुछ हैं जहाँ के हैं ।
अपने दरस को, आप हम इस नगरी में झांके हैं ।।'[4]

---

1. मौहम्मद शाह मीर खाँ 'शोर'
2. पन्नालाल खत्री
3. सैयद अहमद अली 'अहमद'
4. महात्मा अनन्तगिरि, ला.का इ., पृष्ठ 76

भक्ति -

यह प्रेम प्रधाना है -

'सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा, अमृतस्वरूपा च ।'

- नारद भक्ति सूत्र 2-3

अर्थात् इस प्रेम में वह भक्ति परमप्रेम-रूपा और अमृतरूपा दो प्रकार से विद्यमान है। इसका मूल स्वर वैराग्य है, संसार को असार प्रतिपादित कर मोक्ष का उपदेश ही इसका प्रमुख लक्ष्य है। इसका उदय पाण्डित्य के सहारे नहीं अपितु हृदय की सहजानुभूति के सहारे हुआ है। इसमें ऊंच-नीच का भेद-भाव और विचारों की संकीर्णता नहीं होती है। निर्गुण और सगुण का भी कोई प्रश्न नहीं। पत्ता-पत्ता उसकी सत्ता का बखान करता है -

'बिन प्रतिमा खाली नहीं देखा, कोई फूल फुलवारी में ।
भंवर दृष्टि हो तमाम देखा, हमने बाग़ बहारी में ।।'[1]

भक्त की दृष्टि में उसका अपना कोई अस्तित्व नहीं, वह तो बस 'तू ही तू' की पुकार करता रहता है -

'शान में उसकी 'हमे ओस्ता'
कलमा लब फुक़रान में है ।'[2]

प्रेम - प्रेम की पराकाष्ठा पर पहुँच कर यह कवि 'तन्मय' हो गए हैं, उनके अन्तःकरण से 'तू-मैं' का अन्तर मिट गया है और उनका मन ही स्वयं मनमोहन बन गया है और उन्हें यह आभास होने लगा है कि मानो -

'काया-कदंब में हेत-हिंडोला पड़ा, झूलते मन-मोहन ।
पांचो आत्मा[3], आत्मा पैंग दे रही सखियां बन ।।'[4]

उनका आराध्य निर्गुण भी है और सगुण भी है -

'अजर अमर अखिलेश अगोचर, अगम आदि अविकारी तुम ।
वृन्दावन में बजाई बंशी, व्रजपति विपिन-बिहारी तुम ।।'[5]

इनकी दृष्टि में भगवद्-भजन से बढ़ कर संसार का और कोई भी सुख नहीं है, इनकी अभिलाषा है -

---

1. मदारीलाल उस्ताद
2. रामदयाल उर्फ दयालचन्द
3. पंचात्मा = पंच प्राण अर्थात् शरीर में संचरण करने वाली वायु के पांच भेदों - प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान का समाहार।
4. उस्ताद बादल
5. कालिकाप्रसाद 'सुन्दर'

'कुछ और बने चाहे न बने यक भगवत-सुमिरन बन जाये ।
खटका न रहे भव-बन्धन का, आदर्श ये जीवन बन जाये ।।'[1]

उसे पाने के लिए वन-वन भटकना आवश्यक नहीं, इन्द्रियों को वश में कर लेने पर उसके दर्शन घट के भीतर ही हो जाते हैं-

जिसके लिये फिरता है भटकता, चारों तरफ वन-वन बाबा ।
मन मारे तो, तुझे हो घट ही में दर्शन बाबा ।।'[2]

क्योंकि -

'है उसी का नूर हर जर्रे में हर इन्सान में ।
है वही काबे में काशी में व देवस्थान में ।।'[3]

वह सच्चिदानन्द आनन्द-कन्द सदैव अशरण-शरण है, अनन्यभाव से उसका चिन्तन करता हुआ कवि कहता है कि -

'पितु मात सहायक स्वामि सखा, तुम ही इक नाथ हमारे हो ।
जिनके कछु और अधार नहीं तिनके तुम ही रखवारे हो ।।'[4]

इन कवियों की अन्तिम आकांक्षा मोक्ष थी, जो ज्ञान से और कर्म से नहीं, अपितु उपासना से ही सुलभ हो सकती है। अतः इनकी दृष्टि में कर्म-विकर्म, यम-नियम, ज्ञान-विज्ञान, तर्क-वितर्क सब व्यर्थ थे-

'दिला सके जो न मुक्ति हमको, वो ज्ञान हम लेके क्या करेंगे ।
गिराये जो आत्मा को ऐसा, विधान हम लेके क्या करेंगे ।।'[5]

वह सबकी अमरमूल है और सबको मार कर धूलि कर देता है, वह सबसे दूर है और सबमें समाया है -

'कर्म अकर्म विकर्म-विधाता, फलदाता हो बड़े खरे ।
सबके हो, सब में हो, फिर भी, रहते सब से सदा परे ।'[6]

इस प्रकार उस अलख, अगोचर, अनादि, अनन्त, अज, अखिलेश्वर, अवर्ण्य और अचिन्त्य को इन्होंने अपने चिन्तन में उतारा है, और गीतों के पंख लगाकर उस अस्पृश्य के स्पर्श का आनन्द पाया है -

'जिन चरणों के प्रभो सन्निकट, जाने को ललचाती हूँ ।
उन्हें इन्हीं गीतों के लम्बे पंखों से छू आती हूँ ।।'[7]

---

1. लछमनप्रसाद शर्मा
2. मौलवी अफसर
3. काशीदीन
4. पं0 प्रतापनारायण मिश्र
5. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'
6. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'
7. अभिराम शर्मा

भारतीय धर्म-साधना में अवतारवाद प्रमुख स्थान रखता है। अजन्मा क्यों जन्म लेता है? इसका कारण गीता में कृष्ण जी ने इस प्रकार बतलाया है -

'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।'[1]

इन कवियों ने शिव को शिवभाव का अधिष्ठाता मान कर उसके शिव स्वरूप की, चण्डी को प्रचण्ड शौर्य की प्रतीक मान कर उसके चण्ड-मुण्ड-विमर्दक तेज:स्वरूप की स्तुति तो की ही है, राम के लोकाभिराम रूप एवं कृष्ण के अनिन्द्य सौन्दर्य का भी चित्रण कर सत् चित् और आनन्द का सामंजस्य स्थापित किया है। इसी प्रकार और भी अनेक देवी-देवताओं और पीर-पैगम्बरों की भी स्तुतियां लिखी गई हैं। कतिपय देव-स्तुतियां प्रस्तुत हैं -

देवस्तुतियाँ -

शिव -

'यह हिन्दुओं के तीन प्रधान देवताओं में से एक हैं, जिनका कार्य सृष्टि-संहार है, इसी कार्य के कारण इन्हें रुद्र भी कहा जाता है। शिव की प्रतिष्ठा **'रुद्र'** के रूप में वेदों में भी मिलती है।'[2] स्वयं गरलपान कर देवताओं को इन्होंने अमृतदान किया, अतः नीलकण्ठ कहलाये। कवियों के अनुसार इनकी जटाओं में गंगा और मस्तक पर चन्द्रमा सुशोभित है। यह त्रिनयन हैं, पार्वती के स्वामी हैं -

'लहराय जटन में गंग,
गौरि संग अरधंग अंग लपटे भुजंग शिव पिये भंग ।।'[3]

दुर्गा देवी -

यह आद्याशक्ति है, पार्वती के लिये भी इस शब्द का प्रयोग होता है। देवी के नाम पर एक पुराण भी है, जिसमें दुर्गा के माहात्म्य का वर्णन किया गया है। इसी प्रकार 'देवी भागवत' में भी दुर्गा-माहात्म्य वर्णित है। ऋग्वेद में एक देवी विषयक सूक्त आया है, जिसके आधार पर 'दुर्गासप्तशती' के अन्तर्गत एक 'देवी स्तोत्र' की रचना की गई है। यह शौर्य की प्रतीक है, सिंहवाहिनी, अष्टभुजी आदि रूपों में कवियों ने इसका वर्णन किया है -

'डरे दुष्ट जो हते निशाचर, प्रताप महिमा का है अखण्डित ।
डहक से कांपे असुर वो थर थर, वो क्रोध दुर्गा का है प्रचण्डित ।।'[4]

---

1. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 4, श्लोक 7
   भावार्थ : 'हे अर्जुन। जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब मैं अपना सृजन करता हूँ।'
2. द्रष्टव्य, बृहत् हिन्दी कोश, पृष्ठ 1334
3. चुन्नी गुरु
4. पं0 प्रभुदयाल

गणेश -

इन्हें शिव-पार्वती का पुत्र माना जाता है। 'स्कन्द पुराण' का एक खण्ड 'गणेश खण्ड' नाम से प्रसिद्ध है। 'गणेश पुराण' और 'गणेश-संहिता' में इनका गुणगान हुआ है। भाद्रपद और माघ की कृष्ण चतुर्थी **'गणेश चतुर्थी'** कहलाती है। कुछ धार्मिक लोग इन तिथियों में व्रत-उपवास आदि रखते हैं। कवियों ने इन्हें गज-वदन और मंगल-करण कहा है-

'अष्ट सिद्धि नव निधि औ ऋद्धि के दाता श्री गणपति जान ।
चरणाम्बुज रस, जिन्हों का मन्त मधुकर बन करता पान ।।'[1]

राम -

'यह कौशल्या के गर्भ से उत्पन्न राजा दशरथ के पुत्र, रामायण, रामचिरतमानस आदि काव्यों के नायक विष्णु के मुख्य दस अवतारों में से एक थे।'[2] लावनीकारों ने इन्हें पुरुषोन्तम तथा जिसमें योगीजन रमण करते हैं, उस परब्रह्म का अवतार मान कर इनकी स्तुतियाँ की हैं -

'जय जयति राम, जय अवध धाम, जय ठाम, वाम दिशि उन्तर जू ।
जय ब्रह्म ईश जय जय मुनीश, जय जय महीश, जय जय सरजू ।।'[3]

मर्यादा-पुरुषोन्तम राम ने वनवास में सीता जी का मन रखने के लिये फूलों से उनका शृंगार कर स्वर्णाभूषणों की छवि फीकी कर दी -

'फूलों से कोमल गात देख, है मान लजाया फूलों का ।
जब जग जननी का रघुवर ने शृंगार सजाया फूलों का ।।'[4]

कृष्ण -

'यह यदुवंशी वसुदेव और देवकी के पुत्र थे, जो विष्णु के आठवें अवतार माने जाते हैं।'[5]

जहाँ इन लावनीकारों ने निर्गुण ब्रह्म की उपासना-परक रचनाएँ लिखी हैं, वहीं इन्होंने भगवान के अवतार की परिकल्पना कर सगुण-उपासना-परक रचनाएँ भी लिखी हैं। ऐसी रचनाओं पर सर्वाधिक प्रभाव कृष्ण जी का है। इन कवियों ने कृष्ण की ऐश्वर्य-माधुरी, क्रीड़ा-माधुरी, वेणु-माधुरी और विग्रह-माधुरी या रूप-माधुरी का विशेष रूप से वर्णन किया है।

'वल्लभाचार्य के अनुसार कृष्ण परब्रह्म हैं।'[6] वह कण-कण में समाया हुआ है -

'कृष्ण केतकी में देखे, रहे गेंदें में गोविन्द विराज ।
गुड़हल में गोपाल विराजैं, गुलाब में गिरिधर महाराज ।।'[7]

---

1. पं0 रामदयाल त्रिपाठी
2. द्रष्टव्य, बृहत् हिन्दी कोश, पृष्ठ 1129
3. स्वामी नारायणानन्द
4. कालिकाप्रसाद 'सुन्दर'
5. द्रष्टव्य, बृहत् हिन्दी कोश, पृष्ठ 305
6. डा.जयकिशन प्रसाद, हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, पृष्ठ 183
7. मदारीलाल

कालियनाग का दमन कर लोकोपकार करने वाली, कृष्णजी की अनेक लीलाओं का चित्रण भी इन्होंने किया है -

'काली दह में जब नाथा नाग,
नागिनी कहे यहां से भाग।
शेष तब पड़ा नींद से जाग,
भरी फुंकार लगा दी आग।
तब से हरि का हुआ सांवरा, उज्ज्वल रूप शरीर।
कला दिखाइ नागिन को वह, नाग नाथ बेपीर।।'[1]

राधा जी कृष्ण को सबेरा होने की सूचना इन सुकुमार शब्दों में दे कर जगा रही हैं -

'निद्रा से अब उठो सांवरे, भोर हो गई रात ढ़ली।
ज्योति झिलमिलाई दीपक की, पनिहारी जल भरन चली।।'[2]

गौएं गोपाल से गुहार कर रही हैं -

'करुणानिधि गोपाल कहें रो-रो सब गऊ तुम्हारी जी।
तुम्हें ढूंढ़ती, ढूँढ़ती नगर ग्राम गिरिधारी जी।।'[3]

कृष्ण की क्रीडा-माधुरी देखिये -

'नीके सभी साज़, सभी अजूबा अन्दाज़, सज रंग की समाज, सब व्रज बाला।
बरसाने में धूम, लिये संग में हुजूम, होली खेलें झूम झूम, सखि नंदलाला।।'[4]

कृष्ण के साथ झूला झूलती हुई राधा जी की भी अद्भुत छवि है -

'मिल के गोपी-ग्वाल हिंडोले झूल रहे वृन्दावन में।
श्यामा संग में, श्याम के सोहे ज्यों दामिनि घन में।।'[5]

कृष्ण की वेणु-माधुरी पर इन कवियों ने अद्भुत कल्पनाएं की हैं -

'अनहद के बाजे बाज रहे, हर आन तुम्हारी मुरली में।
वेदों की ऋचाएं किलोल करें, भगवान तुम्हारी मुरली में।।'[6]

कृष्ण जी की रूप-माधुरी और रसिकता पर अनेक रचनाएं लिखी गई हैं। कवियों ने कृष्ण की आड़ में अपनी रूपासक्ति को अभिव्यक्ति प्रदान की है।

---

1. रामदयाल उर्फ दयालचन्द
2. उस्ताद बादल
3. भग्गी गुरु
4. स्वामी नारायणानन्द
5. विन्दाप्रसाद
6. रुस्तम मास्टर

'मृदु मंजुल मूरत मोहन की, मन-मन्दिर बीच समाय गई ।
गोरस बेचन क्या गई सखी, गिरिधर के हाथ बिकाय गई ।।'[1]

कृष्ण के गीता-ज्ञान को भी इन कवियों ने अपने काव्य में ग्रहण किया है -

'यदि तीव्र मोक्ष की इच्छा है, श्रीकृष्ण-वचन पर कर विश्वास ।
'चैतन्योऽहम्' भाव जगा कर, 'देहोऽहम्' का कर दे नाश ।।'[2]

सब देवताओं को छोड़ कर केवल कृष्ण का ही आश्रय इन कवियों ने लिया है -

'मैं कब किसकी परवाह किया करता हूँ ।
बस ज़िक्र संवलिया शाह किया करता हूँ ।।'[3]

आज के विकराल कलिकाल में विघ्न-बाधाओं को टालने के लिये कृष्ण गोपाल का आह्वान भाव-विभोर होकर कवि इस प्रकार कर रहा है -

'पद धोने को यह नयन सजल, जल बरसा देंगे मनमाना ।
सरवर समीप या सरिता पर, फिर पड़ेगा इनको क्यों जाना ।।
धर कोई वेष धर कोई रूप, ईश्वर अनन्त आना आना ।
बरसाना तुम वर-साना घन, घन-श्याम प्रेम-घन बरसाना ।।'
वयं चकरोस्त्वं शशी, असि प्रतेजो धाम ।
रूपं वरं विलोक्य तव, धन्याः स्यामः श्याम ।।*
मन्दिर के इश 'अजेय' बदल, मस्जिद के पीर फ़कीर बदल ।
हे दया सिन्धु कर दया दृष्टि, अब दीनों की तक़दीर बदल ।।'[4]

वैराग्य -

विषय वासना और सांसारिक सम्बन्धों से मन का उचट जाना ही वैराग्य कहलाता है। प्रवृत्ति के पश्चात् मन में निवृत्ति का उदय स्वाभाविक है। यह संसार असार है, यहाँ सभी सुख-वैभव क्षण-भंगुर हैं, इस तथ्य को जान लेने पर विरक्ति का उदय होता है। यह विरक्ति मन को भक्ति की ओर ले जाने में सहायक होती है -

जब मन न लगा, जी ऊब उठा, सब खेल खुलासा देख लिया ।
दुनिया से चले दुनिया वाले, दुनिया का तमाशा देख लिया ।।'[5]

और मन परमेश्वर से मिलने को तड़प उठता है -

'जहाँ कुंज की गलियों में हों मिलते दो दिलदार सखी ।
चलो चलें उस देश जहां हो छिटका मंजुल प्यार सखी ।।'[6]

1· छेदी
2· चुन्नीलाल गर्ग
3· किशोरचन्द्र कपूर
4· सत्यव्रत शर्मा 'अजेय', लावनी का इतिहास, पृष्ठ 34।
5· शालिगराम बजाज
6· बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'
*· भावार्थ : हे तेजःस्वरूप तुम चन्द्रमा हो तो हम चकोर हैं, हे श्याम ! तुम्हारे सुन्दर रूप को देख कर हम धन्य हों।

प्रेम -

'अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम् । मूकास्वादम् । प्रकाशते क्वापि पात्रे ।'[1]

अर्थात् प्रेम का स्वरूप अकथनीय है। यह गूंगे का गुड़ है। कहीं किसी पात्र में ही प्रकाशित होता है यह प्रीतिकर एंव अनन्त तृप्तिदायक है । इसका घनिष्ठ सम्बन्ध मानव-जीवन के मूल प्रेरक 'काम' से है, काव्य के क्षेत्र में कल्पना का सर्वप्रमुख तत्त्व भी यही है। हिन्दी साहित्य में सूफ़ी कवियों ने ईश्वर को प्रेमिका के रूप में देखा और प्रेम को ही उसे पाने का एकमात्र साधन माना। उनकी दृढ़ धारणा थी कि प्रिय-मिलन में भावातिरेक आवश्यक है और यह भावातिरेक भावुक प्रेमियों में ही सम्भव है। इनकी साधना के चार सोपान हैं -

1. शरीअ़त — अर्थात् खुदा के बनाये हुये कानून, धर्मशास्त्र।
2. तरीक़त — अर्थात् आत्म-शुद्धि
3. हक़ीक़त — अर्थात् सचाई
4. मारफ़त — अर्थात् अध्यात्मज्ञान, ज़रिये से, परिचय ।

मारफ़त रूह में 'बक़ा' यानी जीवित रहने के लिये 'फ़ना' हो जाती है, अपने अस्तित्व को मिटा देती है, तब परमात्मा और जीवात्मा का या उपास्य और उपासक का भेद मिट जाता है। यही वह स्थिति है, साधक जहां पहुंच कर 'अनलहक़' अर्थात् **'अहं ब्रह्मास्मि' 'मैं ब्रह्म हूँ'** का अनुभव करने लगता है।

'यह विषय तो लावनी की जान है, हज़ारों ख़याल इश्क़ मार्फ़त के लिखे गये हैं ।'[2]

लौकिक प्रेम के ज़रिये अलौकिक प्रिय को पाने की प्रवृत्ति का प्रभाव लावनीकारों पर बड़ा गहरा पड़ा है। कबीर ने भी इस धारा में कुछ लावनियां लिखी हैं, जिसकी चर्चा षष्ठ अध्याय में 'खड़ी बोली के विकास में लावनी का योग' प्रकट करते समय की जायेगी।

यहाँ हमारे विवेच्य लावनी साहित्य की पृष्ठभूमि में कृष्ण की मधुरभक्ति, लास-विलास-लीलाएं और शृंगार-काल की उद्दाम काम-कलाएं विद्यमान हैं। अतएव सम्पूर्ण लावनी-काव्य प्रेम की दीवानगी और शृंगार की मधुर अभिव्यक्ति से ओतप्रोत है-

---

1. नारदभक्ति, 51-53
2. स्वामी नारायणानन्द, लावनी का इतिहास, पृष्ठ 74

'सौदाई अपने हाल को बना कर के,
शाहानी सूरत ख़ाक में मिला कर के,
मेरी जान, फ़कीरी हाल बनाया जी ।
किया इश्क़ जलवए सनम खुद नज़र में आया जी ।।'[1]

इनके हृदय में एक ब्रह्म था, दूसरा कोई नहीं। इनके प्रेम की भावना एकोन्मुखी है, अतएव इनमें एकनिष्ठता पाई जाती है-

'गैर की तस्वीर अपने दिल के आईने के बीच ।
देख 'आसाराम' रखते हैं नहीं सीने के बीच ।।'[2]

ये शिव, सुन्दर, सत्य के उपासक होते हुए भी एकमात्र सौन्दर्य के ही परम पुजारी थे -

'शजर नूर का, नूर की शाखें, वर्ग मुनव्वर, नूर के गुल ।
माइल ऐसे बाग़ नूर के, नूरानी हम हैं बुल-बुल ।।'[3]

इन्हें सम्पूर्ण प्रकृति में अपने उस प्रियतम की कृति ही नज़र आती है, यह दृष्टि इनके प्रकृति-पर्यवेक्षण की बारीकी की बोधक है-

'लब की तरह पाँखुरी में है बू दहन की बूये गुल में है ।
शक्ल हंसी की गुंचे मे है, तर्ज़े सखुन बुलबुल में है ।।'[4]

चपल चक्षुओं और चञ्चल चितवनों आदि का वर्णन कर इन्होंने बाह्य स्थूल सौन्दर्य को भी अभिव्यक्त किया है, जिसमें रसिकता की तरलता है परन्तु प्रेम की तीव्रता नहीं -

'चश्म जाना के ग़ज़ब खूनी खूंख़्वार,
हैं नंगी तलवार।'[5]

इन्होंने शृंगार-परम्परा के पूर्वानुराग, संयोग, प्रवास, वियोग आदि सभी का वर्णन किया है और स्वकीया और परकीया तथा अज्ञात-यौवना नायिका के रूप-सौन्दये को भी चित्रित किया है। अज्ञात-यौवना का उदाहरण द्रष्टव्य है-

'अरी सहेली धरे हैं सूजे, पिरात मम उर के ठाम दो हैं ।
कहा सखी ने विहंस के आली, ये काम-कन्दुक ललाम दो हैं ।'[6]

प्रेमी और प्रेमपात्र दोनों के हृदय में समान रूप से प्रेम की पीर पलती है, पतंग तो जलता ही है दीप-शिखा भी जलती है। यह आग उधर भी लगी है, या नहीं? बेक़रार दिल आशंका करता है -

---

1· सुखलाल, लावनी का इतिहास, पृष्ठ 74
2· आसाराम
3· भैरों सिंह उस्ताद
4· अब्दुल ग़फ़ूर खाँ 'ग़फ़ूर'
5· मास्टर प्यारेलाल
6· स्वामी नारायणानन्द

'मेरे आहो नालों की मेरे दिलबर को ख़बर हो या कि न हो ।
यह क्या मालूम, उधर उसको भी सबर हो या कि न हो ।।'[1]

सौन्दर्य के धरातल पर केशराशि का उच्च स्थान है, अतः ज़ुल्फ़ों की ख़ूबी में भी काफ़ी ख़याल लिखे गये हैं, इस दिशा में समय के अनुरूप इन्होंने कुछ ऐसे नये उपमानों की परिकल्पना की है, जो बेजोड़ है। परतन्त्रता काल में कवि उत्प्रेक्षा करता है-

'गोरे गोरे गालों पर क्या घिरी घटा बालों की है ।
मचा शोर है, चढ़ाई लन्दन पर कालों की है ।।'[2]

'राधिका कन्हाई सुमिरन' का बहाना कर प्रेमोन्माद के अभिव्यंजक इन कवियों ने हृदयगत प्रेम के उद्गार बड़ी शुचिता के साथ व्यक्त किये हैं-

ललित लवंग लता सी ललना मान करे क्यों नितै नितै ।
तव वियोग में मन बहलावें, श्याम चन्द्र को चितै चितै ।।'[3]

इनकी स्पष्ट घोषणा है -

'इस मुर्शिद के पैरो इस आक़ा के ख़िदमतगार हैं हम ।
हर सूरत से, हजरते इश्क़ के ताबेदार हैं हम ।।'[4]

प्रकृति चित्रण -

प्रकृति की मनोरम आकृति में मानव-वृत्तियां अधिकतर प्रवृत्त होती हैं, संयोग में प्रकृति का रूप खिला हुआ और उन्मादकारी लगता है तो वियोग में संकुचित और दाहक प्रतीत होता है। लावनीकारों ने प्रकृति का चित्रण कहीं आलम्बन रूप में तो कहीं उद्दीपन रूप में किया है।

प्रभात काल हो गया है, इसका आभास इस लिये हो रहा है, क्योंकि -

'ज्योति झिलमिलाई दीपक की,
पनिहारी जल भरन चली ।'[5]

ऋतु-वर्णन और 'बारहमासे' की पद्धति पर इन्होंने प्रकृति के उद्दीपन रूप को अपनाया है-

---

1· पं0 गौरीशंकर
2· काशीदीन
3· मणिलाल मिश्र
4· पं0 प्रतापनारायण मिश्र
5· उस्ताद बादल

'बदरा छाए चहुं ओर, नाचते मोर,
मचाते शोर, घिरी अँधियारी।
कोयल की कूक से तडपे जान हमारी ।।
यों पपिहा 'पी पी' रटे, जिगर अति फटे,
रैन नहिं कटे, बिना बनवारी ।
चढ़ी लहर विरह की भूली सुध-बुध सारी ।।'[1]

प्रकृति-प्रेम के कारण कवि अपने लिये पशु-पक्षियों के उपमान चुनने में गौरव का अनुभव करता है -

'कामधेनु सी काया पाई, चपल चिन्त मन-मतंग हूँ मैं ।
भँवर पुष्प माया पे लुभाया, कल्प वृक्ष का विहंग हूँ मैं ।।'[2]

ग्रीष्म का भीष्म ताप समस्त जीव-जन्तुओं को झुलसे दे रहा है -

'तपत जेठ में भानु ज्वाल सम, बहत बयार दुपहरी में ।
वृक, वरूथ, वाराह, सिंह दुख सहत अपार दुपहरी में ।।'[3]

विरहिणी की सजल आंखों ने घन-घटाओं के साथ यह शर्त लगा ली है कि देखें कौन अधिक बरसता है -

'बदली से शर्त ये चश्मेतर बदली है ।
तू बरस इधर, घनघोर उधर बदली है ।।'[4]

प्रकृति विरही जनों के दुःख दर्द में हाथ नहीं बंटाती -

'उधर है उलफ़त का अब्र छाया, इधर घटा छाई दर्दोग़म की ।
कुटिल कुयलिया ने कूक मारी, कोई तो ला दे ख़बर सनम की ।।'[5]

दिग्दिगन्त में अनन्त वसन्त व्याप्त हो गया है -

'ज़बां से हर एक मर्दो जन की, चूँ खुश सदाए वसन्त आती ।
जिधर को देखो नज़र उठा कर, नज़र अदाए वसन्त आती ।।'[6]

---

1. अब्दुल ग़फ़ूर खाँ 'ग़फ़ूर'
2. मास्टर प्यारेलाल
3. स्वामी नारायणानन्द
4. मौलूवी अफ़सर
5. कलूटी शायर
6. महेशनारायण मिश्र

राष्ट्रीय चेतना :

लावनी काव्य में नवयुग की चेतना का विकास अपना विशेष महत्त्व रखता है। हिन्दी साहित्य के समान लावनी काव्य के राष्ट्रीय चेतना काल का प्रथम उत्थान भी 'भारतेन्दु युग' के नाम से अभिहित किया गया है, इसकी अवधि 1870 ई. से 1893 ई. तक है। इसकी साहित्यिक पृष्ठभूमि में युगीन राजनीतिक, सामाजिक एवं धामिक परिस्थितियां भी सहायक हुई ।

सन् 1757 में प्लासी के युद्ध ने अंग्रेजों की नींव सुदृढ़ कर दी, 'ईस्ट इंडिया कम्पनी' का शासन भारत में फैल गया।' 'इंडियन नेशनल कांग्रेस' के संगठन ने भारतीयों में राजनीतिक चेतना का संचार किया। उस समय का चित्रण 'लावनी' में भारतेन्दु जी ने इस प्रकार किया है -

'अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी ।
पै धन विदेश चल जात यहै अति ख़्वारी ।।
सबके ऊपर टिक्कस की आफ़त आई ।
हा! हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई ।।'[1]

इस समय के इनके सहयोगी कवियों में बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' और पं० प्रतापनारायण मिश्र आदि ने भी राष्ट्रीय लावनियां लिखीं ।

सन् 1905 के आस-पास कांग्रेस ने 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' यह स्पष्ट घोषणा कर दी थी जिससे आपस में ही दो दल हो गये । सन् 1916 के आस-पास योरोप में प्रथम महायुद्ध छिड़ गया, इसमें भारतीयों ने अंग्रेजों की सहायता की, परन्तु अंग्रेजों ने उन्हें दिये गये अपने वचनों का निर्वाह नहीं किया। इस प्रकार असन्तोष बढ़ता गया। यह राष्ट्रीय चेतना का द्वितीय उत्थान था, इसके प्रमुख कवि पं० श्रीधर पाठक थे, अतः इसे 'श्रीधर पाठक युग' नाम दिया गया है। लावनी काव्य में इसकी अवधि 1894 ई. से 1918 ई. तक है।

'आधुनिक काव्यधारा के द्वितीय उत्थान में 'एकान्तवासी योगी' अपनी सार्वभौम मार्मिक कथा के कारण स्वच्छन्दतावादी धारा में प्रमुख स्थान रखता है। केवल कथा के कारण ही इस काव्य को इतनी मान्यता नहीं प्राप्त हुई, किन्तु इसका श्रेय लोकप्रिय 'लावनी' की लय पर आधारित है।'[2]

परतन्त्रता के विरुद्ध पाठक जी ने लावनी 'रंगत-खड़ी' की लय में अपना अभिमत इस प्रकार व्यक्त किया था -

---

1. भारतेन्दु, भारत-दुर्दशा नाटक
2. रामचन्द्र मिश्र, श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृष्ठ 100

'बन्दनीय वह देश, जहाँ के देशी निज-अभिमानी हों ।
बान्धवता में बंधे परस्पर, परता के अज्ञानी हों ।।
निन्दनीय वह देश, जहां के देशी निज-अज्ञानी हों ।
सब प्रकार परतन्त्र, पराई प्रभुता के अभिमानी हों ।।'[1]

इनके समकालीन पं0 नाथूराम शर्मा 'शंकर' आदि ने सामाजिक लावनियां लिखीं।

'इसी प्रकार 'हिन्दी प्रदीप' (1907 ई.) में माधव शुक्ल द्वारा लिखित 'दासता' जैसी कविता प्रकाशित हो रही थीं, जिनमें देश से स्वाधीनता का अपहरण कर लेने पर खेद प्रकट किया जा रहा था और बोलने-लिखने तक पर मनाही के लिये चिन्ता व्यक्त की जा रही थी । बम क्या है? इस पर 'लावनी' तथा 'बम से हलचल' जैसे लेख भी छप रहे थे।'[2]

सन् 1919 ई. में 'रोलेट एक्ट' पास किया जिससे भारतीय जनता की स्वतन्त्रता के अधिकारों पर कुठाराघात हुआ। असहयोग और बहिष्कार के स्वर दिग्दिगन्त में गूँज उठे। यह राष्ट्रीय चेतना का तृतीय उत्थान था । इसके प्रमुख लावनीकार स्वामी नारायणानन्द सरस्वती हैं, अतः इस युग का नामकरण उन्हीं के नाम पर किया गया है। इस 'नारायणानन्द-युग' की अवधि 1919 ई. से 1947 ई. तक है ।

स्वामी जी ने उस समय की स्थिति का चित्रण कर गुलामी के खिलाफ आवाज़ बुलन्द की-

'खुली जो जुबाँ तो हुआ सर क़लम है ।
गुलामी में जीना न मरने से कम है ।।'[3]

इनके समकालीन कवियों में गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', पं0 माखनलाल चतुर्वेदी, पं0 बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' आदि ने भी राष्ट्रीय लावनियाँ लिखीं एवं स्वामी ब्लाकटानन्द ने आर्य समाज के प्रभाव से मद्यपान, वेश्यागमन और रासलीला आदि सामाजिक कुरीतियों पर तीखे प्रहार किये ।

सन् 1947 मे महात्मा गांधी के नेतृत्व में भारतीयों ने स्वतन्त्रता प्राप्त की। अब राष्ट्रीय एकता तथा शहीद-स्तवन आदि के स्वर गुंजित हुये। यह राष्ट्रीय चेतना का चतुर्थ उत्थान है, इसे 'स्वातन्त्र्योत्तर युग' की संज्ञा दी गई है। इस युग के प्रमुख लावनीकार कालिकाप्रसाद 'सुन्दर', मैकूमाली — आदि हैं।

आधुनिक काल में मुख्य रूप से देश-प्रेम, राष्ट्र-भक्ति और मानव को लक्ष्य कर लावनियां लिखी गई हैं, जिनकी चर्चा यहां की जा रही है-

---

1. श्रीधर पाठक, भारत-गीत, स्मरणीय भाव, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ 25
2. डा. मोतीलाल भार्गव, चार देशभक्त पत्रकार, धर्मयुग, 27 जनवरी, 1980, पृष्ठ 45
3. स्वामी नारायणानन्द

देशप्रेम -

'देश धर्म पर जिसने निज तन मन धन अर्पण किया नहीं ।
जीवित नहीं मृतक है वह नर, जिया भी तो कुछ जिया नहीं ।।'[1]

शहीद-स्तवन :

'सुख चैनो अमन ऐशो इशरत, इस मातृभूमि हित भूल गये ।
अशफ़ाक, भगतसिंह, बिसमिल से, फांसी का झूला झूल गये ।।'[2]

स्वदेशी आन्दोलन -

'लाल, बाल और पाल कहें, यह सुन के ख़्याल मत भौं तानो ।
छोड़ो सब अंग्रेजी चीजें, चलन स्वदेशी पहचानो ।।'[3]

यहाँ 'लाल' से होतीलाल वर्मा, 'स्वराज्य' (इलाहाबाद) के तीसर सम्पादक, जिन्हें 'वन्दे मातरम्' को मात्र एक तार भेजने पर 'काला पानी' की सज़ा दी गई थी; 'बाल' से लोकमान्य बालगंगाधर तिलक 'केसरी' (पूना) के सम्पादक; 'पाल' से नन्द गोपाल चोपड़ा 'इन्क़लाब' (लाहौर) के सम्पादक जिन्हें 'राष्ट्र की तरंगें' आदि लेख लिखने पर दस वर्ष का कठोर कारावास - कालापानी दिया था, की ओर संकेत है।

गांधी-गौरव :

'घन घोष समान घोषणा की, रह सकते नहीं असत्य अनय ।
जय मोहन की, जय गांधी की, जय विश्ववन्द्य बापू की जय ।।'[4]

देशभक्ति -

'मुझे तोड़ लेना वनमाली, उस पथ में तुम देना फेंक ।
मातृ-भूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ जावें वीर अनेक ।।'[5]

मानव -

'छोड़ आसरा अलख शक्ति का, रे नर स्वयं जगत्पति तू है ।
गर तू जूठे पत्ते चाटे, तो तुझ पर लानत है, थू है ।।'[6]

स्वामी ब्लाकटानन्द ने पुलिस, पुजारी, पंडे, शराबी, क़बाबी, स्वांगी, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वकील, मुंशी, अहलमद, अहलकार, ग़रजे कि तमाम अहले वतन की मौजूदा नंगी तस्वीर खींची है। इनकी वाणी में कबीर जैसी प्रतारणा है -

---

1. स्वामी नारायणानन्द
2. कालिकाप्रसाद 'सुन्दर'
3. मैकू माली
4. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'
5. माखनलाल चतुर्वेदी 'एक भारतीय आत्मा'
6. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

'मित्र शत्रु सब हुये प्रीत की डोरी तोड़ जलाई है ।
लगे पंच परपंच करन वो सच्ची बात लुकाई है ।।
विद्याहीन हुये विप्र गायत्री तलक भुलाई है ।
क्षत्री बैठे पहन के लहंगा, ले तलवार छिपाई है ।
बन आई कुछ नहिं बनियों से, माया यों ही लुटाई है।।
शूद्र हुये धनवान करें ऊंचे कुल की सेवकाई है ।
चार वेद बिन पढ़े, नाम को चौबों की चौबाई है ।
उलटा चलन चला दुनिया में, सब की मति बौराई है ।।'[1]

राष्ट्रीय एकता -

'हो देश कोई हो वेश कोई, हो रूप कोई हो रंग कोई ।
स्वरूप हम सब हैं एक जल के, भंवर है कोई तरंग कोई ।।'[2]

इस प्रकार लावनी काव्य में अध्यात्म, प्रेम और भक्ति का स्वर सर्वाधिक मुखर हुआ है। भूमि, भूमिवासी जन और जन-संस्कृति की अखण्डता, अर्थात् देशभक्ति मानव और राष्ट्रप्रेम पर भी उत्तम रचनाएँ लिखी गई हैं। उसमें युगीन भावनाओं के अनुरूप विषयों के अतिरिक्त उपदेश, नीति, रिन्द[3] और हिन्दू-मुसलिम ऐक्य आदि अनेक विषयों पर भी रचनाएँ की गई हैं । सचमुच लावनी काव्य की भाव-सम्पदा सर्वतोभावेन सम्पन्न और समृद्ध है।

रस-योजना

जिसमें आस्वाद मिले वही रस है ।

"वेदों में 'रा' का प्रयोग वनस्पतियों के द्रव्य के लिये हुआ था, तत्पश्चात् यह सोमरस, आनन्द, चमत्कार तथा तन्मयता का वाचक बना।"[4]

काव्य के अन्तर्गत सहृदयों के हृदय में संस्कार रूप में स्थित रति आदि स्थायी भावों के उद्दीपक कारण विभावों, स्थायी भावों के उदय होने के पश्चात् दिखाई पड़ने वाले शारीरिक विकार कटाक्ष आदि अनुभावों एवं स्थायी भावों के सहकारी रूप में कुछ समय के लिये रहने वाले मोह आदि व्यभिचारी या संचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है -

---

1. ब्लाकटानन्द
2. सत्यव्रत शर्मा 'अजेय', भव्य भारत, नवम्बर, 1973, पृष्ठ 12
3. "रिन्द की सिफ़त ख़ास यह है कि सिवा अपने माशूक के और किसी की तरफ नज़र उठा के न देखे और हर वक्त इश्क की शराब के नशे में मस्त रहे।" – स्वामी नारायणानन्द, लावनी का इतिहास, पृष्ठ 85
4. डा. राजवंश 'हीरा', भारतीय साहित्यशास्त्र कोश, प्रथम सं., पृष्ठ 1017

विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः'।[1]

रस सत्त्वोद्रेक, अखण्ड, स्वप्रकाशानन्द, चिन्मय, वेद्यान्तर स्पर्श शून्य, ब्रह्मास्वाद सहोदर, लोकोत्तर और चमत्कार प्राण है, स्वाकारवत् अभिन्नत्व से जिसका उपभोग किन्हीं सहृदयों के द्वारा ही किया जाता है -

'सत्त्वोद्रेकादखण्ड स्वप्रकाशानन्द चिन्मयः ।
वेद्यान्तर स्पर्शशून्यो ब्रहमास्वाद सहोदरः ।।
लोकोत्तर चमत्कारप्राणः कैश्चिद् प्रमातृभिः ।
स्वाकारवदाभिन्नत्वेनायमास्वाद्यते रसः ।।'[2]

रस का भाव से अन्योऽन्याश्रय सम्बन्ध है, भावहीन रस नहीं और रसहीन भाव नहीं। भावों से रसों की और रसों से भावों की शोभा है -

'न भाव हीनोऽस्ति रसो न भावो रस वर्जितः ।
भावयन्ति रसानेभिर्भाव्यन्ते च रसा इति ।।'[3]

नाट्यशास्त्र में शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स और शान्त यह नौ (9) रस माने गये हैं, यथा -

'शृंगार - हास्य - करुण - रौद्र - वीर - भयानकाः ।
वीभत्साद्भुतशान्ताश्च नव नाट्ये रसाःस्मृताः ।।'[4]

लावनी काव्य में प्रायः सभी रस पाये जाते हैं, अतः क्रमशः सभी रसों के लक्षण सहित उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं -

शृंगार रस -

'शृंगार' का शब्दार्थ कामोद्रेक की प्राप्ति है। यह अपनी सार्वभौमता के कारण 'रसराज' कहा जाता है। इसका स्थायीभाव रति है। 'रति' प्रत्येक प्राणी के मन में रहने वाली शाश्वत भावना है। आलम्बन नायक और नायिका है, तथा वन-उपवन, पुष्प आदि उद्दीपन हैं। भ्रूभंग, परस्पर अवलोकन आदि अनुभाव हैं, हर्ष, लज्जा आदि व्यभिचारी या संचारीभाव है। संयोग और विप्रलम्भ भेद से यह दो प्रकार का है ।

---

1. भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, अध्याय-6, सूत्र 32
2. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, तृतीय परिच्छेद, श्लोक 2, 3
3. अग्निपुराण, 339/12
4. काव्यालंकार सारसंग्रह 4/4

संयोग शृंगार -

इसमें प्रणय-लीला, सौन्दर्य-चित्रण तथा मधुर संलापादि प्रणयोपचार का वर्णन होता है।

सौन्दर्य-चित्रण -

'वो माह सूरत परी की सूरत, बना है मुखड़ा ग़ज़ब ख़ुदा का ।
हूर से दूना बना नमूना, नूर का टुकड़ा ग़ज़ब ख़ुदा का ।।'[1]

शृंगार रस में कवियों ने प्रकृति के उद्दीपन रूप को ही अधिकतर ग्रहण किया है-

'खिला भभूका सा जौबन, तिस पर खिल जाना फूलों का ।
देख न देखा हो तो बाग में आग लगाना फूलों का ।।'[2]

केश-प्रसाधन :

'मूं मार मार ख़म जुल्फ़ मार पेंचां का ।
मेरी जान - दांत कंघी से तोड़ा जी ।
दे दे बल बालों में ज़हर कालों का निचोड़ा जी ।।'[3]

मृदु-भाषण :

'मुंह से गोया फूल हैं झड़ते ।
लुत्फ़ ऐसा गुफ़्तार का है ।।'[4]

प्रेमी-जन :

'कभी इश्क में नींद न आवे, कभी बेख़बर सोते हैं ।
मस्तानों का हाल यही, कभी हंसते हैं कभी रोते हैं ।।'[5]

परस्पर अवलोकन :

'उस शोख़ सनम फ़ितनेगर से, जिस दिन से हमारी आंख लड़ी ।
बेताब हुआ दिल लागिर तन, हैरां हूँ न दम को चैन पड़ी ।।'[6]

समर्पण :

'यह भी मैं किस तरह कहूँ - में तेरा हूँ तू मेरा है ।
मेरे प्यारे, यहां तो जो कुछ है सब तेरा है ।।'[7]

लावनीकारों ने नायिका के नख-शिख का सौन्दर्यमूलक वर्णन किया है, ऐसी रचनाओं को 'सरापा'[8] कहा जाता है।

1· उस्ताद बदरुद्दीन
2· भैरोंसिंह उस्ताद
3· वही
4· 'ग़फ़ूर'
5·6 स्वामी नारायणानन्द
7· पं० प्रतापनारायण मिश्र

8· **सरापा** = नायिका के नख-शिख का पद्यात्मक वर्णन, उदाहरण -
'अल्ला रे हुस्नेयार की सर मस्तियों का रंग,डूबे हुए हैंआज सरापा शराब में ।"
- उर्दू हिन्दी शब्दकोश, पृष्ठ 672

'मास्टर प्यारेलाल जी 'सरापा' लिखने में सिद्धहस्त थे, किसी भी ज़मीन पर 'सरापा' लिखना आपके बांये हाथ का खेल था।'[1]

ऐसी रचनाओं में नायिका के स्थूल शारीरिक सौन्दर्य नख, चरण, अंगुलियाँ, तलवे, जंघा, नितम्ब, नाभि, त्रिवली, स्तन, ग्रीवा, ओष्ठ, कपोल, दांत, वाणी, नासिका, नेत्र, चितवन, भौंह, ललाट, कर्ण और केश आदि का विशद वर्णन हाव-भाव, हेला अंगज, शोभा, कान्ति, माधुर्य आदि अयत्नज एवं अनुकरण, विलास, विच्छित्ति, मद, तपन, हसित आदि स्वभावज सूक्ष्म शारीरिक सौन्दर्य सम्बन्धी उपादानों के सहित किया गया है।

नेत्रों का वर्णन देखिये -

'वो चश्म बादाम नर्गिसी दो,
है धोखा आहू[2] को दूबदू का ।
गुलाबी सरयार मस्त आँखें,
भरा हुआ जादू कामरू का ।।'[3]

विप्रलम्भ शृंगार :

इसमें शृंगार का विरह पक्ष चित्रित किया जाता है। यह अत्यधिक मार्मिक होता है। यह अभिलाषामूलक, विरहमूलक, ईर्ष्यामूलक, प्रवासमूलक और शापमूलक भेद से पाँच प्रकार का होता है। लावनीकारों ने इसके लगभग सभी भेद अपने काव्य में चित्रित किये हैं। उदाहरण प्रस्तुत हैं -

शापमूलक -

इसमें आक्रोश व्यक्त किया जाता है -

'अगर जानते तेरी बेवफ़ाई को हम ऐसा क़ातिल ।
नाम न लेते कभी इश्क़ का, और न देते तुझको दिल ।।'[4]

अभिलाषामूलक -

इसमें प्रिय से मिलने की इच्छ व्यक्त की जाती है -

'गये मुल्के अदम को जहां से गुजर पै तसुव्वरे जुल्फ़े दुता न गया ।
चश्मों से वो शक्ले जफ़ा न गई, अपना वो ख़याले अदा न गया ।।
लाताबोतवां तड़फे दो क़दम, फिर इसके सिवा तड़फा न गया ।
आख़िर को दिले बिस्मिल से मेरे ग़मे हिज्र से और लड़ा न गया ।।
दिल ने जब चाहा करूँ शिकवा, तब मेरी ज़बां से हिला न गया ।।'[5]

1· स्वामी नारायणानन्द, लावनी का इतिहास, पृष्ठ 190
2· आहू = हिरन
3· मास्टर प्यारेलाल
4· अहमद अली
5· काशीदीन

प्रवासमूलक -

इसमें प्रिय के परदेश में रहने का वर्णन होता है -

'सखि आइ ऋतु बरसात, छोड़ गये साथ,
हमारी बात न पी ने मानी ।
मैं छिन छिन 'पी पी' रटूं फिरूँ बौरानी ।।
बदरा छाये चहुँ ओर, नाचते मोर,
मचाते शोर घिरी अंधियारी ।
कोयल की कूक से तड़फे जान हमारी ।
यों पपिहा 'पी पी' रटे, जिगर अति फटे,
रैन नहि कटे बिना बनवारी ।
चढ़ी लहर विरह की, भूली सुध-बुध सारी ।
लागी असाढ़ की झड़ी, अटा पर चढ़ी,
देखती खड़ी, बरसता पानी ।
मैं छिन छिन 'पी पी' रटूं फिरूं बौरानी ।।'[1]

ईर्ष्यामूलक -

इसमें प्रतिद्वन्द्वी की बढ़ती को देखकर डाह प्रकट की जाती है -

'बाग़ैर[2] बामसरेत[3] दिलबर नहा रहे हैं ।
दरियाए-ग़म में हम तो गोते लगा रहे हैं।।
जामे शराबे इशरत गुलरू उन्हें पिलावे ।
हम ख़ूने दिल को पी कर बारिश बिता रहे हैं ।।'[4]

विरहमूलक -

इसमें प्रिय की जुदाई में अनभूत अनुराग का वणन होता है -

'ग़ज़ब है बारिश में जल रहा हूँ, जुदाई जब से हुई सनम से ।
बयां करूं किससे हाल दिल का, लगी झड़ी अश्क चश्म नम से ।।'[5]

---

1. अब्दुल ग़फ़ूर खाँ 'ग़फ़ूर'
2. बाग़ैर = दूसरे के साथ
3. बा मसर्रत = आनन्द के साथ
4. मणिलाल मित्र
5. वही

हास्य रस :

वाणी आदि के विकृत हो जाने से इसकी उत्पत्ति होती है। हास्य के विषय को स्वयं देख कर उत्पन्न हास्य 'आत्मस्थ' एवं दूसरे को हँसता हुआ देख कर उत्पन्न 'परस्थ' कहलाता है। इसका आलम्बन विकृतियाँ, व्यंग्य, मूर्खता के कार्य आदि हैं। हास्य जनक अनुभाव एवं रोमांच, हर्ष आदि संचारी भाव हैं। इसका स्थायी भाव 'हास' है । यह स्मित, हसित, विहसित, अवहसित, अपहसित और अतिहसित छह प्रकार का होता है।

उदाहरण -

'गूजर, जाट बने संन्यासी, पोथी बग़ल दबाई है ।
मूड़ मुड़ा के यक धेले में, कफनी लाल रंगाई है ।।
पन्थ चले लाखो पाखण्डी, अद्भुत कथा सुनाई है ।
मुंह काला कर किसी किसी ने, सर पर जटा रखाई है।।
हुये नीच कुर्सी नशीन ऊंचों को नहीं तिपाई है ।
जुगनू पहुँचे आसमान पर, जा कर दुम चमकाई है ।।
फ़ाक़े करते सन्त, मिले भड़ुवों को दूध मलाई है ।
उलटा चलन चला दुनिया में, सब की मति बौराई है।।'[1]

भारतवर्ष में जैसे बेरोजगारी बढ़ रही है, वैसे ही इन संड-मुसंड साधुओं की बढ़ती हुई संख्या भी सिर-दर्द है, उसका इलाज देखिये -

'गवर्नमेन्ट से है ये प्रार्थना हम लोगों की बारम्बार ।
बैरागी बेकार हैं जितने उनके कर दे कर हथियार ।।
बिन कौड़ी पैसे की फौज सरकार वो कर लेवे तय्यार ।
लड़ा दे जा दुश्मनों से इनका, शत्रु सभी जावेंगे हार ।।
बन्दोबस्त सरकार करे ये, दिन दिन बढ़ते जाते हैं ।
बैरागी भारत में बढ़ गये, भीख मांग कर खाते हैं ।।[2]

करुण रस :

प्रिय वियोग, बन्धु-निराशा आदि अनिष्टों से करुण रस की उत्पत्ति होती है । इसका आलम्बन नायक-नायिका, पराभव, वियोग आदि है। प्रिय-वियोग, चित्र-दर्शन आदि उद्दीपन और रोदन उच्छ्वास, प्रलाप आदि अनुभाव एवं ग्लानि, विषाद, दैन्य आदि संचारी भाव होते हैं। इसका

---

1. स्वामी ब्लाकटानन्द
2. वही

स्थायी भाव 'शोक' है। भवभूति ने **'एको रसः करुण एव'** कह कर इसकी महत्ता प्रकट की है। इसमें तादात्म्य की शक्ति अत्यधिक होती है, यही तादात्म्य भव 'साधारणीकरण' का मूल है, जोकि रस-चर्वणा का माध्यम है। यह सहृदयों के हृदयों को अत्याधिक संवेदनशील बनाता है। लावनीकारों ने करुणा के विविध पक्षों पर रचनाएं की हैं, यथा -

पराभव-जनित करुणा -

'कहती थी क़फ़स में तड़फ तड़फ के बुलबुल,
महाराज, ख़बर ले कोई बेकस की ।
बेक़सूर, सैयाद किस लिये ढ़ीली नस नस की ।
पायेगा किये को, किया है जैसा तूने,
महाराज, लाया बरमला फंसा के तू ।
बार बार कहती थी देखमत न ला फंसा के तू ।
जल्लाद न कर ज़ाहिर जल्लादी अपनी,
महाराज, किधर को चला फंसा के तू ।
जिस रोज़ से तू ने लासे से मारा है,
कोंचे से कोंचा बदन, बदन सारा है।
अफसोस न देता पानी न तू चारा है,
सैयाद बड़ा तू पापी हत्यारा है ।।
उड़ने की नहीं है जगह जो मैं उड़ जाऊं,
महाराज, मैं बहुतेरा कसकी मसकी ।
बेक़सूर, सैयाद मेरी क्यों ढ़ीली नस नस की ।।'[1]

प्रियविनाश-जनित करुणा -

श्रीमती कमला नेहरू के स्वर्गवास पर श्री जवाहरलाल नेहरू की शोकाकुल दशा का चित्रण -

'कारा की दारुण दुःख व्यथाएँ दूनी ।
परवा न तनिक की वहीं रमा दी धूनी ।।
जख़्मी दिल था उस पर यह खंजर ख़ूनी ।
कमला सी कमला छुटी, कुटी है सूनी ।।'[2]

---

1. मियां मौलाई
2. सनेही

इसी प्रकार 'प्रियवियोग-जनित' और 'धननाश-जनित' आदि करुणा के अन्य भेद भी होते हैं। विस्तारभय से उनके उदाहरण नहीं दिये जा रहे हैं।

रौद्र रस -

शत्रु की अपमान जनित चेष्टाओं से इसका उदय होता है। इसका आलम्बन शत्रु है। कठोर वचन उद्दीपन, मुख और नेत्रों का लाल होना, शस्त्र ग्रहण, आत्मप्रशंसा, गर्जन आदि अनुभाव एवं उग्रता, मद आदि संचारी भाव हैं। 'क्रोध' इसका स्थायी भाव है, यथा -

'डरे दुष्ट जो हते निशाचर, प्रताप महिमा का है अखण्डित ।
डहक से कांपे असुर वो थर थर, वो क्रोध दुर्गा का है प्रचण्डित ।।
डकैत छिन में किया चण्ड सर, हता वो बल में बड़ा घमण्डित ।
डंड चण्डिका ने चट बांध कर, किया है दैत्य पल में खंड खण्डित ।।
डपट के कर में चली ले शस्तर, शुम्भ मार किया मुण्ड मुण्डित ।
डग न हटाया चढ़ी सिंह पर, निशुम्भ निशिचर हना अपंडित ।।
डंड लिया राक्षसों से अक्सर, जो मुंह से बकते थे अण्ड बण्डित ।
डहक से कांपे असुर वो थर थर, वो क्रोध दुर्गा का है प्रचण्डित ।।'[1]

वीर रस -

उत्साह पूर्वक युद्ध, दया और दान आदि कार्यों के करने से इसकी उत्पत्ति होती है। शत्रु, दीन, याचक आदि इसके आलम्बन, शत्रु का प्रभाव, दीन की दशा, याचक द्वारा की गई प्रशंसा इसका उद्दीपन, स्थैर्य, रोमांच, सत्कार आदि अनुभाव, गर्व, दया, आवेश आदि संचारीभाव होते हैं। इसका स्थायीभाव 'उत्साह' होता है। अतएव 'युद्धवीर, दानवीर, धर्मवीर और दयावीर भेद से यह चार प्रकार का होता है। युद्धवीर का उदाहरण -

'डटा फौज से करने को समर, महिषासुर वह सण्ड मुसण्डित ।
डरावना धर रूप भयंकर, संग मधु-कैटभ और मुचण्डित ।।
डरी न दुर्गा डटी कस कमर, खड्ग से फौजें की भर भण्डित ।
डाले मार जो थे दैत्य कट्टर, उखाड़ जैसे दिये अरण्डित ।।[2]

---

1. पं0 प्रभुदयाल जी महाराज
2. वही

भयानक रस -

भयदायक अनिष्टकारी दृश्यों के देखने से इसका उदय होता है। भूत-प्रेत, श्मशान, सिंह-व्याघ्र आदि हिंसक जन्तु इसके आलम्बन होते हैं। भयानक निर्जनता आदि उद्दीपन, कम्प, वैवर्ण्य आदि अनुभाव, त्रास, जुगुप्सा आदि संचारी भाव होते हैं। 'भय' इसका स्थायीभाव होता है, यथा -

'जिस वक़्त दूत जम के लेने आवेंगे ।
मुगदरों से मारें बांध के ले जावेंगे ।।
खुद धर्मराज तब लेखा दिखलावेंगे ।
डालेंगे नरक में फ़र्क नहीं लावेंगे ।।
मेरी जान, तेरी तब वां निकलेगी पोल ।
मर जावेगा धरे रहेंगे सब चौखूटे गोल ।।'[1]

वीभत्स रस -

रुधिर, मांस आदि अवलोकन से उत्पन्न घृणा से इसकी उत्पत्ति होती है। रक्त, मांस आदि इसके आलम्बन, दुर्गन्ध, आहत जीवों का चीत्कार आदि उद्दीपन, नाक सिकोड़ना आदि अनुभाव, ग्लानि, चिन्ता आदि संचारी भाव होते हैं, इसका स्थायी भाव 'घृणा' है।

उदाहरण-

'मल मांस मूत्र मज्जा में सने मिट्टी के खिलौने डोल रहे ।
हैं काम क्रोध मद मोह ग्रसित, रंग रंग की बानी बोल रहे ।।'[2]

अद्भुत रस -

वस्तु-वैचित्र्य को देख कर इसका उद्भव होता है। इसका आलम्बन विचित्र दृश्य एवं इन्द्रजाल आदि के वर्णन; उद्दीपन नेत्र-विस्फारण आदि अनुभाव; भ्रान्ति, औत्सुक्य आदि संचारी भाव होते हैं। 'विस्मय' इसका स्थायी भाव होता है, उदाहरणार्थ 'मनसूर' आदि के सम्बन्ध में लिखी गई लावनियां विचित्र कथाओं से भरी पड़ी हैं। मनसूर नवीं शती का एक प्रसिद्ध मुसलमान सूफ़ी था, जो अनलहक़ (अहं ब्रह्माऽस्मि) कहा करता था, इसी अपराध में क़ाज़ी के हुक्म से उसे सूली पर चढ़ा दिया गया[3], और -

---

1· चुन्नी गुरु
2· वही
3· द्रष्टव्य, बृहत् हिन्दी कोश, पृष्ठ 1026

'जब कि दफ़न कर दिया सार कुछ बचा न बिल्कुल खाक़ हुआ ।
ख़ाक में मिल के बखेड़ा जिस्मानी सब पाक हुआ ।।
मगर एक बच रही खोपड़ी कहीं, गुज़र[1] सफ्फ़ाक[2] हुआ ।
उस क़ाजी का, जहां वो पड़ी हुक्म रज्ज़ाक[3] हुआ ।।
था दिया फ़तवा[4] जो उसने, कर के फ़तवे पर ख़याल ,
रुख़ तरफ़ काज़ी की कर के, हंस पड़ी हड्डी कमाल[5]।
मग्ज़ में बेमग्ज़ था गोया कि भेजा भी न था ,
उसकी नादानी पै ताहम[6] हंस पड़ी कर के मलाल ।
कहा - देखता क्या है? हड्डी तेरे दावेदार की है ।
मार इश्क में, बल्कि दुश्मनी से ज़्यादा प्यार की है ।'[7]

शान्त रस -

तृष्णा के क्षय से इसकी उत्पत्ति होती है। वैराग्य इसका विभाव, मोक्ष का चिन्तन अनुभाव, निर्वेद व्यभिचारी भाव है। इसका स्थायी भाव 'शम' है, यथा -

'ना वह प्यार अख़लाक़ रहा, ना चाह रही ना सनम रहा ।
ना वह दिल मेरा ही रहा, ना ख़्याल रहा ना वहम रहा ।।'[8]

लावनी आरम्भ से ही भक्ति, वैराग्य और रहस्य की संवाहिका रही है, अतः शृंगार के समान इस रस की भी इसमें प्रमुखता है। इसकी व्यापकता के अन्य उदाहरण भी द्रष्टव्य हैं-

संसार की असारता से वैराग्य का उद्भव हो जाता है -

'काया रूपी कमल काल रूपी कुंजर जब लेवे तोड़ ।
मूल मनोरथ नष्ट होय सब भाव-भृंग जावें संग छोड़ ।।
अन्त समय कोई साथ न जावे खिले रहें चहे कंज करोड़ ।
प्रभु पद प्रीत पराक्रम कर इस राग रूप रस से मुंह मोड़ ।।
नाता नीरज तज 'नारायण', रामनाम गुण गा बैठा ।
प्रेम - पांखुरी में फंस कर अपने को आप गंवा बैठा ।।'[9]

---

1. गुज़र = जाना
2. सफ़्फ़ाक = क्रूर कर्मा
3. रज्ज़ाक = ईश्वर
4. फ़तवा = धर्मव्यवस्था
5. कमाल = बहुत
6. ताहम = तो भी
7. उस्ताद बहदरुद्दीन, ख़्याल रंगत लंगड़ी, लावनी का इतिहास, पृष्ठ 109
8. आसाराम
9. स्वामी नारायणानन्द

इसमें न सुख, न दुःख न राग न द्वेष, किसी की भी सत्ता नहीं रहती और सांसारिक सुखों से मुक्ति की कामना जग जाती है।

'भर भर प्याले यौवन-मदिरा के देना अब बन्द करो ।
इस मादक गुण से हे स्वामी, मुझे ज़रा निर्बन्ध करो ।।'[1]

तृष्णा के क्षय से भौतिक सुखों के कोश रीते प्रतीत होने लगते हैं -

'आई पीरीं हुआ हुस्न रवां अफ़सूं की जलवागरी न रही ।
बाज़ार मोहब्बत सर्द हुआ हर रोज़ की दर्द सरी न रही ।।
लब लाल मुनक्का से सूखे, कहीं नाम को उनमें तेरी न रही ।
मैखाने से यह आई सदा अब कोई सुराही भरी न रही ।।'[2]

इसके अतिरिक्त कुछ आचार्य 'भक्ति' रस तथा 'वात्सल्य' रस को भी अतिरिक्त रस मानते हैं। लावनी में 'भक्ति' और 'वात्सल्य' के आलम्बन 'राम' और कृष्ण हैं, उनके भगवान् और उनकी बाल-लीलाओं का वर्णन लावनी में हुआ है। परन्तु हमारी दृष्टि में इन दोनों रसों का समावेश क्रमशः 'शान्त' और 'शृंगार' में हो जाता है, अतः यहां इनका पृथक् से वर्णन नहीं किया गया है।

1· नवीन
2· मास्टर प्यारेलाल, द्रष्टव्य - लावनी का इतिहास, पृष्ठ 246

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से सिद्ध होता है कि लावनी काव्य का शास्त्रीय पक्ष व्यापक एवं प्रौढ़ है। इसका सशक्त शब्द-संगठन विशिष्ट पद-रचना - रीति एवं गुणगत रमणीयता से मंडित है। इस काव्य की भाषा ने खड़ीबोली हिन्दी के स्वरूप को परिष्कृत किया है। लावनीकारों की 'शैली' उनके व्यक्तित्व की परिचायिका है। लावनी काव्य की छंद-योजना, निश्चित ही संस्कृत और हिन्दी के छंदों के सांचे में ढ़ली है, किसी विदेशी साहित्य का उस पर कोई प्रभाव नहीं। लावनी काव्य में अलंकारों का प्रयोग भी व्यापक पैमाने पर हुआ है, इन्होंने कतिपय नवीन अलंकारों की भी उद्भावनाएं की हैं। 'तिसहफ़ी' और 'बेनुक़त' आदि कुछ अलंकार तो इन्होंने ऐसे निर्मित किये हैं, जिनके प्रति 'उर्दू' ज़बान के फ़न-ए-शायरी को इनका ऋणी रहना चाहिये।

लावनी का भावपक्ष अत्यन्त समृद्ध है, उसमें शृंगार के मोहक वर्णन के साथ अध्यात्म की भी सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। युगानुरूप इन लावनीकारों द्वारा स्वदेश-प्रेम, मानव और राष्ट्र सम्बन्धी विषयों को भी काव्य का उपादान बनाया गया है। इसमें अन्य रसों की अपेक्षा 'शृंगार' रस और 'शान्त' रस की ही प्रमुखता है।

लावनी काव्य का प्रकाण्ड पाण्डित्य से परिपूर्ण कला पक्ष एवं गूढ़ चिन्तन से भरा हुआ भाव पक्ष 'लावनी' को निस्सन्देह शिष्ट साहित्य की कोटि में प्रतिष्ठित करता है।

षष्ठ अध्याय

लावनी का आधुनिक काल

लावनी का आधुनिक काल

आधुनिक काल से हमारा अभिप्राय अधुनातन अर्थात् आजकल से है। आज से लगभग 43 वर्ष पूर्व सन् 1953 ई. में श्री नारायणप्रसाद अरोड़ा ने संभावना व्यक्त की थी कि '50 वर्ष बाद दिया लेकर ढूँढ़ने से भी लावणीकारों का पता न चलेगा।'[1] उनका यह कथन कानपुर के ही नहीं भारतवर्ष के सभी लावनीकारों पर खरा उतरा है। वास्तव में अब लावनी-गायन तो सभी प्रान्तों में लगभग समाप्त ही हो चला है। कानपुर में मौजूदा गाने वालों में तुर्रापक्ष में त्रिलोकी प्रसाद 'तिलक' और वंशी एवं कलग़ीपक्ष में, सूरज बली, दीना और महेश नारायण मिश्र 'महेश' विशेष उल्लेखनीय हैं, परन्तु लगभग ये सभी अब गायन से विरक्त हो चुके हैं।

आज से 44-45 वर्ष पूर्व कानपुर में लावनी के दंगल होते रहते थे। सन् 1952 में लाठीमोहाल में बाबू किशोरचन्द कपूर के प्रबन्ध से स्वामी नारायणानन्द जी सरस्वती की अध्यक्षता में लावनी का एक दंगल हुआ था, जिसके मुख्य अतिथि श्री पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी थे। चतुर्वेदी जी ने 10-9-52 को 123 नार्थ एवेन्यू, नई दिल्ली से मुझे लिखे गये एक पत्र द्वारा इस दंगल पर अपनी प्रशंसात्मक प्रतिक्रिया इस प्रकार व्यक्त की थी -

'जो ख़यालगो लोगों का दंगल हुआ उसका स्मरण आजीवन रहेगा।'[2]

इसी प्रकार अन्यत्र भी तब लावनी के दंगल होते थे, दिल्ली से ही लिखे गये 21-11-53 के पत्र द्वारा पूज्य चतुर्वेदी जी ने मुझे इस सन्दर्भ में यह भी सूचना दी थी कि -

'फीरोजाबाद में ख़यालगो लोगों का अच्छा दंगल रहा।'[3]

चतुर्वेदी जी लावनी साहित्य के पोषक हैं। उन्होंने 27-6-73 को ज्ञानपुर, वाराणसी से पत्र द्वारा मुझे सूचित किया था कि -

'श्री नेकसाराम ख़यालगो, नाज की मंडी, फीरोजाबाद अब 73 वर्ष का है पर उसकी आवाज़ में अब भी दम है। 'विशाल भारत' में मैंने उसका तथा उसके गुरु का भी चित्र शायद 1929 ई. में छापा था।'[4]

---

1. द्रष्टव्य, लावनी का इतिहास, पृष्ठ 4
2. श्री बनारसीदास चतुर्वेदी के हस्त लिखित पत्र से।
3. चतुर्वेदी जी के पत्र से।
4. वही

तुर्रापक्ष के उस्ताद नेकसाराम का जन्म सक्सेना परिवार में चैत्र शुदि 2 सम्वत् 1955 वि. में हुआ था। सन् 1973 में इन्होंने मेरे पत्र के उत्तर में लिखा था -

'उम्र भी तक़ाज़ा करती है, बुढ़ापे का आलम है, कोशिश करूँगा दो चार ख़याल भेजने की।'[1]

'फीरोजाबाद में लावनी के जीवित गायकों में श्री नेकसाराम, श्री ओम्प्रकाश शर्मा आदि, फ़र्रूखाबाद के श्री इतवारी लाल, खुरजा के श्री मदनमोहन, श्री कन्छीलाल 'अचल' (केवल गायक), श्री रमेश चन्द्र शर्मा (लावनी के लेखक), दिल्ली के श्री चन्द्रभान (आशुकवि और गायक) आदि हैं। ये सब तुर्रापक्ष के हैं। खुरजा में कलग़ीपक्ष के भी दो प्रसिद्ध गायक जीवित हैं - कुन्दू मियाँ और मुहम्मद। पहले तो बड़े वृद्ध और अन्धे हैं, दूसरे अधेड़ अवस्था के। मैंने दोनों को सुना है।'[2]

आगरा लावनी का केन्द्र है, वहाँ 31 मार्च, 1971 ई. को गनगौर के मेले के अवसर पर अखिल भारतवर्षीय ख़याल-सम्मेलन हुआ था। अब भी वहां कतिपय गायक हैं, जिनमें गोपालदास मुनीम, चौरसिया और श्री हरिप्रसाद 'प्रेमी' आदि प्रमुख हैं। चौरसिया के कार्यक्रम आकाशवाणी, दिल्ली से व्रज-माधुरी कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रायः प्रसारित होते रहते हैं। यह हरिवंश के अखाड़े के हैं।

'सन् 1965 के गत भारत-पाक युद्ध के समय तत्कालीन सेनाध्यक्ष अपनी सेना को आक्रामक आदेश नहीं दे पा रहे थे, हताश सेना का मनोबल गिर रहा था और शत्रुदल भारतभूमि पर बढ़ता आ रहा था, उस समय पं० गोपालदास मुनीम की यह लावनी व्याप्त थी -

'हे भारत माता के सपूत, बैठा किस सोच विचार में है ।
शत्रु से बदला लेने की, ताक़त तेरी तलवार में है ।।'[3]

आगरा में लावनी की वर्तमान स्थिति पर प्रकाश डालते हुए इन्हीं मुनीम जी ने मुझे लिखा था कि -

'गुरुदेव श्री स्वामी नारायणानन्द जी सरस्वती के दर्शन हमने आगरा में किये हैं, जबकि वे कचहरी घाट में उसी स्थान पर ठहरे थे, जहाँ पर अब भी वसन्त पंचमी को सालाना जलसा होता है। यह जलसा करीब 150 साल से प्रचलित बताते हैं और इसकी विशेषता यह है कि इसमें बिना बुलावे के ही बाहर भीतर के गायक-लेखक तुर्रा-कलग़ीपक्ष के शरीक होते हैं।'[4]

इसी सम्बन्ध में उन्होंने इससे पूर्व अपने एक अन्य पत्र द्वारा विस्तृत प्रकाश डाला था -

---

1. फीरोजाबाद से लिखे गए श्री नेकसाराम के पत्र से ।
2. डा.सुधेश, सुरजा के दिनांक 10-11-73 के हस्तलिखित पत्र का अंश।
3. कृष्णगोपाल दुबे, लोक-साहित्य निधि : लावनी, युवक, पृष्ठ 50
4. श्री गापालदास मुनीम, आगरा के दिनांक 11-12-73 के पत्र से।

'इस समय लावनी साहित्य मृतप्राय: अवस्था में चल रहा है, इसका प्रमुख कारण ये है कि पहिले तो लावनी में मनीषी लेखक एवं गायन कला में प्रवीण गायक रहे जिनमें आचार-विचार, संयम, साधना सभी गुण मौजूद थे और उन्होंने अपने जीवन को लावनी में समर्पित कर दिया उनके लेख आज से 100 वर्ष पहिले लिखे होने पर भी नवीनता के दर्शन कराते हैं और ऐसे सुन्दर साहित्यिक, मार्मिक लेख लिखे हैं जिनको सुन कर आश्चर्य होता है। किन्तु दुर्भाग्यवश वही साहित्य आज के युग में जिन लोगों के पास बचा है वे उसकी गहनता से अनभिज्ञ हैं, और साथ ही जनता की रुचि भी इस ओर आकर्षित करने का कोई प्रयास है नहीं, इस कारण दिन प्रतिदिन यह साहित्य विलुप्त होता चला जा रहा है। सैकड़ों पुस्तकें हस्तलिखित रद्दी में बिक गईं। आपका इस ओर ध्यान देना ईश्वरीय ही चमत्कार माना जायेगा जो इस अमूल्य साहित्य की रक्षा हेतु आपको प्रेरणा हुई है। सन् 1963 के उपरान्त जब से पं0 हरिवंश लाल तुर्रा निशान खुरजा वालों का शरीर शांत हुआ है तब से दिन प्रतिदिन इसके गायकों एवं लेखकों की कमी होती जा रही है। मुझे इस शौक़ में 50 वर्ष हो गये किन्तु इतना ह्रास कभी नहीं देखा। पुराने जलसों की याद कर के लोगों के मन अब भी पुलकित हो उठते हैं किन्तु आजकल वे लोग आजकल के जलसों में झाँकते तक नहीं। इसी आगरे में हमने देखा कि आगरा, नागरी प्रचारिणी सभा ने पं0 हरिवंश लाल को 'साहित्य निधि लावनी कलाकांत' की उपाधि से विभूषित किया, फिर दुबारा हिन्दी साहित्य सम्मेलन में जब राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त पधारे थे तब से लावनी साहित्य के श्रवण से बड़े प्रसन्न हुए थे, किन्तु वही साहित्य अब अनधिकृत आचार-विचार-विहीन लोगों के पास जीर्ण-शीर्ण पुस्तकों में है, इसलिये कोई पूछने वाला नहीं है।'[1]

वाराणसी में 'लोलार्क' लावनी लेखक एवं गायक हैं, बम्बई तक जाकर अपने कार्यक्रम प्रस्तुत करते हैं।

बरेली में पं0 देवीदयाल गौड़ 'मस्त' कलग़ी पक्ष के और श्री बाबूराम ख़यालगो तुर्रापक्ष के हैं। 'मस्त' जी गायन से विरक्त होगए हैं, उसका कारण उन्होंने यह बतलाया है -

'इस समय जो लावनी गायन के प्रेमी हैं, शायद आप उनसे मिलना पसंद नहीं करेंगे, कारण कि अधिकतर बेपढ़ा-लिखा तबका इस शौक़ को कर रहा है, मैंने स्वयं सन् 1959 से अपना इससे ताल्लुक़ केवल इसी बिना पर तर्क कर दिया है।'[2]

मस्त जी कलग़ी पक्ष के समर्थक हैं, आपकी रचनाओं में राष्ट्रीयता झलकती है, भारत की उन्नति के कारण पर आपका एक शेर है -

---

1. गोपालदास मुनीम, 1405 बेलन गंज, भैरों मन्दिर के सामने, आगरा के 1-12-73 के हस्तलिखित पत्र से ।
2. पं0 देवीप्रसाद गौड़, 'मस्त', 448 साहूकारा, बरेली के 24-12-73 के पत्र से ।

'रंग लाता ही रहा ख़ूने शहीदाने वतन ।
हस्तियाँ मिटती रहीं, हिन्दोस्ताँ बनता रहा ।।'

मस्त जी कानपुर के श्री मणिलाल मिश्र की शिष्य परम्परा में हैं। बरेली में इनका अखाड़ा 'कनपुरिया अखाड़ा' कहलाता है।

इसी कनपुरिया अखाड़े के श्री टिल्लू महाराज ख़यालगो - कलग़ी, बड़ी कालीजी के मन्दिर, चौक, लखनऊ में रहते हैं। वहाँ 'पिछले दिनों नौटंकी कला केन्द्र ने एक लावनी समारोह आयोजित किया था, उसमें तुर्रापक्ष तथा कलग़ी अखाड़े के उस्ताद कलाकार सम्मिलित हुये थे।'[1]

हरिद्वार में आज से 60 वर्ष पूर्व लावनी के दंगल खूब होते थे, जिनमें कानपुर के चुन्नीगुरु और स्वामी नारायणानन्द भी सम्मिलित होते थे।

उस समय यहां तुर्रापक्ष के समर्थक श्री नारदगिरि थे जो लिखते भी थे और चंग बजाकर ख़याल गाते भी थे। उनके एक शिष्य श्री बैजनाथ उपाध्याय इस समय ज्वालापुर में रहते हैं, इनकी अवस्था इस समय 70 वर्ष से ऊपर होगी। उपाध्याय जी के पास तुर्रापक्ष के लावनीकारों की पर्याप्त रचनाएँ संगृहीत हैं। यहीं एक अन्य लावनीकार श्री परशुराम जी चक्रपाणि हैं, यह पं0 हरिवंश लाल, खुरजा के शिष्य हैं। ज्वालापुर (हरिद्वार) में कलग़ीपक्ष के एक विद्वान् आचार्य कामताप्रसाद शर्मा (पालीवाल), प्रधानाचार्य-निर्मल संस्कृत महाविद्यालय, कनखल, के हैं। इनके पिता श्री पं0 नित्यानन्द शर्मा भी लावनीकार थे। पंडा फोनीराम स्वामी नारायणानंद जी के अनुयायी थे, स्वामी जी की एक लावनी की छाप में इनका नाम आया है -

'कथे वो उत्तम निबन्ध 'फोनी',
न काम कुछ जिसमें टाल का हो।'[2]

ज़िला मुरैना, ग्वालियर में पं0 पतिराम शर्मा 'व्यथित', नाथूसिंह तोमर 'सरन', पं0 श्रीगोपाल शर्मा 'जनसेवी', लाला उमराव सिंह माथुर आदि लावनीकार हैं। गुरुसराय ज़िला झाँसी के श्री शिवा जी चौहान सुशिक्षित लावनीकार एवं गायक हैं।

'हटा में ' कलग़ी ' और ' तुर्रा ' के अखाड़े थे, किन्तु दो साल से कोई भी दंगल वगैरह हुये ही नहीं। महंगाई के कारण सब ठप्प है। कलग़ी में गंगाप्रसाद और सुजात खां मौजूद हैं, 'तुर्रा' में सिर्फ धनन्तर बाबा एवं मुन्ना स्वर्णकार हैं।'[3]

भिवानी में भी कुछ ख़यालबाज हैं, ... वहाँ श्री किशनलाल छाबड़ा, श्री लीलूराम, श्री बनवारीलाल 'मस्त' आदि सुप्रसिद्ध ख़यालबाज हैं।'[4]

---

1. डा॰कृष्णमोहन सक्सेना, लक्ष्मणगंज, लखनऊ, धर्मयुग, 17 अक्टुबर, 1982, वर्ष 33, अंक 37, पृष्ठ-7
2. लावण्यलता, लावनी संख्या 57
3. डा॰लक्ष्मीप्रसाद 'रमा', हटा, दमोह (मध्यप्रदेश) के हस्तलिखित पत्र दिनांक 11-12-73 से ।
4. डा॰नानकचन्द शर्मा सर्वेक्षण अधिकारी, भाषाविभाग, हरियाणा, चंडीगढ़, के 12 नवम्बर 1973 के पत्र से।

मिर्जापुर में संकीर्तन भजन के श्री चन्द्रशेखर अच्छे लावनी लेखक एवं गायक थे। इस समय बाबा बनारसीदास के शिष्य श्री सत्यनारायण के सुपुत्र बेनीमाधव जी कलग़ी परम्परा के लावनी-गायक हैं, इन्हीं के हम उम्र श्री दमड़ी महाराज भी अच्छे लावनीगायक हैं।

'अब यहाँ की गायकी लगभग समाप्त है, कुछ ही लोग हैं, जो पुरानी लावनियाँ यदा-कदा चंग बजा कर गाते हैं।'[1]

मथुरा में 11 मार्च 1982 को उत्तर प्रदेश पर्यटन विभाग द्वारा आयोजित लोक-कला कार्यक्रम में 'श्री नारायणदास गोला तथा श्री घनश्यामदास ने चंग पर होली-लावनी प्रस्तुत की।'[2]

'राजस्थानी लोक नाट्यों में ख़्याल अत्यन्त समृद्ध विधा है।'[3]

'तुर्रा का अखाड़ा राजस्थान में सबसे पहले चित्तौड़ में गौड़ ब्राह्मणों ने प्रारम्भ किया।'[4]

इस अखाड़े के उस्तादों की परम्परा में चैनराम गौड़ इस समय मौजूद हैं, यह अच्छे लेखक और गायक हैं।

'कलग़ी ख्यालों का मूल अखाड़ा घोसुंडा रहा है। यहां के कागजी मुसलमानों ने इन ख्यालों की बेल प्रारम्भ की।'[5]

इनकी उस्ताद परम्परा में मिर्जा बाबू बेग मौजूद हैं। प्रसिद्ध वक्ता जैन मुनि श्री चौथमल जी भी अपने गृहस्थ जीवन में ख्याल लिखते और खेलते थे। साधु-जीवन में भी यह ख़्याल लिखते रहे हैं। कानपुर में इन्होंने दिव्य चातुर्मास व्यतीत किये थे।

राजस्थान में तुर्रा कलग़ी के वर्तमान खिलाड़ियों में जयपुर के गोविन्दराम जड़िया और अजमेर के गणेशीलाल कुम्हार प्रसिद्ध हैं।

लावनी के मूल स्थान महाराष्ट्र में भी यह कला अब अस्ताचल की ओर है। 'न्यू हनुमान थिएटर, लालबाग, पटेल बम्बई की लावनी-नर्तकी एवं गायिका ताराबाई बाईकर के मतानुसार अब गायिकाओं का रुझान फिल्मी गीतों की तरफ़ ज़्यादा है।'[6]

'आजकल तमाशा लावनीवालों में अच्छे लावनीकारों का अभाव है और जो अंगुलियों पर गिनने योग्य अच्छे लावनीकार हैं, वे सबके सब आजकल मराठी ग्रामीण चित्रपटों में चले गये हैं। .... परिणामतः मराठी चित्रपटों के सोने के पिंजरें में मराठी लावणीकी सारिका का दम घुट रहा है।'[7]

इस प्रकार लावनी की वर्तमान स्थिति पर विहंगम दृष्टि से अवलोकन करने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि भविष्य में लावनी का गायन तो समाप्त हो जायेगा, परन्तु लेखन-क्रम अनवरत चलता रहेगा।

---

1. डा. अर्जुनदास केसरी, क्या मिर्जापुर लावनी की परम्परा लुप्त हो जावेगी? धर्मयुग, 5 सितम्बर 1982, पृष्ठ 29
2. नवभारत टाइम्स, नई दिल्ली, 12 मार्च, 1982, पृष्ठ 3, कालम 5
3. देवीलाल सागर, प्रस्तावना, राजस्थान के तुर्रा-कलग़ी, पृष्ठ 5
4. डा. महेन्द्र भानावत, वही, पृष्ठ 18
5. वही, पृष्ठ 19
6. द्रष्टव्य, धर्मयुग, 5 नवम्बर 1978, पृष्ठ 33
7. डा. इन्द्र पवार, तमाशा और लावनी, वही, पृष्ठ 29

'चिन्ता का विषय केवल यही है कि ख्याल-लावनी-शैली में जो उच्च कोटि की रचनाएं हैं, वे कहीं काल-समुद्र में लुप्त न हो जायं। इस शैली के प्रधान आचार्यों की स्मृति-रक्षा का भी प्रयत्न होना चाहिये। खेद है कि इस सम्बन्ध में हमने ही कम ध्यान दिया है। आज से लगभग 30 वर्ष पूर्व श्री अयोध्याप्रसाद पाठक और श्री स्वामी नारायणानन्द जी ने 'विशाल भारत' में दो लेख इस सम्बन्ध में अवश्य लिखे थे। किन्तु इसके पश्चात् इस विषय पर कोई दूसरा लेख देखने में नहीं आया .....' ख्याल - लावनी-शैली अधिक से अधिक आगामी पच्चीस वर्षों में विगत स्मृति का विषय बन जावेगी ।'[1]

महाराष्ट्र में आज भी अन्य प्रान्तों की अपेक्षा यथापूर्व लावनी-गायन का शौक़ है, यहाँ के नागरिक इसे हेय नहीं समझते। वे इसके प्रचार-प्रसार के लिये सर्वदा सन्नद्ध हैं।

एक समाचार के अनुसार 3 मई, '83 को नई दिल्ली में संसद् सदस्यों द्वारा सांस्कृतिक शाम का सफल आयोजन किया गया था, जिसमें उनके द्वारा शाहीर पांडुरंग खाडिलकर की रचनाएँ - पौवाड़े और लावनियाँ - गाकर प्रस्तुत की गईं -

'प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने दीप प्रज्वलित कर इस 'संगीत महफिल' का उद्घाटन किया। ..... केन्द्रीय रसायन उर्वरक मन्त्री श्री वसन्त साठे ने महाराष्ट्र का वीररस-युक्त पोवाड़ा और शृंगार गीत 'लावणी' विदुला साठे, श्रीमती पोतदार और साथियों के साथ प्रस्तुत किया।'[2]

मेरे विचार से यदि लावनी-गायन में इसी प्रकार सुसंस्कृत एवं प्रतिष्ठित जन रुचि लेने लगें तो निश्चय ही यह मुरझाई हुई लावण्य-लता पुनः भारत भर में लहलहा सकती है और पल्लवित एवं पुष्पित होकर जन-मन में स्वर-सुगन्ध का सुखद संचार कर सकती है।

खड़ीबोली के विकास में लावनी का योग

'खड़ीबोली' दिल्ली के आसपास और मेरठ, मुज़फ्फ़रनगर तथा सहारनपुर ज़िलों में बोली जाने वाली जनभाषा है। खड़ीबोली का प्राचीनतम स्वरूप 13 वीं सदी के अन्तिम भाग में अमीर खुसरो की रचनाओं में मिलता है। खुसरो ने ही सर्वप्रथम बहरे शिकस्ता में 'भाषा समक' अलंकार से युक्त लावनियाँ लिखी हैं, यथा -

'शबाने हिज्रां दराज़ चूँ ज़ुल्फ़, बरोज़े वसलत चूँ उम्र कोतह,
सखी, पिया को जो मैं न देखूँ, तो कैसे काटूँ अंधेरी रतियाँ ।।'[3]

---

1. रतनलाल बंसल, व्रज जनपद की एक विशेष काव्यधारा, पोद्दार-अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ 892
2. माधुरी लिमए, पंजाब केसरी, दिल्ली, 6 मई, 1983, पृष्ठ 4
3. अमीर खुसरो, सन्दर्भांकित -हिन्दी साहित्य का इतिहास, संस्करण 38वाँ, पृष्ठ 40

पहली पंक्ति फ़ारसी में है, जिसका अर्थ है कि - 'वियोग की रातें अलकावली के समान लम्बी हैं और संयोग का दिन आयु के समान छोटा है।' द्वितीय पंक्ति खड़ीबोली में है, जिसकी तुलना आधुनिक शुद्ध खड़ी बोली से की जा सकती है। इससे पूर्व अपभ्रंश मिश्रित भाषा और डिंगल भाषा ही साहित्य की भाषाएं थीं।

खुसरो के पश्चात् कबीरदास ने खड़ीबोली में लावनियाँ लिखी हैं। इनका जन्म 1456 वि. ज्येष्ठ शुदि 15 चन्द्रवार को काशी में हुआ था।

'कबीरदास छंदशास्त्र के ज्ञाता न थे, यहां तक कि दोहों को भी पिंगल की खराद पर न चढ़ा सके। डफली बजा कर गाने में जो शब्द जिस रूप में निकल गया, वही ठीक था।'[1]

इनकी 'लावनी' का उदाहरण प्रस्तुत है -

'सुन सुन सत गुरु की तान नींद नहिं आती ।
विरहा में सूरत गई पछाड़े खाती ।।
तेरे घर में हुआ अंधेर भरम की राती ।
नहिं भई पिया से भेंट रही पछताती ।।
सखि नैन सैन से खोज ढूंढ ले आती ।
मेरे पिया मिले सुख चैन नाम गुन गाती ।।
तेरे आवागमन की त्रास सबै मिट जाती ।
छवि देखत भई है निहाल काल मुरझाती ।।
सखि मान सरोवर चलो हंस जहं पाती ।
यह कहे कबीर विचार सीप मिलि-स्वाती ।।'[2]

कबीर के पश्चात् सूरदास ने भी अपने पदों में लावनी को अपनाया है। इनका जन्म सम्वत् 1535 वि. में आगरा के 'रुनकता' स्थान पर ब्राह्मण कुल में हुआ था, ये जन्मान्ध थे। इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सूर सागर' है।

'सूर-काव्य में प्रयुक्त छंदों को स्थूल रूप से दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है -
(क) **छोटे छंद** : जैसे उपमान, कुण्डल, चौपई, चौपाई, चौबोला आदि और
(ख) **बड़े छंद** : जैसे लावनी, विष्णुपद, वीर, सरसी, सार, हरिप्रिया आदि ।।'[3]

'खड़ी रंगत' लावनी का उदाहरण द्रष्टव्य है -

'बिछुरत श्री व्रजराज आज सखि, नैनन की परतीति गई ।
उड़ि न मिले हरि संग विहंगम, ह्वै न गये घनश्याम मई ।।'[4]

---

1. डा.श्यामसुन्दर दास, हिन्दी साहित्य, छठा संस्करण, पृष्ठ 156
2. कबीर वचनावली, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ 140-141
3. डा.प्रेमनारायण टण्डन, सूर की भाषा, सन् 1957 का संस्करण, पृष्ठ 486
4. सूरदास, भ्रमर गीतसार, पद 333

इस पद्य में 'गई' 'मिले' और 'गये' क्रिया पद खड़ीबोली के हैं।

हित हरिवंश का जन्म सम्वत् 1559 वि. में देवबन्द (सहारनपुर) में हुआ, ये राधावल्लभ सम्प्रदाय के संस्थापक थे। रंगत नवेली नामक लावनी की लय में लिखी गई इनकी रचना है -

'यों राजत कवरी गूँथित कच, कनक कंज वदनी ।
चिकुर चन्द्रकनि बोध अरध विधु, मानहुँ ग्रसित फनी ।।'[1]

यहाँ 'यों' खड़ीबोली का शब्द है।

गोस्वामी तुलसीदास ने लावनी प्रक्रिया को अपने पदों में क्रियान्वित किया है। इनका जन्म सम्वत् 1589 वि. में राजापुर जि. बांदा में ब्राह्मण परिवार में हुआ। 'रामचरित मानस' इनकी अमर रचना है।

'लोक गीतों के माधुर्य को पहचानने में तुलसी 'सूर' से पीछे न थे ।'[2]

'तकै नीच जो मीच साधु की, सोइ पामर तेहि मीच मरै ।
वेद विहित प्रहलाद कथा सुनि, को न भगति-पथ पांव धरै ।।'[3]

यह लावनी छंद है। इसमें 'तकै' 'मरै' 'धरै' खड़ीबोली की क्रिया के आदि रूप हैं एवं 'जो' खड़ीबोली का सर्वनाम है।

मीराबाई (जन्म सम्वत् 1555) :

'प्राय: उनके सभी पद गेय हैं, जिनमें ..... लावनी, पूर्वी, गौडी, आवासरी, सोहिनी, धमार, कलिंगड़ा इत्यादि राग-रागनियों का प्रयोग किया गया है।'[4]

'सेज सुखमणा मीरा सोहे,
सुभ है आज घरी ।
तुम जाओ राणा घर अपने,
मेरी तेरी नाहिं सरी ।।'[5]

इसमें 'जाओ' 'मेरी' 'तेरी' शब्द खड़ीबोली के हैं।

परमानन्द दास (सम्वत् 1606) - कन्नौज के रहने वाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे, इन्होंने खड़ीबोली में लावनी छंद लिखे हैं -

'देखो री यह कैसा बालक, रानी जसुमति जाया है ।
सुन्दर वदन कमल दल लोचन, देखत चन्द्र लजाया है ।।'

---

1. हितहरिवंश संदर्भांकित, कविता कौमुदी, भाग 1, पृष्ठ 81
2. डा. शकुन्तला दूबे, काव्यरूपों के मूलस्रोत और उनका विकास, पृष्ठ 212
3. तुलसीदास, विनय पत्रिका, पद 137
4. डा. सुरेन्द्र माथुर, हिन्दी साहित्य : नव परिप्रेक्ष्य, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 72
5. मीराबाई की पदावली, चतुर्थ संस्करण, पृष्ठ 28

सीतल का जन्म सम्वत् 1780 के लगभग है। यह शाहाबाद जिला हरदोई के रहने वाले और स्वामी हरिदास के ट्टटी सम्प्रदाय के महन्त थे। हरिदास का जन्म सम्वत् 1441 में ब्राह्मण वंश में ज़िला अलीगढ़ में हुआ था, इन्होंने भी लावनियाँ लिखीं थी। इनसे प्रभावित सीतल ने खड़ीबोली में लावनी छंद लिखे हैं -

'हम ख़ूब तरह से जान गये जैसा आनंद का कन्द किया ।
सब रूप, सील, गुन, तेज पुंज तेरे ही तन में बन्द किया ।।
तुझ हुस्न प्रभा की बाक़ी ले, फिर विधि ने यह फरफन्द किया ।
चम्पक दल, सोनजुही, नरगिस, चामीकर, चपला, चन्द किया ।।'

इसमें 'ख़ूब' फ़ारसी का और 'हुस्न' तथा 'बाक़ी' शब्द अरबी के हैं। इनका समावेश भी खड़ीबोली में होने लगा था।

'खड़ीबोली के कवियों में सीतल का नम्बर प्रथम जान पड़ता है।'[1]

उर्दू हिन्दी की ही एक शैली है, जिसमें अरबी और फ़ारसी के शब्दों का समावेश रहता है। यह पूर्णतः हिन्दी के सांचे में ढ़ली है। अतएव -

'यहाँ खड़ीबोली के अन्तर्गत हिन्दी-उर्दू के प्रश्न को उठाना अनावश्यक है। यहां तक कि उर्दू का कोई मताग्रही समर्थक खड़ीबोली को उर्दू का पर्याय भी कहना चाहे (जोकि आगे के विवचेन से भ्रान्त सिद्ध हो जायेगा) तो उससे भी इस स्थल पर कोई परिवर्तन नहीं आता और साम्प्रदायिक दृष्टि से देखने पर भी स्थिति ज्यों की त्यो रहती है। यह मान भी लें कि हिन्दी हिन्दू की और उर्दू मुसलमान की भाषा थी (जो ऐतिहासिक दृष्टि से मिथ्या है) तो भी स्पष्ट हैं कि खड़ीबोली को एक प्रकार की बहुप्रदेशीय व्यापकता प्राप्त थी जो और किसी जन-भाषा को नहीं थी, और फिर केन्द्रोन्मुख राष्ट्रीयता के सम्मुख 'हिन्दू' और 'मुसलिम' को एक ही संज्ञा 'भारतीय' की परिधि में ले आने की आवश्यकता का अपना दबाव था जो पुनः खड़ीबोली के पक्ष में क्रियाशील होता था।'[2]

हाथरस वाले **तुलसी साहिब** (सं0 1820 - 1900) ने उपदेशात्मक लावनियाँ लिखीं । 'घट रामायण' और 'शब्दावली' भाग 1-2 इनकी प्रमुख कृतियां हैं। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के संग्रहालय में हस्तलिखित लावनियों का निरीक्षण करते समय निर्गुण की शान में लिखी गई इनकी 8 चौक की एक लावनी मुझे देखने को मिली, जिसकी टेक है -

'पिया दरस बिना दीदार दरद दुख भारी ।
बिन सत गुरु के धृग जीवन संसारी ।।'

1· मिश्रबन्धु विनोद, खण्ड-1,2, सन् 1972 का संस्करण, पृष्ठ 352
2· सच्चिदानन्द वात्स्यायन, हिन्दी-साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य, पृष्ठ 49

इसका अन्तिम चौक है -

'आली जो समरथ के साथ सरन में आई ।
तो सूरत परम विलास करे घट मांही ।।
पिय प्यारी महल मिलाप रहे दिन राती ।
'तुलसी' पट भीतर केलि करे पिय साथी ।।
सुख-सम्पद क्या कहूँ चैन चरन पर वारी ।
बिन सत गुरु के धृग जीवन संसारी ।।'

इसके लिपिकार पंडित केशवदेव हैं, ऐसा लगता है कि पंडित जी की भूल से टेक की दूसरी पंक्ति में 'धृग' की पुनरावृत्ति छूट गई है, जिससे 2 मात्राएं कम पड़ रही हैं। अतः 'बिन सतगुरु के धृग धृग जीवन संसारी ।' शुद्ध पाठ समझा जाय ।

इन्हीं के समकालीन **नाथूराम** की 18 लावनियाँ भी संग्रहालय में सुरक्षित हैं। भगवत से प्रार्थना लावनी संख्या 8 की टेक है -

'हे प्रभु करुणा सिन्धु हमारी, दूर करो भव पीर सनम ।
आशक की आशा पूरी सब, माफ़ करो तक़सीर[1] सनम ।।'

जैन कवि **ऋषभदेव** कृत 'सरस्वती वन्दना' खड़ी रंगत में लिखी गई लावनी है एवं **जिनदास** कृत विनती, कुमति, सुमति और जिनवर की स्तुति की लावनियाँ हैं, इनमें भी खड़ीबोली के प्रति अनायास आकर्षण प्रतिबिम्बित है। यह लावनियाँ भी सम्मेलन के संग्रहालय में सुरक्षित हैं, इनमें काव्य के तत्त्व अति न्यून हैं।

नज़ीर अकबराबादी का जन्म सं0 1797 वि. में हुआ । यह 18 वीं सदी के जन-साधारण के जीवन के सब से बड़े गायक थे।

'रिसालगिरि अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में उत्तरप्रदेश पधारे थे, आगरा में इनका अखाड़ा बना था, इसी अखाड़े से उर्दू के प्रसिद्ध शायर नज़ीर अकबराबादी जुड़े थे।'[2]

'लावनी' की लय पर इनकी प्रसिद्ध रचना है -

'कुछ जुल्म नहीं कुछ ज़ोर नहीं, कुछ दाद नहीं फरियाद नहीं ।
कुछ क़ैद नहीं कुछ बन्द नहीं, कुछ ज़ब्र नहीं, आज़ाद नहीं ।।
शागिर्द नहीं उस्ताद नहीं, वीरान नहीं आबाद नहीं ।
हैं जितनी बातें दुनिया की, सब भूल गये, कुछ याद नहीं ।।

---

1. तक़सीर = अपराध
2. डा. कृष्णमोहन सक्सेना, धर्मयुग, 17 अक्टुबर 1982, पृष्ठ 7

हर आन हंसी, हर आन खुशी, हर वक़्त अमीरी है बाबा ।
जब आशिक मस्त फ़कीर हुये, फिर क्या दिल गीरी है बाबा ।।'

सम्वत् 1812 वि0 के आसपास **मोहन साईं** ने 'बहरे शकिस्ता' में एक ऐतिहासिक लावनी 'तुलसी चौरा' के सम्बन्ध में खड़ीबोली में लिखी। यह आठ चौक की लावनी है, इसमें लावनी की प्रक्रिया का पूर्णतः निर्वाह हुआ है।

'अयोध्या में तुलसी चौरा नामक स्थल है जिसका उल्लेख मोहन साईं नाम के पुण्यात्मा ने एक गीत में किया है। उसका आशय है कि जहां आज तुलसी चौरा है वहां वट वृक्ष के नीचे एक योगिराज ने आसन जमाया था और जब गोस्वामी तुलसीदास काशी से वहां पधारे थे तो उसने योगबल से गोस्वामी जी का महत्त्व जान कर उन्हें सब कुछ सौंप कर योग द्वारा अग्नि उत्पन्न की और अपना शरीर त्याग दिया ।'[1]

'कहने की आवश्यकता नहीं कि मोहन साईं ने अपने समय में प्रचलित जनश्रुतियों के आधार पर ही ये उल्लेख किये हैं।'[2]

कहा जाता है कि इसी स्थान पर सं0 1631 की राम नवमी को तुलसीदास ने 'रामचरित मानस' की रचना आरम्भ की और सं0 1633 में रामविवाह तिथि पर उसे यहीं समाप्त किया।

'तुलसीदास के जन्मस्थान के सम्बन्ध में पंडित चन्द्रबली पांडे ने बाह्य साक्ष्य के अन्तर्गत 'मोहन साईं' का खयाल ग्रहण किया है। इस ख़याल को प्रकाश में लाने का श्रेय 'स्वर्गीय लाला सीताराम जी को है।'[3]

ख़याल के कुछ अंश प्रस्तुत हैं -

'अवध की भूमी पवित्र सब है, पवित्रतम उसमें तुलसी चौरा ।
तवाफ़[4] करते हैं रोज़ जिसका, विरंचि नारद महेश गौरा ।।
जमाया आसन उसी के नीचे प्रसिद्ध मुनि योगिराज जी ने ।
वे जानते मर्म भीतरी थे, बता दिया था उन्हें किसी ने ।।
यहाँ पे काशी से जब गुसाईं पधारे श्रीराम रस में भीने ।
सुना के आदेश अपने गुरु का, उन्हें ही सौंपा सब उस यती ने ।।
जला के तन योग-अग्नि में तब, सिधारा गुरुपाद-पद्म-भौंरा ।
अवध की भूमी पवित्र सब है, पवित्रतम उसमें तुलसी चौरा ।।
लगी जब इकतीसी रामनौमी, गुसाईं जी ने क़लम उठाई ।
उछाह से राम ब्याह तैंतिस, समाप्ति तिथि मानसी सुहाई ।।

---

1. डा.रामदन्त भारद्वाज, गोस्वामी तुलसीदास, व्यक्तित्व (दर्शन) साहित्य, पृष्ठ 144
2. डा.माताप्रसाद गुप्त, तुलसीदास, चतुर्थ संस्करण, पृष्ठ 85
3. द्रष्टव्य, माधुरी, वर्ष 12, खण्ड 2, पृष्ठ 364
4. तवाफ़ = परिक्रमा

हुई जो पूजा की धूम सुर गन ने राम गाथा ये थी बढ़ाई ।
सुदिव्य मानि तीन शुचि अलौकिक सुघरता जिसकी कही न जाई ।।
खिंचा था उनमें समेत परिकर[1] के राम जी का शबीह[2] औरा[3]।
अवध की भूमी पवित्र सब है, पवित्रतम उसमें तुलसी चौरा ।।'[4]

झांसी के रहने वाले **श्री नवलसिंह** ने सम्वत् 1875 के आसपास 'रहस लावनी' ग्रन्थ की रचना की, जिसमें खड़ीबोली में भक्ति और ज्ञान की धारा प्रवाहित हुई है।

'खोज की रिपोर्टों में उद्धृत उदाहरणों को देखने से रचना उनकी पुष्ट और अभ्यस्त प्रतीत होती है।'[5]

रास का रेखता में 'रहस्य' और लावनी में 'रहस' बन गया । लावनी छंदों में लिखी 'रहस लावनी' से ग्रामीण जनता को रासलीला का रस मिला। इस ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रति दतिया में लाला लच्छीप्रसाद के पास सुरक्षित थी, अब उनके वंशजों ने उसे संभाल कर रखा है या नहीं? इस विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता है।

'आगे चल कर एक विशेषता और दिखाई देती है। रास का प्रचार इतना फैल गया था कि रोला, सोरठा, दोहा छंद, कविन्त आदि के अतिरिक्त कुछ मनचलों ने रेख़्ता और लावनी में भी इसकी रचना प्रारम्भ कर दी थी। यह समय का प्रभाव था, इससे बचना कठिन भी था। ..... नवलसिंह ने वृन्दावन में रास देखकर अपने प्रिय छंद लावनी में उसकां वर्णन कर डाला। ग्रन्थ का नाम है 'रहस लावनी'।[6]

लखनऊ निवासी **साह कुन्दनलाल उर्फ 'ललितकिशोरी'** विरक्त होकर वृन्दावन में रहने लगे थे। इनका रचनाकाल सम्वत् 1913 से 1930 वि. तक है। इन्होंने खड़ीबोली में सशक्त लावनी छंद लिखे हैं -

'जंगल में अब रमते हैं, दिल बस्ती से घबराता है ।
मानुष गन्ध न भाती है, संग मरकत मोर सुहाता है ।।
चाक ग़रेबां कर के दम दम, आहें भरना आता है ।
'ललितकिशोरी' इश्क रैन दिन, ये सब खेल खिलाता है ।।'

कृष्णभक्त श्रीमत्परमहंस नारायण स्वामी का रचनाकाल 18वीं सदी का उन्तरार्द्ध है। 'व्रज-विहार' इनकी कृति है। भजन संग्रह भाग-2, गीता प्रेस गोरखपुर, प्रथम संस्करण सम्वत् 1987 वि. में श्री वियोगी हरि ने इनकी कुछ लावनियां संगृहीत की हैं। 'रंगत लंगड़ी' में लिखी गई इनकी रचना यहां प्रस्तुत है। इनकी भाषा सानुप्रास, साफ़-सुथरी खड़ीबोली है, उसमें व्रजभाषा का भी पुट है-

---

1. परिकर = परिवार, अनुचर वर्ग
2. शबीह = अनुरूप चित्र, रूपसाम्य
3. औरा = औला अरबी शब्द का व्रजभाषा में प्रयोग, बहुत बढ़िया, विशेषण शब्द है।
4. मोहन साईं, माधुरी, वर्ष 12, खण्ड 2, पृष्ठ 364
5. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास 16वां संस्करण, पृष्ठ 366
6. डा. दशरथ ओझा, हिन्दी नाटक उद्भव और विकास, पृष्ठ 115-116

'रूप रसिक, मोहन, मनोज मन हरन, सकल गुन गरबीले ।
छैल छबीले, चपल लोचन चकोर चित चटकीले ।।
रतन जटित सिर मुकुट लटक रही सिमट स्याम लट घुंघरारी ।
बाल विहारी, कन्हैया, लाल, चतुर तेरी बलिहारी ।।
लोलक मोती कान कपोलन, झलक बनी निरमल प्यारी ।
ज्योति उज्यारी, हमें हर बार दरस दै गिरिधारी ।।
बिज्जु-छटा सी दन्त-छटा मुख देखि सरद ससि सरमीले ।
छैल छबीले, चपल लोचन चकोर चित चटकीले ।।'

अन्त में हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि खड़ीबोली का उद्भव 100-200 वर्ष पूर्व नहीं अपितु 700 वर्ष पूवे हो चुका था। यद्यपि हमने लावनी छंदों में खड़ीबोली को ढ़ालने का प्रथम प्रयत्न करने वाला अमीर खुसरो को ही माना है, परन्तु -

'खड़ीबोली के कुछ गीत, कुछ पद्य, कुछ तुकबन्दियां खुसरो के पहले से अवश्य चली आती होंगी ।'[1]

मेरा अनुमान है कि खुसरो से पूर्व जो भी गीत खड़ीबोली के रहे होंगे, वह निश्चित ही लावनी में होंगे, क्योंकि इससे पूर्व गोरखनाथ के पदों में भी लावनी की टेक का स्वरूप पाया जाता है। खुसरो से आज तक खड़ीबोली में इस लावनीसृजन की परम्परा अविच्छिन्न रही है, यह भी इस संक्षिप्त विवेचन से सिद्ध हो जाता है। कबीर, सूरदास, हित हरिवंश, तुलसी, मीरा और परमानन्ददास, जैसे महाकवियों का इसी खड़ीबोली में लावनी लेखन हिन्दी-जगत् में जहां चौंकाने वाला हो सकता है, वहीं सीतल, तुलसी साहिब, नाथूराम, ऋषभदेव, जिनदास, नज़ीर अकबराबादी, मोहन साईं, नवलसिंह, ललितकिशोरी और नारायण स्वामी की खड़ीबोली की लावनियां भी कम विस्मयकारी नहीं हैं।

हिन्दी को खड़ीबोली का रूप देने का श्रेय लावनीकारों को है। इसका सबूत यह है कि अब से डेढ़ सौ और दो सौ वर्ष पूर्व लिखित 'लावनी' की भाषा जब हम देखते हैं तो हमारे मुख से लामुहाला ये शब्द निकल पड़ते हैं कि खड़ीबोली के निर्माण कार्य में लावनी वालों का प्रमुख हाथ है, और इस श्रेय को प्राप्त करने के वे अवश्य अधिकारी हैं। महात्मा रिसालगिरि जी का जन्म अठारवीं सदी के मध्य भाग में हुआ माना जाता है और इनका प्रचार कार्य सन् 1775 से 1810 या 1815 तक होता रहा। कहते हैं सन् 1795 ई. में महाराज रिसालगिरि जी कानपुर पधारे थे और उसी समय

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, 16 वां संस्करण, पृष्ठ 392

उन्होंने मदारीलाल, बदरुद्दीन आदि को शिष्य बना कर अखाड़ा क़ायम किया। इससे साबित है कि एक सौ सत्तावन साल पूर्व लावनी साहित्य में जिस भाषा का प्रयोग होता था वह खड़ीबोली का परिमार्जित रूप था ।'[1]

लावनीकारों में हिन्दू और मुसलमान समान रूप से भाग लेते थे, उनमें न तो भाषा का झगड़ा था न सम्प्रदाय का। अतएव -

'यह निर्विवाद सिद्ध है कि लावनीकारों द्वारा खड़ीबोली का रूप हिन्दी-उर्दू के सम्मिश्रण से निर्धारित किया गया है।'[2]

यही खड़ीबोली उत्तराधिकार में आरम्भ के आधुनिक हिन्दी कवियों को मिली ।

'भारतेन्दु के खड़ीबोली काव्य के संस्कार उर्दू के अधिक थे । ..... शब्द-चयन की दृष्टि से भारतेन्दु-युग का लेखक शुद्धिवादी नहीं था। वह उर्दू, फ़ारसी, संस्कृत, अन्य प्रादेशिक भारतीय भाषा, लोक-भाषा, कहीं से भी कोई उपयोगी शब्द या प्रयोग ले लेने को तैयार था।'[3]

कानपुर का लावनी साहित्य पर्याप्त समृद्ध है, वहां सैंकड़ों लावनीकार विगत दो सौ वर्षों मे हुये, जिनका वर्णन हम चतुर्थ अध्याय में उनकी रचनाओं सहित कर चुके हैं। उनकी समस्त रचनाओं में प्रायशः खड़ीबोली ही व्यवहृत हुई है, वैसे कहीं-कहीं उर्दू आदि भाषाओं का भी प्रयोग हुआ है, अतः उस पर इस अध्याय में विचार करना पिष्ट-पेष्टण मात्र ही होगा। विवेचित कानपुर के कुछ लावनीकार कवियों की भाषा को समीक्षकों और विचारकों ने आदर्श माना है, प्रसंगवश यहां ऐसे मन्तव्यों का उल्लेख असंगत न होगा।

'प्रतापनारायण मिश्र ..... ने गद्य-शैली को भी जन्म दिया था।'[4]

'मिश्र जी हिन्दी, उर्दू, फ़ारसी, संस्कृत आदि कई भाषाओं में ख़याल लिखते थे। ..... इन्होंने अपने अविरल प्रयास से हिन्दी को नया रूप दिया और देशव्यापी बनाने का प्रयत्न किया है।'[5]

'महावीर प्रसाद द्विवेदी ने व्रजभाषा के विरुद्ध झंडा उठाया और व्रजभाषा कवियों और साहित्यिकों के भीषण विरोध करने पर भी काव्य की भाषा खड़ीबोली हो गई।'[6]

'सनेही जी सच्चे अर्थ में जन-कवि थे, वे काव्य की उस रसमयी, आनन्ददायिनी, लोकप्राणधारा के जीवन्त प्रतीक थे, जो आज भी हिन्दीभाषी क्षेत्रों मे गांव-गांव, कस्बे-कस्बे में बह रही है।'[7]

---

1. स्वामी नारायणानन्द, लावनी का इतिहास, पृष्ठ 92-93
2. वही, पृष्ठ 93
3. सच्चिदानन्द वात्स्यायन, हिन्दी साहित्य एक परिदृश्य, पृष्ठ 50
4. डा. श्रीकृष्णलाल, आ.हि.सा.का विकास, पृष्ठ 149
5. स्वामी नारायणानन्द, लावनी का इतिहास, पृष्ठ 322
6. डा.कृष्णलाल, आ.हि.सा. का विकास, पृष्ठ 8
7. रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', धर्मयुग, 27 जनवरी,'80,पृ.3।

'माखनलाल चतुर्वेदी और बालकृष्ण शर्मा भी मुख्यतया राष्ट्रीयता के कवि हैं, यद्यपि उनमें वे प्रवृत्तियां भी पाई जाती हैं जिनकी हम अभी छायावाद के प्रसंग में चर्चा करेंगे, छायावाद के आरम्भिक काल की भाषा सम्बन्धी स्वच्छन्दता भी उनमें पाई जाती है। दोनों में न केवल संस्कारी भाषा का आग्रह ही रहा, वरन् उसके प्रतिकूल कभी बहुत अटपटी और कभी मुहावरेदार, कभी ठेठ और कभी गरिष्ठ, कभी सीधी-सादी और कभी शुद्ध दुरूह भाषा दोनों ने लिखी । ..... माखनलाल चतुर्वेदी अथवा 'नवीन' की भाषा की असम गति और उभर कर दीखती है, लेकिन हिन्दी-पाठक (और समकालीन कवि) की चेतना पर उनके काव्य ने प्रभाव डाला यह असन्दिग्ध है। उसमें एक ओज और प्रवाहमयता है जो अभी तक अनुकरण को ललकारती है।'[1]

हितैषी जी प्रत्येक रस की कविता करते हैं ..... आपकी भाषा अत्यन्त परिमार्जित और मुहावरेदार होती है।'[2]

'ख़यालबाजी का एक युग था। जिधर देखिये उधर ही ख़यालों की रंगतें लड़ा करती थीं। मोहल्ले-मोहल्ले जमाव होते थे और ख़यालों पर ख़याल और टेकों पर टेकें गढ़ी जाती थीं। अच्छे और गुणी गाने वालों की क़दर होती थी। हर बालक, बूढ़े और जवान की ज़बान पर कोई न कोई टेक फड़का करती थी। वह युग अब बीत गया, किन्तु वह अपना काम कर गया। उसी युग ने खड़ीबोली कविता को जन्म दिया।'[3]

'खड़ीबोली का काव्य पहले लोकभूमि पर उतरा, उसकी दृष्टि ईश्वरपरक से बदल कर मानवपरक हुई।[4]

इस प्रकार लावनी से उत्पन्न खड़ीबोली ही आधुनिक परिनिष्ठित हिन्दी भाषा के कवियों की काव्यधारा का माध्यम बनी, जिसमें राधा कृष्ण को रिझाने का बहाना छोड़ कर व्यक्ति और समाज के रूप चित्रित किये जाने लगे।

'भारतेन्दु ने कजरी, चैती, ठुमरी, खेमटा, अद्धा होली, लावनी, विरहा, चनैनी इत्यादि ग्राम-गीतों को अपना कर हिन्दी काव्यधारा को नवीन मोड़ दिया। ..... भाषा की दृष्टि से भी उन्होंने साहित्य को एक नई दिशा दी ओर गतिशील किया।'[5]

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और पं० प्रतापनारायण मिश्र लावनीकार ही नहीं, अपितु लावनी-गायक भी थे। उनकी लावनियों की भाषा खड़ीबोली ही होती थी। उन्होंने गद्य में भी खड़ीबोली की प्रतिष्ठा की ।

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने भी खड़ीबोली में लावनी छंद में उपदेशात्मक एवं इतिवृत्तात्मक कतिपय पद्य लिखे हैं, जिनका वर्णन हम चतुर्थ अध्याय में कर चुके हैं।

1· सच्चिदानन्द वात्स्यायन, हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य, पृष्ठ 57
2· डा·श्यामसुन्दर दास, हिन्दी साहित्य, षष्ठ संस्करण, पृष्ठ 293
3· नारायणप्रसाद अरोड़ा, दो शब्द, लावनी का इतिहास, पृष्ठ 3
4· सच्चिदानन्द वात्स्यायन, हिन्दी साहित्य एक आधु· परि· पृष्ठ 72
5· डा·जयकिशन प्रसाद, हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, नवम संस्करण, पृष्ठ 356

द्विवेदी जी ने खड़ीबोली गद्य को परिमार्जित कर के वर्तमान रूप प्रदान किया ।'[1]

भारतेन्दु-युग और द्विवेदी युग के प्रायः सभी कवियों ने लावनियां लिखीं, ये सभी कवि अनेक भाषाओं के प्रेमी होते हुये भी हृदय से हिन्दी का ही वरण कर चुके थे। भारतेन्दु-युग की खड़ीबोली में उर्दू आदि अन्य भाषाओं की भी शब्दावली ग्राह्य थी, परन्तु द्विवेदीयुग में हिन्दी के प्रतिमानीकरण का संघर्ष छिड़ गया, परिणामस्वरूप -

'इस काल में खड़ीबोली हिन्दी एक संस्कारी भाषा होगई, और तभी से उसे खड़ीबोली कहना भी अनावश्यक हो गया, हिन्दी संज्ञा उसी के लिये रूढ़ हो गई।'[2]

'इस युग में 'लावनी' तथा उर्दू के छंदों का प्रयोग करने वाले प्रमुख कवि श्रीधर पाठक है।'[3]

'भारतेन्दु को खड़ीबोली युग का प्रवर्तक मानकर भी कहा जा सकता है कि श्रीधर पाठक ही उसके वास्तविक आदि कवि थे।'[4]

लावनी ने खड़ीबोली को राष्ट्रभाषा पद तक पहुंचने में उसका पूरा सहयोग तो दिया ही है, साथ ही उसके गीतकाव्य को भी नवीन दिशा प्रदान की है -

'गीति के लिये हिन्दी में केवल पद था, और वह भी उतना उपयुक्त नहीं था जितना कि उर्दू की ग़ज़ल और लोक-गीत की लावनी। ..... हिन्दी छंदों के चरण और लावनी का अन्त्यानुप्रास क्रम (अ अ, अ अ, ब ब) लेकर 'शंकर' ने मायात्मक लावनी बनाई। मैथिलीशरण गुप्त ने 'स्वर्णसंगीत' 'स्वर्गसहोदर' इत्यादि गीतियों में हिन्दी के भिन्न-भिन्न वर्णिक और मात्रिक छंदों में लावनी के अन्त्यानुप्रास-क्रम का आरोप किया ।'[5]

लावनी का वर्चस्व केवल हिन्दी के गीत-काव्य ही नहीं, अपितु खण्डकाव्यों और महाकाव्यों में भी पाया जाता है। 'साकेत' महाकाव्य में लावनी की प्रक्रिया को ध्यान में रखते हुये लावनियों का समावेश हुआ है, इसी प्रकार अन्य काव्यों में भी लावनियाँ पाई जाती हैं, उसका उल्लेख आगामी प्रकरण में 'आधुनिक हिन्दी कवियों में लावनी-प्रेम' प्रदर्शित करते समय यथास्थान किया जायेगा।

भावना के क्षेत्र में भी लावनी ने हिन्दी काव्य को नूतन सामाजिक उपादान प्रदान किये। निःसन्देह खड़ीबोली के विकास में लावनी का योग अविस्मरणीय है। खड़ीबोली लावनी का यह स्रोत जो अतीत में मन्द-मन्द प्रवहमान था, आधुनिक काल में आकाश की मन्दाकिनी न रह कर भूलोक की भागीरथी बन गया ।

---

1. डा॰जयकिशन प्रसाद, हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियां, नवम संस्करण, पृष्ठ 37।
2. सच्चिदानन्द वात्स्यायन, हिन्दी साहित्य : एक आधु॰ परिदृश्य, पृष्ठ 50-5।
3. डा॰जयकिशन प्रसाद, हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, नवम संस्करण, पृष्ठ 392
4. सच्चिदानन्द वात्स्यायन, हिन्दी साहित्य : एक आधु॰ परिदृश्य, पृष्ठ 54
5. डा॰श्रीकृष्ण लाल, आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृष्ठ 129, 130

आधुनिक हिन्दी कवियों में लावनी-प्रेम

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल का प्रारम्भ सम्वत् 1900 वि. से माना जाता है, जिसमें नवयुग की चेतना के विकास के साथ-साथ भाषा और भाव के क्षेत्र में भी नूतन परिवर्तन हुए। वस्तुतः इसका अवतरण साहित्यिक रूपों और प्रवृत्तियों की विविधता के साथ हुआ है। लावनी काव्य में राष्ट्रीय चेतना के प्रसार के साथ हमने इस काल का आरम्भ सन् 1871 ई. से स्थिर किया है। इसी समय हिन्दी साहित्याकाश में भारतेन्दु का उदय हुआ था, जो हिन्दी साहित्य के आधुनिक कालके आदि प्रमुख हैं।

'सच तो यह है कि भारतेन्दु से ही साहित्य में नवयुग की चेतना के दर्शन होते हैं। इस प्रकार हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल का प्रारम्भ सम्वत् 1925 (हरिश्चन्द्र जी के रचनाकाल) से मानना उचित है।'[1]

इस प्रकार भारतेन्दु-युग की अवधि का निर्धारण सन् 1868 से 1903 ई. तक किया जा सकता है। जबकि लावनी काव्य के आधुनिक काल के 'भारतेन्दु-युग' की अवधि हमने सन् 1870 से 1893 तक ही मानी है। नव चेतना की अभिव्यक्ति के लिये जिस भाषा और काव्य के जिस रूप की आवश्यकता थी उसकी पूर्ति लावनी काव्य द्वारा स्वतः ही हो गई थी। जन-जागरण की पुनीत बेला में सार्वजनिक उद्बोधन के लिये व्रजभाषा के स्थान पर खड़ी बोली और कविन्त-सवैया छन्दों के स्थान पर लावनी छन्द ही उपयुक्त थे। हिन्दी काव्य के तत्कालीन कवियों ने यह दोनों विशेषताएं निःसंकोच होकर लावनी-काव्य से ग्रहण कर ली थीं।

'संयुक्त प्रान्त के पश्चिमी प्रान्तों में लावनी का बहुत प्रचार है। ..... आधुनिक गीत काव्य के रूप पर इन लोकगीतों का बहुत प्रभाव पड़ा है, विशेषकर लावनी का।'[2]

भारतेन्दु कालीन समस्त कवि-जन अपनी वाणी में भारत के नव निर्माण का दृढ़ संकल्प लेकर खड़ीबोली लावनी की नींव पर ही हिन्दी कविता के भव्य भवन का निर्माण कर रहे थे।

'इस काल के सबसे प्रसिद्ध लावनी-लेखक काशीगिरि बनारसी आशिक़े हक्क़ानी थे। भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र, श्यामाचरण मुखोपाध्याय जैसे लेखकों ने लावनी को सर्वसाधारण में प्रचलित उसके विकृत और घृणित रूप से बहुत कुछ बचाये रक्खा।'[3]

'यहां 'विकृत' और 'घृणित' रूप से लेखक का अभिप्राय लावनी के दंगलों में दोनों दलों (तुर्रा और कलग़ी) के गायकों में परस्पर होने वाली नोंक-झोंक और फटकेबाजी से है।

'पूर्वयुगीन कवियों में शीतल, बनारसी, रूपकिशोर, फरहत साहब आदि ने इसी लय पर लावनियों की रचना की थी।'[4]

---

1. डा. जयकिशन प्रसाद, हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, नवम संस्करण, पृष्ठ 305
2. डा. श्रीकृष्ण लाल, आ. हि. सा. का विकास, पृष्ठ 107
3. डा. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, आधुनिक हि. सा., पृष्ठ 336
4. डा. प्रतापनारायण टण्डन, हिन्दी सा. का प्रवृत्तिगत इतिहास, प्रथम खण्ड, प्र. संस्करण, पृष्ठ 300

आधुनिक गीति-काव्य में प्रत्येक पद में दो अथवा चार पंक्तियों के पश्चात् टेक की प्रथम अथवा द्वितीय पंक्ति की पुनरावृत्ति का प्रचलन भी 'लावनी' की देन है।

'लावनी की भाँति कजली, दादरा इत्यादि अन्य लोकगीतों में भी एक पंक्ति की पुनरावृत्ति होती है। यही पुनरावृत्ति आधुनिक गीतिकाव्य की प्रथम सीढ़ी है। 'शंकर' ने अपने 'पंच-पुकार' में इसी पुनरावृत्ति का प्रयोग किया। ..... मैथिलीशरण गुप्त ने अपने 'कुकवि-कीर्त्तन' (सरस्वती, अक्टूबर 1909) में इसी काव्य-रूप का अनुकरण किया। यह रूप आधुनिक काल में पहले पहल बालमुकुन्द गुप्त की कविता में 1895 में ही मिल जाता है। लाला भगवानदीन की 'मसान' कविता में इसी रूप के दर्शन होते हैं जिसमें कि छंद तो सवैया है और अन्त्यानुप्रास-क्रम लावनी का (अ अ अ अ ब ब -टेक-) है। मैथिलीशरण गुप्त ने इसी रूप के आधार पर 'स्वर्ग-सहोदर' तथा 'स्वर्ण-संगीत' इत्यादि गीत लिखे, जिनमें त्रोटक, पंच चामर इत्यादि हैं। परन्तु अन्त्यानुप्रास क्रम सब का लावनी जैसा ही है।'[1]

'भारतेन्दु-युग में नये छंदों का प्रयोग प्रारम्भ हुआ। कुछ कवियों ने मात्रिक छंदों के अतिरिक्त कजरी, खयाल, लावनी, आल्हा आदि लोकगीतों की शैली अपनाई। उसी के साथ खड़ीबोली में उर्दू की ग़ज़ल तथा अन्य बहरों का प्रयोग किया गया। हिन्दी कविता बंधी हुई छंदशैली को छोड़ कर नई-नई शैलियों को अपनाती हुई विकसित हुई। इस दृष्टि से कानपुर के कवियों का छंदों के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है'[2]

इस युग के सभी कवि देशप्रेम एवं राष्ट्रीय भावना से मण्डित थे, उनका उद्देश्य लावनी की 'बहरे शिकस्ता' की इस पंक्ति में निहित था -

'अधीन होकर बुरा है जीना, है मरना अच्छा स्वतन्त्र होकर ।'[3]

भारतेन्दु-युग के पश्चात् द्विवेदीयुग (सन् 1903-1916 ई. तक), छायावादी युग (सन् 1916-1936 ई.तक), प्रगतिवादी युग (सन् 1936-1943 तक), प्रयोगवादी युग (सन् 1944-1961 ई. तक) एवं 1962 ई. से अब तक नई कविता, अकविता आदि का युग है। जिस प्रकार द्विवेदी युग के पश्चात् 'खड़ीबोली' 'हिन्दी' नाम से जानी जाने लगी, उसी प्रकार तभी से लावनी भी नवयुग के नवगीतों को नव लय प्रदान कर स्वयं लय हो गई, एवं 'गीतिका' कहलाने लगी। अब आजकल के कवि इस लावनी की लय में लिखते तो हैं, परन्तु छंदबोध न होने के कारण उन्हें यह पता नहीं कि वह किस छंद में लिख रहे हैं। कोई-कोई तो अनजाने में ही 'लावनी' की पूरी 'टेक्नीक' का निर्वाह अपने गीतों में कर जाते हैं और ऐसे गीत छंदों की अराजकता के इस युग में बड़ी लोकप्रियता प्राप्त कर लेते हैं।

---

1. डा.श्रीकृष्ण लाल, आ.हि.सा. का विकास, पृष्ठ 107-108
2. डा.लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक', हिन्दी छंदशास्त्र को कानपुर की देन, दैनिक जागरण, कानपुर, रजत जयंती अंक, पृष्ठ 11
3. रचयिता अज्ञात, संदर्भांकित, हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ : डा.जयकिशन प्रसाद : नवम संस्करण, पृष्ठ 339

आधुनिक कालके जिन कवियों ने 'लावनी' को अपनी काव्यरचना में अपनाया है, उनका संक्षिप्त परिचय उदाहरण सहित प्रस्तुत है -

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र :

इनका जन्म 9 सितम्बर सन् 1950 ई. को काशी में हुआ था, इनके पिता बाबू गोपालचन्द्र भी कवि थे, जो कि 'गिरिधरदास' उपनाम से कविता लिखते थे। भारतेन्दु जी ने अपने स्वल्प जीवनकाल में 70 ग्रन्थ लिखे और कई पत्रिकाओं का सम्पादन किया। इनकी समस्त स्फुट रचनाओं का संकलन दो खण्डों में नागरी प्रचारिणी सभा काशी ने 'भारतेन्दु ग्रन्थावली' नाम से प्रकाशित किया है। इन्होंने खड़ीबोली गद्य को प्रतिष्ठित किया। यह युगप्रवर्तक महान् यशस्वी कवि थे।

'भारतेन्दु जी ने खड़ीबोली में भी रचना की है और यह सामाजिक भी है और सुन्दर भी।'[1]

'गरमी के आगम दिखलाये, रात लगी घटने ।
कुहू कुहू कोयल पेड़ों पर बैठ लगी रटने ।।
ठंडा पानी लगा सुहाने आलस फिर आई ।
सरस सुगन्ध सिरिस फूलों की कोसों तक छाई ।।
उपवन में कचनार, वनों में टेसू हैं फूले ।
मदमाते भौंरे फूलों पर फिरते हैं भूले ।।'[2]

अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध लिखी गई इनकी लावनी की टेक और यह चौथा चौक बहुत प्रसिद्ध है -

'रोवहु सब मिलि के आवहु भारत भाई ।
हा! हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई ।।
अंगरेज राज सुख साज सजे सब भारी ।
पै धन विदेश चलि जात इहै अति ख्वारी ।।
ताहू पै मंहगी काल रोग विस्तारी ।
दिन दिन दूने दुख देत ईस हा! हा! री ।।
सबके ऊपर टिक्कस की आफ़त आई ।
हा! हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई ।।'[3]

---

1. डा. भगीरथ मिश्र, हिन्दी साहित्य का उद्‌भव और विकास, प्रथम संस्करण, खण्ड-2, पृष्ठ 140
2. भारतेन्दु, भारत मित्र, सितम्बर 1881 ई., संदर्भांकित, वही, पृष्ठ 141
3. भारतेन्दु, भारतेन्दु नाटकावली, सम्पादक - व्रजरत्नदास, पृष्ठ 598

'हम यह पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं कि भारतेन्दु ने साहित्य में दुहरी क्रान्ति की, भाव के क्षेत्र में भी और भाषा के क्षेत्र में भी। उन्होंने साहित्य में स्वीकृत छंदों के अतिरिक्त उन छंदों में रचना करना भी वांछनीय समझा जो जनता में प्रचलित थे। भारतेन्दु लावनीबाजों की मंड़ली में जाते और डफ लेकर लावनी गाते। गद्य से बाहर पद्य में भारतेन्दु ने खड़ीबोली का सबसे मधुर प्रयोग लावनियों में ही किया है। और सरसता में कविन्त, सवैया, दोहा के बाद लावनियां का ही नम्बर आता है, खड़ीबोली का यह चमत्कार पद्य में आज तक के कवि भी कम ही दिखा पाये हैं, इसका कारण यह है कि भारतेन्दु ने भाषा जनता से सीखी थी ।'[1]

उर्दू में भी इन्होंने ग़ज़ल लिखी हैं, उर्दू में इनका तखल्लुस 'रसा' था। कुछ 'ख़याल' भी खड़ीबोली या उर्दू में इन्होंने लिखे हैं। 'रंगत लंगड़ी' में लिखे गये खयाल की कुछ पंक्तियां द्रष्टव्य हैं -

'बिना उसके जलवा[2] के दिखाती, कोई परी या हूर नहीं ।
सिवा यार् के, दूसरे का इस दुनिया में नूर नहीं ।।
जहा में देखो जिसे ख़ूबरू[3], वहां हुस्न उसका समझो ।
झलक उसी की, सभी माशूकों में यारो मानो ।।'[4]

'इसी प्रकार से अन्य अनुकरणीय प्रयोग भारतेन्दु जी ने संस्कृत भाषा में भी किये हैं। संस्कृत का उन्होंने छंद और लोकछंद (लावनी) में प्रयोग किया है ।'[5]

संस्कृत लावनी का उदाहरण -

'कुंजं कुंजं सखि सत्वरम् ।
चल चल दयितः प्रतीक्षते त्वां तनोति बहु आदरम् ।।
सर्वा अपि संगताः ।
नो दृष्ट्वा त्वां तासु प्रिय सखि, हरिणाऽहं प्रेषिता ।।
मानं त्यज वल्लभे ।
नास्ति श्रीहरि सदृशो दयितो वच्मि इदं ते शुभे ।।'[6]

निज ज्योत्स्ना से जगतीतल को शीतल कर यह महीतल का 'भारतेन्दु' अन्त में 2 जनवरी, सन् 1885 ई. को सदा के लिये अस्त हो गया ।

---

1. डा. रामविलास शर्मा, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 15-16
2. जलवा = दर्शन, अपने को बनाव सिंगार करके दिखाना ।
3. ख़ूबरू = सुरूप, सुन्दर
4. भारतेन्दु ग्रन्थावली, प्रेम तरंग, 194
5. डा. रामचन्द्र मिश्र, श्रीधर काव्य पाठक तथा हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृष्ठ 96
6. भारतेन्दु ग्रन्थावली, संस्कृत लावनी, पृष्ठ 666

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' :

ये सरयूपारीण ब्राह्मण थे। इनका जन्म सन् 1855 ई. में ग्राम दत्तापुर में हुआ था, बाद में यह मिर्जापुर में रहने लगे थे।

सन् 1912 में कलकत्ते में आयोजित हिन्दी साहित्य सम्मेलन के तीसरे अधिवेशन के सभापति थे। इनकी समस्त रचना - 'प्रेमघन सर्वस्व' में संकलित हैं। इस ग्रन्थ का प्रकाशन सम्मेलन ने सम्वत् 1996 वि. में किया। उर्दू में इनका तख़ल्लुस 'अब्र' था ।

इनकी लावनियों में देश की दीन दशा का यथार्थ चित्रण हुआ है -

'अब नहीं यहां खाने भर को भी जुरता ।
नहिं सिर पर टोपी नहीं बदन पर कुरता ।।'[1]

इनकी प्रेमपरक लावनी की कुछ पंक्तियां प्रस्तुत हैं -

'है इश्क बुरा जंजाल मेरे ए प्यारे ।
सब चतुर सयाने लोग जहां पर हारे ।।
देखो चिराग़ पर जलता है परवाना ।
प्यासा मरता स्वाती पर चातक दाना ।।
मधुकर गुलाब के कांटों में उलझाना ।
निरखत मयंक नित चतुर चकोर चकराना ।।
नित बीन सुना कर जाते हैं मृग मारे ।
सब चतुर सयाने लोग जहां पर हारे ।।'[2]

इस पद्य में मुद्रण की त्रुटि का परिहार कर 'चकराना' के स्थान पर 'चकाना' पढ़ा जाना समीचीन है। **'चकाना'** और **'चकराना'** दोनों समानार्थक हैं। 'चकराना' में एक मात्रा बढ़ जाती है और लय भी बिगड़ जाती है ।

पं0 प्रतापनारायण मिश्र :

(जन्म सम्वत् 1913 वि. मृत्यु सम्वत् 1951 वि.)

'उन दिनों कानपुर में 'लावनी' गाने का बड़ा प्रचलन था। पंडित जी भी इससे प्रेरित होकर कभी-कभी लावनी लिखने लगे ।'[3]

---

1. प्रेमघन, संदर्भांकित, हिन्दी साहित्य का उद्‌भव और विकास, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 186
2. प्रेमघन-सर्वस्व, प्रथम भाग, उर्दू बिन्दु,
3. डा. भगीरथ मिश्र, हिन्दी साहित्य का उद्‌भव और विकास, खण्ड 2, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 152

इश्क़ की तारीफ़ में इनका ख़याल 'रंगत लंगड़ी' प्रस्तुत है -

'दीदारी दुनियादारी सब नाहक़ का उलझेड़ा है ।
सिवा इश्क़ के, यहां जो कुछ है निरा बखेड़ा है ।।
दुनिया क्या शै है, क्यों है, क्या इसका अव्वल आख़िर है ।
बाद मौत के, कहां जाना है, क्या होना फिर है ।।
इन बातों का ठीक हाल नहीं हुआ-किसी पर ज़ाहिर है ।
झूठी बकबक, मचाता हर मोमिन और काफ़िर है ।।
इन झगड़ों को कहिये तो कब किसने कहां निबेड़ा है ।
सिवा इश्क़ के, यहां जो कुछ है निरा बखेड़ा है ।।'[1]

'अपनी मस्ती में आप कभी-कभी चंग बजाकर ख़याल गाते भी थे ।'[2]

'उनकी लावनियों का उस काल बड़ा समादर था ।'[3]

'उर्दू के साथ-साथ खड़ीबोली और शुद्ध हिन्दी में भी इन्होंने लावनियाँ लिखी हैं। खड़ीबोली में एक टेक प्रस्तुत है -

'झूठे झगड़ों से मेरा पिण्ड छुड़ाओ ।
मुझको प्रभु अपना सच्चा दास बनाओ ।।'[4]

श्री जगन्नाथप्रसाद 'भानु'

इनका जन्म सन् 1858 ई. मध्यप्रदेश में हुआ था। इनकी प्रसिद्ध रचना 'छंद:प्रभाकर' है, जो जून 1894 ई. में प्रथम बार प्रकाशित हुई। भानु जी उस समय 'वर्धा' रहते थे। यह असिस्टेन्ट सेट्लमैन्ट आफिसर पेंशनर थे। विलासपुर (मध्यप्रदेश) में इनका निजी 'जगन्नाथ प्रेस' था । इस पुस्तक के दर्जनों संस्करण हो चुके हैं, छंदशास्त्र पर यह साधिकारिक कृति है।

'ध्वन्यर्थ व्यंजना ' से रंजित इनकी लावनी के कुछ अंश प्रस्तुत हैं -

'ब्रजललना जसुदा सों कहतीं, अरज सुनो इक नंदरानी ।
लाल तुम्हारे पनघट रोकें, नहीं भरन पावत पानी ।।
दान अनोखे हम सों मांगें, करें फजीहत मनमानी ।
भयो कठिन अब व्रज को वसिवो, जतन करो कुछ महरानी ।।
हंडुलि सीस गिरि ठनन ननन मोरी, तुचक पुचक कहुँ ढ़रकानी ।
चुरियां खनकीं खनन ननन मोरी करक करक भुईं बिखरानी ।।
पायजेब बज छनन ननन मोरी, टूक टूक सब छहरानी ।
लाल तुम्हारे पनघट रोकें, नहीं भरन पावत पानी ।।'

---

1. प्रतापनारायण मिश्र, संदर्भांकित ला. का इ.,पृष्ठ 324
2. स्वामी नारायणानन्द सरस्वती, ला. का इ., पृष्ठ 322
3. वाँसुदेव शर्मा, काव्यधारा : एक समीक्षा, प्रथम सं. पृ. 2
4. प्रतापनारायण मिश्र, संदर्भांकित ला. का इ., पृष्ठ 323

अन्तिम चौक -

'मनमोहन की मीठी मीठी सुनत बात सब मुसकानी ।
सुनि सुनि बतियां नन्दलाल की, प्रेम फन्द सब उरझानी ।।
मन हर लीनो नट नागर प्रभु, भूलि उरहनो पछितानी ।
मातु लियो गर लाय लाल को, तपन हिये की सियरानी ।।
'भानु निरखि तब बालकृष्ण-छवि गोपि गईं घर हरषानी ।
लाल तुम्हारे पनघट रोकें, नहीं भरन पावत पानी ।।'[1]

लावनी के अन्त में गुरु लघु का कोई विशेष नियम नहीं होता, एवं दीर्घ वर्णों को गिरा कर ह्रस्व वर्णों के समान पढ़ने का या बोलने का भी विधान है। तदनुसार यहां प्रथम चौक की चौथी पंक्ति में 'मोरी' शब्द के दोनों वर्ण गुरु होते हुये भी लघुवत् ही पढ़े या बोले जायेंगे।

पं0 श्रीधर पाठक -

इनका जन्म ग्राम जौंधरी तहसील फीरोजाबाद जि0 आगरा में माघ कृष्ण 14 सम्वत् 1916 वि0 को हुआ था ।

इनका रचनाकाल लावनी का स्वर्णयुग था, उस समय भारतेन्दु, प्रेमघन, प्रतापनारायण मिश्र और 'भानु' आदि लावनी में देशभक्ति, प्रेम और अध्यात्म की धारा बहा चुके थे।

'तुकनगिरि गोसाईं का उद्देश्य लावनी के द्वारा निर्गुण एवं सगुण दोनों भक्ति पद्धतियों को प्रोत्साहन देना था।'[2]

'एकान्तवासी योगी (1886 ई.) लावनी जैसे प्रचलित छंद में सरल खड़ीबोली के इस काव्य की रचना द्वारा पाठक जी ने हिन्दी काव्य में स्वच्छन्दवादिता का एक अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत किया ।'[3]

'केवल कथा के कारण ही इस काव्य को इतनी मान्यता नहीं प्राप्त हुइ, किन्तु इसका श्रेय लोकप्रिय लावनी की लय पर आधारित है।'[4]

'पाठक जी इस छंद में विशुद्ध खड़ीबोली प्रयोग कर सकने के कारण अन्य लावनी रचयिताओं से अधिक मौलिक सिद्ध हुये।'[5]

---

1. ज.प्र.भानु, छंद:प्रभाकर, षष्ठ संस्करण, सं.1983, ज.प्रेस, विलासपुर, पृष्ठ 70
2. डा.रामचन्द्र मिश्र, श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृष्ठ 99
3. वही, पृष्ठ 236
4. वही, पृष्ठ 100
5. वही, पृष्ठ 150

'उन्होंने खड़ीबोली पद्य के लिये सुन्दर लय उतार और चढ़ाव उतार के कई नये ढांचे भी निकाले और इस बात का ध्यान रखा कि छंदों का सुन्दर लय से पढ़ना एक बात है, राग-रागिनी गाना दूसरी बात। ख्याल या लावनी की लय पर जैसे 'एकान्तवासी योगी' लिखा गया वैसे ही सुधरे सांइयों के सधुक्कड़ी ढ़ंग पर 'जगत् सचाईसार', जिसमें कहा गया कि -

'जगत् है सच्चा, तनिक न कच्चा, समझो बच्चा! इसका भेद ।'

'स्वर्गीय वीणा' में उन्होंने उस परोक्ष दिव्य संगीत की ओर रहस्यपूर्ण संकेत किया जिसके तालसुर पर यह सारा विश्व नाच रहा है। इन सब बातों का विचार करने पर पं0 श्रीधर ही सच्चे स्वच्छन्दतावाद (रोमांटिसिज़्म) के प्रवर्तक ठहरते हैं।'[1]

'एकान्तवासी योगी' में नायिका नायक के सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कहती है -

'प्राण पियारे की गुण गाथा साधु कहां तक मैं गाऊं ।
गाते गाते चुके नहीं वह, चाहे मैं ही चुक जाऊं ।।
विश्व निकाई विधि ने उसमें की एकत्र बटोर ।
बलिहारौ त्रिभुवन-धन उस पर, वारौं काम करोर ।।'[2]

सचमुच 'स्वर्गीय वीणा' का संगीत भी नैसर्गिक है -

'कहीं पै स्वर्गीय कोई बाला सुमंजु वीणा बजा रही है ।
सुरों के संगीत की सी कैसी, सुरीली गुंजार आ रही है ।।
कोई पुरन्दर की किंकरी है, कि या किसी सुर की सुन्दरी है,
वियोग तप्ता सी भोग मुक्ता, हृदय के उद्‌गार गा रही है ।
कभी नई तान प्रेममय है, कभी प्रकोपन कभी विनय है,
दया है दाक्षिण्य का उदय है, अनेकों बानक बना रही है ।
भरे गगन में है जितरे तारे, हुये हैं बदमस्त गत पै सारे,
समस्त ब्रह्माण्ड भर को मानों, दो उंगलियों पर नचा रही है ।।'[3]

राधाचरण गोस्वामी :

इनका जन्म 25 फरवरी सन् 1859 ई. एवं स्वर्गवास 1925 ई. में हुआ। 'इश्क चमन', 'प्रेम पचीसी' और 'बारहमासी' आदि इनकी रचनाएं हैं। लावनी की दो पंक्तियां द्रष्टव्य हैं -

'मैं हाय हाय दै धाय पुकारौ रोई ।
भारत की डूबी नाव उबारो कोई ।।'[4]

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, 16 वां संस्करण, पृष्ठ 577
2. श्रीधर पाठक, एकान्तवासी योगी, संदर्भांकित, श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य,
3. श्रीधर पाठक, स्वर्गीय वीणा संदर्भांकित, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 412
4. राधाचरण गोस्वामी, संदर्भांकित, हि.सा.का प्रवृत्तिगत इतिहास, डा.प्रेमनारायण टण्डन, प्रथम खण्ड, प्र.संस्करण, पृष्ठ 296

पं0 नाथूराम शर्मा 'शंकर' :

इनका जन्म सं0 1916 अर्थात् सन् 1859 ई. में हरदुआ गंज जि0 अलीगढ़ में हुआ था। इनकी कृतियों में अनुरागरत्न, शंकर-सरोज, और गर्भरण्डा रहस्य आदि प्रमुख हैं ।

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर की 'आर्य विद्यासभा' ने इन्हें 'कविता-कामिनी-कान्त' की उपाधि से विभूषित किया था, उन्हें भेंट किये गये स्वर्ण-पदक पर यह श्लोक अंकित था-

'कविताकामिनीकान्तः श्रीनाथूरामशंकरः ।
ज्वालापुरार्य विदुषां सभया मान्यतेतराम् ।।'

'इन्होंने व्रज और खड़ीबोली दोनों ही में सुन्दर रचना की। 'शंकर' की भाषा को देखकर कोई नागरी हिन्दी की असामर्थ्य पर विश्वास ही नहीं कर सकता।'[1]

आर्य समाज की ओर आकर्षित होने पर इन्होंने वैदिक धर्म के प्रचारार्थ अनेक लावनियाँ लिखी हैं, यथा - आर्य समाज का अभ्युदय (11 चौक), आर्य समाज के दस नियम (4 चौक), धर्मवीरों की कर्मवीरता, मायात्मक लावनी (10 चौक), रामलीला (मायात्मक लावनी) इसमें 60 चौक हैं, यदि इसे आकार के अनुसार खण्डकाव्य की संज्ञा दे दें तो अत्युक्ति न होगी। लावनी : दयानन्द (4 चौक), लावनी : जय दयानन्द (10 चौक), लावनी : सामाजिक सुधार (10 चौक) आदि। अन्तिम लावनी 'भारतोदय' वर्ष 1, अंक 3, सं0 1966 वि. के अंक में छपी थी ।

'यदि ग़ज़ल और लावनी के अन्त्यानुप्रास-क्रम का हिन्दी के किसी छंद में आरोप किया जाय तो गीतिकाव्य के उपयुक्त लय और संगीत की सृष्टि हो सकती है। इसी विचार के आधार पर 'शंकर' ने कितने ही नये छंदों की सृष्टि की ।'[2]

आर्य समाज ने देश के लिये क्या-क्या किया है, इस सम्बन्ध में कवि का कथन है -

'निर्दोष अर्थ वेदों के जान, जनाये ।
मन्तव्य महापुरुषों के मान, मनाये ।।
खोले गुरुकुल, कालेज अनेक बनाये ।
कुलहीन दीन अगणित अनाथ अपनाये ।।
प्रतिनिधि-मण्डल का मान भलों को भाया ।
समझो समाज ने क्या-क्या कर दिखलाया ।।'[3]

---

1. डा. भगीरथ मिश्र, हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास, द्वितीय खण्ड, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 190
2. डा. श्रीकृष्ण लाल, आ. हि. सा. का विकास, तृतीय संस्करण, पृष्ठ 129, 130
3. शंकर-सरोज, संदर्भांकित - भजन भास्कर, तृतीय सं., (सम्पादक - कविरत्न हरिशंकर शर्मा), पृष्ठ 174

पं0 महावीरप्रसाद द्विवेदी :

इनका जन्म सन् 1864 ई. में रायबरेली ज़िले के दौलतपुर ग्राम में हुआ था।

'द्विवेदी जी कुछ दिनों तक बम्बई की ओर रहे थे, वहां मराठी के साहित्य से उनका परिचय हुआ। इसके साहित्य का प्रभाव उन पर बहुत कुछ पड़ा ..... इसी मराठी के नमूने पर द्विवेदी जी ने पद्य रचना शुरू की।'[1]

'लावनी' गाना भी महाराष्ट्र से यहां आने के कारण नामभेद से 'मरैठी' कहलाता है। इनसे पूर्व पं0 श्रीधर पाठक की 'लावनी' की लय हिन्दी-काव्य में प्रतिष्ठित हो चुकी थी, उसी के अनुकरण पर लिखी गई आपकी रचना का उदाहरण प्रस्तुत है -

'कटु चन्द्रायण में सुन्दर फल, मधुर ईख में एक नहीं।
बुद्धि मान्द्य की सीमा तूने दिखलाई है कहीं-कहीं ।।
निपट सुगन्धि-हीन यदि तूने पैदा किया पलाश।
तो क्या कंचन में भी तुझको भरना था न सुवास ।।'[2]

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' :

इनका जन्म सन् 1865 ई. में आजमगढ़ ज़िले के निजामाबाद में हुआ था। इन्होंने ब्रह्मसमाज आदि विभिन्न मतों को भारत के लिये घातक बताते हुये सनातन धर्म की पुष्टि निम्नांकित 9 चौक की लावनी में की है जो कि उनके 'काव्योपवन' नामक ग्रन्थ में संकलित है -

'ए भारत का मुख उज्ज्वल करने वालो।
सोचो समझो अपना घर देखो भालो ।।
तुम घबरा के पग इधर-उधर मत डालो।
अपनी मरजादा को धीरज से पालो ।।
'हरिऔध' धरम बल से सभी निबहते हैं।
हिन्दू रह कर ही भारत के रहते हैं ।।'[3]

श्रीमाधव शुक्ल :

इनका जन्म सं0 1938 वि. में हुआ। इनकी कविताओं का संग्रह 'माधवीलता' प्रथम गुच्छ छपा है, जिसमें इनकी 4-5 लावनियां संकलित हैं। उर्दू ढंग की लावनियां इन्होंने 'बेबस' तखल्लुस से लिखी हैं। बहरे शकिस्ता की 2 पंक्तियां पेश हैं -

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हि.सा.का इतिहास, 8 वां संस्करण, पृष्ठ 583
2. महावीरप्रसाद द्विवेदी, संदर्भांकित हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास, द्वितीय खण्ड, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 194
3. काव्योपवन, पृष्ठ 169, संदर्भांकित आ.हि.सा., डा.वार्ष्णेय, तृतीय संस्करण, पृष्ठ 280

'क़सम खुदा की न अब कभी भी, दिल अपना तुझसे लगायेंगे हम ।
जहां तलक हो सकेगा साहब, ये रिश्ता तुमसे छुड़ायेंगे हम ।।'

गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' :

इनका जन्म सन् 1883 ई. को हड़हा ज़िला उन्नाव में हुआ था।

'सनेही जी ब्रजभाषा और खड़ीबोली दोनों ही में प्रवाहपूर्वक लिखने वाले कवियों में हैं। उक्ति का अनूठापन, शब्द-प्रयोग का चमत्कार, छंद की बंधी हुई गति और कल्पना की रूप सर्जिनी विशेषता इनके काव्य की विशेषताएँ हैं।'[1]

यह लावनी के प्रसिद्ध आचार्य स्वामी नारायणानन्द सरस्वती के अभिन्न मित्र थे। इनकी लावनियों का विवेचन चतुर्थ अध्याय में कानपुर के लावनीकार कवियों के सन्दर्भ में किया जा चुका है।

मन्नन द्विवेदी :

इनका जन्म सम्वत् 1942 वि0में गजपुर ज़िला गोरखपुर में हुआ । यह आजमगढ़ जिले में तहसीलदार थे। भारत के अतीत कालीन विभव को लक्ष्य कर आपने कहा -

'बता दे गंगा कहां गया है, प्रताप पौरुष विभव हमारा ।
कहां युधिष्ठिर, कहां है अर्जुन, कहां है भारत का कृष्ण प्यारा ।।'

सर्वशक्तिमान् ईश्वर की सत्ता पर आपको पूर्ण विश्वास था -

'हिमालय सर है उठाये ऊपर, बगल में झरना झलक रहा है ।
उधर शरद के हैं मेघ छाये, उधर फटिक जल छलक रहा है ।।
इधर घना वन हरा भरा है, उपल पै तरुवर उगाया जिसने ।
अचम्भा इसमें है कौन प्यारे, पड़ा था भारत जगाया उसने ।।'[2]

इन्होंने अपनी लावनियों में अधिकतर 'बहरे शिकस्ता' का प्रयोग किया है।

मैथिलीशरण गुप्त :

इनका जन्म सन् 1886 ई. में चिरगांव ज़िला झांसी में हुआ । यह द्विवेदीयुग के महत्त्वपूर्ण कवि हैं।

'गुप्त जी ने गीतिकाव्य की सृष्टि भी नागरी (खड़ीबोली) हिन्दी में युगीन नवचेतना और भावनाओं को अपना कर की है।'[3]

---

1. डा॰भगीरथ मिश्र, हि॰सा॰का उद्भव और विकास, खण्ड 2, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 169
2. मन्नन द्विवेदी, संदर्भांकित वही, पृष्ठ 203
3. डा॰भगीरथ मिश्र, वही, पृष्ठ 206

यह आगरा आदि स्थानों पर आयोजित लावनी के दंगलों में मुख्य अतिथि के रूप में यदाकदा सम्मिलित होते रहते थे।, अतः इनका लावनी की ओर आकर्षित होना स्वाभाविक ही था। इन्होंने अपने प्रमुख काव्यों में लावनी छंदों को तो स्थान दिया ही है, उसकी प्रक्रिया को ग्रहण कर सम्पूर्ण लावनियां भी लिखी हैं, इतना ही नहीं, 'साकेत' जैसे प्रसिद्ध महाकाव्य में भी इन्होंने 'लावनी' को स्थान देकर लावनी के प्रति अपना हार्दिक प्रेम प्रकट कर दिया है।

'साकेत' का सम्पूर्ण अष्टम सर्ग 'लावनी' में है, कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं-

निज सौध सदन में उटज पिता ने छाया ।
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया ।
सम्राट् स्वयं प्राणेश, सचिव देवर हैं ।
देते आकर आशीश हमें मुनिवर हैं ।।
धन तुच्छ यहां यद्यपि असंख्य आकर हैं ।
पानी पीते मृग सिंह एक तट पर हैं ।।
सीता रानी को यहां लाभ ही लाया ।
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया ।।'

यह 15 चौक की लावनी है, 13वां चौक देखिये, स्वावलम्बन का चित्रण करती हुई जानकी कहती है -

'औरों के हाथों यहां नहीं पलती हूँ ।
अपने पैरों पर खड़ी आप चलती हूँ ।।
श्रम वारिबिन्दु फल स्वास्थ्य शुक्ति फलती हूँ ।
अपने अंचल से व्यजन आप झलती हूँ ।।
तनु-लता-सफलता-स्वादु आज ही आया ।
मेरी कुटिया में राज-भवन मनभाया ।।'

अन्तिम 14 वें चौक में क्रमशः साम्यवाद एवं गांधीवाद का पुट देखिये -

'ओ भोली कोल किरात भिल्ल बालाओ ।
मैं आप तुम्हारे यहां आ गई, आओ ।।
मुझको कुछ करने योग्य काम बतलाओ ।
दो अहो! नव्यता और भव्यता पाओ ।।

लो मेरा नागर भाव भेंट जो लाया ।
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया ।।'
सब ओर लाभ ही लाभ बोध-विनिमय में ।
उत्साह मुझे है विविध वृन्त-संचय में ।।
तुम अर्द्धनग्न क्यों रहो अशेष समय में ।
आओ, हम कातें-बुनें गान की लय में ।।
निकले फूलों का रंग ढंग से ताया ।
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया ।।'[1]

इसके पश्चात् सम्पूर्ण अष्टम सर्ग में यही लावनी छंद प्रयुक्त हुआ है ।

माखनलाल चतुर्वेदी :

इनका जन्म सन् 1888 ई. में बाबई ज़िला होशंगाबाद में हुआ था। इनका उपनाम 'एक भारतीय आत्मा' था। कानपुर से इनका अटूट सम्बन्ध था । यह 'प्रताप' के सम्पादक मण्डल में भी रहे थे। 'पुष्प की अभिलाषा' नामक इनकी प्रसिद्ध रचना 'लावनी' में ही लिखी गई है, इनका विवेचन चतुर्थ अध्याय में हो चुका है।

पं0 रामनरेश त्रिपाठी :

इनका जन्म सं0 1946 अर्थात् सन् 1889 ई. में जौनपुर ज़िले के कोहरीपुर ग्राम में हुआ था । सम्वत् 1988 में यह हिन्दी साहित्य सम्मेलन की इतिहास परिषद् के सभापति बने थे। 'कविता-कौमुदी', 'स्वप्न' और 'पथिक' आपके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं ।

'काव्यक्षेत्र में जिस स्वाभाविक स्वच्छन्दता (रोमैन्टिसिज़्म) का आभास पं0 श्रीधर पाठक ने दिया था उसके पथ पर चलने वाले द्वितीय उत्थान में त्रिपाठी जी ही दिखाई पड़े ।'[2]

गोरक्षा पर लिखी गई आपकी लावनी 16 चौकों में सम्पन्न हुई है। यहां उसके कुछ अंश प्रस्तुत हैं -

'हे हे हिन्दू हे आर्य्य, यवन, ईसाई ।
सुन लो गो माता की पुकार हे भाई ।।
ये भूतल जड़ चैतन्य चराचर सारे ।
हैं सकल सहोदर प्रकृति प्रिया के प्यारे ।।
ये एक दूसरे के दुख-नाशनहारे ।
कर दिये इन्हें ईश्वर ने दास हमारे ।।

---

1. साकेत, चतुर्थावृन्ति, सर्ग 8,
2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हि.सा. का इतिहास, 8वां संस्करण, पृष्ठ 599

सब से बढ़ कर हैं, गो माता सुखदाई ।
सुन लो गो माता की पुकार हे भाई ।।
गो माता का हो चला निरादर जब से ।
भारत की काया हुई निकम्मी तब से ।।
बल वीर्य ज्ञान गुन रूठ गये हैं सब से ।
घट गई आयु सुख मिले कहो किस ढ़ब से ।।
दारुण दुकाल पड़ने की बारी आई ।
सुन लो गो माता की पुकार हे भाई ।।
सब से पहले गो माता को अपनाओ ।
सब गाँव गाँव में गौशाला बनवाओ ।।
निज दान वीरता उसमें ही दिखलाओ ।
कवि 'रामनरेश' सुधर्म-धनी बन जाओ ।।
वह धन्य प्रशंसा इसमें जिसकी गाई ।
सुन लो गो माता की पुकार हे भाई ।।'[1]

जयशंकर प्रसाद :

इनका जन्म सन् 1890 ई. में काशी के एक प्रतिष्ठित परिवार में हुआ था। आप सृजन की विलक्षण प्रतिभा से मण्डित एवं काव्यशास्त्र के पण्डित थे। 'कामायनी' आपकी प्रसिद्ध कृति है।

'सरोज' (1910 ई.) के प्रथम अंक के लिये इन्होंने 'बहरे शकिस्ता' में अपनी शुभकामना लिख कर भेजी थी -

'अरुण अभ्युदय से हो मुदित मन,
प्रशान्त सरसी में खिल रहा है ।
प्रथम पत्र का प्रसार कर के,
सरोज अलि गण से मिल रहा है।।
तुम्हारे केसर से जो सुगन्धित,
परागमय ही रहे मधुव्रत -
'प्रसाद' विश्वेश का हो तुम पर,
यही हृदय से निकल रहा है।।'[2]

इसमें लावनीं की 'बहर शिकस्ता' है।

---

1. रामनरेश त्रिपाठी, भजन भास्कर, कविरत्न पं. हरिशंकर शर्मा द्वारा संकलित, तृतीय संस्करण, पृष्ठ 268-272
2. प्रसाद का काव्य, ले. डा. प्रेमशंकर, प्रकाशक भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्रथम सं., 2012 वि., पृष्ठ 65

रंगत छोटी-

' मन को अथाह गम्भीर समुद्र बनाओ ।
चंचल तरंग को चित से वेग हटाओ ।।'[1]

प्रारम्भ में यह 'कलाधर' उपनाम से रचना करते थे।

अपने नाटकों में भी प्रसाद जी ने 'लावनी' गीतों का समावेश किया है।

बहरे शिकस्ता -

'न छेड़ना उस अतीत स्मृति से, खिंचे हुये बीन तार कोकिल ।
करुण रागिनी तड़प उठेगी, सुना न ऐसी पुकार कोकिल ।।'[2]

'एक घूँट' एकांकी लघु नाटक में प्रेमलता वनलता को 'रंगत नवेली' में गान सुनाती है -

'घुमड़ रही जीवन घाटी पर जलधर की माला ।'
× × × ×
'क्षणिक सुखों पर सतत घूमती, शोकमयी ज्वाला।।'[3]

रंगत दौड़ -

'भरा नैनों में मन में रूप, किसी छलिया का अमल अनूप ।'[4]

पं0 बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' :

इनका जन्म सन् 1897 ई. में ग्वालियर राज्य के भयाना नामक ग्राम में हुआ ।

" 'नवीन' जी 'प्रताप' के सम्पादक रहे। इनकी लेखनी में बड़ा बल है। कानपुर के ये प्रमुख कार्यकर्ता भी हैं। आन्दोलन के दिनों में अपने ओजस्वी भाषणों के कारण ये 'कानपुर के शेर' कहे जाते थे। "[5]

नवीन जी स्वच्छन्दतावादी प्रेमी कवि थे। नेह-नैराश्य की अभिव्यक्ति उन्होंने एक लावनी के माध्यम से की है, यह लावनी 8 अप्रैल 1943 को इन्होंने स्वतन्त्रता के लिये बन्दी बन कर डिस्ट्रिक्ट जेल, उन्नाव में लिखी थी -

'इस जीवन में क्या प्रात कभी भी आया ।
मेरे अम्बर में निपट अंधेरा छाया ।।
जिनको समझा अपना वे हुये पराये ।
मेरे अर्पित मृदु सुमन न उनको भाये ।।
वे किसी अन्य के हृदय लगे, हुलसाये ।
उनने हँस हँस औरों से नेह लगाया ।
मेरे अम्बर में निपट अंधेरा छाया ।।'[6]

1· चित्र (कविता) 'इन्दु' कला-2, दूसरी किरण, भाद्रपद शुक्ल 2, सं· 1967, संदर्भांकित वही, पृ·70
2· स्कन्दगुप्त, संदर्भांकित वही, पृष्ठ 246
3· एक घूँट, पृष्ठ 24
4· एक घूंट, पृ·24
5· डा·भगीरथ मिश्र, हि·सा·का उद्‌भव और विकास, (प्र·सं·,पृ·220)
6· हम विषपायी जनम के,प्र·सं·,

पीने वालों को क्या मधुर, क्या कटु ? मधुपों की दृष्टि में अमिय-हलाहल सम हैं -

'पीने वालों की भाषा में अमिय-गरल का भेद नहीं ।
स्वाद - समीक्षा में होता है, मधुकटु का विच्छेद कहीं ।।
रस - अनेकता, रूप - भिन्नता है नख़रा गुणवानों का ।
सुधा - हलाहल एक रूप है, कौल यही मस्तानों का ।।
फिर कैसी यह अरुचि अधर में ए 'नवीन' पीने वाले ।
फेर रहे हो क्यों अपना मुख, देख हलाहल के प्याले ।।'[1]

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' :

इनका जन्म सन् 1897 ई. में बंगाल के महिषादल राज्य के मेदिनीपुर में हुआ। इनका पैतृक घर उन्नाव ज़िले का गढ़ाकाला नामक गाँव है। इसीलिये इनके विषय में यह कहा जाता है -

'कविन मा आला भा निराला गढ़ा काला का ।'

'प्रचलित कुल तालों से समन्वित 'अर्चना' नामक आधुनिक गीतों का संग्रह, ईश्वर की इच्छा से प्रस्तुत होकर, ... पाठक-पाठिकाओं के सम्मुख उपस्थित है।'[2]

'बन जाय भले शुक की उक से, सुख की दुख से अवनी न बनी ।
रुक जाय चली गति जो जग की, जन से जन जीवन की न ठनी ।।'[3]

× × × ×

'खेलूंगी कभी न होली,
उससे जो नहीं हम-जोली।
यह आंख कहीं कुछ बोली,
यह हुई श्याम की तोली।
ऐसी भी रही ठठोली,
गाढ़े रेशम की चोली।'[4]

× × × ×

---

1. नवीन, श्री गणेश कुटीर, कानपुर में 7 दिसम्बर 1951 को लिखित लावनी,
2. निराला, कला मन्दिर दारागंज, प्रयाग, 26-8-50, स्वीयोक्ति, अर्चना, पृष्ठ 5
3. अर्चना, पृष्ठ 25
4. वही, पृष्ठ 50

'हरि का मन से गुण-गान करो, तुम और गुमान करो न करो ।
स्वर-गंगा का जल पान करो, तुम अन्य विधान करो न करो ।।
निशि वासर ईश्वर-ध्यान करो तुम अन्य विमान करो न करो ।
ठग को जग-जीवन दान करो, तुम अन्य प्रदान करो न करो ।।
दुख की निशि का अवसान करो, उपमा, उपमान करो न करो ।
प्रिय नाह की बांह का थान करो, तुम और वितान करो न करो ।।'[1]

× × × ×

'वे कह जो गये कल आने को, सखि, बीत गये कितने कल्पों ।
खग-पांख-मढ़ी मृग-आंख लगी, अनुराग जगी दुखके तल्पों ।।'[2]

लावनी काव्य की दृष्टि से प्रथम में 'बहरे तबील', द्वितीय में 'छोटी रंगत' (पौनी) तीसरे और चौथे में 'बहरे तबील' है।

डा0 बलदेवप्रसाद मिश्र 'राजहंस' :

इनका जन्म 12 सितम्बर 1898 ई. को मध्य प्रदेश के राजनांद गांव में हुआ ।

इन्होंने राम काव्य-परम्परा में 'साकेत' महाकाव्य के समान 'साकेत सन्त' महाकाव्य सन् 1946 ई. में लिखा, जिसके नायक भरत हैं। इसमें 'लावनी' छंद का प्रयोग किया गया है, यथा -

'मेरे कारण ही अवध राम ने छोड़ा ।
मेरे कारण तनु - बन्ध पिता ने तोड़ा ।।
मेरे कारण यह दशा तुम्हारीमाता ।
दानव हूँ दानव, विपुल व्यथा का दाता ।।'[3]

सुमित्रानन्दन पन्त :

इनका जन्म 21 मई सन् 1900 ई. में कोसानी ज़िला अल्मोड़ा में हुआ था।

'लावनी' छंद का एक नाम 'राधिका' भी है,[4] इसके लवण्य पर पन्त जी फ़िदा थे -

'राधिका छंद में ऐसा जान पड़ता है, जैसे इसकी क्रीड़ा-प्रियता अपने ही परदों में 'गत' बजा रही हो। जैसे परियों की टोली परस्पर हाथ पकड़, चंचल नूपुर नृत्य करती हुई, लहरों की तरह अंग-भंगियों में उठती लुकती कोमल कंठ स्वरों में गा रही हो। इस छंद में जितनी ही अधिक लघु मात्राएं रहेंगी इसके चरणों में उतनी ही मधुरता तथा नृत्य रहेगा।'[5]

क्रान्ति को सम्बोधित करते हुए कवि कहता है -

'तुम मरण विश्व में अमर चेतना भरती ।
तुम निखिल भयंकर भीति जगत की हरती ।।'[6]

---

1. अर्चना, पृष्ठ 60
2. अर्चना, पृष्ठ 63
3. साकेत, सन्त
4. द्रष्टव्य, ला.का इ., पृष्ठ 45,
5. सुमित्रानन्दन पंत, पल्लव, 2005 का संस्करण, पृ.31
6. पन्त, युगवाणी, संदर्भांकित, आ.हि.का. में छंद योगना, पृष्ठ 283

सुभद्राकुमारी चौहान :

इनका जन्म सन् 1904 ई. में प्रयाग में हुआ । यह हिन्दी साहित्य की अमर कवयित्री है। इनकी समस्त रचनाएँ राष्ट्रीय हैं एवं ओजगुण से ओतप्रोत हैं। **'झाँसीवाली रानी'** पर लिखी गई इनकी यह 'लावनी' सर्वाधिक लोकप्रिय हुई । इसमें 18 चौक हैं, कुछ अंश प्रस्तुत हैं -

'बुन्देले हर बोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी ।
खूब लड़ी मरदानी वह तो झांसीवाली रानी थी ।।
सिंहासन हिल उठे राजवंशों ने भृकुटी तानी थी ।
बूढ़े भारत में भी आई फिर से नई जवानी थी ।।
गुमी हुई आज़ादी की कीमत सबने पहचानी थी ।
दूर फिरंगी को करने की सबने मन में ठानी थी ।।
चमक उठी सन् सत्तावन में वह तलवार पुरानी थी ।
खूब लड़ी मरदानी वह तो झांसीवाली रानी थी ।।
जाओ रानी याद रखेंगे ये कृतज्ञ भारतवासी ।
यह तेरा बलिदान जगावेगा स्वतन्त्रता अविनाशी ।।
होवे चुप इतिहास, लगे सच्चाई को चाहे फांसी ।
हो मदमाती विजय, मिटा दे गोलों से चाहे झांसी ।।
तेरा स्मारक तू ही होगी, तू खुद अमिट निशानी थी ।
खूब लड़ी मरदानी वह तो झांसीवाली रानी थी ।।'[1]

डा0 रामकुमार वर्मा :

इनका जन्म 15 नवम्बर 1905 ई. को सागर में हुआ था। 'रंगत तबील मुखफ्फ़ा' में लिखी गई इनकी रहस्यवादी लावनी प्रस्तुत है -

'मैं आज तुम्हारे मन्दिरमें पूजा का कुछ सामान लिये ।
आया हूँ एक वीतरागी सा केवल अपने प्राण लिये ।।
दो प्रहर बीत भी सके न तन जर्जर हो गया बहुत जर्जर ।
जैसे तरु एक और उसमें सांसों का गूंज रहा मर्मर ।।
है शून्य दृष्टि, प्रतिबिम्बित है यह शून्य-शून्य सा अमराम्बर ।
तारों के दो आंसू अटके हैं एक इधर है एक उधर ।।
यह फूल खिला है बेचारा, केवल गिरने का ज्ञान लिये ।
मैं आज तुम्हारे मन्दिर में पूजा का कुछ सामान लिये ।।'[2]

---

1. सुभद्राकुमारी चौहान, चयनिका (सं. पं0 बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'), 21 वां संस्करण, पृष्ठ 113-118
2. डा. रामकुमार वर्मा, आधुनिक कवि, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ 15-16

महादेवी वर्मा :

इनका जन्म सन् 1907 ई. में फर्रूखाबाद में हुआ था, बाद में यह इलाहाबाद में महिला विद्यापीठ की प्रधानाचार्या हो गईं। इनका कथन है -

'बचपन में जब पहले पहल खड़ीबोली की कविता से मेरा परिचय पत्रिकाओं द्वारा हुआ तब उसमें बोलने की भाषायें ही लिखने की सुविधा देख कर मेरा अबोध मन उसी ओर उत्तरोत्तर आकृष्ट होने लगा ।'[1]

'प्रिय से' नामक इनकी कविता लावनी की 'खड़ी रंगत' में समाविष्ट की जा सकती है, प्रथम चौक प्रस्तुत है -

'मेरे हंसते अधर नहीं, जग की आंसू-लड़ियां देखो ।
मेरे गीले पलक छुओ मत, मुरझाई कलियां देखो ।।
हंस देता नव इन्द्रधनुष की स्मित में घन मिटता मिटता ।
रंग जाता है विश्व राग से निष्फल दिन ढ़लता ढ़लता ।।
कर जाता संसार सुरभिमय एक सुमन झरता झरता ।
भर जाता आलोक तिमिर में लघु दीपक बुझता बुझता ।।
मिटने वालों की हे निष्ठुर! बेसुध रंगरलियां देखो ।
मेरे गीले पलक छुओ मत, मुरझाई कलियां देखो ।।'[2]

डा0 हरिवंशराय 'बच्चन' :

इनका जन्म सन् 1907 में हुआ। इनके विषय में सुमित्रानन्दन पन्त ने लिखा है कि 'तुम्हारी लोकगीतों पर आधारित रचनाएँ बड़ी प्यारी हैं।'[3] इनकी लावनियों के उदाहरण हैं -

'मैं स्नेह-सुरा का पान किया करता हूँ ।
मैं कभी न जग का ध्यान किया करता हूँ ।।'[4]

× × ×

'सबसे अपना शृंगार किया है मैंने ।
तेरी दुनिया से प्यार किया है मैंने ।।'[5]

रामधारी सिंह 'दिनकर' :

इनका जन्म सन् '1908 ई. में सिमरिया, मुंगेर'[6] में हुआ। परन्तु कुछ विद्वान् 'इनका जन्म सन् 1909 ई. में हुआ था[7] ऐसा मानते हैं।

'कुरुक्षेत्र' के पंचम सर्ग के भाग-1 में कवि ने लावनी 'रंगत छोटी' का प्रयोग किया है। कुछ पंक्तियां प्रस्तुत हैं -

---

1-2. महादेवी वर्मा, आधुनिक कवि (1), पृष्ठ 34-35,
3. कवियों में सौम्य संत , कुछ पत्र, पृष्ठ 103,
4. मधुबाला, पृष्ठ 122
5. त्रिभंगिमा, पृष्ठ 91
6. डा.प्रेमनारायण टण्डन, हिन्दी साहित्यकार कोश : हिन्दी सेवी संसार, प्रथम खण्ड, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 603
7. डा.भगीरथ मिश्र, हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास, खण्ड 2, संस्करण प्रथम, पृष्ठ 228

'अयि! विजय! रुधिर से क्लिन्न वसन है तेरा ।
यमदंष्ट्रा से क्या भिन्न दसन है तेरा ?
लपटों की झालर झलक रही अंचल में ।
है धुआं ध्वंस का भरा कृष्ण कुन्तल में ।।
ओ कुरुक्षेत्र की सर्वग्रासिनी व्याली ।
मुख पर से तो ले पोंछ रुधिर की लाली ।।'[1]

हरिकृष्ण 'प्रेमी' :

इनका जन्म गुना, ग्वालियर में हुआ। यह प्रसादोत्तर नाट्य साहित्य में भी अपना अच्छा स्थान रखते हैं।

'प्रेमी जी के अधिकतर गीत 'ख़्याल' के अन्तर्गत हैं।'[2]

रचनाएं - अग्निगान आदि 5 काव्य एवं स्वर्ण विहान, रक्षाबन्धन, आहुति आदि 12 नाटक प्रकाशित हैं।

खड़ी रंगत की पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -

'यही प्रेम का नियम चिरन्तन, यही प्रेम का खेल महान ।
अनचाहे अनजान, अपरिचित के चरणों पर चढ़ते प्राण ।।'[3]

डा० जगदीश वाजपेयी :

'..... वाजपेयी जी भाषा के पंडित ही नहीं, शिक्षक भी हैं। यदि आप उनके गीतों को अपनी आहों के स्वर में घोल कर मस्त होकर रस लेते हुये गुनगुनाइये तो आनन्द आ जायगा।'[4]

कवि प्रियतम से प्रश्न करता है -

'तुम तक क्या मेरे अश्रु पहुँच पाते हैं ?
क्या सचमुच मेरे गीत तुम्हें भाते हैं ?'[5]

प्रेम की पीर आपके प्राणों में पल कर सहृदयों के हृदयों में पुलक भरती है। ऋतु के प्रभाव से मानिनियों के मान और गुमानियों के गुमान ढ़ह गये हैं -

'संवादी बन गये विवादी, स्वर सहसा सारे ।
मंज़िल पा ठहरे भावों के, भटके बनजारे ।।
निमिष मात्र में ढ़री लाज की, भरी-भरी गागर ।
पल ही पल में सृष्टि बदल दी, फागुन जादूगर ।।'[6]

---

1. दिनकर, कुरुक्षेत्र, चतुर्थ संस्करण, पृष्ठ 7।
2-3 कुमारी सरला जौहरी, हरिकृष्ण प्रेमी नाटक : एक आलोचनात्मक अध्ययन, पृष्ठ 15।
4. आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, भाव-मीमांसा, क्ल्लकी, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 3-4
5. डा.जगदीश वाजपेयी, वही, पृष्ठ 60 6. डा.जगदीश वाजपेयी, गीत, दौराला मिल पत्रिका, 7 मार्च 1983, पृष्ठ 10

डॉ0 विष्णुदत्त 'राकेश' :

आपका जन्म 8 मार्च 1941 ई. को किनौनी, मुज़फ़्फ़रनगर में हुआ। आपने जोधपुर विश्वविद्यालय से पी-एच.डी. और विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन से डी.लिट् की उपाधि प्राप्त की। सम्प्रति गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार में आचार्य एवं अध्यक्ष - हिन्दी विभाग पद पर कार्यरत हैं।

आप मध्यकालीन हिन्दी साहित्य एवं पुरा विद्याओं के प्रकाण्ड पण्डित, सुकवि एवं समीक्षक हैं। अब तक आपकी 15-16 कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनमें **श्रुतिपर्णा, पर्णगन्धा** और **देवरात** काव्यकृतियां हैं। **'रंगत नवेली'** में गायत्रीमन्त्र के परिप्रेक्ष्य में कवि कहता है -

'तम का सागर चीर ज्योति की स्वर्ण नाव निकली ।
किरणों की अंजलि में फूली, कली एक उजली ।।'[1]

इन्द्रियों के सो जाने पर भी प्राण जागता रहता है, **'रंगत खड़ी'** में कवि कहता है -

'जब सब प्राणी सो जाते हैं, तब भी जागा करते प्राण ।
तमोमयी प्रगाढ़ निद्रा में, चलते रहते प्राणापान ।।
रानी मधुमक्खी के पीछे ज्यों चलता मधुमाखी दल ।
इसी तरह प्राणों के पीछे चलती हैं इन्द्रियां विकल ।।'[2]

'देवरात' कवि का वैदिक आख्यानमूलक पुरस्कृत खण्डकाव्य है, जिसमें कवि ने नरबलि और दासप्रथा पर प्रहार कर सामाजिक सत्य को उद्घाटित किया है। इसमें अन्य छंदों के साथ लावनी छंदों को भी अपनाया गया है। **'रंगत छोटी'** (राधिका) की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -

'गुंजरित हुई मण्डप से तब नभवाणी ।
वाणी थी वरुण देव की चिर कल्याणी ।।
हे देवरात तुम हुये मुक्त बन्धन से ।
लो छूट गये त्रय पाश तुम्हारे तन से ।।
मानव समाज का कभी न हो बँटवारा ।
स्मृतियों में बहती हो समता की धारा ।।
हो छिन्न धर्म मतवादों की जड़कारा ।
हर 'जनहिताय' हो शासन तन्त्र तुम्हारा ।।'[3]

---

1. श्रुतिपर्णा, पृष्ठ 15
2. पर्णगन्धा, पृष्ठ 38
3. देवरात, पृष्ठ 89-90

डा0 सत्यव्रत शर्मा 'अजेय' :

वैशाख वदि अमावस्या सं0 1991 वि. (सन् 1934 ई.) को डंघेड़ा, सहारनपुर में जन्म हुआ। एम.ए., पी-एच.डी., साहित्याचार्य और आयुर्वेदाचार्य की उपाधियाँ प्राप्त कीं। कुछ वर्षों तक गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के प्रधानाचार्य रहे। जून 1994 से सेवानिवृत्त होकर सम्प्रति निजी भवन 'सत्य-सदन' आर्य नगर, ज्वालापुर, हरिद्वार में निवास ।

अब तक लगभग 15-16 कृतियाँ एवं लगभग 1000 स्फुट रचनाएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित । अनेक इतिहास-ग्रन्थों में परिचय, अनेक अभिनन्दनपत्र एवं पुरस्कार प्राप्त। काव्य की प्रचलित सभी विधाओं में लिखा, लावनी काव्य-शैली से आरम्भ से ही विशेष स्नेह, **'मीरा'** और **'नारद मदमर्दन'** ये दोनों खण्डकाव्य लावनी छंद (ताटण्क) में लिखे।

अप्रकाशित कृति - **लावण्य मंजरी** ।

सहस्रार चक्र का वर्णन : रंगत खड़ी -

'चपल चंचला की चंचलता हो जाती है प्रगति विहीन ।
जहाँ कोटिशः सूर्य चन्द्रमा प्रतिभा खो, हो बैठें दीन ।।
अनिल-अनल का तेज जहाँ पर, हो जाता है विगत प्रभाव ।
जगमग जगमग ज्योति झलकती, प्रबल प्रताप अखण्ड स्वभाव ।।
सहस्रार के शान्त सर्वथा महापयोनिधि में नारद ।
ब्रह्मानन्द प्राप्त करते हैं जहाँ न पद रखती आपद ।।'[1]

'रंगत खड़ी' में ही मीराबाई की प्रेम-प्रवणता द्रष्टव्य है -

'तुम रूठो राणा जी रूठें, रूठें भाई - भौजाई ।
राई का पर्वत हो जावे, पर्वत की होवे राई ।।
सूरज तज दे निज स्वभाव, दिन में तारे दें दिखलाई ।
प्रणय - पंथ से विचलित होगी, पर न कभी मीराबाई ।।'[2]

राष्ट्रीय एकता की लावनी : बहर शिकस्ता -

'हो देश कोई हो वेश कोई, हो रूप कोई, हो रंग कोई ।
स्वरूप हम सब हैं एक जल के, भँवर है कोई, तरंग कोई ।।
सभी में जलवागिरी है जिसकी, परमपिता एक वह हमारा ।
सभी को जीवन दे उसने सींचा, सभी को उसने स्वयं सँवारा ।
न कोई छोटा बड़ा न कोई, हरेक उसके दृगों का तारा ।
समुद्र तो एक ही है, जिसकी बही मही पर अनेक धारा ।।

---

1. नारद मद मर्दन, पृष्ठ 3-4
2. मीरा, पृष्ठ 36

प्रसिद्ध गोदावरी औ यमुना, सरस्वती और गंग कोई ।
स्वरूप हम सब हैं एक जल के, भँवर है कोई तरंग कोई ।।
सभी को जीने का हक़ मिला है, सुखों के साधन मिले बराबर ।
स्वयं को जितना सँवारे कोई, सभी प्रसाधन मिले बराबर ।।
अलग-अलग जीव हैं सभी के, अलग-अलग मन मिले बराबर ।
सभी को फागुन मिले बराबर, सभी को सावन मिले बराबर ।।
जगत बना कल्पवृक्ष सुन्दर, बने तो इसका विहंग कोई ।
स्वरूप हम सब हैं एक जल के, भँवर है कोई, तरंग कोई ।।'[1]

आधुनिक प्रौढ़ कवियों में रमानाथ अवस्थी के काव्य-संकलन 'आग और पराग' में कुछ लावनियां मिलती हैं, यथा -

'मैंने सबको गंगा जमुना दे डाली ।
पर फिर भी सबने आग हृदय में पाली ।।'

'नीरज' की 'विभावरी' में प्रकाशित यह लावनी प्रसिद्ध है -

'अंगार अधर पर धर कर मुसकाया हूँ ।
मैं मरघट से ज़िन्दगी बुला लाया हूँ ।।'

भारत भूषण (मेरठ) की यह लावनी कवि-सम्मेलनों में प्रायः सुनी जाती है -

'अगर न लेता मैं जन्म जग में, धरा बनी ये मसान होती ।
न मन्दिरों में मृदंग बजते, न मस्ज़िदों में अजान होती ।।'

यद्यपि इस प्रकरण में आधुनिक समस्त श्रेष्ठ हिन्दी कवियों का लावनी-प्रेम प्रदर्शित करने की चेष्टा की गई है, तो भी कुछ प्राचीन-अर्वाचीन लावनी-प्रेमी कवियों का विवेचन स्थानाभाव के कारण नहीं हो सका है। ऐसे कवियों में डा0 जगमोहन सिंह, बालमुकुन्द गुप्त, राय रामगुलाम, लाला भगवानदीन, रामचरित उपाध्याय, उदयशंकर भट्ट, भगवतीचरण वर्मा, नरेन्द्र शर्मा, सोहनलाल द्विवेदी, गुरुभक्तसिंह, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', डा0 पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश', सत्यदेव परिव्राजक, गोपालसिंह नेपाली, डा0 हरिशंकर शर्मा 'कविरत्न', क्षेमचन्द्र 'सुमन', डा0 शम्भुनाथ सिंह, बीरबलसिंह 'रंग', वीरेन्द्र मिश्र, सोम ठाकुर, माधवीलता नौटियाल आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके सरस गीतों में लावनी छंदों के लावण्य ने समाकर गतिशील जीवन के अनन्त सौन्दर्य को, दिव्य समृद्ध कल्पना को और उर्वरक प्रतिभा को जीवन्त एवं आकर्षक बनाया है। 'अकविता' लिखने वालों को छोड़ कर

---

1. 22 मई 1978 को रंग-भवन, बम्बई में आयोजित कवि सम्मेलन में पठित।

आधुनिक कवियों के काव्य में लावनी का प्रेम किसी न किसी रूप में अवश्य झलकता है। वस्तुतः हिन्दी खड़ीबोली या नागरी के गीतिकाव्य की सम्पूर्ण प्रक्रिया लावनी की रचनाशैली और शिल्प से प्रभावित है। अतएव लावनी के अजस्र अनिन्ध सौन्दर्य को, उसकी प्रभुसत्ता को नागरिक विचारकों द्वारा नकारा नहीं जा सकता है।

जन-साहित्यिक अभिव्यक्ति के विभिन्न क्षेत्रों पर लावनी का प्रभाव

लावनी एक प्रतिस्पर्द्धात्मक गायनकला भी है और एक प्रकार का छंद भी है।

जिस प्रकार - 'गुलिस्ताँ में मुख्यतया तेरह प्रकार के छंदों का प्रयोग हुआ है।..... ये छंद उर्दू साहित्य और लोकगीतों तथा सांगों के माध्यम से हिन्दी साहित्य में प्रवेश पा चुके हैं।'[1] उसी प्रकार लावनी का प्रभाव भी जनसाहित्यिक अभिव्यक्ति के विभिन्न क्षेत्रों तमाशा, पोवाड़ा, ग़ज़ल, रेख़ता, कजली, विरहा, रामलीला, रास, भगत, स्वांग, नौटंकी, खेल, भजन, लोकगीत, लोकनाट्य और सिनेमा आदि पर पड़ा है। लावनी की कुछ निजी विशेषताएं लोककाव्य के सभी क्षेत्रों में अपना वर्चस्व क़ायम किये हुए हैं। हिन्दी के अतिरिक्त अन्य भाषाओं में भी लावनी को किसी न किसी रूप में अपनाये जाने के मूल में उसकी सार्वभौमिक लयात्मकता है। उदाहरणार्थ -

'उठो हिन्द वालों सबेरा हुआ है ।
तुम्हें अब भी आलस ने घेरा हुआ है ।।'[2]

इसे अरबी फ़ारसी वाले लय या छंद के आधार पर 'बहरे मुतक़ारिब' कहते हैं जिसकी तक़्ती है -

'फ़ऊलन् फ़ऊलन् फ़ऊलन् फ़ऊलन्'

और पाश्चात्य संगीतज्ञ इसे तबले से निकलने वाला संगीत का ड्रम -

'ट्रलाला ट्रलाला ट्रलाला ट्रलाला'

बताते हैं। एवं संस्कृत के विद्वान् इसे चार **यगण** वाला वृत्त **भुजंग प्रयात** - **'भुजंगप्रयातं चतुर्भिर्यकारैः'** प्रतिपादित करते हैं। बहरहाल उक्त सभी में लय की एकरूपता है।

---

1. आचार्य धर्मेन्द्रनाथ, गुलिस्ताने सादी, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 563
2. स्वामी नारायणानन्द सरस्वती, प्रताप, 26 जनवरी, 1953 ई.

तमाशा और लावनी -

महाराष्ट्र में जन-मन-रंजन का प्रमुख साधन **'तमाशा'** है। इसका शब्दार्थ है - मनोरंजक दृश्य, और ये मनोरंजक दृश्य और किसी के नहीं, लावनी के ही हैं।

'सुन्दर रंगभरे मराठी 'तमाशा' का मूल नामाभिधान 'खेल' अथवा 'खेल गम्मत' यानी मौज-मजा है। आज भी महाराष्ट्र के ग्रामीण अंचलों में 'तमाशा' के लिए 'खेल-गम्मत' शब्द ही अधिक चलता है। मध्ययुग में मुगलों के महाराष्ट्र में प्रवेश के साथ-साथ 'खेल-गम्मत' का परिवर्तन शायद 'तमाशा' में हुआ होगा। मनमोहन मराठी 'तमाशा' की प्रमुख अंग है - लावणी ।'[1]

'मराठा राज के अन्तिम चरण में समाज में विलासिता बढ़ गई थी। उस समय आखिरी पेशवा बाजीराव (दूसरा) के दरबार में तमाशा का प्रवेश हुआ । जगह-जगह नाच-रंग, लावणी जलसे ज़ोरों पर थे। अपने प्रसिद्ध नाटक **'घासीराम कोतवाल'** में विजय तेन्दुलकर ने इसी स्थिति को प्रस्तुत किया है।'[2]

वास्तविकता यह है कि 'लावनी' ही 'तमाशा' का प्राण है।

पोवाड़ा और लावनी -

'पोवाड़ा' और 'लावनी' को सहोदर भाई-बहन माना जा सकता है। दोनों की उत्पत्ति महाराष्ट्र में हुई। पोवाड़ा या पंवाड़ा वीर रस का गीत है, और लावनी शृंगार रस की गीतिका है। महाराष्ट्र के अतिरिक्त गुजरात प्रान्त में भी इसका प्रचार है, वहाँ रहने वाले श्रीहरि वल्लभ 'हरिबाला' ने जसवन्त राव सवाई का पंवाड़ा सन् 1805 ई. में लिखा था, यह गुजरात में बहुत प्रसिद्ध है, इसका एक चौक प्रस्तुत है -

'सवाई जसवंत राउ बहादुर, सवाई डंका बजा दिया ।
मन्द सहर से मारा फिरंगी जा जमना के पार किया ।।
मन्द सहर से कूंच किया जब, सैंन चली महा जंगी की ।
जमना नदी आये उतर कर, तब गांठ पड़ी फिरंगी की ।।
मुकद्दरे का पकड़ा रास्ता, भाजी फौज फिरंगी की ।।
उजाड़ खेड़ा वाँ एक नाला, रसबन गोरों पर भंगी की ।।
महाराज का सिपाही बंदू खूब करी बीने नकसेरी ।
जा कर मारे रसबन गोले, टोपी पानी में गिरती ।।[3]

---

1. डा. इन्द्र पवार, तमाशा और लावणी, धर्मयुग, 5 नवम्बर 1978, पृष्ठ 3।
2. वसन्त माने, एक रंगीन लोकनाट्य तमाशा, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 6 मार्च, 1977, पृष्ठ 8
3. श्री जवाहरलाल चतुर्वेदी, गुजरात के व्रजभाषी शुक पिक, पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ 439

ग़ज़ल और लावनी -

'उत्तरी भारत में दिल्ली के आस-पास खड़ीबोली का उर्दू रूप अमीर खुसरो से पहले प्रचलित हो चुका था, और इसकी एकाध रचनाएं कहीं-कहीं मिल जाती थीं।'[1]

खुसरो ने बहरे शकिस्ता में जो ग़ज़ल लिखने की नींव डाली तो आने वाले सभी शायर उसी पर भावभिन्ति का निर्माण करते रहे। लावनी की लय में ग़ज़लगो शायरों में नवाब मिर्जाखां 'दाग़' (1831 ई.), रामप्रसाद खोसला 'नाशाद' (1881 ई.) आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। 'दाग़' के समकालीन, लखनऊ निवासी 'अमीर' ने भी 'बहरे शिकस्ता' में कुछ ग़ज़लें लिखी हैं, इस तरह की एक ग़ज़ल के शेर को जस्टिस महमूद ने अपने फैसले में उद्धृत किया था, वह शेर यह है -

'क़रीब है यार रोज़े महशर, छिपेगा कुश्तों[2] का ख़ून क्यों कर ।
जो चुप रहेगी ज़ुबाने खंजर, लहू पुकारेगा आस्तीं का ।।'

'ख़ून के मुक़दमे में किसी निरपराध व्यक्ति को छोड़ते हुए और अपराधी को दण्ड देते हुए प्रयाग की हाईकोर्ट के सुप्रसिद्ध जज मिस्टर महमूद ने उक्त शेर को अपने फ़ैसले में लिखा था। उर्दू भाषा का यह पहला पद्य है, जो हाईकोर्ट के किसी फ़ैसले में उद्धृत हुआ है'[3]

रेख़्ता और लावनी -

'लगभग एक शताब्दी पूर्व उर्दू भाषा को ही 'रेख़्ता' कहा जाता था। यह उर्दू का आरम्भिक नाम है, ग़ज़ल अथवा अरबी-फ़ारसी मिश्रित हिन्दी के गाने को भी 'रेख़्ता' कहते हैं।'[4]

संवत् 1789 में नागरी दास ने रेख़्ता में **'पद मुक्तावली'** लिखी, इससे एक रेख़्ता प्रस्तुत है -

'अब विरह की अवाई, दिल पर परी है साजी ।
मुझको सलाह क्या है, मुसकिल है इश्क बाज़ी ।।
नैननि बेहुकमीन को बहुत रही समझाय ।
हाय इश्क आफत अबस, सिर पर डाल्यो आय ।।
अपने जान नसीयत किये, बहुत-बहुत दिन रैन ।
में अपनी सब करि थकी, अपने हुये न नैन ।।
अफसोस के भंवर में रक्खूँ सदा हिया जी ।
मुझको सलाह क्या है, मुसकिल है इश्क बाज़ी ।।'[5]

---

1. धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य, द्वितीय खण्ड, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 593
2. कुश्त = मार-धाड़
3. ज्वालादन्त शर्मा, महाकवि दाग़ और उनका काव्य, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ 43
4. द्रष्टव्य, बृहत् हिन्दी कोश, पृष्ठ 1141
5. नागरीदास, पदमुक्तावली (हस्तलिखित) केटालाग आफ मैन्यूस्क्रिप्ट्स, जयपुर के महाराजा का म्यूजियम, हिन्दी 13 (55)

इसमें टेक की पंक्तियों में 'मुजारे अ़मुसम्मन अख़रब' है। चौक में 'दोहे' रख कर 'उड़ान' में फिर 'मुजारे अमुसम्मन अख़रब' का प्रयोग किया गया है। लावनी में 'छंद-योजना' के अन्तर्गत 'बहर' का उल्लेख हो चुका है।

कजली और लावनी -

'पंडित बलदेव उपाध्याय के विचार में आजकल की 'कजली' प्राचीन लावनी की ही प्रतिनिधि है।'[1]

कजरी का उदाहरण -

'उरझि रही पिय के हिय कामिनि, गल हुमेल[2] लहरे ।
झोंका खाय कान में झूमक, झूलनी नथ थहरे ।।'

लावनी छंदशास्त्र के अनुसार इसमें 'रंगत नवेली' है।

विरहा और लावनी -

विरहा' अहीर जाति का गीत है, अवधी क्षेत्र में यह लोकगीत विरहप्रधान होने के कारण बहुत प्रिय है। उदाहरण-

'चमकत चली है गुजरिया, कैसे सपरी ।
गोरी मारे तिरछी नजरिया, कैसे सपरी ।।
शिर में बेंदी नैन में कजरा, कर में मेंहदी लगायो ।
केश बनाइन विविध भांति से, नागिन सो लहरायो ।।
फर फर उड़त थी चुंदरिया, कैसे सपरी ।'[3]

इसके 'चौक' का वजन लावनी की 'छोटी बहर खड़ी' से मिलता है।

रामलीला और लावनी -

'धौलपुर, भरतपुर में पिछले 50 वर्षों में रामलीला की एक विशिष्ट प्रणाली का विकास हुआ है, जिसमें तुलसीकृत चौपाइयों को अक्षुण्ण रखते हुए बीच की कड़ियों को विशिष्ट गीतों से जोड़ा गया है।..... इस विषिष्ट प्रणाली पर निश्चित ही नौटंकियों और राजस्थानी ख़यालों की गायकी का प्रभाव स्पष्ट है। इस रामलीला में लावनी के प्रकार में कालिंगड़ा तथा भैरवी की धुनों की विशेषता है। नौटंकियों के बहरे तबील के ढंग के छंदबद्ध गीत भी इस रामलीला में प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं।'[4]

---

1. शम्भुनाथ मिश्र, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 19 जुलाई, 1981, पृष्ठ 17
2. हुमेल = स्त्रियों के गले का एक गहना जो अशर्फियों, रुपयों या इस आकार के सोने-चांदी के नक्काशीदार टुकड़ों में कोढ़ा जोड़कर और उन्हें धागों में गूँथ कर पहनने योग्य बनाया जाता है।
3. नवीन बिरहा, पृष्ठ 12
4. देवीलाल सागर, लोक-कला निबन्धावली, भाग 4, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 45-46

रास एवं लावनी -

मथुरा-वृन्दावन में रासलीला की प्रमुखता है, इसे 'कृष्णलीला' भी कहते हैं। जयपुर के ज़िले के फुलेरा क्षेत्र में रासलीलाएं अब भी होती हैं, वहाँ - 'अब ये कलाकार 'रासलीला' शुरू करके थाली फिराते हैं और नथाराम के ख़याल शुरू कर देते हैं।'[1]

भगत एवं लावनी -

'भगत' के गीतों का सम्बन्ध देवी-भक्ति से बताया जाता है। 'भगवतीप्रसाद लिखित लोक-नाटक का नाम 'सज्जीपरी' था। भगवतीप्रसाद कलग़ी पार्टी के उस्ताद थे। इनकी प्रतिस्पर्द्धिनी एक अन्य पार्टी थी। उसका नाम था, तुर्रा 'पार्टी'। भगवतीप्रसाद का शासन सम्मान तुर्रा पार्टी को सह्य नहीं हुआ, उस पार्टी ने भी अंग्रेजों की प्रशंसा से पूर्ण धर्म निरपेक्ष एक लोकनाट्य का अभिनय किया। इस लोकनाट्य का नाम 'लालपरी' था। अंग्रेजी शासन ने तुर्रा पार्टी को भी उसके नाटक 'लालपरी' पर दस सहस्र रुपयों का पुरस्कार प्रदान किया ।

इस प्रकार रासलीला के स्थान पर 'भगत' नामक ये लोकनाट्य अधिक लोकप्रिय होते चले गये। इनका विषय लौकिक एवं शृंगार हास्य प्रधान रहता है। अतः इनके लिये 'भगत' के स्थान पर सांग अधिक प्रचलित हैं।'[2]

स्वांग और लावनी -

रामग़रीब चौबे ने आधुनिक 'स्वांग' की उत्पन्ति सहारनपुर निवासी अम्बाराम नामक गुजराती ब्राह्मण से सन् 1819 ई. के आसपास मानी है।[3] वैसे स्वांग रामलीला और रासलीला से पूर्व भी था, रसखान की यह पंक्ति - **'तेरे कहे सब स्वांग भरौंगी'** - साक्ष्य के लिए पर्याप्त है। इसमें अभिनेता पुरुष ही स्त्री अभिनेत्रियों का रूप धारण कर जनाना पार्ट अदा किया करते थे। इसीलिये इन्हें 'स्वांग' कहते हैं। 'कानपुर के लावनीकार कवि पं0 प्रतापनारायण मिश्र ने भी **'सांगीत शकुन्तला'** नामक संगीत अर्थात् सांग लिखा था, सम्भवतः यह अप्रकाशित ही है।'[4]

'हाथरस के स्वांग पेशेवर स्वांग हैं, जिन्हें नौटंकी भी कहा जाता है, नत्थामल के स्वांग विशेष प्रसिद्ध हैं। नत्थामल का स्वांग होता भी बड़ा अच्छा था। ये प्रकाशित हो चुके हैं। इनकी गठन दोहों, चौबोलों तथा अन्य चलते छंदों की है, जैसे बहरे तबील, कहरवा आदि की। आर.सी.टैंपल महोदय ने **'लीजेंड्स आव दि पंजाब'** में लिखा है कि मथुरा में नत्थामल की शैली ही विशेष प्रचलित है। ख्याल तथा भगत या स्वांग व्रजभाषा में नहीं, खड़ीबोली में होते हैं, पर ये व्रजभाषा से प्रभावित अवश्य होते हैं।'[5]

---

1. डा.सत्येन्द्र, लोक साहित्य विज्ञान, पृष्ठ 426
2. डा.लक्ष्मणसिंह, हाथरस के हिन्दी-सांगों का इतिहास और उनकी कला, अध्याय 2, लोकनाट्य की लोकप्रियता, 12-12-72को लेखक ने उक्त अप्रकाशित शोधप्रबन्ध से यह सूचना दी।
3. द्रष्टव्य, इण्डियन ऐंटिक्वेरी, जनवरी 1910 ई.
4. द्रष्टव्य, आधुनिक हिन्दी साहित्य, डा.लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, तृतीय संस्करण, पृष्ठ 239
5. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, डा.सत्येन्द्र, षोडश भाग, प्रथम संस्करण, खण्ड 3, व्रज अध्याय 3, पृष्ठ 386

हाथरस के अतिरिक्त स्वांग के क्षेत्र में निम्नलिखित लोककवि प्रसिद्ध हैं - सेदूसिंह (हापुड़), धीसा (भाटीपुर), फूलसिंह (नगला कबूलपुर), शंकरदास (जिठौली), साधु गंगादास (जिठौली), लटूरसिंह (मऊ खास), बुल्ली, बलवंत सिंह (भगवानपुर नांगल), पृथ्वीसिंह बेधड़क (शिकोहपुर), चन्द्रलाल भाट (टीकरी), नत्थू (मीरापुर - मुज़फ्फरनगर), नकली, मास्टर न्यादर्रसिंह 'बेचैन' (चन्दरबादी - दत्तनगर) एवं दीना, बुन्दूखां, तोफासिंह, रघुवीर, हुशियारा आदि ।

'रूपबसन्त' नामक सांग में बसन्त का कथन -

'है ख़ूब किया इन्साफ़ पिता जी न्यारा ।
मुझको है हुकुम मंजूर सभी ये थारा ।।
एक ये ही रहा अरमान पिता जी भारी ।
बिना ख़ता किये की चोट मेरे तन मारी ।।
मैं सेज न पिता मौसी की नज़र निहारी ।
बिन किये का मुझको पाप लगा है कारी ।।'

इसमें लावनी की रंगत छोटी प्रयुक्त हुई है। आगे की पंक्तियों में स्वांग लेखक ने अपने नाम की छाप दी है-

'अब कौन बचावेगा मुझ को शूली का हुक्म तूने दीना ।
बिना किये का पाप लगा कह 'इन्द्रा' क्या रब ने कीन्हा ।।'[1]

'जिन छंदों का अधिक प्रचलन है तथा जिनके सम्बन्ध में वे (स्वांगी) थोड़ा नियम और विधान का पालन करते हैं, वे हैं -

दोहा, चौबोला, चौपाई, कड़ा, दौड़, तोड़, लावनी, आल्हा, भूलना और खयाल । ..... तोड़ होली में लावनी की दो पंक्तियों के बाद तीसरी टेक से मिलाने के लिये रखी जाती है।'[2]

नौटंकी और लावनी -

'नौटंकी' एक तरह से पद्यमय नाटक है, इसकी रचना में लावनी, बहरे तबील, सोहनी, चोबोला, और दौड़ आदि लावनी काव्य के छंद बहुतायत से प्रयुक्त होते हैं।

'अगर कहा जाय कि नौटंकी के उद्‌भव और विकास को ख़यालबाजी ने ही कानपुर में प्रोत्साहन दिया तो ऐतिहासिक रूप से ग़लत न होगा।'[3]

कानपुर में श्रीकृष्ण पहलवान ने इस दिशा मे कई नाटिका लिखी हैं, और उन्हें 22 फर्वरी 1968 ई. को संगीत नाटक अकादमी का पुरस्कार तत्कालीन राष्ट्रपति डा0 जाकिर हुसैन द्वारा दिया गया था ।

---

1. इन्द्रा, स्वांगरूप – वसन्त का। **विशेष** – नत्थासिंह हाथरसी के गुरु का नाम इन्द्रमणि उर्फ **'इन्द्रा'** था।
2. श्रीकृष्ण चन्द्र शर्मा **'चन्द्र'**, कौरवी लोकसाहित्य, हिन्दी सा. का वृ.इति., 16वां भाग, पृष्ठ 507
3. ललितमोहन अवस्थी, कानपुर का लोकमंच, दैनिक जागरण, रजत जयन्ती अंक, पृष्ठ 139

पहलवान द्वारा लिखित 'संगीत नौटंकी शहज़ादी' में प्रयुक्त 'बहरे तबील' की दो पंक्तियां प्रस्तुत हैं -

'प्यार दिलदार में दार है पेश्तर, बाद दीदार है दिल को आराम है।
प्रीत सच्ची थी सूली से दुलहन मिली, इश्क़ सादिक़ की शुहरत हुइ आम है।।'[1]

वास्तव में - '..... ख़याल गायकी का उ0 प्र0 में भगत, स्वांग तथा नौटंकी लोकनाट्यों के गठन एवं विकास में अभूतपूर्व योगदान रहा है।'[2]

'नदी नारे न जाओ श्याम पइयां परूं' की गायिका, लोकनाट्य नौटंकी की मूर्धन्य प्रतिभा कानपुर की श्रीमती गुलाब बाई ने -

'..... 'लावनी' आदि पक्की धुनों को ही लोकगीतों का रंग दिया है।'[3]

खेल और लावनी -

'जन-साधारण में जो मध्यकाल में रास, चर्चरि, फागु आदि रमें व खेल खेले जाते थे, वही पीछे से रमत, खेल, ख्याल के रूप में प्रकट हुये ।'[4]

'यह 'ख्याल' सर्वप्रथम कल्पना और विचारों से उत्पन्न कवित्व रचना का ही दूसरा नाम था परन्तु जब से वह रंगमच पर खेल तमाशे का रूप धारण करने लगा, यह 'खेल' या 'ख्याल' कहलाया ।'[5]

उपर्युक्त दो सम्मतियों से प्रकट होता है कि राजस्थान में खेले जाने वाले 'खेल' लावनी के ही अन्तर्गत हैं।

'तेजा जी का मारवाड़ी खेल' में रंगत लावनी द्रष्टव्य है -

'दुनिया में मान की शान बड़ी है भाई ।
नहिं करवाणो अपमान ज़िन्दगी माँई ।।
यो मनुष जनम मुसकिल से जग में पायो ।
माता के गरभ से खाली हातां आयो ।।
नर झूठ कपट कर मुफ्तो माल बणायो ।
पइसा की खातिर झूठो हलफ उठायो ।।
धन धरो रहे तेरे साथ चले नहिं पाई ।
नहिं करवाणो अपमान ज़िन्दगी माँई ।'[6]

---

1. श्रीकृष्ण लाल पहलवान, संगीत नौटंकी शहज़ादी, अष्टम संस्करण, पृष्ठ 48
2. डा.कृष्णमोहन सक्सेना, धर्मयुग, 17 अक्टुबर 1982, पृष्ठ 7
3. एस.एन.मुंशी, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 28 मार्च, 1976, पृष्ठ 37
4. अगरचन्द नाहटा, ख्यालों की पूर्व परम्परा, लोककला, भाग 1, अंक 2, पृष्ठ 94
5. देवीदयाल सामर, राजस्थान के ख्याल, नट रंग, वर्ष 1, अंक 3, पृष्ठ 73
6. अम्बालाल अजमेर निवासी, प्रणवीर तेजा जी का मारवाडी खेल, संस्करण शून्य, पृष्ठ 2।

भजन और लावनी -

भजन प्रायः भगवान् या किसी देवता की स्तुति में रचित पद को कहते हैं। वैसे भजन धार्मिक, सामाजिक अथवा राजनीतिक आदि सभी विषयों पर लिखे जाते हैं। इनमें उपदेशात्मक साहित्य बहुत लिखा गया है, अतः उन्हें भजनोपदेश भी कहते हैं। लावनी के बहुत से छंद भजनों में उपदेशक-कवियों ने अपनाये हैं।

सम्प्रति आर्यसमाज में स्वामी भीष्म जी, घरौंडा ज़िला करनाल तथा कविरत्न प्रकाशचन्द्र जी, अजमेर और वीरेन्द्र वीर 'धनुर्धर' आदि लब्धप्रतिष्ठ भजनोपदेशक उल्लेखनीय हैं। यों सबसे अधिक भजनीक आर्यसमाज ने ही देश को प्रदान किये हैं। अन्य भजनीकों में महात्मा लटूर - मऊ, मेरठ, शंकरदास - जठौली, मेरठ, फूल सिंह - नगला, मेरठ आदि के नाम लिये जा सकते हैं। इनमें से भी कुछ स्वर्गवासी हो चुके हैं।

गीताप्रेस गोरखपुर ने 'भजन संग्रह' कई भागों में प्रकाशित किये हैं, अब तक जिनकी 25 से भी अधिक आवृत्ति हो चुकी हैं।

प्रस्तुत है लावनी धुन, लावनी-ताल कहरवा -

'इधर उधर क्यों भटक रहा मन-भ्रमर, भ्रान्त उद्देश्य विहीन ।
क्यों अमूल्य अवसर जीवन का, व्यर्थ खो रहा तू मतिहीन ।।'[1]

'बहरे शकिस्ता' भी भजनों में बहुत अपनाई गई है -

'न धन कमाने में पाप होता, न धन का संग्रह ही पाप रे नर ।
किये जो पौरुष दो हाथ वाले, सौ हाथ वाला मनुष्य बन कर ।।'[2]

भजनों में अध्यात्मपरक लावनियाँ भी लिखी गई हैं -

'पहिले जो अपना नामो निशां मिटावे ।
फिर उसको पूरण ब्रह्म साफ दिखलावे ।।'[3]

लोकगीत और लावनी -

'ग्रामीण कवि पिंगल ज्ञान से शून्य होते हैं। उन्हें वर्णिक एवं मात्रिक छंदों का ध्यान नहीं रहता। वे तो 'स्वान्तःसुखाय' अपने निष्कपट भावों को राग का रूप दे देते हैं चाहे वह सदोष ही क्यों न हो। परन्तु जिन्होंने इन गीतों को सुना है उन्हें कभी भी इनमें गति भंग या यति भंग दोष नहीं मालूम पड़ा। फिर भी यदि इन्हें छंद भाषा में कहना चाहें तो **'ध्वन्यात्मक छंद'** कह सकते हैं। इसी लिए पं0 रामनरेश त्रिपाठी ने अपनी सटीक मीमांसा देते हुए कहा है कि -

"इनमें छंद नहीं, केवल लय है। इस लयांश के ही कारण ये लोक-गीत बड़े श्रुति-मधुर हैं।'[4]

1· भजन-संग्रह, भाग 5, 23वां संस्करण, पृष्ठ 64
2· रामनिवास विद्यार्थी, ऋचाओं की छाया में, प्र·सं·, पृष्ठ 94
3· निर्भयराम, निर्णय विलास, संस्करण शून्य, पृष्ठ 26
4·द्र·डा·शंकरदयाल यादव, हरियाना प्रदेश का लोकसाहित्य, पृ·336

प्रत्येक प्रान्त के निवासी अपनी-अपनी मातृभाषा में मस्ती में भर कर जो गुनगुनाया करते हैं, वही लोकगीत हैं। ऐसे गीतों के रचयिता स्त्री-पुरुष दोनों ही होते हैं। विवाह-शादी आदि शुभ-अवसरों पर स्त्रियाँ समयानुरूप बड़े भावपूर्ण गीत जोड़ लेती हैं, इनमें प्रकृत काव्य-शक्ति छिपी हुई है। 'भात' लेने के समय जहां पश्चिमांचल की नारियां अपने समर्थ भइया से विभिन्न वस्त्राभूषण की फरमाइश करती हैं, तो वहीं अपने असमर्थ भइया से भाव-विभोर होकर यह भी कहती हैं-

'थोड़े में क्या हर्जा है, नहीं किसी का कर्जा है,
आजा रे हरियाले भइया, तेरा इन्तज़ार है ।'

'गांव का गायक स्वरकार ही नहीं शब्दकार भी है। ख्याल, होली, रसिया, भजन, जिकड़ी आदि न जाने कितने रागों के गीत वह प्रतिवर्ष नयेनये बनाया करता है।'[1]

व्रज प्रदेश में लोकगीत के रूप में गाई जाने वाली अत्यन्त प्रसिद्ध यह लावनी प्रस्तुत है-

'बनि गये नन्द लाल लिलहार
कि लीला गुंदवाइ लेउ प्यारी ।
लेहंगा पहरि ओढ़ि सिर सारी,
अंगिया पैहरी जरद किनारी,
सीस पै सीसफूल, बैंना,
लगाइ लियो काजर दोऊ नैंना,
पैहरि लियो नख शिख से गहना ।
बलिहारी वा कृष्ण की, आप बने लिलहार ।
सीस लिखो गिरिधारि रे, माथे मोहन मुरार ।।
लिखो तुम दृग पै दीन दयाल,
कपोलन पै श्रीकृष्ण गुपाल,
नासिका पै लिख दै नंदलाल,
स्रवनन पै लिख सांमरो, अरध नारि निज कन्त ।
ठोड़ी पै ठाकुर लिखो, गल में गोकुल चन्द ।।
लिखो यदि छतियन पै छैला,
लिखो बांहन पै बिहारी ।
बनि गये नन्द लाल लिलहार,
कि लीला गुंदवाइ लेउ प्यारी ।।'

---

1. सत्येन्द्र, व्रज का लोकसाहित्य, पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ 905

लोकनाट्य और लावनी -

'लोकगीत एक व्यक्ति की प्रतिभा की उपज है, जो बाद में अनेक सामाजिक प्रतिभाओं के सम्मिश्रण से लोकगीतों का दर्जा प्राप्त करता है, परन्तु नाट्य प्रारम्भ से ही किसी भी व्यक्तिविशेष की उपज नहीं हो सकता, उसका प्रारम्भ ही सामाजिक प्रतिभा की उपज है, गीत की तरह उसकी उत्पत्ति व्यक्ति से नहीं होकर समष्टि से होती है।'[1]

रामलीला और रासलीला आदि लोकनाट्य के रूप में ही पहले प्रकट हुये होंगे, बाद में उनकी अभिनय, रचनाविधि, प्रस्तुतीकरण, गायन, नर्तन तथा रंगमंचीय प्रकटीकरण की शैली आदि सब लोक में रूढ़ हो गई होगी ।

लोकनाट्य शैली विकसित होकर व्यक्तिगत लेखकों द्वारा अपना ली गई ।

'लोकनाट्यों के प्रस्तुतीकरण की कला में राजस्थान का 'तुर्रा-कलग़ी' विशेष उल्लेखनीय है।'[2]

उत्तर प्रदेश में बीसवीं सदी के आरम्भ में पारसी थियेटर्स के नाटकों एवं सिनेमा के दृश्यों से प्रभावित होकर लोकनाट्यकारों ने अपने नाटकों में विस्मयकारी दृश्यों की परिकल्पना की, साथही उस समय प्रचलित लावनी की मधुर लय पर नाट्यगीतों की भी सृष्टि की। ऐसे रचयिताओं में पं0 नारायणप्रसाद 'बेताब' और पं0 राधेश्याम कथावाचक प्रमुख हैं, इन दोनों की रचनाओं का जन-मानस पर गहरा प्रभाव पड़ा था।

पं0 नारायणप्रसाद 'बेताब' ने अनेक ऐतिहासिक नाटक लिखे हैं। रंगमंच की दृष्टि से पारसी नाटक कम्पनियों में खेले जाने योग्य हिन्दी भाषा प्रधान नाटकों में नारायणप्रसाद 'बेताब' का 'महाभारत' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन्होंने 'बहरे शिकस्ता' आदि अनेक लावणी छंदों को अपनाया है। यह छंद:शास्त्र के प्रकाण्ड विज्ञाता थे। भाषा के स्वरूप के सम्बन्ध में इनका मत है-

'न खालिस उर्दू न ठेठ हिन्दी ज़बान गोया मिली-जुली हो ।
अलग रहे दूध से न मिसरी, डली-डली दूध में घुली हो ।।'

'बेताब ने सबसे पहले नाटकों की भाषा में परिवर्तन किया। अब तक पारसी नाटकों की भाषा उर्दू होती थी और उनमें गाने ग़ज़ल और थियेटर तर्ज़ के होते थे । 'बेताब' ने सरल हिन्दुस्तानी का प्रयोग किया और गाने सब हिन्दी में लिखे । इस प्रकार उनकी भाषा अधिक कर्णप्रिय होगई।'[3]

---

1. देवीदयाल सामर, लोककला निबन्धावली, भाग 4, संस्करण प्रथम, पृष्ठ 1-2
2. वही, पृष्ठ 2।
3. डा० श्रीकृष्ण लाल, आ०हि०सा० का विकास, तृतीय संस्करण, पृष्ठ 210

पं0 राधेश्याम कथावाचक बरेली के रहने वाले थे। कीर्तन कलानिधि, काव्यकला भूषण और कविरत्न इनकी उपाधियाँ थी। इनकी 'रामायण' आम जनता में काफ़ी प्रसिद्ध हुई, जिसका श्रेय लावनी की जनप्रिय रंगत 'तबील मुखफ्फा' को है, इन्होंने बहुत से पौराणिक नाटक भी लिखे हैं, जिनका उद्देश्य धर्मोपदेश और देशोन्नति रहता था। सन् 1927 में इन्होंने 'मशरिक़ी हूर' नामक नाटक लिखा, जिसमें उर्दू ज़बान के अलफ़ाज़ बहुतायत से प्रयुक्त हुये हैं, उसके कुछ गीत 'बहरे शिकस्ता' में लिखे गये हैं। उनके इस उर्दू-मोह पर, कानपुर के 'वर्तमान' में 'मनसुखा' की यह चुटकी कि - 'पं0 राधेश्याम हिन्दी नाटक लिखते-लिखते उर्दू की तरफ़ क्यों झुक पड़े, यह उल्टे बांस बरेली क्यों?'[1] बड़ी कटीली थी। 'मशरिक़ी हूर' से कुछ पंक्तियां यहाँ प्रस्तुत हैं -

'ख़ुदा ने जब बाज़ुओं को ताक़त, जिगर को दम ख़म अता किया है ।
तो उसने लुत्फ़ो करम के जज्बे से दिल का प्याला भी भर दिया है ।।
जहां है कांटा वहीं है गुल भी, जहां ख़ता है वहीं अता है ।
अदू का सर काटने के बदले, मुआफ़ करना बहुत बड़ा है ।।'

सिनेमा और लावनी -

सिनेमा जन साहित्यिक अभिव्यक्ति का सबसे अधिक समर्थ साधन है। वर्तमान काल में मानों समस्त ललित कलाएं सिमट कर उसी में समाविष्ट हो गई है। अब साहित्य, संगीत या अन्य लोक-कला या लोक-नाट्य सिनेमा के समान प्रभावशाली नहीं रहे। इसलिये -

'आजकल तमाशा लावणीवालों में अच्छे लावणीकारों का अभाव है, ... से सब के सब आजकल मराठी चित्रपटों में चले गये हैं ।'[2]

हिन्दी के बहुत से समर्थ कवि सिने-संसार में चले गये, परन्तु हिन्दी अथवा उर्दू के ये कवि और शायर 'लावनी' के लावण्य को उस सौन्दर्य-नगरी में पहुच कर भी भुला नहीं सके और अपने गीतों के लेखन में प्रायः उन्होंने 'लावनी' के छंदों को ही अपनाया, जिन्हें स्वर-साम्राज्ञी लता मंगेशकर जैसी गायिका ने नई-नई तर्ज प्रदान कर लोक-प्रियता प्रदान की । ख़ासतौर से 'बहरे शकिस्ता' में बहुत से सिने-गीत लिखे गये। कुछ फिल्मों से उदाहरण प्रस्तुत हैं -

'तुम्हीं हो माता पिता तुम्हीं हो, तुम्हीं हो बन्धू सखा तुम्हीं हो ।
तुम्हीं हो साथी तुम्हीं सहारे, कोई न अपना सिवा तुम्हारे ।
तुम्हीं हो नैया तुम्हीं खिवैया, तुम्हीं हो बन्धू सखा तुम्हीं हो ।
जो खिल सके ना वो फूल हम हैं, तुम्हारे चरणों की धूल हम हैं ।
दया की दृष्टी सदा ही रखना, तुम्हीं हो बन्धू सखा तुम्हीं हो ।।'[3]

---

1. राधेश्याम (अर्ज़े हाल) मशरिकी हूर, प्रथम सं0, पृष्ठ (क); **नोट** - यह नाटक 'दि न्यू अल्फ्रेड नाटक कम्पनी' बम्बई की अनुमति से 'राधेश्याम पुस्तकालय' बरेली, द्वारा सन् 1927 में प्रथम बार प्रकाशित हुआ था ।
2. डा.इन्द्र पवार, तमाशा और लावणी, धर्मयुग, 5 नवम्बर, 1978, पृष्ठ 33
3. फिल्म - **'मैं चुप रहूँगी'** ।

उक्त पद्य में यद्यपि ह्रस्व का दीर्घ और दीर्घ का ह्रस्व कर पढ़ना पड़ रहा है, परन्तु छंद-भंग कहीं नहीं। समर्पण के माधुर्य के कारण यह गीत काफी प्रचलित हुआ ।

'किसी के हिस्से में प्यास आई, किसी के हिस्से में जाम आया ।
नसीब में जिसके जो लिखा था, वो तेरी महफ़िल में काम आया ।।
मैं यक फ़साना हूँ बेबसी का, ये हाल है मेरी ज़िन्दगी का ।
न हुस्न ही मुझको रास आया, न इश्क ही मेरे काम आया ।।
बदल गई तेरी मंज़िलें भी, बिछड़ गया मैं भी कारवां से ।
तेरी मुहब्बत के रास्ते में, न जाने ये क्या मकाम आया ।
तुझे भुलाने की कोशिशें भी, तमाम नाकाम हो गई हैं ।
किसी ने ज़िक्रे वफ़ा किया तो, ज़बां पै तेरा ही नाम आया ।।'[1]

इसी प्रकार एक सिने ग़ज़ल का एक शेर है -

'जो मुझसे अंखिया चुरा रहे हो, तो मेरी इतनी अरज भी सुनना ।
तुम्हारे चरणों में आ गई हूँ, यहीं जियूँगी यहीं मरूँगी ।।'[2]

इसी प्रकार **रेडियो** पर भी **'लावनी'** की ये धुनें यदा-कदा सुनाई पड़ जाती हैं -

'नई फ़िज़ा में नये सिरे से, हम अपना गुलशन सजा रहे हैं ।
फ़लक की जन्नत है किसने देखी, ज़मीं को जन्नत बना रहे हैं ।।'[3]

इस विवेचन से सिद्ध होता है कि जन साहित्यिक अभिव्यक्ति के जितने भी प्रमुख क्षेत्र हैं, उन सभी पर लावनी का अमिट प्रभाव किसी न किसी रूप में विद्यमान है ।

---

1. शकील बदायुंनी, फिल्म - **'दो बदन'** ।
2. फिल्म - **'साहब, बीबी और गुलाम'** ।
3. प्रेम धवन, गायिका मीना कपूर, आल इण्डिया रेडियो दिल्ली, दिनांक 27-9-1974, प्रसारण समय प्रातः 7.45

उपसंहार

'लावनी' गाना महाराष्ट्र से उन्तर प्रदेश में आया, अतएव यहाँ 'मरैठी' नाम से भी अभिहित किया जाता है। राजस्थान में यह 'ख़याल' या 'खेल' कहलाते हैं। यद्यपि लावनी में काव्य के सभी तन्त्व विद्यमान हैं तो भी हिन्दी साहित्य के पूर्व मनीषियों, सुधी समीक्षकों अथवा प्रख्यात इतिहास-विदों ने इस ओर कभी दृष्टिपात नहीं किया। शोध के उच्च आयामों पर आधारित कार्य का भी प्रायः अभाव ही रहा। सबसे प्रथम सन् 1953 ई. में गुरुवर श्री स्वामी नारायणानन्द सरस्वती ने **'लावनी का इतिहास'** लिख कर इस ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया था । इस ग्रन्थ में लावनी-विज्ञान बीज रूप से स्थित है।

वैसे तो 'लावनी' एक छंद विशेष है, परन्तु प्रतियोगी गीतिका के रूप में यह लोक में रूढ़ है। इसके लेखन की निजी प्रक्रिया है, जिसमें टेक, चौक, उड़ान, और मिलान की परम्परा है। चंग इसका अंगी वाद्य है। अब से लगभग 250 वर्ष पूर्व तुकनगिरि से **'तुर्रा'** और शाहअली से **'कलग़ी'** पक्ष का प्रवर्तन हुआ। तुर्रा **'शिव'** का और कलग़ी **'शक्ति'** की प्रतीक है।

लावनी रहस्य और शृंगार की संवाहिका है। इसका उद्भव और विकास भारतीय परिवेश में हुआ है। लावनी से सम्बन्धित छोटी और बड़ी लगभग 300 पुस्तकें अब तक प्रकाशित हो चुकी हैं। हिन्दी साहित्य के प्रमुख संस्थान काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा लावनी काव्य की 26 और हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा इस सम्बन्ध की 15 पुस्तकें खोजी गई हैं, जोकि इनके संग्रहालयों में सुरक्षित हैं। कुछ हस्तलिखित सामग्री जहाँ-तहाँ लावनीकारों या लावनी-प्रेमियों के पास भी सुरक्षित है। इसी उपलब्ध समस्त सामग्री के आधार पर इस शोध-प्रबन्ध में हिन्दी लावनी साहित्य का इतिहासमूलक कालविभाजन किया गया है, जो इस दिशा में प्रथम प्रयास है। लावनी के विभिन्न अखाड़े हैं, विभिन्न आचार्य हैं, विभिन्न गायक हैं। गाने के कुछ ख़ास नियम हैं, प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं, प्रमुख शैलियाँ हैं । इन सबके स्वरूप पर अन्तःसाक्ष्य और बाह्य साक्ष्य के आधार पर विचार करते हुए अन्य प्रान्तीय भाषाओं में भी लावनी-लेखन के प्रचलन पर नाममात्र को प्रकाश डाला गया है।

कानपुर का लावनी साहित्य अब से लगभग 200 वर्ष पूर्व से प्राप्त है। तुर्रा और कलग़ी दोनों ही पक्षों के लावनीकार वहां हुए हैं, उन्होंने हिन्दी और उर्दू दोनों ही भाषाओं में रचनाएं की हैं। वहां के धनी-मानी तथा प्रसिद्ध कवियों ने भी लावनियाँ लिखी हैं। इस प्रकार कानपुर के लगभग 80-90 लावनीकारों का तथा भारतभर के प्रमुख लावनीकारों का साहित्यिक परिचय सोदाहरण प्रस्तुत किया गया है। इन सभी कवियों के काव्य के विषय और उपादान प्रेम और भक्ति मुख्य रूप से रहे हैं, जहा लावनी काव्य की भाषा हिन्दी-उर्दू मिश्रित खड़ीबोली रही, वहीं हिन्दू और मुसलमान दोनों ही उसके दंगलों में परस्पर प्रेमपूर्वक सम्मिलित होते रहे।

लावनी में व्यवहृत भाषा ने ही खड़ीबोली हिन्दी को परिष्कृत स्वरूप प्रदान किया है। इसका सशक्त शब्द-सगठन, विशिष्ट पद-रचना रीति एवं गुणगत रमणीयता श्लाघ्य है। संस्कृत और हिन्दी के अतिरिक्त इसके कुछ अपने छंद और अपने अलंकार हैं, जोकि लावनी काव्य को शिष्ट साहित्य का पद प्रदान करने में सक्षम हैं।

जन-साहित्य की अभिव्यक्ति के सभी क्षेत्रों पर प्रायश: लावनी का प्रत्यक्ष प्रभाव परिलक्षित होता है ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध से निम्नांकित प्रस्थापनाएँ हुई हैं -

1- 'लावनी' का उद्भव फ़ारसी या उर्दू-अदब से नहीं अपितु संस्कृत-हिन्दी भाषा के साहित्य से ही हुआ है, इसका सम्पूर्ण कलात्मक तथा भावात्मक परिवेश स्वकीय है, परकीय नहीं।

2- लावनी केवल लोक-साहित्य ही नहीं, उसे साहित्यशास्त्र की कसौटी पर कस कर शिष्ट साहित्य भी सिद्ध किया है। इस अध्ययन से सैकड़ों विशिष्ट लावनीकार कवियों की कोटि में प्रतिष्ठित हो सकेंगे।

3- खड़ीबोली हिन्दी का विकास लावनी-काव्य से ही हुआ है, यही कारण है कि खड़ीबोली हिन्दी के सभी श्रेष्ठ कवियों भारतेन्दु तथा प्रतापनारायण मिश्र आदि की काव्य-साधना या तो लावनी-काव्य से आरम्भ हुई है, या उन्होंने युग के प्रभाव से लावनियाँ अवश्य लिखी हैं। किसी भी दशा में कोई कवि लावनी के लावण्य-सिन्धु में मग्न हुये बिना रह नहीं सका। आज भी हिन्दी के गीतों में लावनी-शैली का प्रभाव परिलक्षित है।

4- जन-साहित्य की अभिव्यक्ति के विभिन्न क्षेत्र - तमाशा, पोवाड़ा, ग़ज़ल, रेख़्ता, कजली, विरहा, रामलीला, कृष्णलीला, भगत, स्वांग, नौटंकी, खेल, भजन, लोकगीत, लोकनाट्य, सिनेमा और रेडियो आदि सभी के गीतों पर लावनी की सार्वभौम लय का साम्राज्य प्रदर्शित किया गया है। इससे भविष्य में शोधार्थियों का लावनी के विभिन्न पक्षों पर शोध करने का पथ तो प्रशस्त होगा ही, साथ ही निर्दिष्ट आलोचनात्मक नवीन मानदण्डों द्वारा हिन्दी साहित्य के इतिहास का पुनर्मूल्यांकन भी हो सकेगा।

आशा की जाती है कि वर्तमान लावनीकार अपने लेखन को तो यथापूर्व बनाये ही रखेंगे, परन्तु गायन-कला भविष्य में जीवित भी रह सकेगी या नहीं, इसमें सन्देह है।

....

परिशिष्ट : - I

सहायक ग्रन्थ सूची - हिन्दी-ग्रन्थ

क्र.	पुस्तक	लेखक	संस्करण	प्रकाशक
01.	अकबरी दरबार के हिन्दी कवि	डा. सरयूप्रसाद अग्रवाल	सं. 2007 वि. (1950 ई.)	लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।
02.	अनुसन्धान की प्रक्रिया	हजारीप्रसाद द्विवेदी विजयेन्द्र स्नातक	1969 ई.	नेशनल पब्लिशिंग हाऊस दिल्ली।
03.	अर्चना	निराला	प्रथम, 1950 ई.	निरूपमा प्रकाशन, 50 शहरारा बाग, प्रयाग, तथा कला मान्दिर, दारागंज, प्रयाग।
04.	अवध के प्रमुख कवि	डा. ब्रजकिशोर मिश्र	प्रथम	लखनऊ वि. वि., लखनऊ।
05.	आचार्य सनेही अभिनन्दन ग्रंथ	छैलबिहारी दीक्षित 'कंटक'	प्रथम, 1964	नगर महापालिका, कानपुर।
06.	आधुनिक कवि	डा. रामकुमार वर्मा	द्वितीय, 2003 वि.	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।
07.	आधुनिक कवि (1)	महादेवी वर्मा	दशम, 1967	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।
08.	आधुनिक हिन्दी काव्य में छंद योजना	डा. पुत्तूलाल शुक्ल	सम्वत् 2014 विक्रमी	लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।
09.	आधुनिक हिन्दी काव्य में रूप विधाएं	डा. निर्मला जैन	प्रथम, 1963	नेशनल पब्लिशिंग हाऊस दिल्ली।
10.	आधुनिक हिन्दी साहित्य	डा. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय	तृतीय 1954	हिन्दी परिषद्, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी।
11.	आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास	डा. श्री कृष्णलाल	तृतीय 1952	हिन्दी परिषद्, विश्व विद्यालय, प्रयाग।
12.	उर्मिला	बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'	प्रथम, 1958	कपूर एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली।
13.	उज्ज्वल नीलमणि	रूप गोस्वामी	-	-
14.	ऋचाओं की छाया में	रामनिवास विद्यार्थी	प्रथम, 1971	विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
15.	एक घूँट (एकांकी नाटक)	जयशंकर 'प्रसाद'	-	-
16.	कबीर वचनावली	सं0 अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'	द्वितीय	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

क्र.	पुस्तक	लेखक	संस्करण	प्रकाशक
17.	करौली क्षेत्र का ख्याल साहित्य	कल्याणप्रसाद वर्मा	1972 ई.	अनुसन्धान • विभाग, भारतीय लोक कला मंडल, उदयपुर।
18.	कलियुग लीला	श्यामलाल अग्रवाल	चतुर्थ, 1912	लक्ष्मीनारायण प्रेस, मुरादाबाद
19.	कविता कौमुदी (भाग 1 व 5)	रामनरेश त्रिपाठी	द्वितीय, 1975	साहित्य भवन, प्रयाग ।
20.	कवियों में सौम्य संत (कुछ पत्र)	सुमित्रानन्दन पंत	-	
21.	काल का चक्र	लक्ष्मीप्रसाद 'रमा'	प्रथम, 1921	हितचिन्तक प्रेस, रामघाट, मुरादाबाद।
22.	काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध	जयशंकर 'प्रसाद'	प्रथम	भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद।
23.	काव्य के रूप	गुलाबराय	षष्ठ, 1967	प्रतिभा प्रकाशन, 206 हैदर कुली, दिल्ली।
24.	काव्यधारा : एक समीक्षा	वासुदेव शर्मा	प्रथम,	भारत प्रकाशन, सुभाषबाजार मेरठ।
25.	काव्यरूपों के मूलस्रोत और उनका विकास	डा. शकुन्तला दूबे	प्रथम,	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय सी 21/30, पिशाच मोचन, वाराणसी।
26.	कुणाल	सत्यव्रत शर्मा 'अजेय'	प्रथम, 1982	राज्यश्री प्रकाशन, मथुरा ।
27.	कुरुक्षेत्र	रामधारी सिंह 'दिनकर'	चतुर्थ, 1952	उदयाचल, पटना ।
28.	ख्याल चौबीसा	पं0 सुखलाल वर्मा	द्वितीय, 1896	मुंशी इब्राहिम खां का छापाखाना, दिल्ली ।
29.	ख्याल दीदार दर्पण	चौ0 शंकरसिंह खचैड़ू खां	-	जवाहर बुक डिपो, मेरठ।
30.	ख्याल रत्नावली (प्रथम भाग)	पं0 रूपकिशोर	1915	दि कोरोनेशन प्रेस, शीतला गली, आगरा ।
31.	ख्याल राजा केसर सिंह	-	-	फूलचन्द बुकसेलर, पुरानी मण्डी, अजमेर ।
32.	गद्य काव्य संकलन	शम्भुनाथ सिंह	नवम	कल्याणदास एण्ड ब्रदर्स, ज्ञानवापी, वाराणसी ।
33.	गांधी विचारधारा का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव	डा0 अरविन्द जोशी,	प्रथम	जवाहर पुस्तकालय, मथुरा।
34.	गुलजार सखुन तुर्रा (भाग 1-4)	सुखलाल	द्वितीय, 1932	ला0 नारायणदास जंगलीमल बुकसेलर, दरीबां कला, दिल्ली।
35.	गुलिस्ताने सादी	सं0 आचार्य धर्मेन्द्रनाथ	प्रथम, 1971	इण्डियन इन्स्टिट्यूट आफ लैंग्वेज, फिल्म कालोनी जयपुर-3

क्र.	पुस्तक	लेखक	संस्करण	प्रकाशक
36.	गो अष्टक विलाप लावनी (भाग 1)	बाबू आनन्दीप्रसाद वर्मा	प्रथम 1891	शुभचिंतक यंत्रालय, कानपुर
37.	गोरखनाथ और उनका युग	डा0 रांगेय राघव	प्रथम, 1963	आत्माराम एंड संस, दिल्ली।
38.	गोस्वामी तुलसीदास व्यक्तित्व (दर्शन) साहित्य	डा0 रामदत्त भारद्वाज	1962 ई.	भारती साहित्य मन्दिर, फव्वारा, दिल्ली ।
39.	चयनिका	सं0 बालकृष्ण शर्मा	इक्कीसवां, 1969	मैकमिलन एंड कं0 लि0, 294, बहूबाजार, स्ट्रीट, कलकत्ता-12
40.	चमनिस्तान-ख्यालात गौहर (भाग 1-2)	मुंशी गेंदनलाल साहब 'गौहर' (बदायुंनी)	1893	नवल किशोर प्रेस, लखनऊ।
41.	चिन्तामणि (भाग 1)	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	1940	इण्डियन प्रेस लिमिटेड,प्रयाग
42.	छत्तीसगढी लोकगीतों का परिचय	हजारीप्रसाद द्विवेदी	-	-
43.	छन्द:पराग	पं0 तिलकधर शर्मा	प्रथम,	साहित्य सदन, नई सड़क, देहली।
44.	छन्द:प्रभाकर	जगन्नाथप्रसाद 'भानु'	षष्ठ	जगन्नाथ प्रेस, बिलासपुर ।
45.	छन्द दर्पण पिंगल	भिखारीदास	सं. 1919 वि.	लक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस,बम्बई।
46.	छन्द:सारावली (अर्थात् सरल भाषा पिंगल)	जगन्नाथप्रसाद 'भानु'	प्रथम, 1917	जगन्नाथ प्रेस, बिलासपुर ।
47.	जायसी ग्रन्थावली	सं0 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	-	नागरी प्रचारिणी सभा,काशी।
48.	डिंगल में वीर रस	मोतीलाल मैनारिया	द्वितीय, 2017 वि.सं.	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।
49.	तुलसीदास	डा0 माताप्रसाद गुप्त	चतुर्थ, 1965 ई.	हिन्दी परिषद् प्रकाशन, प्रयाग विश्वविद्यालय
50.	तुलसी सतसई	तुलसीदास, सं0 बैजनाथ	1927 ई.	नवल किशोर प्रेस, लखनऊ।
51.	तेजसिंह शतक (2य भाग)	चौ0 तेजसिंह वर्मा	द्वितीय,1940	हिन्दी पुस्तकालय, मथुरा।
52.	त्रिभंगिमा	डा0 हरिवंशराय 'बच्चन'	प्रथम,1961	राजपाल एंड संस, दिल्ली ।
53.	त्रिशूल तरंग	गयाप्रसाद शुक्ल 'त्रिशूल' (सनेही)	प्रथम, 1919 ई.	प्रताप पुस्तकमाला, प्रताप आफिस, कानपुर।
54.	दक्खिनी हिन्दी का प्रेमगाथा काव्य	डा0 दशरथ राज	प्रथम, 1969 ई.	सेतु प्रकाशन, झांसी ।
55.	दिलविलास लावनी	भोलानाथ यादव	-	बनारस बुक डिपो, 69-जानसेन गंज, इलाहाबाद।

क्र.	पुस्तक	लेखक	संस्करण	प्रकाशक
56.	देवरात	डा0 विष्णुदन्त 'राकेश'	प्रथम 1992	राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि. दरियागंज, नईदिल्ली।
57.	ध्वनि और संगीत	ललित किशोर सिंह	-	-
58.	ध्वन्यालोक की तारावती टीका	डा0 रामसागर त्रिपाठी	प्रथम, 1963 ई.	मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी।
59.	नवीन विरहा	रामकृपाल	प्रथम	बनारस बुक डिपो, 69-जानसेन गंज, इलाहाबाद।
60.	नारद मदमर्दन	डा0 सत्यव्रत शर्मा 'अजेय'	प्रथम	राज्यश्री प्रकाशन, मथुरा
61.	निबन्ध संकलन	डा0 राजकिशोर 'कक्कड़'	प्रथम	मेरठ वि.वि.प्रकाशन,मेरठ
62.	निर्भय विलास	निर्भयराम	सं.2013 वि.	खेमराज श्रीकृष्णदास, श्री वेंकटेश्वर प्रेस प्रकाशन,बम्बई-4
62अ.	पर्णगन्धा	डा0 विष्णुदन्त 'राकेश'	प्रथम	राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
63.	पल्लव	सुमित्रानन्दन पन्त	षष्ठ 1958	राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लि0, दिल्ली।
64.	पीलीभीत का साहित्यिक इतिहास	गणेश शंकर शुक्ल 'बन्धु'	1957	हिन्दी साहित्य परिषद्, पीलीभीत।
65.	पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ	डा0 वासुदेवशरण अग्रवाल	सं.2010 वि.	व्रज साहित्य मण्डल, मथुरा।
66.	पृथिवी पुत्र	वासुदवेशरण अग्रवाल	द्वितीय,1960	रामप्रसाद एंड संस, आगरा।
67.	पृथ्वीराज रासो	चन्द वरदाई	प्रथम, 2012 वि.	साहित्य संस्थान, राजस्थान विश्वविद्यालय, उदयपुर।
68.	प्रणवीर तेजाजी का मारवाड़ी खेल	अम्बालाल	प्रथम	फूलचन्द बुकसेलर, पुरानी मण्डी, अजमेर।
69.	प्रताप लहरी	पं0 प्रतापनारायण 'मिश्र'	1952 ई.	ज्ञान मन्दिर, कानपुर।
70.	प्रसाद का काव्य	डा0 प्रेमशंकर	प्रथम,	भारती भण्डार, लीडर प्रेस इलाहाबाद।
71.	प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन	डा0 जगन्नाथप्रसाद शर्मा	द्वितीय	सरस्वती मन्दिर, जतनवर, बनारस।
72.	प्रेम तरंग	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	-	-
73.	प्रेमघन सर्वस्व (प्रथम भाग)	बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'	प्रथम,	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।
74.	प्रेरक साधक : श्री बनारसीदास चतुर्वेदी अभिनन्दन ग्रन्थ	सं0 नरेशचन्द्र चतुर्वेदी	प्रथम,	सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली।
75.	फूलों का गुच्छा	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	सन् 1882	खड्गविलास प्रेस, बांकीपुर पटना।

क्र.	पुस्तक	लेखक	संस्करण	प्रकाशक
76.	बृहत् हिन्दी कोश	कालिकाप्रसाद	द्वितीय, सं.2013 वि.	ज्ञानमंडल लिमिटेड, बनारस
77.	भक्तिकालीन हिन्दी साहित्य पर मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव	डा0 असद अली	प्रथम, 1971	एस.ई.एस. प्रकाशन, दिल्ली-7
78.	भजन भास्कर	सं0 कविरत्न हरिशंकर शर्मा	तृतीय,	सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली
79.	भजन संग्रह (भाग-5)	सं0 वियोगी हरि	तेईसवां, सं.2018 वि.	हनुमान प्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस, गोरखपुर।
80.	भारतगीत	श्रीधर पाठक	प्रथम, सं.1975 वि.	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
81.	भारत दुर्दशा नाटक	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	प्रथम, 1885 ई.	भारत जीवन प्रेस, वाराणसी।
82.	भारतीय साहित्यशास्त्र कोश	डा0 राजवंश हीरा	प्रथम	बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी पटना-3
83.	भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि	डा0 किशोरीलाल गुप्त	प्रथम, 1956 ई.	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय पो. बाक्स नं.70, ज्ञानवापी बनारस।
84.	भारतेन्दु ग्रन्थावली (दूसरा खण्ड)	सं0 व्रजरत्नदास	सं.1991 वि.	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
85.	भारतेन्दु नाटकावली	सं0 व्रजरत्नदास	सं.1993 वि.	रामनारायणलाल पब्लिसर, इलाहाबाद।
86.	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	डा0 रामविलास शर्मा	1966 ई.	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
87.	भाषा भास्कर (तृतीय एवं पंचम आलोक)	शान्तिस्वरूप दीक्षित	1981 ई.	कृष्णा बुक डिपो प्रकाशन शिकोहाबाद।
88.	भ्रमरगीत-सार	सूरदास	तृतीय,1972	विनोद पुस्तक मंदिर,आगरा
89.	मधुशाला	डा0 हरिवंशराय 'बच्चन'	-	-
90.	मनोहर बाग (भाग 1-4)	सुखलाल	1893	मथुरा यन्त्रालय, मथुरा।
91.	मरहाठी लावणी	मधुर वासुदेव घोंड	-	मौज प्रकाशन, पूना।
92.	मराठी भाषा का उद्गम व विकास	कृ.पा.कुलकर्णी	-	-
93.	मराठी हिन्दी कृष्णकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन	डा0 र.श.केलकर	प्रथम, 1966 ई.	अक्षर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 2/36 अंसारी रोड दरियागंज, दिल्ली-6
94.	मशरिकी हूर	राधेश्याम	प्रथम,1927	राधेश्याम पुस्तकालय,बरेली

क्र.	पुस्तक	लेखक	संस्करण	प्रकाशक
95.	मस्तपरी का ख्याल	घनश्याम शर्मा	1940	रामश्याम प्रिंटिंग प्रेस, कटला बाजार, जोधपुर ।
96.	महाकवि दाग़ और उनका काव्य	ज्वालादत्त शर्मा	द्वितीय, 1979 वि.	हरिदास एण्ड कम्पनी, कलकत्ता ।
97.	महामनीषी जगदम्बाप्रसाद हितैषी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व	सत्यव्रत शर्मा 'अजेय'	प्रथम, 1978	राज्यश्री प्रकाशन, मथुरा ।
98.	महाराष्ट्र का हिन्दी लोक काव्य	कृष्णाजी गंगाधर दिवाकर	प्रथम, 2020 वि.	हिन्दी साहित्य भण्डार, अमीनाबाद, लखनऊ ।
99.	महिला गायन	लक्ष्मीप्रसाद 'रमा'	1950 ई.	सुकवि प्रेस, कानपुर ।
100.	माखनलाल चतुर्वेदी	हरिकृष्ण प्रेमी	प्रथम, 1960	राजपाल एंड संस, दिल्ली।
101.	मीराबाई की पदावली	सं0 परशुराम चतुर्वेदी	चतुर्थ, 2004वि.	हिन्दी साहित्य सम्मेलन,
101अ.	मीरा	डा. सत्यव्रत शर्मा 'अजेय'	1991	राज्यश्री प्रकाशन, मथुरा
102.	मूल बीजक कबीर	रामखिलावन गोस्वामी	षष्ठ, 1967	प्रतिभा प्रकाशन, 206 हैदर अली, दिल्ली ।
103.	रजत रेणु	शान्तिस्वरूप कुसुम	प्रथम, 1957 ई.	शरद, हिन्दुस्तान प्रेस, सहारनपुर।
104.	रघुनाथ रूपक	मंछाराम कवि	-	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
105.	राजविलास	मान (सं0 मोतीलाल) मेनारिया	सं. 2015 वि.	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
106.	राजस्थान के 'तुर्रा-कलंगी'	डा0 महेन्द्र भानावत	प्रथम, 1968	भारतीय लोक कला मण्डल उदयपुर ।
107.	राजस्थानी लोकनाट्य	देवीलाल सामर	प्रथम,	भारतीय लोक कला मण्डल उदयपुर ।
108.	रामचरित मानस	गोस्वामी तुलसीदास	-	पुस्तक भण्डार, पटना-4
109.	रोढूसिंह के ख्याल (भाग 1-2)	रोढूसिंह	-	हरिराम बुकसेलर, हापुड़
110.	लहर पुकारे	नीरज	द्वितीय, 1959	आत्माराम एंड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली-6
111.	लालकिले की ललकार	लक्ष्मीप्रसाद 'रमा'	1964 ई.	विद्यालय प्रेस, वृंदावन ।
112.	लावण्य लता	स्वामी नारायणानन्द सरस्वती 'अख्तर'	प्रथम, 1922 ई.	सद्धर्म प्रचारक यन्त्रालय, देहली ।
113.	लावनी अर्थात् मरहठी ख्याल	काशीगिरि बनारसी परमहंस	चतुर्थ, 1864 ई.	मुंशी नवल किशोर प्रेस, लखनऊ ।
114.	लावनी का इतिहास	स्वामी नारायणानन्द	प्रथम, 1953 ई.	ज्ञान मन्दिर, पटकापुर, कानपुर ।

क्र.	पुस्तक	लेखक	संस्करण	प्रकाशक
115.	लावनी चौदा रत्न कलंगी	लक्ष्मीप्रसाद 'रमा'	प्रथम, 1920 ई.	हितचिन्तक प्रेस, रामघाट मुरादाबाद।
116.	लावनी ब्रह्मज्ञान	श्रीमत्परमहंस काशीगिरि बनारसी	-	देहाती पुस्तक भण्डार, देहली, तथा श्यामकाशी प्रेस, मथुरा ।
117.	लावनी मनमोहनी	रघुवर प्रसाद	-	दुर्गा पुस्तक भण्डार, खेमाभाई, इलाहाबाद।
118.	लावनी विलास (भाग-1)	गणेशप्रसाद	-	श्रीकृष्ण प्रेस, हाथरस,यू. पी.
119.	लोक कथा निबन्धावली (भाग-4)	सं0 देवीलाल सागर, डा0 महेन्द्र भानावत	प्रथम, 1966 ई.	भारतीय लोक कला मंडल उदयपुर।
120.	लोकनाट्य परम्परा एवं प्रवृत्तियाँ	डा0 महेन्द्र भानावत	-	भारतीय लोक कला मंडल उदयपुर।
121.	लोक साहित्य के प्रतिमान	डा0 कुन्दनलाल उप्रैती	1971 ई.	भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़ ।
122.	लोक साहित्य-विज्ञान	डा0 सत्येन्द्र	प्रथम, 1962 ई.	शिवलाल अग्रवाल एण्ड कं0 प्रा0 लि0, दिल्ली।
123.	लोक साहित्य : सिद्धान्त और प्रयोग	डा0 श्रीराम शर्मा	-	-
124.	वल्लकी	डा0 जगदीश वाजपेयी	प्रथम, 1981 ई.	राज्यश्री प्रकाशन, मथुरा ।
125.	विनय पत्रिका	तुलसीदास	षष्ठ, 2017 वि.	विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
126.	विभावरी	नीरज	प्रथम, 1951 ई.	साधना प्रकाशन, मनीराम, कानपुर ।
127.	व्रजचन्द्र विनोद (पूर्वार्द्ध व उत्तरार्द्ध)	किशोरचन्द्र कपूर 'किशोर'	प्रथम, 2019 वि.	मोहनचन्द्र कपूर एडवोकेट लाठीमोहाल, कानपुर।
128.	शंकर स्तवन	सत्यव्रत शर्मा 'अजेय'	प्रथम, 1952 ई.	शंकरलाल कानोडिया, विरहाना रोड, कानपुर ।
129.	शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त	डा0 गोविन्द त्रिगुणायत	प्रथम, 1959	भारती साहित्य मन्दिर, फव्वारा, दिल्ली।
130.	शीशराम के ख्याल (भाग 1-2)	पं0 शीशराम	-	जनरल पब्लिसिंग हाउस, मेरठ
131.	श्री गऊ पुकार	लक्ष्मीप्रसाद 'रमा'	प्रथम, 1915	हितचिंतक प्रेस, रामघाट, मुरादाबाद।
132.	श्री गांधी श्रद्धांजलि	लक्ष्मीप्रसाद 'रमा'	1949	संजय प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली

क्र.	पुस्तक	लेखक	संस्करण	प्रकाशक
133.	श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्ण स्वच्छंदतावादी काव्य	डा0 रामचन्द्र मिश्र	1956 ई.	रणजीत प्रिंटर्स एंड पब्लिशर्स 4872,चांदनी चौक, दिल्ली
134.	श्री पार्वती मंगल	पं0 हरिवंश खुरजा	1936 ई.	माडर्न प्रेस,नमक मंडी,आगरा
135.	श्री रेवा महात्म	लक्ष्मीप्रसाद मिस्त्री 'रमा'	1914 ई.	कृष्णा प्रेस, इटावा
136.	श्रुतिपर्णा	डा0 विष्णुदत्त 'राकेश'	प्रथम	राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि.
137.	संक्षिप्त हिन्दी शब्दसागर	-	पंचम	नागरी प्रचारिणी सभा,काशी।
138.	संगीत नौटंकी शहजादी	श्रीकृष्ण पहलवान	अष्टम,	श्रीकृष्ण खत्री, श्रीकृष्ण पुस्तकालय, चौक, कानपुर
139.	संगीत शास्त्र दर्पण (द्वितीय भाग)	श्रीमती शान्ति गोवर्धन	अष्टम, 1971	रत्नाकर पाठक, 27, महाजनी टोला, इलाहाबाद
140.	सभा प्रसन्न	चौ0 नवलसिंह वर्मा	सं.1941 वि.	वैदिक यन्त्रालय, प्रयाग
141.	साकेत	मैथिलीशरण गुप्त	चतुर्थ,	साहित्यसदन,चिरगांव,झांसी
142.	साकेत संत	बलदेवप्रसाद मिश्र 'राजहंस'	-	-
143.	साहित्य वार्ता	गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश'	प्रथम, 1956	भारती साहित्य मन्दिर, फव्वारा, दिल्ली।
144.	साहित्य शोध समीक्षा	विनयमोहन शर्मा	1961	भारती साहित्य मन्दिर, फव्वारा, दिल्ली।
145.	सूर की भाषा	डा0 टण्डन	1957	हिन्दी साहित्य भण्डार, गंगाप्रसाद रोड, लखनऊ।
146.	सूर सागर	सं0 नन्ददुलारे वाजपेयी	द्वितीय, 2012 वि.	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
147.	स्कन्दगुप्त	जयशंकरप्रसाद	बारहवां, 2013 वि.	भारती भण्डार लीडर प्रेस, इलाहाबाद।
148.	हंसवच्छ चरित्र	मुनि श्री चौथमल जी	तृतीय,1960	महलों की पीपली,राजस्थान।
149.	हम विषपायी जनम के	'नवीन'	प्रथम,1964	भारतीय ज्ञानपीठ । अलीपुर पार्क पैलेस, कलकत्ता।
150.	हरिकृष्ण प्रेमी के नाटक : एक आलोचनात्मक अध्ययन	कु0 सरला जौहरी	-	-
151.	हरियाना प्रदेश का लोक साहित्य	डा0 शंकरदयाल यादव	-	-
152.	हरिवंश विलास	पं0 हरिवंश मरहटी गायनाचार्य	प्रथम,	मु.हरप्रसाद प्रेस, बुलंदशहर
153.	हिन्द ब्रिटेनियाँ	मि.ब्लाकट साहब	द्वितीय,1895	धार्मिक यन्त्रालय,प्रयाग।
154.	हिन्दी अनुसंधान की प्रगति (लेख)	डा0 हरवंशलाल शर्मा	-	-

क्र.	पुस्तक	लेखक	संस्करण	प्रकाशक
155.	हिन्दी नाटक उद्भव और विकास	डा0 दशरथ ओझा	द्वितीय	राजपाल एंड संस,दिल्ली-6
156.	हिन्दी रासो काव्य परम्परा	डा0 सुमनदेव राजे	प्रथम	ग्रन्थम,रामबाग,कानपुर-12
157.	हिन्दी लावनी साहित्य (निबन्ध)	डा0 पुण्यमचन्द्र 'मानव'	प्रथम, 1972-73	भाषा विभाग, हरियाणा, चण्डीगढ़।
158.	हिन्दी लावनी साहित्य पर हिन्दी सन्त साहित्य का प्रभाव	डा0 पुण्यमचन्द 'मानव'	प्रथम, 1972	सरस्वती पुस्तक सदन, मोती कटरा, आगरा-3
159.	हिन्दी साहित्य (11 खण्ड)	धीरेन्द्र वर्मा, व्रजेश्वर वर्मा	प्रथम,1959	भारतीय हिंदी परिषद्,प्रयाग
160.	हिन्दी साहित्य	श्यामसुन्दर दास	षष्ठ	इण्डियन प्रेस लि.,प्रयाग।
161.	हिन्दी साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य	सच्चिदानन्द वात्स्यायन	1967 ई.	राधाकृष्ण प्रकाशन-14, रूपनगर, दिल्ली-7
162.	हिन्दी साहित्य और उनकी प्रमुख प्रवृत्तियाँ	डा0 धीरेन्द्र वर्मा आदि	प्रथम, 2015 वि.	ज्ञान मण्डल लिमिटिड, वाराणसी।
163.	हिन्दी साहित्य का इतिहास	रामचन्द्र शुक्ल	सं.2007 तथा सं.2038 वि.	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
164.	हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास (खण्ड-2)	रामबहोरीशुक्ल डा0 भगीरथ मिश्र	प्रथम, 1956 ई.	हिन्दी भवन,332,रानीमंडी इलाहाबाद-3
165.	हिन्दी साहित्य का प्रवृत्तिगत इतिहास	डा0 प्रतापनारायण	प्रथम, 1968	विवेक प्रकाशन, अमीनाबाद लखनऊ।
166.	हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास (16वां भाग)	सं0पं. राहुल सांकृत्यायन	प्रथम, सं.2017 वि.	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
167.	हिन्दी साहित्यकार कोश (हिन्दी सेवी संसार)प्रथम खंड	डा0 प्रेमनारायण टंडन	प्रथम, 1963 ई.	हिन्दी सेवी संसार कार्यालय, रानी कटरा, लखनऊ-3
168.	हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास	गुलाबराय	इकत्तीसवां	साहित्यरत्न भण्डार, आगरा।
169.	हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ	डा0 जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल	सप्तम व नवम	विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
170.	हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष	शिवदान सिंह चौहान	1954	राजकमल पब्लिकेशन्स लिमिटेड, बम्बई।
171.	हिन्दी साहित्य कोश	डा0 धीरेन्द्र वर्मा आदि	प्रथम, सं.2012 वि.	ज्ञान मण्डल लिमिटेड, बनारस
172.	हिन्दी साहित्य नव परिप्रेक्ष्य	डा0 सुरेन्द्र माथुर	प्रथम, 1969 ई.	यंग एशिया पब्लिकेशन्स, दिल्ली।
173.	हृषीकेश रचनावली खण्ड-1	पं0 हृषीकेश चतुर्वेदी सं0 सतीशचन्द्र चतुर्वेदी	प्रथम 1973	चौबे जी का कटरा, किनारी, आगरा।

संस्कृत-ग्रन्थ

क्र.	पुस्तक	लेखक	संस्करण	प्रकाशक
1.	अग्निपुराण	वेदव्यास (कृष्णद्वैपायन)	-	-
2.	ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषदः	-	द्वितीय	निर्णय सागर प्रेस, बम्बई।
3.	ऋक्सूक्त संग्रह	व्याख्याकार : डा० हरिदत्त शास्त्री	द्वितीय	साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ
4.	ऋग्वेद	-	द्वितीय,1940	स्वाध्याय मण्डल, पारडी।
5.	काव्यालंकार सूत्रवृत्तिः	वामन	प्रथम, सं. 2040 वि.	चौखम्बा अमर भारती प्रकाशन, वाराणसी।
6.	काव्यालंकार	भामह		चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी।
7.	गीतगोविन्द	जयदेव	-	-
8.	चन्द्रालोक	जयदेव	पंचम, सं. 2021 वि.	चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी।
9.	चमत्कार चन्द्रिका	पं० विश्वेश्वर	-	-
10.	छन्दःशास्त्रम्	पिंगलनाग	तृतीय	निर्णय सागर मुद्रण यन्त्रालय बम्बई।
11.	पद्मपुराण (पाताल खण्ड)	वेदव्यास	1893 ई.	आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पुणे।
12.	पारस्कर गृह्यसूत्र	-	-	-
13.	भट्टिकाव्यम् (रावणवध)	महाकवि भट्टि	द्वितीय, 1976 ई.	चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी।
14.	ध्वन्यालोक	आनन्दवर्धनाचार्य	तृतीय	चौखम्बा संस्कृत सीरीज, आफिस, वाराणसी।
15.	नाट्यशास्त्रम्	भरतमुनि	प्रथम, 1964 ई.	मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी।
16.	नारदभक्तिसूत्र	-	-	-
17.	यजुर्वेदसंहिता	-	षष्ठ, सं. 1999 वि.	वैदिक यन्त्रालय, परोपकारी सभा, अजमेर।

क्र.	पुस्तक	लेखक	संस्करण	प्रकाशक
18.	याज्ञवल्क्यस्मृतिः	याज्ञवल्क्य	प्रथम, 1967 ई.	चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी।
19.	रत्नावली नाटिका	हर्ष	-	साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ।
20.	लघुसिद्धान्त कौमुदी	वरदराजाचार्य	अष्टम, सं. 2020 वि.	मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी।
21.	लोचन	अभिनवगुप्त	-	काशी संस्कृत सीरीज
22.	विक्रमोर्वशीयम्	कालिदास		
23.	व्याकरणमहाभाष्यम्	पतञ्जलि	प्रथम, सं. 1946 वि.	पं0 कृपाराम शर्मा, तिमिर नाशक यन्त्रालय, काशी।
24.	शिवसंहिता (पञ्चम पटल)			
25.	श्री आनन्दवृन्दावन चम्पूः	कवि कर्णपूर	प्रथम, 1974 ई.	श्री कृष्णानन्द स्वर्गाश्रम, वृन्दावन (मथुरा)
26.	श्रीमद्भगवद्गीता	व्यास	सप्तम, सं. 2017 वि.	हनुमानप्रसाद पोद्दार, गीता प्रेस, गोरखपुर।
27.	श्रीमद्भागवत (दशम स्कन्ध)	व्यास	1968 ई.	भागवत विद्यापीठ, दिव्य गिरि, सोला, अहमदाबाद-6
28.	श्रीमद्भागवतगीता महापुराण	महर्षि वेदव्यास	प्रथम	गीता प्रेस, गोरखपुर।
29.	सरस्वती कण्ठाभरणम्	महाराजा भोज	प्रथम, 1976 ई.	चौखम्बा ओरियन्टालिया, वाराणसी।
30.	सामवेद	-	तृतीय, 1956 ई.	स्वाध्याय मण्डल, पारडी।
31.	साहित्यदर्पणम् (विमलाटीका-शालग्रामशास्त्री)	विश्वनाथ कविराज	अष्टम, 1975 ई.	मोतीलाल बनारसीदास, जवाहर नगर, दिल्ली-7
32.	सिद्धान्त कौमुदी (उत्तरार्द्ध)	भट्टोजिदीक्षित	चतुर्थ, 1967	मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी
33.	सुश्रुत संहिता	सुश्रुत	तृतीय 1960 ई.	मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी

विभिन्न भाषा-ग्रन्थ

क्र.	पुस्तक	लेखक	संस्करण	प्रकाशक
	प्राकृत-ग्रन्थ			
1.	प्राकृत पैंगलम् (भाग-1,2)	सम्पादक: डा0 भोलाशंकर व्यास	प्रथम 1959 ई.	प्राकृत टैक्स्ट सोसायटी, वाराणसी।
	मराठी-ग्रन्थ			
1.	अनन्तफन्दीकृत कविता	अनन्तफन्दी	सन् 1908	शंकर तुकाराम शालिग्राम, चित्रशाला प्रेस, पूना।
2.	परशराम कविच्यालावण्या	परशुराम	" "	" "
3.	प्रभाकृत कविता	प्रभाकर	" "	" "
4.	रामजोशीकृत लावण्या	रामजोशी	" "	" "
5.	सगनभाऊकृत लावण्या व पोवाडे	सगनभाऊ	" "	" "
6.	होनाजी बालाकृत लावण्या	होनाजी	" "	" "
	गुजराती			
1.	ओम् तुर्रा (पहला भाग)	विभिन्न (ख्यालगो)	प्रथम	सुबोध विचार भंडार, बोम्बे।
	उर्दू			
1.	उर्दू हिन्दी शब्दकोश	मुहम्मद मुस्तफ़ा खां 'मद्दाह'	चतुर्थ, 1980 ई.	उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, महात्मा गांधी मार्ग, लखनऊ
2.	फ़न-ए-शायरी	अल्लामा अख़लाक़ देहलवी	चतुर्थ, 1972	क़ुतुबखाना, अंजुमन-ए-तरक्कि-ए-उर्दू, जामा मस्जिद, देहली।

क्र. पुस्तक लेखक प्राप्तिस्थान

अंग्रेजी - ग्रन्थ

1. A History of Urdu Literature - By Ram Babu Saxena.
2. Kittles Cannad English Dictionary, Edition, 1884.
3. Prakrita and Apabhransa Metres [J.B.R.A.S. Vol.23, 1947, P-1]
4. The Oriental Fabulist, 1803-P-5, Dr. Gill Kirist.

हस्तलिखित

क्र.	पुस्तक	लेखक	प्राप्तिस्थान
1.	ख़याल संग्रह (पद्य)	विभिन्न कवि	श्री बैजनाथ उपाध्याय, ज्वालापुर ।
2.	ख़्यालबाजी का इतिहास (लेख)	-	रमा-सुत,रमा-निवास, हटा,दमोह (म.प्र.)
3.	ख़्याल संज्ञक काव्य (लेख)	-	श्री अगरचन्द नाहटा का निजी पुस्तकालय नाहटो की गवार, बीकानेर ।
4.	पद मुक्तावली (पद्य) (हिन्दी 23-55)	नागरीदास	कैटालाग आफ मैन्यूस्क्रिप्ट्स जयपुर के महाराजा का म्यूजियम
5.	लाघण्यमंजरी (पद्य)	डा0 सत्यव्रत शर्मा 'अजेय'	सत्यसदन, आर्यनगर, ज्वालापुर (हरिद्वार)
6.	लावनी संग्रह (पद्य)	स्वामी नारायणानन्द द्वारा लिखित समस्त लावनियाँ	श्री बाबूराम ख्यालगो - तुर्रा, बरेली, द्वारा पं0 देवीप्रसाद गौड 'मस्त',448 साहूकारा, बरेली।
7.	लावनी संग्रह (पद्य)	आगरे के तुर्रा-पक्ष के लावनीकारों की रचनाएं	श्री गोपालदास मुनीम, 1405, बेलनगंज, भैरों मन्दिर के सामने, आगरा ।
8.	लावनी संग्रह (पद्य)	ले0 जैनकवि नाथूराम	पु0सं0 2069 वेष्टन 1337, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ।
9.	लावनी संग्रह (पद्य)	विभिन्न कवि	श्री बैजनाथ उपाध्याय, ज्वालापुर ।
10.	सन्त तुकनगिरि की लावनी (पद्य)	तुकनगिरि	श्री प्रभुदयाल यादव, जबलपुर ।
11.	स्वामी नारायणानन्द सरस्वती: व्यक्तित्व एंव कृतित्व (शोध)	सुधीरकुमार शर्मा विद्याभास्कर	राज्यश्री प्रकाशन, मथुरा (शीघ्र प्रकाश्य) प्राप्तिस्थान-सत्य सदन, आर्यनगर, ज्वालापुर
12.	हाथरस के हिन्दी सांगों का इतिहास और उनकी कला (शोध)	डा0 लक्ष्मणसिंह	डा0 लक्ष्मणसिंह, अध्यक्ष हिन्दी विभाग, रामगढ़िया कालेज, फगवाड़ा (पंजाब)

पत्र - पत्रिकाएँ

क्र.	पत्र/पत्रिका	प्रकार	प्रकाशन स्थान	संस्करण सन्/संवत्
1.	अमर उजाला	दैनिक	आगरा	सन् 1973 ई.
2.	आज की आवाज	दैनिक	आगरा	सन् 1969 ई.
3.	कवीन्द्र	मासिक	कानपुर	सम्वत् 1981 वि0
4.	ग्राम्या	वार्षिक	खेडा मुग़ल, सहारनपुर	सन् 1961 ई.
5.	जागरण	दैनिक	कानपुर	सन् 1972 ई.
6.	ज्ञान	मासिक	कानपुर	सन् 1955 ई.
7.	टंकार	साप्ताहिक	कानपुर	सन् 1960 ई.
8.	दौराला मिल पत्रिका	-	दौराला	सन् 1983 ई.
9.	धर्मयुग	साप्ताहिक	बम्बई	सन् '68,75,78,80,82 ई.
10.	नवकल्प	-	गया, बिहार	सन् 1976 ई.
11.	नवभारत टाइम्स	दैनिक	दिल्ली	सन् 1975, 82 ई.
12.	नागरी पत्रिका	-	ना.प्र.स.काशी	सन् 1974
13.	पंजाब केसरी	दैनिक	दिल्ली	सन् 1983 ई.
14.	परम्परा	-	राजस्थानी शोध संस्थान चौपासनी, जोधपुर	सम्वत् 2013 वि0
15.	प्रताप	दैनिक	कानपुर	सन् '50 से 53,55,57 ई.
16.	प्रार्थना	मासिक	कानपुर	सन् 1952 ई.
17.	भव्य भारत	साप्ताहिक	सहारनपुर	सन् 1973 ई.
18.	भारतोदय	मासिक	ज्वालापुर	सम्वत् 1966 वि0
19.	मनोरमा	मासिक	प्रयाग	सन् 1927 ई.
20.	युवक	मासिक	आगरा	सन् 1982 ई.
21.	रामराज्य	साप्ताहिक	कानपुर	सन् 1951 ई.
22.	राष्ट्रभाषा सन्देश	पाक्षिक	प्रयाग	सन् '81 ई.,शक सं. 1896
23.	विशाल भारत	मासिक	कलकत्ता	सन् 1929 व 1938 ई.
24.	विश्वमित्र	दैनिक	कानपुर	सन् 1952 ई.

पत्र-पत्रिकाएँ

क्र.	पत्र/पत्रिका	प्रकार	प्रकाशन स्थान	संस्करण/सन्/संवत्
25.	सन्त सन्देश	मासिक	गया (बिहार)	सन् 1936 ई.
26.	सप्त सिन्धु	-	पटियाला	सन् 1963 ई.
27.	सम्मेलन पत्रिका	-	प्रयाग	सम्वत् 2010 वि0
28.	सरस्वती	मासिक	इलाहाबाद	सन् 1905 व 1918 ई.
29.	सहयोगी	साप्ताहिक	कानपुर	सन् 1951 ई.
30.	साप्ताहिक हिन्दुस्तान	साप्ताहिक	दिल्ली	सन् 1951,56,57,76,77, 81,82 ई.
31.	साहित्य सन्देश	-	आगरा	सन् 1946 ई.
32.	साहित्यालोक	-	आगरा	सन् 1967 ई.
33.	राष्ट्रीय सहारा	दैनिक	नई दिल्ली	सन् 1992 ई.

....